Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास

चिन्तन : अनुचिन्तन

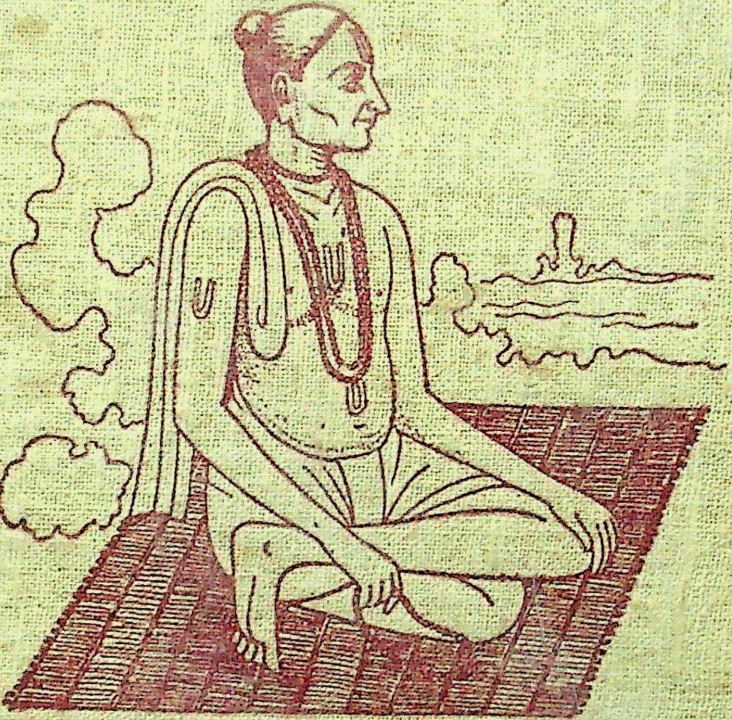

धर्मो जयति नाधर्मस्सत्यं जयति नानृतं ।।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः ।।

सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय

कलकत्ता-७००००७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्री नन्दकुमार अवस्थीजी
को
सादर भेंट
[illegible]
५/१२/८०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास

चिन्तन : अनुचिन्तन

•

सम्पादक

इन्द्रजीत पाण्डेय

जुगल किशोर जैथलिया

सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय

कलकत्ता-७०००७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकाशन-समिति

श्री राधाकृष्ण नेवटिया
श्री विष्णुकान्त शास्त्री
श्री इन्द्रजीत पाण्डेय
श्री जुगल किशोर जैथलिया
श्री गनपतलाल खत्री
श्री सागरमल गुप्त
श्री बदरीनाथ पाण्डेय

●

सहायक सम्पादक
श्रीराम तिवारी

●

प्रकाशक : सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय,
१८६, चित्तरंजन एवेन्यू,
कलकत्ता-७००००७.

●

प्रकाशन-तिथि : 'तुलसी-जयन्ती', श्रावण शुक्ला सप्तमी, सं० २०३७ वि०.

●

सर्वाधिकार सुरक्षित : सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता.

●

मुद्रक : श्री रामजी प्रसाद शर्मा,
जनवाणी प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा० लि०,
५७४, रवीन्द्र सरणी,
कलकत्ता-७००००३.

●

मूल्य ४०.००

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सविनय

भगवान राम की असीम अनुकम्पा से तुलसी-साहित्य-संस्कृति और दर्शन पर पुस्तक-प्रकाशन का मेरे स्वर्गीय पितृश्री सेठ सूरजमल जालान का चिरसंचित स्वप्न आज पूर्ण हो रहा है। धर्म और संस्कृति के उन्नयन को ही वे अपने जीवन का आदर्श मानते थे। पितृश्री के आशीर्वाद के फलस्वरूप मेरी अभिरुचि सदा से धर्म और संस्कृति में रही है। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस ने मुझे जीवन में निरंतर प्रेरणा और गति दी है।

पुस्तकालय की ओर से प्रकाशित 'तुलसीदास : चिंतन-अनुचिंतन' ग्रन्थ को मैं प्रभु का प्रसाद मानता हूँ। ग्रन्थ-प्रकाशन के इस पुनीत यज्ञ में जिन मनीषियों ने सहयोग दिया है, मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। प्रत्येक मनीषी के निबंध को मैं तुलसी-दल ही मानता हूँ। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से निश्चय ही पुस्तकालय की श्रीवृद्धि हुई है।

भक्ति-साहित्य के और भी ग्रन्थ इस पुस्तकालय से भविष्य में प्रकाशित हों, यह मेरी उत्कट अभिलाषा है।

मोहन लाल जालान

श्रावण शुक्ला सप्तमी,
सं० २०३७ वि०

अध्यक्ष
सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकाशकीय

तुलसी-जयन्ती के पुनीत पर्व पर प्रतिवर्ष तुलसी-साहित्य के ख्यातिलब्ध विद्वानों के व्याख्यानों के आयोजन की सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय की अपनी सुदीर्घ परम्परा है। तुलसी साहित्य के विविध पक्षों पर दिये गये इन सुचिन्तित व्याख्यानों का प्रसाद और अधिक सुधी पाठकों तक पहुँचे, इसका चिन्तन मेरे मानस में बहुत दिनों से चल रहा था, किन्तु परिस्थितियों के रुझान से उसे साकार करने का सुअवसर प्राप्त नहीं हो पाया। प्रभु के अनुग्रह से इस वर्ष जैसे ही मैंने तुलसी साहित्य पर पुस्तकालय की ओर से ग्रन्थ प्रकाशन का सुझाव पुस्तकालय की कार्यकारिणी के समक्ष प्रस्तुत किया, सभी ने सहर्ष इस साहित्य-अनुष्ठान को तुलसी-जयन्ती की पुनीत तिथि पर पूर्णता प्रदान करने की स्वीकृति दी। ख्यातिलब्ध मनीषियों और समीक्षकों ने पुस्तकालय के मंच से प्रतिवर्ष जो व्याख्यान दिये थे, उन्हें परिवर्द्धित और अद्यतन बनाकर निबन्धों की माला ही न बनाई जाये, अपितु हिन्दी के अन्य सुधी चिन्तकों, प्रतिष्ठित साहित्यकारों के निबन्धों को भी इस माला में पिरो कर विस्तार दिया जाये, इसी उच्च आशय से प्रेरित होकर, "तुलसीदास : चिन्तन-अनुचिन्तन" ग्रन्थ की रूपरेखा बनाई गयी।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन को पूर्णता प्रदान करने में सेठ सूरजमल जालान न्यास का विशेष योगदान है, जिसके अध्यक्ष ने उदारतापूर्वक प्रकाशन के समस्त अर्थ-भार को वहन किया है। पुस्तकालय के उपाध्यक्ष श्री तुलाराम जालान ने अपने सत्-परामर्श एवं श्री राधाकृष्ण नेवटिया ने अपने सतत् प्रोत्साहन से इस अनुष्ठान को उत्कृष्टता प्रदान की है।

जिन सुधी विद्वानों के निबन्ध हमें प्राप्त हुए हैं, उन सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। उनकी सतत् साधना और तपस्या के पुण्य से ही यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, यही मेरा विश्वास है।

पुस्तकालय परिवार के सदस्यों के अकथ और अथक प्रयास से ही पुस्तक को साकारता प्राप्त हुई है। श्री हर्षनाथ श्रीवास्तव ने पाण्डुलिपि संशोधन एवं मुद्रण के जटिल कार्य को जिस मनोयोग से किया है, वह श्लाघ्य है।

जनवाणी प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स के प्रबन्धक श्री रामजी प्रसाद शर्मा ने जिस तत्परता और सक्रियता से मुद्रण-कार्य पूरा किया है, वह सराहनीय है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जिन महानुभावों ने इस ज्ञानयज्ञ में अपनी भाव-समिधा अर्पित की है, मैं उन सभी के प्रति अपना विनम्र आभार प्रकट करता हूँ।

सागरमल गुप्त
मंत्री

सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय,
१८६, चित्तरंजन एवेन्यू,
कलकत्ता-७००००७

दिनांक १८ अगस्त, १९८०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्पादकीय

भारतवर्ष की आध्यात्मिक संस्कृति को भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदास जी ने युगधर्म के अभिनव आदर्शात्मक स्वरूप से ही केवल पुष्ट नहीं किया है, अपितु उसकी सुदीर्घ परम्परा को समन्वयात्मक संचेतना से जीवंत भी बनाया है। उनकी यह समन्वयात्मक संचेतना जहाँ एक ओर उनकी वैयक्तिक अंतश्चेतना की महत् उपलब्धि है, वहीं दूसरी ओर तद्युगीन परिस्थितियों की अनिवार्य उपज भी है। भारतीय धर्म-साधना में तुलसीदास की विशेष देन परात्पर ब्रह्म राम के रामत्व की विशिष्ट स्थापना है। रामत्व की अनिर्वचनीय महिमा की अभिनव स्थापना प्रस्तुत कर उन्होंने साहित्य और समाज को न केवल आध्यात्मिक चेतना ही प्रदान की है, बल्कि चिन्मयी आभा से आलोकित भी किया है। इसी अलौकिक प्रकाश को पाकर तुलसीदास का साहित्य किसी युग-विशेष का न होकर सार्वकालिक और सार्वभौमिक हो गया है।

तुलसी का काव्य संत कवि का काव्य है। लोक-मंगल के महत् उद्देश्य पर समर्पित तुलसी का साहित्य उनके संतत्व की विराट उपलब्धि है। उनका हृदय नवनीत से भी कोमल परसंताप से द्रवित होनेवाला संत-हृदय है। कविता के विराट फलक को भक्ति की तरलता प्रदान कर तुलसी का कवि संत महाकवि की संज्ञा सहज ही प्राप्त कर लेता है। व्यास, बाल्मीकि और कालिदास जैसे रस-सिद्ध कवीश्वरों की अग्रिम पंक्ति में तुलसी का कवि शोभित होता है। उनकी काव्य-परंपरा को ही तुलसी का कवि युगानुरूपता प्रदान करता है। "स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबंध मति मंजुल मातनोति।" के आधार तुलसीदास काव्य के आनन्दवादी प्रयोजन की स्थापना करते हैं। उनके काव्य-प्रयोजन की स्थापना निम्नलिखित पंक्तियों में और भी मुखरित हो उठती है—

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई।।

"सरल कवित कीरति विमल"—तुलसी का मूल प्रतिपाद्य है। उनका काव्य विमल, विवेक और वैराग्य का नियामक है। उनके राम ही उनकी समस्त अनुभूतियों के आगार हैं, रस के परमधाम हैं। "एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अतिपावन पुरान श्रुति सारा।।" "चली सुभग कविता सरिता-सी। राम विमल-जस जल भरिता-सी।।" आदि पंक्तियों में उनकी रससिद्ध वाणी की सोद्देश्य अभिव्यंजना ध्वनित होती है। रामकथा के माध्यम से उदात्त जीवन-आदर्शों की प्रतिष्ठा से तुलसी ने अपनी संवेदनात्मक प्रेषणीयता का उत्कृष्ट परिचय दिया है। अपनी अभिलाषा को "बरवैरामायण" में तुलसी का भक्त-व्यक्तित्व जिस प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करता है, वह विशेष रूप से हृदयग्राह्य हो उठता है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नाम भरोस, नाम बल, नाम सनेहु।
जनम-जनम रघुनंदन तुलसिहिं देहु।।
जनम-जनम जहँ-जहँ तुलसिहिं देहु।
तहँ-तहँ राम निबाहिब राम-सनेहु।। —बरवै ६८-६९

तुलसी-साहित्य के अध्ययन के लिए भारतीय विश्वासों, दार्शनिक सिद्धान्तों, पौराणिक मिथकों तथा तद्‌युगीन सामाजिक जीवन-मूल्यों की विस्तृत जानकारी अपेक्षित हो जाती है। यद्यपि तुलसी-साहित्य के विविध पक्षों पर अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन अब तक हुए हैं और हो रहे हैं, तो भी तुलसी-साहित्य के वैविध्य, विस्तार और गाम्भीर्य को देखते हुए यह स्पष्ट रूप से निवेदित किया जा सकता है कि अध्ययन के अभी अनेक पक्ष जिज्ञासुओं को आकृष्ट करते हैं। 'हरि अनंत हरिकथा अनंता' की भाँति ही तुलसी-कथा अनंत है और उसके चिन्तन के आयाम भी अनंत हैं।

तुलसी-साहित्य के ख्यातिलब्ध समीक्षकों, चिन्तकों की अधुनातन चिन्तनाओं, स्थापनाओं से जिज्ञासु पाठकों का परिचय हो, इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर ग्रंथ के प्रकाशन की यह योजना बनाई गयी। 'तुलसीदास : चिंतन-अनुचिंतन' ग्रन्थ के नामकरण की यही आधारभित्ति है। ग्रन्थ को दो खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड के निबंधों का सम्बन्ध तुलसीदास के व्यक्तित्व, श्रद्धांजलि, सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों से है। द्वितीय खण्ड का संबंध तुलसीदास की विविध कृतियों पर सुचिंतित् तथा तुलनात्मक निबंधों से है। निबंधों को ग्रन्थ में अनुस्यूत करने का कोई क्रम विद्वानों की पक्षधरता का पूर्वाग्रह नहीं है। जिस क्रम से निबंध प्रकाशनार्थ हमें मिले हैं, उसी क्रम से उन्हें प्रकाशित करना हमारी अनुस्यूतित दृष्टि है।

ग्रन्थ-प्रणयन या सम्पादन अपने-आप में एक प्रकार का ज्ञान-यज्ञ है। इस यज्ञ-सम्पादन में गुरुजनों के आशीर्वाद का सम्बल हमें निरंतर मिला है। आचार्यों एवम् विद्वानों के निबंधों ने हमारा उत्साहवर्द्धन किया है। आत्मीयजनों तथा मित्रों के सद्‌भाव का संबल ही हमारा पाथेय रहा है। भगवान राम के अनुग्रह से ही इस साहित्यिक अनुष्ठान को पूर्णता मिली है, यही हमारी आस्था का प्रेरक स्रोत है।

पूरी सावधानी बरतने के उपरान्त भी ग्रन्थ में त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। एतदर्थ हम सुधी पाठकों से क्षमा याचना करते हैं।

इन्द्रजीत पाण्डेय
जुगल किशोर जैथलिया

तुलसी-जयन्ती, २०३७ वि०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

: अनुक्रम :

प्रथम खण्ड

१.	तुलसी की दृष्टि और सृष्टि	डॉ० सत्येन्द्र	.. १
२.	तुलसी के अध्यात्म चिन्तन की दिशाएँ	डॉ० भगीरथ मिश्र	.. १६
३.	तुलसी की समन्वय भावना	डॉ० उदयभानु सिंह	.. २१
४.	(पौरुष और प्रारब्ध) होईहि सोई जो राम रचि राखा—तुलसी	डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी	.. ३७
५.	तुलसी का प्रतिपक्ष	डॉ० युगेश्वर	.. ४४
६.	महाकवि तुलसीदास और भारतीय साहित्य	डॉ० प्रभाकर माचवे	.. ५१
७.	तुलसी की भक्ति, उच्चकोटि का मानवतावाद	डॉ० रामविलास शर्मा	.. ५६
८.	तुलसी का जीवन-दर्शन	डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव	.. ७४
९.	सामान्यजन के दृश्य और तुलसी	डॉ० प्रेमशंकर	.. ८५
१०.	जनकवि तुलसीदास	डॉ० राजकिशोर पाण्डेय	.. ९३
११.	गोस्वामी तुलसीदास और उनका रामचरितमानस : एक दृष्टिकोण	डॉ० शिवकुमार मिश्र	.. ९६
१२.	गोस्वामी तुलसीदास का बचपन और रामचरितमानस	श्री श्यामनारायण पाण्डेय	.. १००
१३.	तुलसी की जीवन-दृष्टि	डॉ० भगवती प्रसाद सिंह	.. १०४
१४.	गोस्वामी तुलसीदास और उनकी अप्रतिम प्रतिभा	आचार्य सीताराम चतुर्वेदी	.. ११३
१५.	तुलसी के प्रति श्रद्धाञ्जलि	डॉ० फादर कामिल बुल्के	.. १२६
१६.	अप्रमेय मानस का राजहंस तुलसी	श्री वासुदेव पोद्दार	.. १३१
१७.	आधुनिक परिप्रेक्ष्य में तुलसी का जीवन-दर्शन	डॉ० विनयमोहन शर्मा	.. १४३
१८.	सांस्कृतिक युगपुरुष तुलसीदास	डॉ० मदनगोपाल गुप्त	.. १४७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वितीय खण्ड

१.	रामचरितमानस में विशेष प्रयोग	आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र	.. १
२.	मानस : मंगलाचरण : प्रथम श्लोक (अर्थ-परिरहस्य)	डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय	.. ७
३.	रामचरितमानस का अंगी रस	डॉ० नगेन्द्र	.. २१
४.	आधुनिक युगसन्दर्भ और रामचरितमानस	प्रो० विजयेन्द्र स्नातक	.. २५
५.	रामचरितमानस में रूपक	डॉ० वचनदेव कुमार	.. ३४
६.	मानस के सरस प्रसंग (मलयालम के भाषा रामायण चंपू से तुलना-सहित)	डॉ० एन. ई. विश्वनाथ अय्यर	.. ४८
७.	प्रीति पुरातन लखै न कोई	प्रो० कल्याणमल लोढ़ा	.. ६०
८.	तुलसी के हनुमान	डॉ० रामबाबू शर्मा	.. ७०
९.	तुलसी की कविता : अर्थ-संरचना और भाषा-दृष्टि	डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव	.. ८७
१०.	लोकगीत और रामलला नहछू : प्रतिपाद्य और विश्लेषण	डॉ० (श्रीमती) इन्द्रावती सिंह	.. ९४
११.	भक्ति-आन्दोलन के तीन सोपान	डॉ० जनार्दन राव चेलेर	.. १०१
१२.	तुलसी की जनवादी चेतना	श्री हर्षनाथ	.. ११६
१३.	तुलसी-साहित्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन	डॉ० रामरतन भटनागर	.. १२५
१४.	कबीर और तुलसी में आंतरिक साम्य	श्री विष्णुकान्त शास्त्री	.. १३८
१५.	तुलसी साहित्य में दुःख-बोध के विविध स्तर	श्री जगन्नाथ सेठ	.. १६२
१६.	तुलसीदास का ज्ञान-भक्ति-निरूपण	डॉ० रामप्रीत उपाध्याय	.. १७२
१७.	रामचरितमानस का बिम्ब विधान : शास्त्रीय विश्लेषण	डॉ० त्रिभुवननाथ शक्ल	.. १८४
१८.	तुलसी के मानस के पुनर्मूल्यांकन के कुछ किन्तु	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	.. १९१
१९.	आधुनिकता और तुलसी का काव्य	स्व० रघुनन्दन मिश्र	.. १९६
२०.	तुलसीदास एवं उनकी कवितावली	श्री अवधेश कुमार राय	.. २०५
२१.	रामचरितमानस का एक गुजराती पद्यानुवाद	डॉ० जगदीश गुप्त	.. २१४
२२.	विनयपत्रिका में गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना	श्री इन्द्रजीत पाण्डेय	.. २२०
२३.	हमारे निबन्धकार	..	.. i

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सेठ सूरजमल जालान न्यास द्वारा स्थापित
"राम-मंदिर" की मूर्तियों की प्रतिछबि ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वितीय खण्ड

[illegible]

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

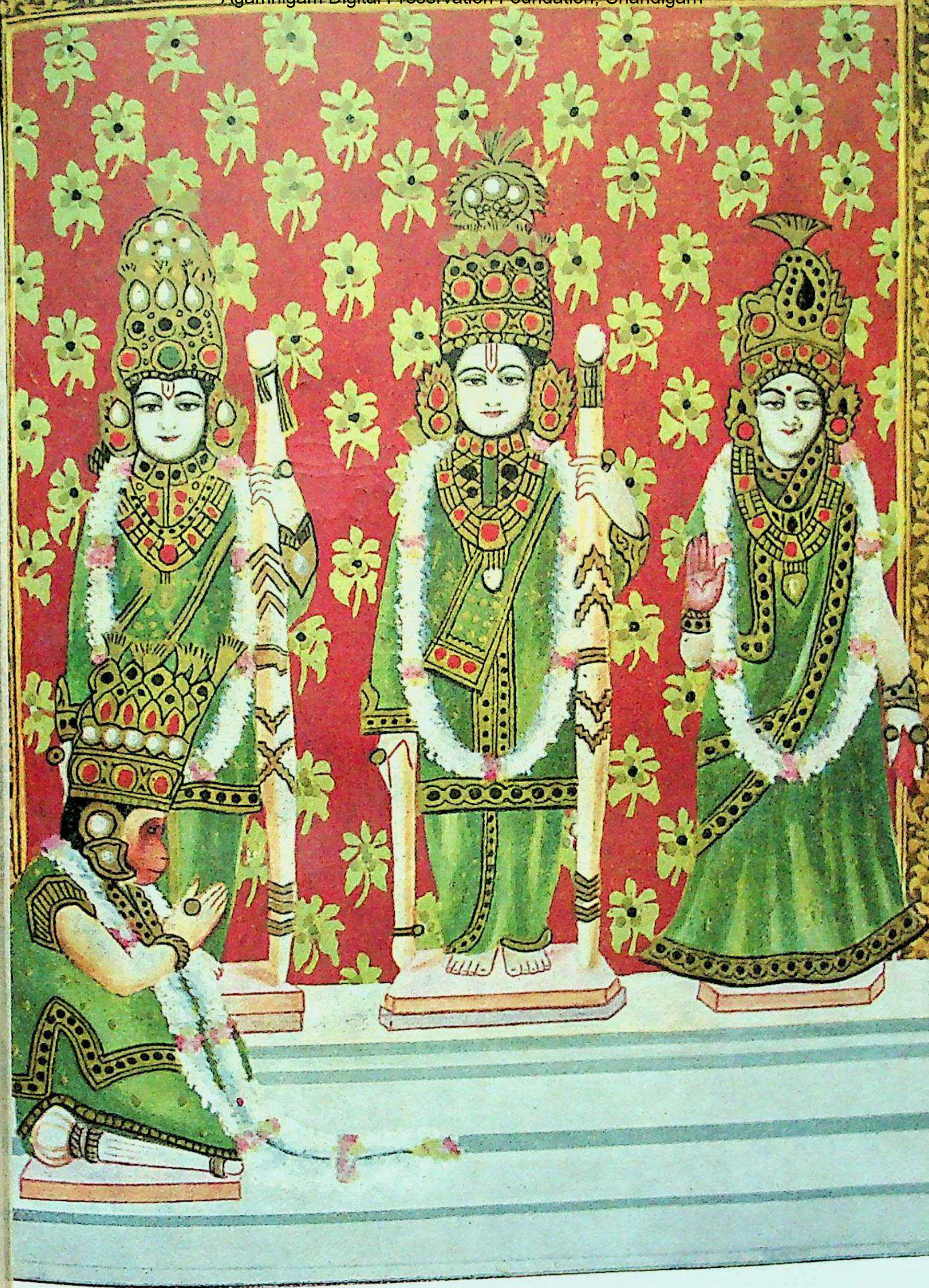

सेठ सूरजमल जालान न्यास द्वारा स्थापित
"राम-मंदिर" की मूर्तियों की प्रतिछबि।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

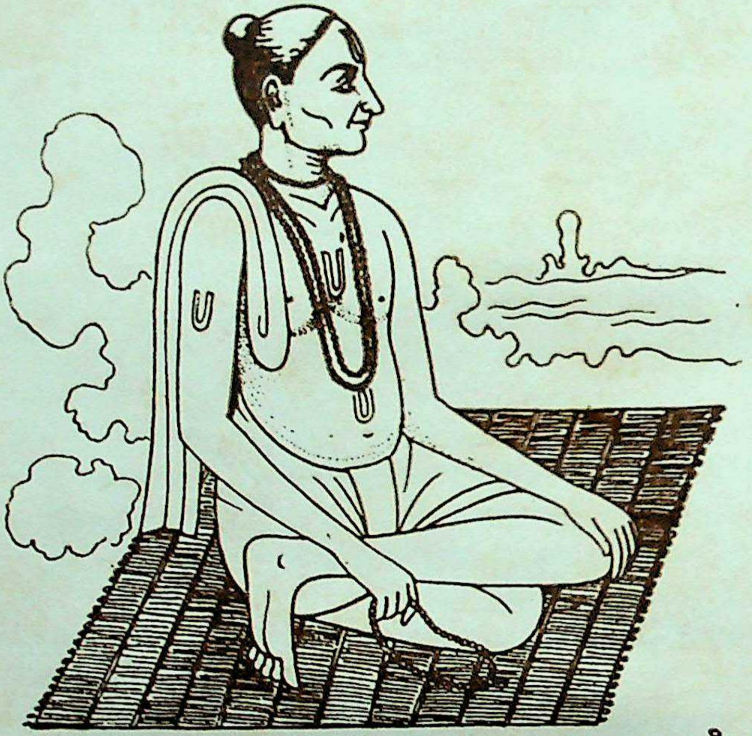

धर्म्मो जयति नाधर्म्मस्सत्यं जयति नानृतं ॥
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुराः ॥

(टोडरमल के पंचनामा से उद्धृत गोस्वामी तुलसीदास की हस्तलिपि)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रथम खण्ड

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी की दृष्टि और सृष्टि

डॉ० सत्येन्द्र

दृष्टि नव - सांस्कृतिक जागरण की
सृष्टि नव - आस्थावान मानव की

तुलसी पर बहुत कुछ कहा जा चुका है। फिर भी बहुत कुछ और भी कहना शेष है। वस्तुतः महाकवि का एक प्रबल लक्षण यह भी विदित होता है कि उसके कृतित्व में और हर समय में और हर युग में जीवित रहने के लिए प्रभूत-प्रचुर सामग्री रहती है। इसमें एक तो पुराण-कथा (माइथालौजी) का उपयोग बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि पुराण कथा 'लोक-मानस' की मूल तात्विकता से जुड़ी रहती है। इसी कारण सामूहिक अवचेतन की प्रक्रिया उसमें रहती है, जिससे युग-सत्य युग-युग के सत्य के रूप में आये दिन नयी व्याख्या प्राप्त करता रहता है। तुलसी के काव्य की यह मूल पौराणिक गाथा राम-कथा है, जिसके संबंध में लोक में एक उक्ति प्रचलित है—

एक राम हतो एक रामन्ना
तानै वाकी सिया हरी
वानै वाकी क्षय करी
जाही बात कौ तोतन्ना
पंडित बांचै पोथन्ना।

राम-सीता-रावण की यह कथा वाल्मीकि जी से पहले से नहीं तो कम से कम उनके समय से तो तुलसी के पास होते हुए आज तक हम लोगों तक पहुंची है।

इस राम कथा के संबंध में तुलसीदास ने हमें बहुत कुछ बताया है और कहा है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'राम कथा चिंतामनि चारू'

आगे बताया :—

रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुखदानि।
सतसमाज सुरलोक सब, को न सुनै अस जानि।।
रामकथा सुन्दर करतारी, संसय विहंग उड़ावनि हारी।
रामकथा कलि विटप कुठारी, सादर सुनु गिरिराज कुमारी।।

इस प्रकार तुलसी ने राम कथा में आस्तिक आस्था को पुनः स्थापित ही नहीं किया उसे जीवन-निष्ठा का ही मूल आधार बना दिया। राम की और रामकथा की जिस रूप में महत्ता सिद्ध करने का प्रयत्न तुलसी ने किया है, वही यह प्रकट करता है कि यह रामकथा पुराण-कथा है और लोकमानस तथा सामूहिक अवचेतन (Collective unconcious) से बुनी हुई है। यही कारण है कि उस कथा की अपनी-अपनी तरह अनंत व्याख्याएँ हो सकती हैं। तभी तुलसी ने बताया है कि **'हरि अनंत हरि कथा अनंता।'**

राम कथा का यह परम्परा से प्राप्त लोक-जगत की मानसिक धारा में प्रवाहित चला आ रहा रूप, तुलसी की अपनी भाषा की सामर्थ्य के कारण भी महाकाव्य के रूप में 'रामचरितमानस', बनकर हमें नये-नये अर्थों के आश्चर्यमय आनंदप्रद लोक में ले जाता है। पुराणगत लोकतात्विक कथा को महाकवि अपने सामूहिक अवचेतन और लोकमानस से संपृक्त प्रतिभा से कथा की कड़ियों को जोड़ने के लिए अपनी सार्थक भाषा से वर्णन, विवरण, विचारणा और दार्शनिकता तथा धार्मिक चेतना से जो सृजन करता है, उनसे महाकाव्य में और महत्ता आ जाती है तथा इनके द्वारा ही उस पुराणकथा के रूढ़ अभिप्रायों (मोटिफों) को युग-युग में नव-नव अर्थवत्ता मिलती जाती है। तुलसी के काव्य से यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है। आज भी तुलसी का काव्य उतना ही सार्थक है, जितना वह स्वयं तुलसी के समय में था। यथार्थ में तो वह आज और भी अधिक महत्वपूर्ण सार्थकता रखता है। **'संसय बिहंग उड़ावन हारी'** यह कथा और उसके कारण तुलसी का काव्य, तुलसी ने संसय विहंगों को उड़ाने के लिए ही तो लिखा। तुलसी का युग जितना 'संशयालु' था, उससे अधिक वह आज संशयालु है। तुलसी ने मानस में बताया है कि यह रामकथा उन्होंने 'निज गुरु सन सुनी' थी; उस समय कथा तो सुनी, पर **'तब अति रहेउँ अचेत'**। —अचेत रहने के कारण कथा का मर्म नहीं ग्रहण कर सके। यह कथन यह प्रकट करता है कि उस समय एक ऐसा सांस्कृतिक विधान था कि बालकों को अचेतावस्था में भी ये 'रामकथा' जैसी पुराणकथा सुनने को मिल जाती थी। किन्तु

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आज यह कथा-कहानी कहने-सुनने का सांस्कृतिक विधान ही ध्वस्त हो चला है, ऐसी दशा में, 'संशय विहंग' उड़ाने वाली तुलसी वाली रामकथा की सामयिक उपादेयता स्वयं सिद्ध है।

वैसे तुलसी ने नास्तिकता और अनास्था की स्थिति को सती और उमा में बैठा कर बहुत ऊँचाई पर प्रस्तुत किया है। यह समीकरण साधारण पति-पत्नी का नहीं, जिसमें आस्तिक-आस्थावान पति और नास्तिक-अनास्थावान पत्नी मूल में रहते हैं। पर ये तो देवता हैं; पति शिव और पत्नी पहले सती, फिर उमा। शिव अर्द्धनारीश्वर हैं। अतः शिव आस्तिक (आस्थावान) और अर्द्धांग सती : उमा नास्तिक (अनास्थावान)। एक ही मूल व्यक्तित्व में यह अंतर्विरोध आस्तिक-नास्तिक के रूप में समस्त जन की मूल मानसिकता को ही प्रकट करता है। यह 'सत' और 'तम' का संघर्ष आज और अधिक भयंकर हो गया है। वह सांस्कृतिक विधान भी लुप्त हो चला है, जो 'पुराणकथाओं' के माध्यम से सत-आस्था को बनाये रखने में प्रेरणाप्रद होता था, अब तो यथार्थ, जगत अनास्थावान और घोर संशयालु हो गया है। **'संशयात्मा विनश्यति'** की गहन औप-निषदिक चेतावनी के रहते हुए भी प्रबुद्ध कलाकार संशयों से ऐसा घिर गया है कि दुःख और खेद होता है।

आस्था-अनास्था और आस्तिक तथा नास्तिक भाव के कारण जो पतन की स्थिति थी, जिससे धर्म की हानि हो रही थी, उस स्थिति से आज की स्थिति कहीं हीन है। यह हीनता इसलिए जटिलतम हो गयी है कि उस युग में एक अर्द्धांग यानी शिव पक्ष तो आस्तिक-भाव युक्त आस्थावान था, भले ही सती-पार्वती वाला अर्द्धांग अनास्था (नास्तिक) भाव से ग्रस्त हो, पर उस अर्द्धांग को यानी सती उमा को कम से कम अपने शिव अर्द्धांग में तो पूर्ण आस्था थी, जो आज के युग में समाप्त हो गयी है। फलतः आज तुलसी के काव्य की अत्यन्त सामयिक आवश्यकता है।

क्योंकि तुलसी ने अपने काव्य द्वारा जो महत प्रयत्न किया है, वह यथार्थ में सांस्कृतिक विघटन को रोकने के लिए तथा जीवन मूल्यों के मूल्यहीन होते जाने की प्रक्रिया को रोकने के लिए ही है। इस आस्तिकता और आस्था को नयी तरह से तुलसी ने अपने काव्य द्वारा प्रस्तुत किया।

तुलसी की समस्त प्रामाणिक कृतियों में जो १२ हैं, उनमें 'रामकथा' की दृष्टि से रामचरितमानस का विशिष्ट स्थान है।

यह तुलसीदास का पुराण शैली का महाकाव्य है। रामचरित को मानसरोवर मानकर कांडों का सोपान बनाकर पाठक को पावन स्नान

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कराया है। एक अन्य वैशिष्ट्य यह है कि वह मानस संवादों में लिखा गया है। ये संवाद हैं शिव पार्वती संवाद, कागभुसुंडी-गरूड़ संवाद, याज्ञ-वल्क्य भारद्वाज संवाद और तुलसी-संत संवाद।

यह महाकाव्य दोहा चौपाई छंदों में लिखा गया है। बीच-बीच में अन्य छंदों का भी उपयोग किया गया है।

यह महाकाव्य भारतीय संस्कृति का प्रतिष्ठापक है और भारतीय जीवन के लिए आदर्श का भी प्रतिपादन करता है। प्रायः सभी वर्गों का वर्णन इसमें हुआ है। और सभी की मर्यादाओं को भी बताया गया है।

'रामराज्य' की कल्पना भी तुलसी ने इसी महाकाव्य में दी है **'राम-राज सब प्रजा सुखारी'**। भक्ति और ज्ञान दोनों का समन्वय भी इसमें मिलता है। वस्तुतः यह आलोक स्तम्भ है।

तुलसी ने जो रामचरित बाल्यावस्था में 'निज गुरू' से सुना था, उसको ठीक-ठीक पहचानने के पहले प्रयत्न में वे वाल्मीकि रामायण की ओर झुके, किन्तु फिर 'नानापुराण निगमागम' सभी का पारायण करके गुरू द्वारा कही गयी कथा को एक रूप दिया। इसके अतिरिक्त 'क्वचिदन्यतोपि' के अनुसार लोकक्षेत्र से और जैन-बौद्ध क्षेत्र से भी कुछ लेकर अपनी राम-कथा खड़ी की और उसे ही रामचरितमानस में आदि से अंत तक प्रतिपादित किया। तुलसी का रामचरितमानस तुलसी की रचनाओं में तो शिरोमणि है ही, अखिल भारतीय साहित्य में भी अद्वितीय ही माना जाता है। वस्तुतः यह विश्व-साहित्य में भी अभिनंदनीय है।

रामचरितमानस का दूसराकांड : अयोध्या कांड है। इस अयोध्या कांड में अयोध्या में घटित घटनाओं का वर्णन है। राम को राज्य देने की तैयारियां होते-होते राम को बनवास। भरत का चित्रकूट जाकर राम को लौटा लाने का प्रयास और अन्त में राम की पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौटना भी इसी कांड में है। तभी फल-श्रुति के रूप में तुलसी ने यह लिखा—

भरत चरित करि नेम, तुलसी जौ सादर सुनहिं
सीय राम पद प्रेम, अवसि होइ भवरस विरति

इस फलश्रुति से विदित होता है कि तुलसी की दृष्टि में यह कांड भरत-चरित है। भरत-चरित किसलिए ? तुलसी का मत है कि इस भरत-चरित की आवश्यकता है। 'सीयरामपद' में प्रेम के लिए ही। पर साथ ही 'भव-रस' से विरति पाने के लिए भी यह भरत चरित है। विद्वानों की दृष्टि में 'रामचरितमानस' में यह सर्वश्रेष्ठ कांड है। उनका यह भी मत है कि तुलसी ने इसे छंद, भाषा और भाव सभी दृष्टियों से बहुत

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सँवार कर लिखा है। अतः काव्य-सौष्ठव इसमें अन्य कांडों से विशेष है। यह भी सिद्ध किया गया है कि सबसे पहले तुलसी ने यही कांड लिखा। बालकांड बाद में जोड़ा गया।

यहीं इस बात की ओर भी ध्यान जाता है कि अयोध्याकांड के बाद मानस का एक और कांड भी विशेष महत्व का है। और वह है 'सुन्दर कांड'।

पांचवां कांड : सुन्दर कांड है। वस्तुतः यह हनुमान के पराक्रम का चित्रण करता है। हनुमान जी समुद्र लांघ कर लंका में पहुंचे। सीता को संदेश दिया। लंका-दहन किया और लौटकर राम को सीता की दशा बतायी। राम वानर सेना के साथ समुद्रतट पर पहुंचे। भरत के बाद तुलसी की भक्ति हनुमान जी के प्रति भी अगाध थी। अतः इस कांड में भी तुलसी के भाव अत्यंत ओज के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। सामान्यतः लोक-क्षेत्र में इस कांड की अन्यों की अपेक्षा सर्वाधिक मान्यता है। इसका पाठ समस्त संकटों को दूर करने वाला माना जाता है। इस प्रकार इस कांड में हमें टोने के तत्व की संभावना भी प्रतीत होती है।

तुलसी के समस्त कृतित्व को देखकर यह अनुमान होता है कि तुलसी ने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य-प्रणालियों का उपयोग किया।

पहले लोक-भूमि से आरम्भ किया। लोक-साहित्य की प्रणाली में लोकगीत 'सोहर' में तीन ग्रंथ रचे--नहछू, जानकी मंगल एवं पार्वती मंगल। लोकभाषा में इस कृतित्व ने तुलसी को मंगल-पर्वों पर घर-घर में पहुंचा दिया।

दूसरे चरित काव्य की परम्परा स्वयंभू के—'पउमचरिउ' से प्रचलित मिलती है और प्रेमगाथाओं में होती हुई तुलसी तक पहुंची थी। दोहा-चौपाई में निबद्ध प्रणाली में तुलसी ने रामचरितमानस प्रस्तुत किया। इसने सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त की।

तीसरे दोहे की परम्परा—आरम्भ से ही दोहा-काव्य अपभ्रंश का पर्याय-वाची हो गया था। यह परम्परा सिद्धों से होकर जैन कवियों को आकर्षित करती हुई संतों के पास पहुंची और तुलसी ने इस परम्परा में 'दोहावली' जैसी कृति प्रस्तुत की।

चौथी परम्परा—पदों की भी प्राचीन परम्परा थी। यह सिद्धों से चलकर विद्यापति से जुड़ते हुए ब्रज के कवियों के पास पहुंची। हरिदास, सूरदास ने इसे यशस्वी किया। तुलसी ने इसी शैली में तीन ग्रन्थ प्रस्तुत किये। इनमें कोमल और मधुर भाव और साथ ही भक्ति के भाव भी तुलसी ने व्यक्त किये हैं।

पांचवीं प्रणाली—'कवित्त' प्रणाली है। कवित्त के अंतर्गत चार छंद छप्पय, धनाक्षरी, सवैया और झूलना लिये गये। कवित्त, सवैया तो रीति-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काव्य में अत्यंत लोकप्रिय छंद हुए और इनकी परम्परा आधुनिक युग में उद्धवशतक तक चली आयी।

छठी प्रणाली सरसता की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी—'बरवै' छंद की, उसमें भी तुलसी ने काव्य रचना की।

सातवीं में संत-काव्य धारा का संशोधित रूप तुलसी के 'वैराग्य संदीपनी' में देखा जा सकता है। संत की उनकी अपनी परिभाषा है—राम-भक्ति जिसकी धुरी है। शान्ति जिसका ध्येय। छंदों की दृष्टि से दोहों की प्रधानता है, पर चौपाई भी है।

'रामाज्ञाप्रश्न' का आठवां और अलग वर्ग है। तुलसी ने इस रचना से ज्योतिष के प्रति मनुष्य के रुझान को, शकुन के प्रति उसके विश्वास को भी राम की धुरी पर नचा दिया है—

हनूमान सानुज भरत, रामसीय उर आनि।
लषन सुमिरि तुलसी कहत, सगुन विचार बखानि॥

तुलसी के समस्त कृतित्व का ही अभूतपूर्व मूल्य है, क्योंकि उनकी प्रत्येक कृति समाज और व्यक्ति को सांस्कृतिक चेतना के लिए अपूर्व संबल है। किन्तु समस्त कृतित्व में 'रामचरितमानस' उदीयमान सूर्य की भांति देदीप्यमान है। और उसके बाद है 'विनयपत्रिका'।

सामान्यतः संतों और भक्तों में विनय के पद लिखने की परंपरा मिलती है। इसमें कवि अपने इष्टदेव से आत्म-निवेदन करता है। उसी परम्परा में वस्तुतः यह विनय पदावली है। पर तुलसी ने रामचरितमानस में राम को राजा के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कराया तो जैसे विश्व का ही राजा बना दिया और सदा-सदा के लिए। तुलसी की अनन्य भक्ति की भावना में राम आज भी राजा पद पर विराजमान हैं। तुलसी की भक्ति 'दास्य' भाव की बतायी जाती है। राम की भक्ति में लीन दास, राम राजा को अपना आत्मनिवेदन प्रस्तुत करने के लिए प्रार्थना-पत्र लिख कर महाराज रामचन्द्र की सेवा में यथाविधि प्रेषित करता है। अर्थात् तुलसी ने 'रामचरितमानस' से जग-कल्याण की सांस्कृतिक पीठिका प्रस्तुत करके आत्म-कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त किया—और यह किया 'विनय-पत्रिका' के द्वारा।

विनय के पदों के समूह के रूप में तो लगता है कि यह मुक्तक काव्य ही है। अपने सभी मान्य देवी-देवताओं की स्तुति और विनय की गयी है। साथ ही अपनी दीनावस्था का निवेदन है। यह आत्मनिवेदन जैसे मानव-मात्र के प्रतिनिधि रूप में किया गया है। किन्तु एक तो इसका नाम संकेत करता है कि यह पत्रिका है। किसके लिए? यह राजाराम को प्रेषित

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की गयी हैं। तो भी इसमें आदि-अन्त का विधान कुछ राजकीय विधि-विधान युक्त है। तुलसी राम के दरबार में पत्रिका प्रेषित करना चाहते हैं और चाहते हैं कि राजा राम की 'सही' हो जाये दरबार की स्थिति के अनुसार। श्री वियोगी हरि जी ने लिखा है—

"राजा-महाराजा के पास कोई बाला-बाला अर्जी नहीं भेजा करते। पहले दरबार के मुसाहबों को मिलना पड़ता है, तब कहीं वहाँ पैठ होती है। गोसाईंजी ने भी पहले देवी-देवताओं को मनाया है, तब अर्जी पेश की है। श्रीगणेश सिद्धगणेश की वन्दना से किया गया है। फिर सूर्यनारायण की वन्दना की गई है। अनेक जन्म-संचित अविद्या-अंधकार हटाने के लिए मरीचिमाली की स्तुति युक्ति-युक्त ही है। फिर जगद्गुरू शिव का गुणगान किया गया है।"

इसी प्रकार भैरव, चित्रकूट, हनूमानजी, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की विनय की गयी है। वियोगी हरि जी ने आगे बताया है कि:

"यहाँ दरबार के सभी मुसाहिब साध लिये गए हैं। अब किसी की ओर से कोई शंका नहीं रही। श्री रघुनाथ जी के सामने अपने संबंध की चर्चा छेड़ने के लिए गोसाईं जी ने जनक-नन्दनी को क्या ही युक्ति बताई है। कहते हैं:

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ।।

"कछु-करुन-कथा चलाइ" से मानो गोसाईंजी महाकवि भवभूति के स्वर में स्वर मिलाकर करुणरस का प्राधान्य स्वीकार कर रहे हैं। ४२ पद पर्यन्त स्तुति-गान करके कवि ने ४३ वें पद में संक्षिप्त रामचरित का वर्णन किया है। ४५ वें पद में पुनः श्रीराम की वन्दना, ४८ वें में श्रीकृष्ण-वन्दना, ५२ वें में दशावतार-कथा तथा ६१-६२ व ६३ वें पदों में विन्दुमाधव की वन्दना की गई है। इस वन्दना-समुच्चय के बाद विनय-पत्रिका का वास्तविक रूप देखने में आता है। जीव परमेश्वर के सम्मुख अपना दैन्य-दुःख-निवेदन, असामर्थ्य आदि किस-किस ढंग से उपस्थित कर सकता है, इसे गोसाईं जी ने यत्र-तत्र अनेक रीतियों से दिखाया है।

इस प्रकार २७६ पद तक पत्रिका लिखी गई है। पत्रिका पूरी हो चुकी। अब उसे पेश कौन करे? फिर हनुमान, शत्रुघ्न, लक्ष्मण और भरत से प्रार्थना की गई। सेवक होने के कारण अगुवा बनने का किसी को साहस न हुआ। सभी एक-दूसरे के मुंह की ओर ताकने लगे। किन्तु सबमें लक्ष्मण अधिक ढीठ थे। उन पर रामचन्द्र जी का अपरिमित वात्सल्य स्नेह जो था। सो उन्होंने ही पत्रिका पेश की। ग्रंथ यहीं समाप्त होता है। अन्तिम पद है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मारुति-मन, रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहुं नाथ! नाम सौं प्रतीति-प्रीति,
एक किंकर की निबही है ।।१।।
सकल सभा सुनि लै उठी, जानि रीति रही है।
कृपा गरीब निवाज की देखत,
गरीब को साहब बांह गही है ।।२।।
बिहँसि राम कह्यौ 'सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।'
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की,
परी रघुनाथ हाथ सही है ।।३।।

विनय में सबसे पहली आवश्यकता तो इस बात की होती है कि दो पक्ष हों, एक विनय करने वाले का, दूसरा उसका वह पक्ष, जिससे विनय की जा रही है। यहाँ विनयकर्त्ता छोटा, दीन दुःखी दास या ऐसी ही कोटि का है। और दूसरे पक्ष में राम जैसा समर्थ स्वामी। विनयकर्त्ता यह मानता है कि वह विनय सुन कर कृपा करेंगे। तुलसी ने इसी भावना से कहा—

तू दयाल, दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंज हारी।।

और भी

राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो?
राम सों खरौ है कौन, मोसों कौन खोटो?

इस स्थिति की स्वीकृति के बाद यह अपेक्षित होता है, कि विनयकर्त्ता को स्वामी की सामर्थ्य में ही विश्वास न हो, वह यह भी मानता हो कि उसकी विनती को सुनकर वही स्वामी कृपा कर सकता है। साथ ही यह आस्था भी हो कि विनयकर्त्ता को अपने इसी स्वामी की कृपा या दया की अपेक्षा है। तुलसी ने कहा है—

रामचरन तजि नहिंन आन गति।
हरति एक अघ आसुर-जानिका।
तुलसीदास प्रभु कृपा-कालिका।।

अब विनय के दो रूप हो सकते हैं—एक केवल कृपा या दया की याचना के लिए। स्वामी की कृपा या दया स्वयं अपने में दास या विनय-कर्त्ता के लिए उपलब्धि है। यह सामान्य विनय है। दूसरी विनय विशेष प्रयोजन-युक्त होती है। यह विनयपत्रिका तुलसी ने कलिकाल द्वारा ही दी गयी पीड़ा से विचलित होकर राम को भेजी है। ऐसी प्रयोजनवती विनय में भी पहली आकांक्षा तो बनी ही रहती है। स्वामी की सतत कृपा भी अपेक्षित है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रयोजन का उल्लेख करने से पूर्व 'विनय' की अन्य भूमिकाओं को भी अभिव्यक्त करना होता है।

वियोगी हरि जी ने लिखा है कि विनयपत्रिका के सुप्रसिद्ध टीकाकार भक्तवर बैजनाथ जी ने विनय की सात भूमिकाएँ मानी हैं, जिनके अंतर्गत प्रायः विनय-संबंधी सभी पद आ जाते हैं। उदाहरण-सहित उनके नाम हैं—

दीनता—केहि बिधि देउँ नाथहिं खोरि?

मानमर्षता—काहे ते हरि, मोहिं बिसारयो?

भयदर्शना—राम कहत चलु, राम कहत—

भर्त्सना—ऐसी मूढ़ता या मन की।

आश्वासन—ऐसें राम दीन-हितकारी।

मनोराज्य—कबहुंक हौं इहि रहनि रहौंगो?

विचारणा—केसव, कहि न जाइ का कहिए।

विनय पत्रिका में विनयकर्त्ता को यह प्रार्थना भी करनी पड़ती है कि इस पत्रिका पर ध्यान देने की कृपा अवश्य करें। तुलसी ने भी पत्रिका के अन्त में विनय-भाग समाप्त हो जाने पर लिखा :

विनय-पत्रिका दीन की बापु! आप ही बांचौ
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय
सही करि बहुरि पूंछिए पांचो॥

विनयपत्रिका एक भक्त की विनय है। इस नाते वह केवल तुलसी की विनय नहीं। तुलसी ने तो प्रतिनिधि-रूप में विनय की है। अतः यह भक्तों की विनय है। इस नाते इसमें भक्ति का स्वरूप तो प्रकट हुआ ही है।

एक बात तो यह है कि इसमें राम की अनन्य भक्ति ही अभिव्यक्त हुई है। कुछ लोग यह आक्षेप करते हैं कि जो व्यक्ति इतने देवी-देवताओं की विनय और स्तुति करता है, वह अनन्य भक्त कैसे हो सकता है? यह आपत्ति विशेष बल नहीं रखती, क्योंकि जितने देवताओं की स्तुति तुलसी ने की है, सभी से 'सीता-राम' की भक्ति प्रदान करने की ही याचना की है।

गणेश से—

मांगत तुलसीदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे॥

सूर्य से—

वेद-पुरान प्रगट जस जागै। तुलसी राम-भगति वर मांगे॥

तुलसी अपने चारों ओर के यथार्थ को देखते हैं। देवी-देवता विद्यमान हैं। मुख्य देवताओं को सभी मानते हैं। उनसे अपने स्वार्थ की बहुत सी याचनाएँ करते है। अतः तुलसी ने सभी देवताओं से सीताराम की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भक्ति माँगकर भक्तों को दिशा-दर्शन दिया और देवी-देवताओं को भी राम-भक्ति दायक सिद्ध कर दिया है। उन्होंने जहाँ रामचरितमानस में कहा था—**विधि हरि शंभु नचावन हारे** उससे भी अधिक स्पष्ट होता है विनयपत्रिका में कि—

हरिहि हरिता विधिहि बिधिता सिवहि सिवता जेहि दई

यह मानकर उन्होंने अन्य देवताओं के मूल की ओर भी संकेत किया है, किन्तु ये सभी सियाराम की भक्ति तो दे ही सकते हैं। तुलसी की दृष्टि में जो महत्ता हरि ब्रह्मा और शिव की है, उससे अच्छी तो नहीं हो सकती। किन्तु ये देवता जिसके कारण देवता हैं, उस तक पहुंचाने की कृपा तो कर ही सकते हैं।

विनयपत्रिका से भी यह प्रकट है कि राम ब्रह्म हैं। और उनके व्याप्त होने के कारण ही यह संसार सत्य है—किन्तु यही जगत सिया-राम से भिन्न देखने पर माया है, मिथ्या है। इसमें माया से निस्तार राम कृपा से ही होता है और माया का अवसान हो जाने पर जगत में सत्य रूप यानी रामरूप का दर्शन होता है, तो राम की ही भक्ति करनी है। उसकी कृपा से यह माया दूर होगी।

माधव असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया।।

इसीलिए तो राम की भक्ति अपेक्षित है। राम-प्राप्ति के लिए और माया से बचने के लिए राम-भक्ति ही एक उपाय है। उसी से राम की दया मिल सकती है। उसी दया से राम-प्राप्ति अथवा राम-रूप जगत के दर्शन संभव हैं।

अतः तुलसी राम के अनन्य भक्त हैं। उनकी भक्ति दास्य-भाव की है, क्योंकि वे राम को राजा और स्वामी मानते हैं। इस भावना का सबसे प्रबल पोषण विनय-पत्रिका से होता है।

श्री वियोगी हरि ने यह ठीक ही लिखा है:

"विनय पत्रिका में कई स्थलों पर नीरस ज्ञान और विषयोन्मुख कर्म को प्रेम-परा भक्ति के आगे तुच्छ दिखाया गया है। एक बात विशेष ध्यान देने की है। जहाँ गोसाईं जी ने संसार को असत्य मानकर भ्रम का प्राबल्य दिखाया है, वहाँ ज्ञान और स्वयं सिद्ध पुरुषार्थ का स्तवन नहीं किया है। वहाँ तो भ्रम-निराकरण के लिए सर्वत्र यही बात दोहराई गई है कि—

तुलसीदास प्रभु मोह-सृंखला छुटिहि तुम्हरे छोरे।
तुलसीदास हरि कृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं।
बिन तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटे माया।। इत्यादि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐसा क्यों है? क्योंकि **तुम मायापति हो बस माया।** अद्वैतवादियों की तरह उन्होंने केवल ज्ञान और योग पर जोर नहीं दिया। उन्होंने एक स्वर से सदा सगुण उपासना को ही प्रधानता दी है। ऐसे भक्त-शिरोमणि गोसाईं तुलसीदास की रचनाओं में जीव-ब्रह्मैक्य-विषयक सिद्धान्तों के खोजने का प्रयास करना व्यर्थ-सा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस संबंध में जो लिखा है, उसे हम यहाँ अविकल उद्धृत करते हैं—"अन्त में, इस संबंध में इतना कह देना आवश्यक है कि तुलसीदास जी भक्तिमार्गी थे, अतः उनकी वाणी में भक्ति के गूढ़ रहस्यों को ढूँढना ही अधिक फलदायक होगा, ज्ञानमार्ग के सिद्धान्तों को ढूँढना नहीं।"

और भक्ति के लिए जो मनोस्थिति चाहिये, जो समर्पण चाहिए, उसके लिए क्या निषेध है और क्या विधि है, यह सब विधि-निषेध भी विनय-पत्रिका में है।

तुलसी जिस युग में हुए, उससे पूर्व हिन्दी-काव्य में जिन धाराओं का बोलबाला था, उनमें एक ओर तो संत-मत था; जिसमें कबीर की वाणी का बहुत महत्व था। दूसरी ओर प्रेमाख्यान वाली धारा का प्राबल्य था, जिसमें जायसी का विशेष सम्मान था।

जैसे हम ऊपर देख चुके हैं, तुलसी को वैराग्य हुआ और संत की धारणा ने उन्हें आकर्षित किया। 'वैराग्य संदीपनी' में तुलसी ने कहा—

कंचन कांचहि सम गनै, कामिनी काठ पषाण।
तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान॥

किन्तु इसमें भी संत का संबंध राम से जुड़ा हुआ है। यहाँ से चलकर विनय-पत्रिका तक 'संत' के स्वरूप को तुलसी ने अधिकाधिक समझने का प्रयत्न किया है। फलतः 'तुलसी' का संत अपना पृथक् रूप रखता है। पर तुलसी पूर्व का संतमत 'निर्गुणिया' था। —निर्गुण को मानने वाला, साथ ही वह सगुण-विरोधी था। किन्तु तुलसी ने मानस में स्पष्ट किया **सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा** यह मात्र समन्वय की भावना से नहीं था। प्रेमाभक्ति के सिद्धान्त पर निर्भर था। अतः निर्गुणिया संतमत से आगे की और ऊपर की बात थी।

फिर भी यह सत्य है कि तुलसी के चारों ओर निर्गुण ज्ञान-वादी काव्याधारा की लहरें हिलोरे ले रही थीं। किसी भी संत के लिए उस धारा की शब्दावली और भावों को लेकर उनमें वैशिष्ट्य लाने का प्रयत्न करना होता है। वे राम को सगुण या निर्गुण भी मानते हैं। अतः निर्गुण का वर्णन भी किया है।

अजित, निरूपाधि, गोतीतमव्यक्त,
विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राकृतं प्रगट परमातमा, परमहित,
प्रेरकानन्त बन्दे तुरीयं ।।

साथ ही उन्होंने माया का भी वर्णन किया है, पर हम ऊपर देख चुके हैं कि उनकी माया का रूप उस माया के रूप से भिन्न है, जिसे संत मानते थे।

यह भी सत्य है कि संत ज्ञानवादी थे। पर भक्ति को भी मान्यता उन्होंने दी थी। उसी प्रकार तुलसीदास भक्त हैं। पर ज्ञानवाद को भी उन्होंने मान्यता दी है। तुलसी के लिए ज्ञान-रहित भक्ति भी अंधी है। अतः ज्ञान तो चाहिये, पर वह भी भक्ति के लिए।

तुलसी भक्ति को छोड़ किसी अन्य दर्शन की आवश्यकता नहीं मानते, फिर भी भक्ति का मूल है आस्तिक-आस्था। इस आस्था के आधार पर नास्तिक दर्शन से उनकी नहीं पटती। स्पष्टतः उन्होंने इसी कारण जगत को सत्य मानने वाले, सांख्यवादी जगत को असत्य मानने वाले विज्ञानवादी और सत्य और असत्य दोनों मानने वाले नैयायिक वैशेषिकों की स्पष्ट आलोचना की है।

केशव कहि न जाय का कहिये।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ,
युगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै ।।४।।

इन तीनों की मान्यताओं को भ्रम बताया है।

दर्शन का मुख्य विषय होता है—ब्रह्म, जीव और माया विषयक विचार तथा उनका पारस्परिक संबंध। इन पर हम ऊपर विचार कर चुके हैं। संक्षेप में तुलसी के दर्शन में ब्रह्म और राम में अभेद है। वे निर्गुण और सगुण दोनों हैं।

माया राम के वश में है। उनकी कृपा से ही माया की माया समाप्त हो सकती है। यों यह बहुत प्रबल है।

देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया विवस विचारे।

जीव राम-ब्रह्म का अंश है। आनंद सिंधु : ब्रह्म : मध्य ही जीव का बास है। पर माया 'मृग भ्रमवारी' को सत्य जानकर उसी में मग्न है। इसी माया ने उसे राम से अलग कर दिया है। उसके दुखों का कारण यही है।

ब्रह्म (राम) की माया ही जगत की रचना करती है। उसमें जहाँ तक ब्रह्म या राम व्याप्त हैं, वह सत्य है, वह रामरूप है, माया से उसका श्य-मान स्वरूप प्रस्तुत होता है, वह मिथ्या है। इस माया का निवारण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होने से ही रामरूप जगत के दर्शन होते हैं। तुलसी माया-मोह के बंधन से मुक्त तो होना चाहते हैं। पर यह मानते हैं कि यह राम की दया से और उनके छुटाये ही छूट सकती है।

तुलसीदास प्रभु मोह शृंखला छूटिहि तुम्हरे छोरे।

अत: भक्ति और उससे रामकृपा की उपलब्धि ही माया से मुक्ति करा सकती है। इससे मुक्त होकर राम की प्रेमाभक्ति का वरदान मिलता है।

प्रपत्ति का अर्थ शरणागत होता है। नवधा भक्ति में श्रवण, कीर्त्तन स्मरण, पाद सेवन, अर्चन-वंदन, साख्य, दास्य के बाद जो आत्मनिवेदन बताया गया है, वही जैसे शरणागति या प्रपत्ति है। इस आत्मनिवेदन का या शरणागति के छ: रूप हैं।

एक है इष्ट के प्रति अनुकूल रहने का संकल्प। दूसरा—इष्ट के प्रति समस्त प्रतिकूलता का वर्जन। तुलसी तो उन लोगों का साथ छोड़ देने का संकल्प व्यक्त करते हैं, जिन्हें राम-सीता प्रिय नहीं। तीसरे—भगवान मेरे रक्षक हैं। इसमें अडिग विश्वास होना। चौथे—इसी के साथ वह भगवान को अपने रक्षक के रूप में वरण करता है। पांचवें—मनसा वाचा कर्मणा भगवान को पूर्ण समर्पण है। छठवें रूप में भक्त अपनी आत्यंतिक दीनता प्रकट करता है। तुलसी की विनयपत्रिका में प्रपत्ति या शरणागति के ये सभी रूप विद्यमान हैं। विनयपत्रिका में इन रूपों की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई। इस कारण इसे कोई प्रपत्ति काव्य कहना चाहे तो कह सकता है। पर तुलसी तो विनय लेकर राम की शरण में गये हैं। शरणागति यह पूर्ण तो है, पर एक संशोधन के साथ कि शरणागति से उन्हें उनकी प्रार्थना पर भगवान की 'सही' मिले, यह एक विशेष आकांक्षा इसे शुद्ध प्रपत्ति काव्य नहीं रहने देती।

विनय की यह उत्कृष्ट पत्रिका तुलसी ने पदों में और रागों में क्यों लिखी। विनय का भाव अत्यन्त द्रवित करने वाला भाव है। उसे प्रकट करने के लिए भाषा भी तदनुकूल होनी चाहिये। यही कारण है कि भक्ति का भावमात्र भी कहीं होता है तो वह संगीत के रागतत्व से युक्त होना चाहता है। कोमल और करुण या दैन्य की भावना के तुलसी ने तदनुकूल संगीत के रागों का उपयोग विनयपत्रिका में किया है।

तुलसी ने विनयपत्रिका में २३ रागों का उपयोग किया है। ये हैं आसावरी ७, कल्याण ७०, कान्हरा केदारा ६, गौरी १२, जेतश्री ३, टोड़ी ५, दण्डक १, धनाश्री ३४, नट ३, वसन्त ४, विलावल ३२, विहाग २८, भैरव १०, भैरवी ६, मल्हार १, मारू १, रामकली २६, ललित ३, विभास १, सारंग ४, सूहों विलावल २, सौरठ १७।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यहाँ इस पर विचार करना क्षेत्र से बाहर होगा कि किस राग को किस-किस भाव के योग्य तुलसी ने समझा। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि संगीत के रागतत्व ने तुलसी की भावाभिव्यक्ति में पूर्ण योग अवश्य दिया है।

भाषा के हमें दो प्रकार के प्रयोग तो विनयपत्रिका में स्पष्ट ही दृष्टि-गोचर होते हैं। एक तो अत्यन्त संस्कृत-तत्सम शब्दावली। वह इतनी तत्सम है कि संस्कृत पद तक भाषा के लगते हैं—

यथा—

कंबु कुंदेंदु-कर्पूर-विग्रह रुचिर
तरूण-रवि-कोटि तनु तेज भ्राजे।

ऐसी भाषा देवी-देवताओं की स्तुति या स्तोत्रों में है। देवताओं के लिए देव वाणी का उपयुक्त आश्रय लिया गया है, पर भक्तों के लिए उसे ही ग्रामगिरा से किंचित संशोधित कर दिया है।

विनय पत्रिका में संगीत है। यह हम देख चुके हैं। संगीत गेय होता है। पत्रिका गेय है। किन्तु वह मात्र 'संगीत' नहीं है। साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से वह प्रगीत काव्य है, जिसे अंगरेजी में 'लिरिक' कहते हैं।

साहित्यिक प्रगीतात्मकता के काव्य में एक ओर तो कवि की अत्यंत निजी अभिव्यक्ति होनी चाहिये, जैसे कवि अपने अंतरंग को खोल कर काव्य में प्रस्तुत कर रहा है। विनयपत्रिका में तुलसी का आत्मनिवेदन होने के कारण इस गुण से युक्त है। पर इस पत्रिका में आत्मनिवेदन की भी दो कोटियाँ मिलती हैं। एक तो वह आत्मनिवेदन है, जो साधारणीकरण की प्रक्रिया से मानव-मात्र का आत्मनिवेदन हो गया है। दूसरे वह आत्म-निवेदन है, जिसमें कवि के अपने जीवन का वैशिष्ट्य स्पष्ट लक्षित होता है। यह दूसरी कोटि का आत्मनिवेदन है, जो प्रगीतात्मकता के अधिक निकट आता है। दोनों ही कोटि के आत्मनिवेदन में विषय-निष्ठता है और स्वानुभूति की प्रभावशाली अभिव्यक्ति (डॉ० उदयभानु सिंह—पृ० ४६९) प्रगीतात्मकता के लिए यह भी अपेक्षित है कि उसमें आवेग की गुणात्मकता हो। आवेग के क्षणों में उदित भाव संपत्ति उसमें हो। अधिकांश पदों में यह गुणात्मकता विद्यमान है। विनयपत्रिका में वैविध्य भी है—प्रासंगिक वैविध्य भी इसलिए है कि विविध देवी-देवताओं के प्रति निवेदन वैविध्य-युक्त होंगे ही और विषयगत वैविध्य उसमें है। क्योंकि उसमें तुलसी की जीवनगत विविध-यंत्रणाओं से प्राप्त अनुरति के विविध रूप पूर्ण आवेगात्मकता से निवेदित किये गये हैं। इन गीतों की कलात्मकता भी निर्विवाद है—भाषा और भाव का कलात्मक सामंजस्य उसी कलात्मकता से गेयत्व की रागात्मकता का संयोजन उसकी कलात्मकता को पुष्ट करते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फलतः तुलसी ने इस काव्य में पाश्चात्य लिरिक के तत्वों की भारतीय सांस्कृतिक आस्था को मार्मिकता कलात्मक रूप में संजो दी है। किन्तु एक बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि समस्त पत्रिका ऊर्ध्वगामी भावमयी आध्यात्मिकता से जुड़ी हुई है। पाठक को प्रत्येक पद एक भावभूमि से दूसरी उच्च भावभूमि पर ले जाता है और सगुणब्रह्म के समक्ष पहुंचा देता है।

जग-कल्याण और आत्म-कल्याण दोनों के ही महान मार्ग-विधाता तुलसी आज भी हमारे जीवन के लिए अपेक्षित संबल लिए प्रस्तुत हैं। आज वैयक्तिक और सामाजिक स्थिति तुलसी के बाद के ४०० वर्षों में इतनी दयनीय हो गयी है कि उनके काव्य का महत्व आज और बढ़ गया है। आवश्यकता इस बात की है कि तुलसी-जयन्ती जैसे आयोजन विशेष विधियों और समारोहों से मनाये जायं। इनमें तुलसी के रामचरितमानस की 'कथाओं' का विशेष स्थान हो। कथा-वाचन और कथा-श्रवण के प्रति विशेष आकर्षण पैदा करने की आवश्यकता है और कथावाचकों के सशक्त दल प्रशिक्षण-पूर्वक खड़े करने की आवश्यकता है, जो भारतीय संस्कृति के समग्र स्वरूप को मानस की कथा के माध्यम से आधुनिक जीवन की अपेक्षाओं के अनुकूल कथा का प्रव्याख्यान कर एक नयी स्वस्थ राष्ट्रीय सांस्कृतिक पुर्ननिमाण की विशद चेतना जगा सके और भारत के जन-जन को ज्योतिपुंज मानव बना सके और जगकल्याण के साथ आत्मकल्याण में यथार्थ रूप से प्रवृत्त हो सके तथा तुलसी की दृष्टि और सृष्टि को परिपूर्णता के साथ ग्रहण कर सके।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास के अध्यात्म-चिन्तन की दिशाएँ

डॉ० भगीरथ मिश्र

गोस्वामी तुलसीदास का अध्यात्म-चिन्तन विशिष्ट प्रकार का था। यह बात हमें तब मालूम होती है, जब हम उस युग की अध्यात्म-साधना संबंधी विविध कार्य-कलापों पर दृष्टिपात करते हैं। उस समय एक ओर तो गोरख द्वारा प्रचारित नाथ पंथियों का जटिल और कठिन योग-पंथ था; जिसका प्रभाव सन्त-काव्य और निर्गुण-साधना पर पड़ा। यह वितत्तिमार्गी अध्यात्म-साधना थी। इस साधना के पीछे अद्वैतवादी चिन्तन था। यह उपासना शिव, शक्ति और विष्णु तीनों के निराकार प्रतीकों को लेकर चलती थी। इसके विपरीत दूसरी और साकारोपासना भी प्रचलित थी, जिसका आधार विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैतवादी दर्शन थे। ये चिन्तन-पद्धतियाँ ब्रह्म, जीव और जगत् में भेद करके चलती थीं। इसके कारण ब्रह्म सगुण और साकार रूप में उपास्य था। इन पद्धतियों की साधना अनेक सम्प्रदायों में विभक्त थी, जिसमें पारस्परिक वैमनस्य और द्वेष-भावना रहती थी। सम्प्रदायगत द्वेष-भावना के अतिरिक्त कठोर संयम की प्रतिक्रिया-स्वरूप प्रवृतिमार्गी रसिकोपासना भी प्रचलित थी। इसके आराध्य रूप कृष्ण और राम दोनों ही थे। कृष्ण के रास-रसिक स्वरूप का प्रभाव उस समय की रामोपासना पर भी बड़े व्यापक रूप में पड़ा था। और रामोपासना मुख्यतया रसिक सम्प्रदाय के रूप में चल रही थी।

तुलसीदास ने अपने समय की समाज की दुर्दशा तथा शासकों की विलासिता को देखकर रसिकोपासना का विरोध किया। तांत्रिक वामाचार के साथ-साथ उन्होंने शैव और रामोपासक सम्प्रदायों की विलास भावना को समाज के लिए हानिकारक समझकर आध्यात्मिक धरातल पर उसका

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रतिकार किया। महाकवि कालिदास-द्वारा वर्णित कुमार संभव महाकाव्य में शिव-पार्वती के श्रृंगार-विलास पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा—

जगत मातु-पितु संभु-भवानी।
तिन सिंगार न कहेऊं बखानी।

क्योंकि कालिदास ने रघुवंश में इन्हीं शिव-पार्वती को संसार के पिता-माता कहकर उनकी वन्दना की थी और उन्हीं का श्रृंगार-विलास कुमार-संभव में प्रदर्शित किया था।

इसी प्रकार रामोपासना में प्रचलित रसिकता और श्रृंगार का विरोध करते हुए तुलसी ने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप का ही अपने ग्रंथ राम-चरितमानस में चित्रण किया है। उसमें कहीं भी विलास और रसिकता की गुंजाइश नहीं। उनका स्वरूप कर्तव्यनिष्ठ और सामाजिक मर्यादाओं की स्थापना करनेवाला अनुकरणीय आदर्श है। इन सब संदर्भों पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि तुलसी ने अपने समय की दशा को देखकर क्रान्तिकारी कार्य किया था और उनका अध्यात्म-चिन्तन सामाजिक संदर्भों से जुड़ा हुआ था।

अपने आध्यात्मिक चिन्तन की सामाजिकता के कारण ही तुलसी ने निर्गुणोपासना के स्थान पर सगुण साकारोपासना का प्रतिपादन किया और राम के मर्यादावादी, शीलवान, शक्तिशाली किन्तु सुन्दर स्वरूप का जीवन्त निरूपण किया, जिससे समाज के लोग उससे प्रभावित होकर उनके कार्यों और व्यवहारों का अनुकरण कर सकें। एक ओर जहाँ भगवान कृष्ण की रासलीला चलती थी, वहीं दूसरी ओर धनुष-यज्ञ और रामलीला के प्रचार से समाज में एक विशिष्ट शक्ति, उत्साह और कर्तव्य-निष्ठा का संचार हुआ तथा समाज को अत्याचार के विरोध की शक्ति प्राप्त हुई।

राम के इस मर्यादावादी और कर्तव्य-निष्ठ ऐतिहासिक स्वरूप की रक्षा करते हुए, जिसका कि मूल आधार बाल्मीकि-कृत रामायण था, तुलसी ने अपने तर्क और चिन्तन द्वारा उसमें परब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा की। कबीर के इस तर्क का कि—**सन्तौ आवे जाय सो माया।** तथा **दसरथ सुत तिहुं लोक बखाना। रामनाम कर मरम है आना।** अर्थात् जो उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है, वह ईश्वर नहीं हो सकता और जो निर्गुण निराकार है, वह सगुण और साकार कैसे हो सकते हैं—गोस्वामी तुलसीदास ने उत्तर दिया कि लकड़ी में आग और वाष्प में पानी जिस प्रकार निराकार रूप में विद्यमान् रहते हैं और उसी में से प्रकट होकर साकार बन जाते हैं; उसी प्रकार सर्वशक्तिमान ईश्वर भी निराकार से साकार रूप ग्रहण कर सकता है। उसे साकार होने में अक्षम मानना, उसकी सर्वशक्तिमत्ता

2

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर ही अविश्वास करना है। अतः तुलसी के अध्यात्म-चिन्तन की एक दिशा यह है कि ईश्वर निराकार भी है और साकार भी। वह सर्वव्यापी होते हुए भी किसी व्यक्ति में वह प्रकट हो सकता है—यह उसके सर्वशक्तिमान् होने का प्रभाव है।

तुलसी के अध्यात्म-चिन्तन की एक दिशा ईश्वर के प्रति समर्पण अथवा भक्ति भावना है। इसी कारण से सारे लौकिक कार्यों की सफलता और सिद्धि के लिए तुलसी ने भक्ति के आधार को आवश्यक माना है। इसी को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि सारे साधन रामभक्ति के बिना व्यर्थ है और अन्ततोगत्वा भक्ति ही सर्वोपरि साध्य है।

वे कहते हैं—

नाम राम को अंक हैं, सब साधन हें सून।
अंक गये कछु हाथ नहिं, अंक रहे दस गून॥

इस प्रकार तुलसी के अध्यात्म-चिन्तन में भक्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इतना कहना भी पर्याप्त नहीं है। वरन् कहना यह चाहिए कि भक्ति उनके अध्यात्म चिन्तन का निचोड़ है, अथवा अध्यात्म-विचार-मंथन का नवनीत है। सारी रामकथा कहने का तुलसी का उद्देश्य राम के प्रति भक्तिभावना का प्रतिपादन है। उन्होंने आध्यात्मिक और दार्श-निक विवाद की व्यर्थता का अनुभव करते हुए यहाँ तक कह डाला कि—

बहु मुनि मत बहु पन्थ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
तुलसी राम भजन नीको मोहि लगत राज डगरो सो॥

इससे यह स्पष्ट है कि उनके अध्यात्म-चिन्तन का सार या परिणाम भक्ति-भावना है। तुलसी दार्शनिक विवादों में भी नहीं पड़ना चाहते थे। माया और जगत् के संबंध में अनेक विवादों और विमर्शों का शमन करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं—

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ माने।
तुलसिदास परिहरे तीनि भ्रम सो आतम पहिचाने॥

उनके मत से इन विवादों में पड़ना भ्रमजाल में फँसना था। अतः वे रामभक्ति में समर्पित जीवन को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। उनका कथन है कि—

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥

गोस्वामीजी के लिए आध्यात्मिक सम्प्रदायों की दीवारें व्यर्थ थीं, क्योंकि उनका चिन्तन समन्वयवादी था। शैव, शाक्त, वैष्णव, राम और कृष्ण सम्प्रदायों की संकीर्णता उन्हें पसन्द न थी। उनका मत था कि अपने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ईश्वर को किसी भी प्रकार से और किसी भी रूप में क्यों न भजे, उसका सुपरिणाम होता ही है; अतः ईश्वर की भक्ति महत्वपूर्ण है—यह महत्व-पूर्ण नहीं है कि कोई किस सम्प्रदाय का है और उसका ईश्वर किस रूप में है।

इन्होंने स्पष्ट कहा कि—

तुलसी अपने राम कहँ, रीझि भजौ कै खीझि।
उलटो सूधो जामिहै, खेत परे की बीज॥

उन्होंने और आगे बढ़कर यहाँ तक कहा कि मनुष्य को उठाने वाली पवित्र भक्ति-भावना किसी स्वार्थवश नहीं होती। वह तो जीव और ईश्वर का पावन एक अध्यात्म-संबंध है, अतः उसके प्रति समर्पण भावना ही सब कुछ है। उन्होंने खुले शब्दों में कहा कि—

जौ जगदीश तौ अति भलो, जौ महीस तो भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम चरन अनुराग॥

अतएव जिसे ईश्वर माना, उसके प्रति एकनिष्ठा और अनन्यता तुलसी के अध्यात्म-चिन्तन का मूल मंत्र था। तुलसी के समन्वयवादी और व्यापक दृष्टिकोण का ही यह परिणाम था कि वे ईश्वर को सब में देख सके और यह कह सके कि—

सीय राम मय सब जग जानी, करौं प्रणाम जोरि जुग पानी॥

तथा...

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
बन्दौं सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पानि॥

उपर्युक्त सभी बातों से यह स्पष्ट होता है कि ऊपर से अलग-अलग लगने वाली तुलसी की अध्यात्म-चिन्तन की दिशाएँ वास्तव में अलग नहीं थीं। वे अन्ततोगत्वा एक ही प्रकाशमय दिशा की ओर मुड़ जाती हैं और उसी में तिरोहित हो जाती हैं और वह दिशा है भक्ति की दिशा। अपने दार्शनिक विचार-विमर्श, अध्ययन, विवेचन और गहरी मीमांसा के अन्त में वे इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि ये सब बौद्धिक विवाद हैं और वास्तविक सत्य ईश्वर है, जिसे उन्होंने राम के रूप में स्वीकार किया। राम के रूप में स्वीकार करने का उनका प्रयोजन समाज-कल्याण था; क्योंकि उनके जीवन से समाज को अनुशासित और संगठित जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिलती है और उनकी भक्ति से मनुष्य में उन गुणों का प्रादुर्भाव होता है, जो मनुष्य, मनुष्य को जोड़ते हैं—अलग नहीं करते। तुलसी समाज से विमुख होने का उपदेश कभी नहीं देते। वे पुरुषार्थमय सामाजिक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कल्याण की ओर ले जानेवाले, सत्य और न्याययुक्त जीवन व्यतीत करने पर बल देते हैं; पर यह कार्य बिना ईश्वर के प्रति भक्तिभावना के नहीं हो सकता। अतः उनके विचार से सामाजिक जीवन के विकास के लिए भक्ति आवश्यक है। इसी प्रकार वैयक्तिक जीवन की शुद्धता और पूर्णता तथा उसमें आनंद और मंगल को समाविष्ट करने के लिए भी भक्ति आवश्यक है। इसलिए तुलसी के विचार से व्यक्ति और समाज दोनों का ही कल्याण भक्ति के द्वारा ही हो सकता है। पर तुलसी की भक्ति एकान्त-साधना न होकर, तथा जीवन के संघर्षों के बीच कर्तव्य में पलायन-वादी धर्म से जुड़ी न होकर, परिपूर्ण-सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण सूत्र है। तुलसी के अध्यात्म-चिन्तन का यही व्यावहारिक और सर्वसुखदायी परिणाम है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास की समन्वय-साधना

डॉ० उदयभानु सिंह

समन्वयवाद भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। समय-समय पर इस देश में कितनी ही संस्कृतियों का आगमन और आविर्भाव हुआ, परन्तु वे घुल-मिल कर एक हो गयीं। कितनी ही दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक और सौन्दर्यमूलक विचारधाराओं का विकास हुआ, किन्तु उनकी परिणति संगम के रूप में हुई। उदारचेता विचारकों की सारग्राहिणी प्रतिभा ने दूसरों की ग्राह्य मान्यताओं को निस्संकोच भाव से ग्रहण किया। यह समन्वय-भावना का ही परिणाम है कि नास्तिक बौद्धों ने राम को बोधिसत्व मान लिया, और आस्तिक वैष्णवों ने बुद्ध की अवतार-रूप में प्रतिष्ठा की। सांख्य-योग एवं न्याय-वैशेषिक में वेदांत के ईश्वर की सत्ता स्वीकार की गयी, और वेदांत में सांख्य की सृष्टि-प्रक्रिया, योग की ज्ञान-साधना तथा न्याय की तर्क-प्रणाली को गौरव दिया गया। अर्थ-काम और धर्म-मोक्ष में, वेद-शास्त्र और लोक-परम्परा में, प्रवृत्ति और निवृत्ति में, साहित्य और जीवन में समन्वय स्थापित करने के विराट् प्रयत्न किये गये, अनेकता में एकता की स्थापना की गयी, वैषम्य में साम्य का दर्शन किया गया।

समन्वय के देश में महान् लोकनायक वही हो सकता है, जिसमें विशाल समन्वय-बुद्धि हो और जो उस बुद्धि का सदुपयोग कर सके। धर्म-दर्शन और समाज-सुधार के क्षेत्र में गौतम बुद्ध इसी प्रकार के लोकनायक थे। उनकी महिमा की आधारभूमि 'मध्यमा प्रतिपदा' समन्वय का ही मार्ग है। वाङ्मय के क्षेत्र में इतिहास-पुराण समन्वय-साधना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनमें भागवतपुराण और महाभारत का स्थान अन्यतम है। उनमें विभिन्न विचारधाराओं का संगम है, रोचक कथाओं की सहायता से तत्वज्ञान का उपस्थापन है, किन्तु कांतासंमित उपदेश का विधान करने वाले रमणीयार्थ-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रतिपादक काव्य की सरसता नहीं है। संस्कृत में रचित होने के कारण वे तुलसीयुगीन लोक-मानस का नेतृत्व करने में असमर्थ थे। लोकदर्शी तुलसी ने जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और जनभाषा के माध्यम से रामचरितमानस के रूप में समन्वय का वह आदर्श प्रस्तुत किया, जो अपने कवित्वमय भक्ति-दर्शन, भक्ति-दर्शनमय कवित्व, और आमूढ़पंडित-व्यापिनी लोकप्रियता के कारण अद्वितीय है।

समन्वय-सिद्धान्त का व्यवस्थित निरूपण और कार्यान्वयन मदारी का वृक्ष नहीं है। वह प्रत्यक्ष अनुभव, सूक्ष्म अवेक्षण, और गहन अनुशीलन का संमिलित परिणाम है।[1] जीवन स्वयं समझौता है। तुलसी ने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में रहकर उसका साक्षात् अनुभव किया था। वे ब्राह्मण-पुत्र थे, पेट की आग बुझाने के लिए उन्हें 'जाति के सुजाति के कुजाति के' टुकड़े भी खाने पड़े थे। द्वार-द्वार भीख भी माँगी थी, और मठाधीश का सुख-भोग भी किया था। लोगों ने 'दगाबाज' कहकर गालियाँ भी दी थीं, और महामुनि मानकर भूपतियों तक ने पाँव भी पूजे थे। वे यौवन की कामासक्ति के शिकार भी हुए थे, और वैराग्य की पराकाष्ठा पर पहुँचकर आत्माराम भी हो गये थे। वे अर्थ-काम-पंकिल भव-सरिता से निकल कर धर्म-दर्शन-विशिष्ट रामभक्ति की राजडगर पर आये थे। उनमें कवि की कारयित्री प्रतिभा, भक्त के निष्काम हृदय और समाज-सुधारक की लोकमंगल-भावना का अपूर्व समन्वय था। उन्होंने अपने अनुभव, अवेक्षण, शास्त्रज्ञान और सहृदयता के आधार पर कृतित्व, धर्म और भक्ति की त्रिपथगा का निर्माण किया। उनकी समन्वय-साधना बहुमुखी है।

द्वैत-अद्वैत : तुलसी का दार्शनिक समन्वयवाद अत्यंत विवाद का विषय रहा है। तुलसी के युग में वेदांत का प्रभुत्व था। उसके भीतर भी दो प्रकार के संघर्ष थे। १—सभी वैष्णव आचार्य शंकर के निर्गुणब्रह्मवाद और मायावाद के विरोधी थे। २—सभी अद्वैतवादी[2] मध्व के द्वैतवाद के विरोधी थे। तुलसी शंकर के ब्रह्मवाद और रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद से मुख्यतया प्रभावित हैं। परन्तु अन्य मतों से भी उन्होंने विचार ग्रहण किये हैं।[3] यह बात ध्यान देने योग्य है कि उपनिषदों और वेदांत-संप्रदायों में

१—लोक विलोकि पुरान वेद सुनि समुझि बूझि गुरु ग्यानी।
प्रीति प्रतीति राम पद पंकज सकल सुमंगल खानी ॥
—विनयपत्रिका, १९४।४

२—केवलाद्वैतवादी, विशिष्टताद्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, और शुद्धाद्वैतवादी

३—देखिए : तुलसी-दर्शन-मीमांसा, 'उपसंहार'

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो मान्यताएँ समान रूप से पायी जाती हैं, वे तुलसी को स्वीकार्य हैं, जैसे : ब्रह्म सच्चिदानंदस्वरूप है, वह जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादन और आश्रय है, आदि। परन्तु, जहाँ अद्वैतवादियों और वैष्णव-वेदांतियों में मतभेद है, वहाँ उन्होंने समन्वयवादी दृष्टि से काम लिया है। केवला-द्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म स्वरूपतः निर्गुण, निर्विशेष और निर्लक्षण है, अर्थात् उसमें कृपा आदि विशेताएँ नहीं हैं ; माया अविद्या है, उसके अस्तित्व के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता ; माया की उपाधि से युक्त सगुण ब्रह्म (ईश्वर) ही अवतार लेता है ; एकमात्र (निर्गुण) ब्रह्म ही सत्य है ; जीव, जगत् और ईश्वर सब मिथ्या हैं ; केवल-ज्ञान ही मुक्ति का साधन है , आत्मस्वरूप में स्थित हो जाना, जीव के जीवत्व का नाश ही मुक्ति है। वैष्णव आचार्यों के अनुसार ब्रह्म स्वरूपतः सगुण अर्थात् कृपा आदि दिव्य गुणों से युक्त है, वही कृष्ण आदि के रूप में अवतार लेता है, उसी की शक्ति माया है, जीव उसी का अंश है, भिन्न प्रतीयमान जगत् उससे अभिन्न है, भक्ति मुक्ति का अमोघ साधन है, सालोक्य आदि मुक्तियाँ श्रेष्ठ हैं।

निर्गुण और सगुण : निर्गुण और सगुण का विवाद दो क्षेत्रों में था, दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में, और भक्ति के क्षेत्र में। शंकराचार्य के निर्गुणब्रह्म-वाद के विरुद्ध रामानुज और वल्लभ ने बहुत बल देकर ब्रह्म को स्वभावतः सगुण बतलाया था।[४] तुलसी ने राम को बारम्बार निर्गुण-सगुण-स्वरूप कहा है।[५]

१–सगुनहि अगुनहि नहिं कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।
२–अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।
३–जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।।

वस्तुतः राम एक हैं। वे ही निर्गुण और सगुण निराकार और साकार, अव्यक्त और व्यक्त, अंतर्यामी और बहिर्यामी, गुणातीत और गुणाश्रय हैं।[६] निर्गुण राम ही भक्तों के प्रेम-वश सगुण-रूप में प्रकट होते हैं।[७] दोनों

४–ब्रह्मसूत्र, १।१।२१ और १।२।१२ पर श्रीभाष्य, दि फिलासफी आफ श्रीवल्लभाचार्य। पृ० १५६

५–रामचरितमानस, १।११६।१, १।२३।१, ७।१३ छंद।

६–एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू।।
—रामचरितमानस, १।२३।२
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसें।।
—वही, १।११६।२

७–अगुन अरूप अलख जग जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।
—रामचरितमानस, १।११६।१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोई विरोध नहीं है। यह विश्वास की बात है। अपनी प्रीति-प्रतीति के अनुसार भक्त उन्हें किसी भी रूप में भज सकता है। तुलसी और उनके काव्य में अंकित भक्त सगुण-रूप के उपासक हैं, क्योंकि सगुण राम की भुजाएँ ही भक्तों पर छाया करती आयी हैं, कर रही हैं और करती रहेंगी।[८] इसका मनोवैज्ञानिक कारण है। भक्त अपने चारों ओर उस भगवान् को देखना चाहता है, जो संकट के समय काम भी आ सके। इसीलिए स्वरूपतः अभिन्न होते हुए भी अंतर्यामी की अपेक्षा बहिर्यामी श्रेष्ठ है।[९] पुनश्च, तुलसी के सगुण-साकार राम में रूप और गुण का, शील, शक्ति और सौन्दर्य का, अनुपम समन्वय है।

विद्या और अविद्या माया : अद्वैतवाद में 'माया' और 'अविद्या' पर्याय-वाची हैं। वैष्णव आचार्य ऐसा नहीं मानते। वे माया को स्वभावतः सगुण ब्रह्म की शक्ति मानते हैं। तुलसी ने दोनों के समन्वित सिद्धान्त को ग्रहण किया है। माया की दो विधाएँ हैं, विद्या और अविद्या।[१०] तुलसी की अविद्य-माया (मोहकारिणी-शक्ति) अद्वैतवादियों की 'माया' है। तुलसी ने उसी को मिथ्या कहा है[११] और उसके लिए प्रायः 'माया' शब्द का ही प्रयोग किया है। इससे लोगों को भ्रम हो जाता है कि वे शंकरा-चार्य के मतानुयायी हैं। तुलसी की विद्य-माया शंकर की माया से भिन्न है, क्योंकि वह जगत् की रचना (विक्षेप नहीं) करती है और भक्तों का कल्याण भी। उनके अनुसार माया राम की भावरूपा अभिन्न शक्ति है,[१२] और राम के साथ अवतार लेती है।

माया और प्रकृति : सांख्य-योग के अनुसार स्वतंत्र प्रकृति सृष्टि का कारण है; यह स्थूल जगत् उसी का विकार है। अद्वैतवाद में मिथ्या जगत् की व्याख्या करने के लिए माया की कल्पना की गयी और जगत् को माया की विक्षेप-शक्ति का कार्य (विवर्त) माना गया। वैष्णवों ने परब्रह्म और उसकी शक्ति माया द्वारा विश्व का निर्माण माना। सृष्टि-

---

८—रामचरितमानस, ३।११।९-१०, गीतावली, ७।१३

९—अंतरजामिहु ते बड़ बाहरजामि हैं रामु जे नाम लिये ते।
धावत धेनु पेन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये ते।
आपनि बूझि कहै तुलसी कहिबे को न बावरि बात बिये ते।
पैज परे प्रह्लादहु को प्रगटे प्रभु पाहन ते न हिये ते।।
——कवितावली, ७।१२९

१०—रामचरितमानस, ३।१५।२-३

११—रामचरितमानस, ७।७१

१२—रामचरितमानस, १।१५२।२, २।१२६ छंद

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रक्रिया के विषय में तुलसी ने वैष्णव-वेदांत की माया और सांख्य-योग की प्रकृति का समन्वय किया।[१३] उन्होंने प्रकृति को राम के अधीन और माया से अभिन्न मानकर दोनों में एकसूत्रता स्थापित की, सांख्यों के प्रकृति-परिणामवाद को समेटते हुए अविकृत ईश्वर-परिणामवाद की प्रतिष्ठा की। उन्होंने चार्वाकों के स्वभाव, वैशेषिकों के कालपरमाणु, मीमांसकों के कर्म और शैवों की चित्-शक्ति को रामाश्रित बतलाकर इन सभी का समन्वय किया है।[१४]

जगत् की सत्यता और असत्यता : सांख्य-योग, वैष्णव-वेदांत, पांचरात्र आगम और पाशुपत-मत में जगत् की सत्यता स्वीकार की गयी है। माध्यमिक बौद्धों एवं शंकर-मतानुयायियों के अनुसार जगत् की सत्ता मायिक आभासमात्र (काल्पनिक) है। वेद-विरोधी, अनात्मवादी तथा अनीश्वरवादी बौद्ध तुलसी की दृष्टि में सर्वथा तिरस्करणीय हैं। उनसे विचार-ग्रहण की संभावना अकल्पनीय है। शेष मतों का उन्होंने समन्वय किया है। विवर्तवादी वेदांतियों के अनुरूप उक्तियाँ हैं।[१५]

१–रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानु कर बारि।

२–जग नभबाटिका रही है फल फूलि रे।

३–झूठो है झूठो है झूठो सदा जग संत कहत जे अंत लहा है। आदि।

इसके विरुद्ध राम को विश्वरूप[१६] तथा जगत् को रामरूप और राम का अंग[१७] बतला कर उन्होंने जगत् की सत्यता प्रतिपादित की है, क्योंकि सत्य राम से अभिन्न जगत् मिथ्या नहीं हो सकता। वस्तुतः, यह विरोधाभास है। समाधान यह है कि जगत् प्रवाह-रूप से नित्य है[१८] : कभी वह कारण-रूप में अव्यक्त रहता है, और कभी कार्यरूप में व्यक्त। राम से भिन्न प्रतीत होने वाला उसका कार्य-रूप परिवर्तनशील होने के कारण मिथ्या है। ज्ञान का उदय होने पर सर्वात्मभाव की अवस्था में संपूर्ण जगत् राममय दिखायी देने लगता है, विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता :

१३–विनयपत्रिका, ५४।२-३, रामचरितमानस, ७।१३ छंद ५

१४–दोहावली, २००, विनयपत्रिका, ५४।२

१५–क्रमशः, रामचरितमानस, १।११७, विनयपत्रिका, ६६।४, कवितावली, ७।३९

१६–व्यापक बिस्वरूप भगवाना।—रामचरितमानस, १।१३।२

१७–बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥—रामचरितमानस, ६।१४

१८–बिधि प्रपंच् अस अचल अनादी।—रामचरितमानस, २।२८२।३

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।[१९]

दूसरे शब्दों में तुलसी ने द्वैतवादी और अद्वैतवादी मतों का समन्वय किया है। राम और जगत् में अभेद है, किन्तु प्रतीयमान व्यावहारिक भेद भी है।[२०]

जीव का भेद-अभेद : तुलसी का जीव-विषयक सिद्धान्त वैष्णव-वेदांतियों के मतों का समन्वय है। रामानुज और वल्लभ के अनुसार जीव ईश्वर का अंश, नित्य, ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता, ईश्वराधीन आदि है।[२१] मध्व ने प्रत्येक जीव को अन्य जीवों से, और परमात्मा तथा जड़-जगत् से तत्वत: भिन्न माना है। तुलसी ने भेदभाव और अभेदवाद दोनों का समन्वय किया है। स्वरूप की दृष्टि से जीव और ईश्वर में अभेद है। वह ईश्वर का अंश है, अत: ईश्वर की भाँति ही सत्य, चेतन एवं आनंदमय है।[२२] ऐश्वर्य आदि की दृष्टि से दोनों में भेद है।[२३]

जीवों की संख्या अनंत है। जीव ईश्वर का अंश मात्र है। वह माया का स्वामी नहीं है। मुक्त होने पर वह ईश्वर का स्वरूप तो प्राप्त कर लेता है, किन्तु ऐश्वर्य नहीं। उसका सारुप्य भोग-साम्य तक ही सीमित है। उसमें ईश्वर की सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता नहीं आती।

भाग्य और पुरुषार्थ : इस संबंध में प्राचीन काल से ही विभिन्न मत प्रचलित रहे हैं। कुछ विद्वान् दैव को, कुछ स्वभाव को, कुछ काल को, कुछ पुरुषकार को, और कुछ इनके संयोग को फलप्राप्ति का कारण मानते हैं।[२४] ये मत तीन वर्गों के अंतर्गत रखे जा सकते हैं : दैववाद या भाग्य-वाद, पुरुषकारवाद या पुरुषार्थवाद, और संयोगवाद या समन्वयवाद। तुलसी-साहित्य में तीनों प्रकार की उक्तियाँ मिलती हैं : कहीं पुरुषार्थवाद की प्रतिष्ठा है,[२५] कहीं भाग्यवाद का उपस्थापन है,[२६] और कहीं समन्वयवाद

१९—रामचरितमानस, ७।११२

२०—सब रूप सदा सब होइ न सो,
रबि आतप भिन्न न भिन्न जथा।—रामतरितमानस, ६।१११।८

२१—देखिए : तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० ३४७, ३५०

२२—रामचरितमानस, ७।११७।१

२३—देखिए : तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० १०४-५

२४—याज्ञवल्क्यस्मृति, १।३५०

२५—करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।
—रामचरितमानस, २।२१९।२

२६—तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलै सहाइ।—दोहावली, ४५०,
—रामचरितमानस, १।१५९

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की स्थापना है।[२७] प्रश्न उठता है : तुलसी का सिद्धांत क्या है ? उत्तर है : समन्वयवाद। वस्तुतः पौरुष ही प्रधान है,[२८] प्राक्तन (पूर्वदेहार्जित) पौरुष का नाम ही दैव या भाग्य है।[२९] जिस पौरुष के साथ फल के कार्य-कारण-संबंध को हम मिला नहीं पाते ; उसी को भाग्य कह दिया करते हैं। इस जन्म की सफलता में भी पूर्वजन्म का पौरुष सहायक होता है, सिद्धि का रथ पौरुष और भाग्य के दोनों पहियों पर चलता है।[३०] याज्ञवल्क्य आदि की भाँति तुलसी भी समन्वयवादी हैं :

पुरुषारथ पूरब करम परमेश्वर परधान।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहि काज अनुमान।[३१]

ईश्वर पौरुष एवं भाग्य का संचालक तथा नियामक है। इस सिद्धांत का मनोवैज्ञानिक कारण है। ईश्वर-बुद्धि से कर्म करनेवाले जीव को पुरुषार्थ की सफलता पर अहंकार नहीं होता, उसकी असफलता पर कुंठा नहीं होती।

कर्म-ज्ञान-भक्ति : जीवन की पूर्णता इन तीनों के समन्वय में है। वही साधना सिद्धिदायिनी होती है, जो साधक की पूरी सत्ता के साथ की जाए। इसीलिए विभिन्न साधना-पद्धतियों में इन तीनों को स्थान दिया गया है। ये तीनों अन्योन्याश्रित हैं। सत्कर्म के बिना चित्त निर्मल नहीं हो सकता और मलावृत चित्त में ज्ञान-भक्ति का उदय असंभव है। समाज-व्यवस्था के लिए सदाचार अनिवार्य है। धर्ममय रथ से ही जीवन-संग्राम में विजय मिल सकती है।[३२] ज्ञान-भक्ति से रहित कर्म मल-जनक और बंधन-कारक होता है।[३३] अतएव तुलसी ने तीनों में समन्वय पर बल दिया है।[३४]

कहा जा चुका है कि ज्ञान और भक्ति ही तत्वतः मुक्ति-साधन हैं। कर्म, वैराग्य, योग आदि इन साधनों के साधन हैं। महत्व देने के लिए

२७—सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फल हृदयँ बिचारी।
करइ जो करमु पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सब कोई॥
—रामचरितमानस, २।७७।४

२८—तैं निज करमडोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं॥
—विनयपत्रिका, १३६।३

२९—योगवासिष्ठ, २।४।१७, २।६।३५

३०—याज्ञवल्क्यस्मृति, १।३४९, ३५१

३१—दोहावली, ४६८

३२—रामचरितमानस, ६।८०

३३—विनयपत्रिका, ८८।३, २४५।३, रामचरितमानस, ७।४९।३

३४—रामचरितमानस, ३।१६।१-६, विनयपत्रिका, २०३, दोहावली, ८६

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उन्हें 'साधन' कह दिया जाता है। सांख्य-योग और शांकर-वेदांत में ज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है। वैष्णव आचार्यों ने भक्ति को श्रेष्ठ माना है। तुलसी ने दोनों का समन्वय करते हुए विरति-विवेक-संयुक्त भक्ति और ज्ञानी भक्त को श्रेष्ठ बतलाया है।[३५]

१–श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिबेक।

२–राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा।।
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा।।

भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने नवधा भक्तियों का समन्वय किया है। 'रामचरितमानस' के तृतीय सोपान में लक्ष्मण को भक्ति का उपदेश करते हुए राम ने 'भागवतपुराण' की नवधा भक्ति पर जोर दिया है, और शबरी के प्रति उन्होंने 'अध्यात्मरामायण' की नवधा भक्ति का निरूपण किया है। दोनों मान्य हैं। अधिकारी की योग्यता के अनुसार भक्ति का कोई भी प्रकार ग्रहणीय है।

भक्ति की श्रेष्ठता[३६] के तीन प्रमुख कारण हैं : मनोविज्ञान, अधिकारी की योग्यता और युगधर्म। (१) मन स्वभावतः रागात्मक है। उसे आलंबन चाहिए। निराकार-शून्य में मन को टिकाना दुस्साध्य है। भक्ति रागात्मिका वृत्ति है। वह मानव-मन के अनुकूल और सहज-ग्राह्य है। (२) प्रत्येक व्यक्ति सभी साधनाओं के उपयुक्त नहीं है। उसकी शक्ति सीमित है। धन-साध्य कर्ममार्ग और कष्टसाध्य ज्ञानपंथ सबके वश की बात नहीं है। भक्ति सर्वोपयोगी है। (३) कलियुग के अत्याचारी शासन की प्रतिकूल परिस्थितियों में धर्म-पालन और ज्ञान-साधना दुष्कर हैं। भक्ति ही श्रेयस्कर उपाय है। उसमें भी नाम-भक्ति अधिक फलप्रद और निरापद है। नाम-भक्ति की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह निर्गुणियों और सगुणभक्तों को समान रूप से मान्य है। इसके द्वारा इन दोनों भक्तिधाराओं का भी समन्वय हो जाता है।[३७]

१–हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम।।

२–अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।।

जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति : अद्वैतवादियों के अनुसार, आत्मसाक्षात्कार

३५–दोहावली, ५५५, रामचरितमानस, ७।१००, १।२२।४, देखिए :
—गीता, ७।१६

३६–देखिए : तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० १७६-९२

३७–दोहावली, ७, रामचरितमानस, १।२१।४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या ब्रह्मसाक्षात्कार होने पर देहावसान के पूर्व ही आत्मा की जीवन्मुक्ति हो जाती है। अधिकतर वैष्णव आचार्य जीवन्मुक्ति नहीं मानते। विदेह-मुक्ति के भी अनेक प्रकार बतलाये गये हैं। 'मुक्तिकोपनिषद्' में कहा गया है कि सालोक्य मुक्ति नामभक्तों का, सारुप्य मुक्ति सांख्ययोगी भक्तों का, सामीप्य मुक्ति सेवाभिलाषी भक्तों का, और सायुज्य मुक्ति अद्वैतवेदांती निर्गुणोपासकों का इष्ट है।[३८] समन्वयवादी तुलसी को जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति, और विदेहमुक्ति के उक्त चारों प्रकार मान्य हैं।[३९] इनमें कोई विरोध नहीं है। ज्ञान और भक्ति का उदय ही मनोमुक्ति है। शरीरांत के बाद मुक्तात्मा अपने भावानुसार चैतन्यमात्र-स्वरूप से या पर-मात्मा में अभिन्न रूप से अथवा भगवान् के सदृश दिव्य-गुणों से संपन्न होकर स्थित हो सकता है।

पं० गिरिधर शर्मा, पं० विजयानंद त्रिपाठी आदि ने तुलसी को अद्वैत-वादी माना है। पं० श्रीकांतशरण ने संपूर्ण तुलसी-साहित्य की विशिष्टा-द्वैतपरक विशद व्याख्या की है। रसिक-संप्रदाय में तुलसी सखी-रूप में समादृत हैं। अधिकतर विद्वान् तुलसी को समन्वयवादी मानते हैं। आग-मनात्मक विधि से तुलसी-साहित्य का अध्ययन करके मैं भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वे समन्वयवादी हैं। उपर्युक्त दिग्दर्शन से स्पष्ट है कि तुलसी किसी दार्शनिक संप्रदाय के कठघरे में बंद नहीं किये जा सकते। एकाध आलोचक और संपादक इस मोह से आक्रांत हैं कि जो तुलसी को अद्वैतवादी (शंकरमतानुयायी) नहीं मानता, वह अद्वैत-वेदान्त को समझता ही नहीं है। निर्गुणब्रह्म के स्वयंभू ठेकेदारों को लक्ष्य करके तुलसी ने 'रामचरितमानस' के शिव से कहलवाया था : **जिन्ह कृत महा-मोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना।।**[४०] उन्हें अद्वैतवादी सिद्ध करने के लिए कुछ पंक्तियाँ नोच ली जाती है, और प्रतिकूल पड़ने वाले अंशों की उपेक्षा कर दी जाती है। कुछ उदाहरण लीजिए :

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।। आदि

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहिं धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान।।[४१]

३८—मुक्तिकोपनिषद्, १।१५-२५
३९—दोहावली, २२५, रामचरितमानस, ३।९।१, ३।३२।१, ७।४।३, ३।८।३
४०—रामचरितमानस, १।११५।४
४१—रामचरितमानस, १।११८

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दोहे के ऊपर की चौपाइयों में 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' के अनुसार निर्गुण राम का निरूपण किया गया है। यह अद्वैतवाद के अनुकूल है। किंतु दोहा इसके विरुद्ध है, इसलिए छोड़ दिया जाता है। शंकराचार्य के मतानुसार निर्गुण ब्रह्म अवतार नहीं लेता, यह कार्य मायोपहित सगुण ब्रह्म का है। तुलसी दोनों में भेद नहीं मानते। उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि जो निर्गुण है, वही सगुण है, वही अवतार है। दूसरी उक्ति है:

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।[४२]

दूसरी पंक्ति को लेकर अद्वैतवाद की घोषणा की जाती है, किन्तु श्लोक के पहले ही शब्द पर ध्यान नहीं दिया जाता। 'यन्माया' का अर्थ है: जिसकी माया। शंकर के निर्गुण ब्रह्म को माया-संबद्ध मान लेने पर उसका निर्विशेषत्व कहाँ रहेगा? तुलसी वैष्णव वेदान्त का अनुसरण करते हुए माया को राम की भावरूपा शक्ति मानते हैं। जगत् वस्तुतः रामरूप है। उसका दृश्यमान भिन्न रूप मृषा है।

इसी प्रकार विज्ञान-दीप-प्रकरण[४३] के **ईश्वर अंस जीव अविनासी** में प्रयुक्त 'अंस' को अंश इव' कह कर काम चला लिया जाता है। 'अबिनासी' शब्द ध्यान देने योग्य है। वह जीव की सत्यता का द्योतक है। राम ने स्पष्ट कहा है: **जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।**[४४] वस्तुतः तुलसी का 'जीव' अद्वैतवाद के 'जीव' से बिलकुल भिन्न है। अद्वैतवाद के अनुसार जीव असत्य है, वह चैतन्य का बुद्धिगत प्रतिबिंब मात्र है।[४५] इसके प्रतिकूल तुलसी के मतानुसार जीव 'अबिनासी सत चेतन घन आनंद रासी' है। उनकी 'भेदभगति' जीव के नित्यत्व पर आश्रित है। यह ठीक है कि उन्होंने अद्वैतवाद से बहुत से विचार ग्रहण किये हैं, परन्तु उनके साहित्य में अद्वैतविरोधी उक्तियाँ भी भरी पड़ी हैं। उनके जैसे एकनिष्ठ सगुणभक्त को अद्वैतवाद के शिकंजे में कसना असंगत है।

शैव-शाक्त-वैष्णव : तुलसी के युग में ये तीन धार्मिक संप्रदाय प्रबल थे। उनमें परस्पर-विरोध था। तुलसी ने उनमें समन्वय स्थापित किया। शिव, शक्ति (देवी, पार्वती) और राम या विष्णु की स्तुतियों में प्रायः

४२–रामचरितमानस, १।१ श्लोक ६
४३–रामचरितमानस, ७।११७।१-७-११९।२
४४–रामचरितमानस, ४।११।२
४५–जीवभावो न सत्यः—विवेकचूडामणि, १९८, बुद्धिप्रतिबिंबितं चैतन्यं जीवः—सिद्धान्तबिन्दु, पृ० ७९

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक समान विशेषताएँ बतलायी गयी हैं। राम और सीता ने क्रमशः शिव और पार्वती की पूजा की है। शिव-पार्वती ने राम के प्रति उत्कट भक्ति-भाव की व्यंजना की है। 'रामचरितमानस' के वक्ता-श्रोता के रूप में शिव-पार्वती की योजना समन्वय-भावना से ही प्रेरित है। 'विनयपत्रिका' की हरिशंकरी स्तुति में भी यह सिद्धान्त प्रतिफलित हुआ है। हाँ, यह समन्वय राम-भक्ति के केंद्रबिंदु से हुआ है। शैवों के परमशिव, शाक्तों की परमशक्ति और वैष्णवों के परमविष्णु राम के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। राम परम आराध्य हैं।[४६] इसी लक्ष्य को दृष्टि में रख कर राम, शिव और पार्वती से क्रमशः कहलाया गया है।[४७]

१–संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुं बास।।
२–जहं लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।
३–नाथ कृपा मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा।।

वर्णाश्रमधर्म और मानवतावाद : तुलसी वर्णाश्रमधर्म के निष्ठावान् समर्थक हैं। विभिन्न कृतियों में कलियुग का वर्णन करते समय उन्होंने उसके ह्रास पर खेद प्रकट किया है। धर्म-निरूपण के प्रसंगों में उसके पालन पर बल दिया है। परन्तु उनकी दृष्टि संकुचित नहीं है। उसका लक्ष्य लोक-कल्याण है। अतः उन्होंने साधारण-धर्मों को विशेष महत्व दिया है। राम-रावण-युद्ध के समय धर्ममय रथ के वर्णन में दोनों का सामंजस्य किया है।[४८] मानवतावादी दृष्टि से सत्य, परोपकार और अहिंसा को परम धर्म बतलाया है[४९] : सत्य मूल सब सुकृत सुहाए, धरमु न दूसर सत्य समाना, श्रुति कह परम धरम उपकारा, परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परम धरम श्रुतिविदित अहिंसा।

ब्राह्मण और शूद्र : वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण को समाज-शरीर का शिर और शूद्र को पैर कहा गया है। एक उच्चतम वर्ण है, दूसरा निम्नतम। सभी वर्णों के गुण और कर्म नियत हैं। समाज के व्यवस्थित संचालन के लिए वर्ण-धर्म का पालन आवश्यक है। उसके अतिक्रमण से समाज की मर्यादा भंग होती है। समाज की व्यवस्था में वर्ण-भेद स्वीकार करते हुए भी तुलसी ने भक्ति के क्षेत्र में ब्राह्मण और शूद्र को समान स्थान दिया है।

४६–देखिए : तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० ९२-९४
४७–रामचरितमानस, ६।२, ७।१२६।४, ७।१२९।४
४८–रामचरितमानस, ६।८०
४९–रामचरितमानस, २।२८।३, २।९५।३, १।८४।१, ७।४१।१, ७।१२१।११

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्षत्रिय-श्रेष्ठ भरत और ब्राह्मण-रत्न वसिष्ठ ने निम्नवर्ण निषाद तथा केवट को आत्मविस्मृत होकर प्रेमपूर्वक गले लगाया है।[50]

१–भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती।।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता।।
२–प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू।।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।।

व्यक्ति और समाज : मुक्ति और भक्ति व्यक्तिगत वस्तुएँ हैं। तुलसी का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति है। परन्तु, उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के प्रति व्यक्ति के कुछ कर्तव्य हैं। अपनी वृत्तियों के उदात्तीकरण के साथ ही उसे अपनी सत्वशीलता से समाज का भी उन्नयन करना चाहिए। तुलसी के सज्जनपात्र इसी प्रकार का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। व्यक्ति और समाज, आत्मपक्ष और लोकपक्ष, के समन्वय द्वारा तुलसी ने धर्म की सर्वतोमुख रक्षा करने का प्रयास किया है।

व्यक्ति और परिवार : गृहस्थाश्रम संपूर्ण समाज-व्यवस्था का आधार है। इसलिए व्यक्ति के निर्माण और कर्त्तव्य की दृष्टि से जीवन में परिवार का स्थान महत्वपूर्ण है। दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, राम, भरत, लक्ष्मण, सीता आदि के माध्यम से तुलसी ने पारिवारिक जीवन का जो महान् आदर्श प्रस्तुत किया है, वह सभी के लिए अनुकरणीय है। विभिन्न पात्रों का पारस्परिक संबंध स्नेह और शील की उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित है। लक्ष्मण और भरत की 'भायप भगति' तो अप्रतिम है। भ्रातृस्नेह के मानक भरत से मिलकर सुग्रीव और विभीषण आत्मग्लानि से गड़ गये थे :

सधन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहि भई भरत की भेंट।।
राम सराहे भरत उठि मिले राम सम जानि।
तदपि बिभीषन, कीसपति तुलसी गरत गलानि।।[51]

साधुमत और लोकमत : तुलसी की धर्म-भावना में इन दोनों का भी सामंजस्य पाया जाता है। सज्जनों के शील के अनुसार व्यक्तिगत धर्म-साधना 'साधुमत' है। व्यक्ति का सत्वशील होना ही पर्याप्त नहीं है, उसका सदाचरण लोकसमर्थित भी होना चाहिए। लोक-मर्यादा और लोक-शासन के लिए लोकमत की रक्षा अभीष्ट है। उसका अनुसरण करते हुए राम ने अग्नि-परीक्षित सीता को निर्वासित किया, और साधुमत के अनुसार

५०–रामचरितमानस, २।१९४।१-२, २।२४३।३
५१–दोहावली, २०७, २०८

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सीता तथा लक्ष्मण ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया।[५२] काकभुशुंडि के गुरु ने साधुमत का आचरण करते हुए क्रोध नहीं किया, किन्तु लोकमत की रक्षा के लिए शिव ने शिष्य की मर्यादा भंग करने वाले भुशुंडि को शाप देकर दंडित किया।[५३]

वेदशास्त्र और व्यवहार : तुलसी ने अपनी रचनाओं में वेद, पुराण आदि की आप्तता का बारंबार हवाला दिया है। उनका धर्मशास्त्रीय निरूपण बुद्धि-विलास नहीं है। उनके पात्र वेदशास्त्र के मत को व्यावहारिक जीवन में कार्यान्वित करके दोनों का समन्वय उपस्थित करते हैं। इसीलिए संस्कारों का अनुष्ठान उन्होंने वैदिक और लौकिक रीतियों की समन्वित पद्धति से कराया है।[५४] उनकी कविता-सरिता लोक और वेदमत दोनों के बीच से बहती है :

चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो।।
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेदमत मंजुल कूला।।[५५]

भोग और त्याग : त्यागपूर्वक भोग धर्मशील का आदर्श है। इसके दो तात्पर्य हो सकते हैं। एक यह कि अनासक्त भाव से कर्म के सुफल का भोग किया जाए। दूसरा यह कि सुख-भोग को अपने तक ही सीमित न रखकर दूसरों को भी उसका भागी बनाया जाए। राम-राज्य में दोनों का उत्तम निदर्शन मिलता है। स्वयं राम ने भोग और त्याग के समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है। मिथकीय मान्यता है कि उन्होंने सीता का परित्याग करके पिता की आयु का भोग किया, अश्वमेध के पश्चात् संपत्ति द्विजों को बाँट दी।[५६] प्रतिनायक रावण ने तो मानों साम्यवाद के सिद्धांत को फलितार्थ किया है।[५७]

हमारे यहाँ दो प्रकार के मार्ग बतलाये गये हैं। प्रवृत्ति-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग। पहला गृहस्थ-जीवन का द्योतक है और दूसरा संन्यास का। अनेक आचार्य संन्यास को मुक्ति या भक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं। तुलसी समन्वयवादी हैं। उनके मतानुसार संन्यास अनिवार्य नहीं है, घर में रहते हुए भी अनासक्त भाव से व्यवहार करने पर भगवद्भक्ति की उपलब्धि हो सकती है :

५२–गीतावली, ७।२७-२९
५३–रामचरितमानस, ७।१०५-७।१०७
५४–जानकीमंगल, १४२, पार्वतीमंगल, १४४, रामचरितमानस, १।३२०।१
५५–रामचरितमानस, १।३९।६
५६–गीतावली, ७।२५, रामचरितमानस, ७।२४।१
५७–जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे।।
—रामचरितमानस, १।१७९।४

3

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

घर कीन्हें घर जात है घर छाँड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच ही रामप्रेम पुर छाइ ।।[५८]

राजा और प्रजा : किसी भी देश और समाज की सुख-समृद्धि के लिए राजा तथा प्रजा का समन्वित प्रयास अपेक्षित है। एक का भी असहयोग घातक है। तुलसी के युग में पशु-बल के भरोसे शासन करने वाले राजा और बादशाह कर्तव्य-च्युत हो गये थे, 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार प्रजा भी पाषंड-रत और पतित हो गयी थी।[५९] समाज की यह दुर्दशा खेदजनक थी। आदर्श राम-राज्य में तुलसी ने राजा और प्रजा के अभीष्ट समन्वय का विधान किया। राजभक्त प्रजा धर्म-निरत थी, और प्रजा-पालन-परायण राम ने नागरिकों को उचित गौरव दिया :

सुनहु सकल पुरजन मम बानी । कहौं न कछु ममता उर आनी ।।
नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई । सुनहु करहु जौ तुम्हहि सुहाई ।।
जौं अनीति कुछ भाषौं भाई । तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ।।[६०]

राजतंत्र और जनतंत्र के समन्वय का यह निर्देश युग की परिसीमित पृष्ठभूमि में किया गया है। उनकी परख के लिए आधुनिक मानदंड का प्रयोग असंगत है।

संस्कृति-संगम : तुलसी-साहित्य में पाँच भिन्न जातियों के पात्रों का चित्रण हुआ है। देव, दानव, नर, वानर और तिर्यक्। उनकी अपनी संस्कृति है। किसी समाज की सौंदर्यमूलक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और दार्शनिक विचारधारा का द्योतक 'संस्कृति' शब्द मानव के संबंध में ही प्रयुक्त होता है। वानरों या पक्षियों की संस्कृति की चर्चा नहीं की जाती। परन्तु तुलसी के सुग्रीव और हनुमान् अथवा काकभुशुंडि और गरुड़ साधारण वानर या पक्षी मात्र नहीं हैं। उनमें विवेकशीलता और भक्तिमत्ता है। उनके संस्कार मनुष्यों की भाँति विकसित हैं। उन्हें छोड़ देने पर भी तुलसी ने देवताओं, राक्षसों और मनुष्यों की संस्कृतियों का समन्वित चित्रण करते हुए अंत में रामराज्य की स्थापना द्वारा मानव-संस्कृति की श्रेष्ठता दिखाकर मानवता की प्रतिष्ठा की है।

मानव-संस्कृति के भीतर भी समन्वय दृष्टिगोचर होता है। राजन्य-वर्ग, वन-पथ के जनसाधारण और कोल-किरातों की जीवन-पद्धति में भिन्नता है। उसके अनुरूप उन्होंने आचरण किया है। तुलसी ने राम के संबंध

५८—दोहावली, २५६, देखिए : भागवतपुराण, ५।१।१७-१८
५९—विनयपत्रिका, १३९।३-४, दोहावली, ५५९
६०—रामचरितमानस, ७।४३।२-३, और देखिए : २।५।२-३

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से उन सबका समन्वय किया है। अधिक महत्वपूर्ण बात है हिन्दू-संस्कृति के साथ मुस्लिम-संस्कृति का समन्वय। तुलसीदास सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति के दृढ़निष्ठ अनुयायी थे, किन्तु उनकी दृष्टि संकुचित नहीं थी। उन्होंने उदारता के साथ काव्यधर्म का निर्वाह किया है। राम की सेवा में प्रेषित विनयपत्रिका का विधान मुगल-सम्राट् के पास भेजी जाने वाली अरजी की रीति पर किया गया है। **उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए** अथवा **भइ बड़ि भीर भूप दरबारा** में दरबारी संस्कृति का प्रतिबिंब स्पष्ट है।[६१] तलवार आदि शस्त्रों के वर्णन तथा अरबी-फारसी-शब्दावली के प्रचुर प्रयोग में भी यह सांस्कृतिक समन्वय परिलक्ष्य है।

काव्य और मोक्षशास्त्र : समन्वय-साधक तुलसी की महत्तम् उपलब्धि काव्य और मोक्षशास्त्र के समन्वय में दिखायी देती है। काव्य के तीर्थराज में धर्म, दर्शन और भक्ति की यह त्रिवेणी अनुपमेय है। उसमें आनंद और मंगल का स्वांतःसुख और लोकहित का, अद्भुत समन्वय है। तुलसी ने कवियों के काव्यरस और भक्तों के भक्तिरस में अभेद स्थापित कर दिया है। उनका 'रामचरितमानस' काव्य-रसिकों की दृष्टि में श्रेष्ठ महाकाव्य है, धर्मबुद्धि जनसाधारण का महनीय धर्मग्रन्थ है, और विषयविमुख भगवद्-भक्तों के लिए भक्तिरस का अजस्र स्रोत है।

काव्य के मानदंड : भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के छः प्रमुख मानदंड निर्धारित किये गये हैं : रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और औचित्य। तुलसी ने इन सबका समन्वय किया है, सैद्धांतिक रूप में भी तथा प्रयोगात्मक रूप में भी।

भावपक्ष और कलापक्ष : काव्य-रचना की सफलता भावपक्ष और कलापक्ष के समुचित समन्वय में है। भाव-पक्ष के निर्बल होने पर ग्रंथ मनोरंजक तमाशा बन जाता है, और कला-पक्ष के निर्बल होने पर वस्तु-भंडार मात्र रह जाता है। तुलसी प्रतिभासंपन्न कवि थे। उनकी प्रज्ञा सारग्राहिणी थी। उन्होंने अपने युग में प्रचलित प्रमुख छंद-पद्धतियों (दोहा, दोहा-चौपाई, कवित्त, बरवै, गीत, सोहर) और विभिन्न काव्यरूपों (प्रबंध निबंध, मुक्तक) का सफल प्रयोग किया। 'रामचरितमानस' में महाकाव्य और पुराण का समन्वय अपने ढंग का एक ही है। लोक-भाषा और संस्कृत का समन्वय भी अवेक्षणीय है। पंडित लोग लोक-भाषा के विरुद्ध थे, जन-कल्याण जन-भाषा के माध्यम से ही संभव था। तुलसी ने प्रतिष्ठित जन-भाषाओं ब्रजी और अवधी में काव्य-रचना की, किन्तु संस्कृत-पदावली का

६१—कवितावली, ७।७९, रामचरितमानस, २।७६।३

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रचुर व्यवहार किया। उन्होंने प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन-शैली के सामंजस्य का निरंतर ध्यान रखा है। उनके काव्य में शब्द और अर्थ, भाव और भाषा, भाव और छंद, अलंकार और अलंकार्य का अपेक्षित समन्वय है।

स्वानुभूति और बाह्यार्थ : यद्यपि यह प्रश्न उठना नहीं चाहिए, फिर भी उठा दिया गया है कि तुलसी का काव्य स्वानुभूति-निरूपक है अथवा बाह्यार्थ-निरूपक, दूसरे शब्दों में विषयप्रधान है या विषयिप्रधान। चरित-वर्णन स्वभावतः बाह्यार्थ-निरूपक होता है। अतः 'रामचरितमानस' बाह्यार्थ निरूपक है। 'रामललानहछू', 'जानकीमंगल' और 'पार्वतीमंगल' भी इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। 'गीतावली' और 'कवितावली' में किया गया चरित-वर्णन भी ऐसा ही है। आत्मनिवेदन स्वभावतः स्वानुभूतिपरक होता है। इसलिए 'विनयपत्रिका' स्वानुभूति-निरूपक है। 'कवितावली' आदि के आत्मनिवेदनात्मक अंश भी इसी कोटि में आएँगे। इस प्रकार तुलसी के काव्य में स्वानुभूति और बाह्यार्थ-निरूपक दोनों का समन्वय है।

निष्कर्ष यह है कि उन्होंने काव्य, मोक्षशास्त्र और समाज की दृष्टि से सर्वतोमुख समन्वय-विधान किया। उनकी असाधारण सफलता, महत्ता और लोकप्रियता का बहुत कुछ श्रेय उनकी समन्वय-साधना को है। "तुलसी-दास के शब्दों में उनका भक्त रूप बहुत स्पष्ट हुआ है, पर वे समाज-सुधारक, लोक-नायक, कवि, पंडित और भविष्य-स्रष्टा भी थे। यह निर्णय करना कठिन है कि इनमें से उनका कौन-सा रूप अधिक आकर्षक और अधिक प्रभावशाली था। इन सब गुणों ने तुलसीदास में एक अपूर्व समता ला दी थी। इसी संतुलित प्रतिभा ने उत्तर-भारत को वह महान् साहित्य दिया, जो दुनिया के इतिहास में अपना प्रतिद्वन्दबोध नहीं जानता।"[६२]

६२–हिन्दी-साहित्य, पृ० २४१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पौरुष और प्रारब्ध

होइहिं सोइ जो राम रचि राखा—तुलसी

डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी

रावण द्वारा सीताहरण किया जा चुका है। लीला के लिए नर-शरीर धारण करने वाले राम दण्डकारण्य में विलाप करते हुए चले जा रहे हैं— **बिरह विकल नर इव रघुराई**। अगस्त्य के आश्रम से सती के साथ शिव भी कैलास की ओर जा रहे हैं। मार्ग में सती और शिव दोनों राम को देखते हैं। शिव की स्थिति यह है कि **कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी** किन्तु अनायास दर्शन हो जाने से उत्पन्न अत्यन्त प्रसन्न हुए और **जय सच्चिदानंद जगपावन** कहकर आगे बढ़े। सती संशयग्रस्त हो गईं। एक तरफ उनके मन में यह विकल्प कि यदि वे विष्णु ही हैं और देवताओं के कल्याण के लिए नर शरीर धारण किए हुए हैं—तो भी सर्वज्ञ तो हैं हीं—**खोजै सो कि अज्ञ इव नारी** ? दूसरी ओर यह कि शिव जगद्वंद्य हैं और उन्होंने भी जब "जगपावन" कहकर प्रणाम किया, तो उस सर्वज्ञ का वचन भी अन्यथा कैसे हो सकता है? सो, सती को **अस संशय मन भयेउ अपारा**। सती ने इस संशय को यद्यपि शिव से प्रकट नहीं किया, तथापि अंतर्यामी शिव ने सब समझ लिया और कहा कि नारी का स्वभाव ही है कि जहाँ संशय की गुंजाइश न हो, वहाँ भी संशय निकाल लेना। शिव ने बहुत समझाया, पर सती पर उस उपदेश का कोई असर न पड़ा। शिव ने भाँप लिया कि यहाँ हरि की माया का प्राबल्य है, अतः हँसे और कहा—

जौं तुम्हरे मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू।

पर परीक्षा लेने में विवेक और विचार की सहायता अवश्य लेना। सती के जाने के बाद शिव ने सोचा **मोरेहु कहे न संसय जाँही** लगता है, विधि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही विपरीत हो गया। निश्चय ही दच्छ सुता का कोई अकल्याण होने वाला है। क्या होनेवाला है, ऐसा तर्क-कुतर्क करना व्यर्थ है। इससे निपटने के लिए हरिनाम जप ही कर्तव्य है—

होइहिं सोइ जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावै साखा।

असल में भगवान् का चरित त्रिविध कहा गया है—चित्र, विचित्र और अति विचित्र। यह चरित अतिविचित्र है।

अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद विमोह बस, धरहिं हृदय कछु आन।।

अति विचित्र-चरित्र था यह, अतः शंकर जैसे सर्वज्ञ को भी इसका थाह-पता न लगा। इस चरित्र को परम सुजान एकमात्र भगवान ही जानता है अथवा **सो जानै जेहिं देहु जनाई।** सात्विक चरित्र 'चित्र', राजस चरित "विचित्र" और तामस चरित्र "अतिविचित्र" कहा गया है। विलाप यह ऐसा ही चरित है। इस संदर्भ में शिव जिस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, वह है—**होइहिं सोइ जो राम रचि राखा।**

इस निष्कर्ष से पाठक इस परिणाम पर पहुँचता है कि "विधि" अथवा उसके भी पीछे सक्रिय "हरि इच्छा" ही सब कुछ है। मनुष्य सर्वथा परतंत्र है, वह कुछ भी करने में स्वतंत्र नहीं है। उसके किये कुछ भी होने वाला नहीं है। गोस्वामी जी का यह निष्कर्ष किसी भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के लिए हितावह नहीं है। यह सिद्धान्त व्यक्ति को अकर्मण्य बना देता है, फलतः वह पतन की ओर अपने आप जाता है।

पर इसी "मानस" में अन्यत्र सेतु बंध का प्रसंग है, वहीं तुलसी लक्ष्मण के माध्यम से "विधि" या "दैव" की निन्दा करते हैं और "पौरुष" के लिए ललकारते हैं। पौरुष से, कुछ करने से ही अभीष्ट सिद्ध होगा—यह निष्कर्ष कर्ता की "स्वतंत्रता" घोषित करता है। लक्ष्मण कहते हैं—

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिय सिंधु करिअ मन रोषा।
कादर मन कह एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा।।

लक्ष्मण को राम का यह वचन '**करिय दैव जो होहि सहाई**—अच्छा नहीं लगा। विभीषण ने राम को यह मंत्र दिया था। यहाँ 'जो' दैव की अनुकूलता में संदेह का बोध कराता है, अतः जहाँ संदेह हो, उसका पक्ष ही क्यों लेना? दैव का सहारा कायर और आलसी लोग लेते हैं, कारण उनसे 'पुरुषार्थ' संभव नहीं है। राम ने भाई की बात मान ली और पुरुषार्थ का पक्ष लेने का आश्वासन दिया।

इन संदर्भों में एक तरफ शिव 'विधि' का वैपरीत्य देखकर, 'हरिइच्छा' की अनिवार्यता समझकर अकल्याण-निवारक कर्तव्य-पौरुष से विरत हो जाते

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं और पराजय स्वीकार कर हरिभजन में डूब जाते हैं, जबकि दूसरी ओर रघुवीर के विभीषण की मंत्रणा में, जो दैव-सहाय-परक है––संशय देखकर लक्ष्मण "पुरुषार्थ' का पक्ष ले रहे हैं और राम भी धैर्यपूर्वक उसी पक्ष के कार्यान्वयन की बात कर रहे हैं।

यहाँ एक विरोधाभास स्पष्ट उभरता है। जब यह तय है कि हरि ने सब कुछ पहले से ही रच रखा है, बाद में वही घटित होता है, भावी को कोई मिटा नहीं सकता, चाहे कुछ भी क्यों न किया जाय, तब पुरुष स्वतंत्र कहाँ है? उसकी इच्छा और चेष्टा की सार्थकता कहाँ है? वह जो चाहे कर सकता है; संभव कहाँ? और यदि ऐसा ही है तो 'पुरुषार्थ' का क्या महत्व? पाणिनि ने कहा––"स्वतंत्रः कर्ता" और व्याख्याकारों ने व्याख्या की कि स्वतंत्र वह है, जो अपनी इच्छा से किसी भी कार्य में प्रवृत्त हो सके और किसी भी कार्य से निवृत्त हो सके। पर यहाँ तो "इच्छा" पर ही प्रश्न है कि मनुष्य को 'इच्छास्वातंत्र्य, वासनास्वातंत्र्य' या 'प्रवृत्ति निवृत्ति स्वातंत्र्य' है या नहीं? नहीं, कर्मवाद मानता है––**बुद्धिः कर्मानुसारिणी।**

प्रकृति का सारा चक्र कर्म-प्रेरित है—अहंकार, बुद्धि, मन सब कुछ। फलतः प्रकृति से अहंभावापन्न बद्ध जीव की सारी क्रिया-प्रतिक्रिया पूर्व कर्मानुसार ही होती है। इसीलिये कहा गया––

सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः।

गोस्वामी जी ने भी इसी भाव को दोहराते हुए कहा है––

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता, निजकृत करम भोगु सब भ्राता।

* * *

कर्म प्रधान विस्व करि राखा, जो जस करै सो तस फल चाखा।

असल में यह उक्ति एक विशेष दृष्टिकोण के चिन्तक की है। भारतीय संस्कृति कर्मवाद में और तन्मूलक पुनर्जन्म में विश्वास रखती है। चाहे जैन हों, बौद्ध हों या ब्राह्मण––सभी पुनर्जन्म तथा कर्मप्रवाह की अनादिता स्वीकार करते हैं। जहाँ तक तुलसी का संबंध है, वे श्रुतिसम्मत वक्तव्य में आस्था रखते हैं, पर श्रुति-सम्मत-प्रस्थान भी अनेक हैं—द्वैतवादी, अद्वैतवादी। मुझे लगता है कि तुलसी का पक्षपात उस अद्वैत में है, जिसका पल्लवन आगमों में है। कारण, तुलसी अंततः 'हरिइच्छा' को प्रबल मानते हैं, वैसे वे यह भी कहते हैं—**सो सब सहिय जो दैव सहावा।** शांकर अद्वैत में परमतत्व निरीह है। इच्छा रहित है, लेकिन तुलसी का आराध्य इच्छा शक्ति सम्पन्न है। तभी वह लीला करता है, जो स्वयं अपना प्रयोजन

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आप हैं। दार्शनिक बारीकियों में अंतर होने पर भी "कर्मवाद" के विषय में प्राय: सबकी समान धारणा है कि 'कर्म' अनादि है, कर्म और जीव का संबंध अनादि है। जीव की समस्त प्रवृत्ति या निवृत्तिरूपा क्रिया पूर्ववर्ती कर्मविपाक के अनुसार ही घटित होती है। स्थूलकर्म अपना सूक्ष्म संस्कार छोड़ जाता है, जो 'संचित' होता रहता है। समय पाकर वही उभरता है और वही जीव के कर्तृत्व का नियामक बन जाता है—उसका स्वातंत्र्य मारा जाता है। इस प्रकार हम जो कुछ करते हैं, उसमें हमारा स्वातंत्र्य नहीं है। हम वही करते हैं, जो हमें करना पड़ता है। पर यदि यही सत्य है, तो मनुष्य के समक्ष क्या करणीय है और क्या अकरणीय है, यह सवाल ही नहीं होगा। चयन में वह स्वतंत्र कहाँ? 'बुद्धिःकर्मानुसारिणी'। फिर आचार-संहिता निरर्थक है—न्यायालयों की स्वयम् में अन्याय के मूर्त रूप हैं। और यदि मनुष्य स्वतंत्र है, तो भारतीय चिन्तन सम्मत 'कर्म-विपाक' की प्रक्रिया असत्य है।

इस पर से भारतीय दार्शनिक कहते हैं कि परमार्थतः "जीव" कर्ता हो या न हो, व्यवहारतः उसे 'कर्ता' मानना पड़ता है और 'कर्ता' वही होता है जो स्वतंत्र हो। पाणिनि ने भी कहा है—"स्वतंत्रःकर्ता"—अनुरूप या प्रतिरूप उपलब्धि अनुपलब्धि के निमित्त प्रवृत्ति या विवृत्ति रूप क्रिया करने में जो स्वतंत्र निर्णय ले सके, वही कर्ता है। स्वातंत्र्य विरोधी-वर्ग कहता है कि स्वतंत्र वह होता है, जिसे किसी क्रिया में अपने से भिन्न की अपेक्षा न हो। यहाँ तो जीवात्मा को बुद्धि आदि प्राकृत साधनों की अपेक्षा होती है। इस पर से स्वातंत्र्यवादी कहता है कि स्वतंत्र का मतलब यह नहीं कि उसे अन्य की अपेक्षा ही क्रियामात्र में न हो—अन्य कारकों की अपेक्षा तो होगी ही। अन्यथा कर्म-सापेक्ष सृष्टि करनेवाला परमात्मा भी परतंत्र माना जायगा। स्वतंत्र वह है, जो कारकों को प्रेरित करे और स्वयम् जो कारकों से प्रेरित न हो। जीव का स्वातंत्र्य ऐसा ही है। लेकिन ऐसा स्वातंत्र्य मानने से प्रकृत विवाद शान्त कहाँ होता है? क्या इन कारकों से काम लेने में वह स्वतंत्र है? यदि वह सर्वथा स्वतंत्र हो, तब तो अपना अनिष्ट संपादन क्यों करे? इष्ट सम्पादन ही क्यों न करे, जबकि इष्ट सम्पादनोपयोगी साधन उसे उपलब्ध है—इसी विवशता को तो तुलसी व्यक्त कर रहे हैं—

नाहिन कछु अवगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना।
ज्ञानभवन तनु दिएहु नाथ, सोउ पाप न प्रभु मैं जाना।

(विनय ११४)

स्वातंत्र्य ही होता, तो यह रोना क्यों होता?

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तिलक जी ने "स्वातंत्र्य" की दूसरी व्याख्या की है। उनका कहना है यह 'कर्म चक्र' प्राकृत है। गुणों का खेल है--'**गुणाःगुणेषुवर्तन्ते**--और उन्हें सक्रिय करता है--अनादि कर्म प्रवाह। पुरुष प्रकृति में अहम्भावापन्न होकर प्राकृत विकृतियों को अपना समझता है और कष्ट भोगता रहता है। प्राकृत कर्मप्रवाह में बंधी हुई आत्मा तड़फड़ाती रहती है और इससे मुक्ति पाना चाहती है। खुली हुई जगह की भाप कोई हरकत पैदा नहीं करती, पर वही भाप यदि बन्द हो जाय, तो ढक्कन को उठाकर फेंक देना चाहती है। इसी प्रकार कर्मबंधन में बद्ध आत्मा की स्वातंत्र्य-वाष्प भी ढक्कन से विद्रोह करती है। यह स्वातंत्र्य आत्मा का निःसीम स्वातंत्र्य है। "स्वतंत्रःकर्ता" वाला स्वातंत्र्य ससीम स्वातंत्र्य है। वह सापेक्ष स्वातंत्र्य है। यह स्वातंत्र्य कर्मचक्र को मुक्ति-अनुकूल्य की दिशा प्रदान करता है। कर्म की प्रेरकता अलग है और आत्मा की प्रेरकता अलग। दोनों परस्पर विरोधी हैं। शांकर अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से आत्मा तत्वतः अकर्ता है, पर व्यवहार की दृष्टि से उसमें आगन्तुक कर्तृत्व या प्रेरकता का व्यवहार होता है। यदि किसी तरह यह प्रेरकता एक बार आ गई, तो वह कर्म के नियमों से स्वतंत्र ही रहती है। स्पष्ट ही इंद्रियों को एक प्रेरणा वाह्य सृष्टि से मिलती है और एक आत्मा से मिलती है--दोनों में अंतर है। आत्मा का यह स्वातंत्र्य फिर भी निःसीम स्वातंत्र्य नहीं है--नैमित्तिक और सापेक्ष स्वातंत्र्य है। यह आत्मस्वातंत्र्य ही है, जो उसे मुक्ति की दिशा में ले जाता है--

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानभवसादयेत्।
आत्मैवात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

निष्कर्ष यह कि ब्रह्मसृष्टि (आत्मा) की स्वतंत्रता मुक्ति की ओर और जड़ सृष्टि की प्रेरकता बंधन की ओर ले जाती है। प्रयत्न तो करना अनिवार्य है। योगवासिष्ठ ने भी पौरुष का ही पक्ष लिया है। अनुभव-सिद्ध स्वातंत्र्य की उपपत्ति इसी तरह बैठती है।

भक्ति के लिए द्वैत स्वीकार करने वाले मानते हैं कि यह अनुकूल सामर्थ्य जीवात्मा को परमात्मा की कृपा से मिलती है--किन्तु ऋग्वेद में कहा है-- **न ऋते श्रान्तस्य सख्यायदेवाः।** देवता भी उसकी सहायता नहीं करते, जो क्रान्ति पर्यवसायी पौरुष नहीं करता।

आध्यात्मिक हों या अनाध्यात्मिक, वौद्ध हों या जैन, सभी 'साधन' को, पौरुष को मान्यता देते हैं। बिना पौरुष के कुछ भी संभव नहीं है।

थियासोफिस्टों की धारणा है कि हर 'प्राणी' की नियति है 'पूर्ण' होने की, और परमात्मा पहले से वह चित्र बना भी चुका है। फलतः वह

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होना ही है, पर यह जीव की स्वतंत्रता है कि पूर्णता के मनन को चाहे जिस ओर से उठाए और पूरा करे।

श्री अरविन्द ने भी इस पक्ष से विचार किया और कहा कि जब तक आत्मा किसी भी क्रिया में प्राकृत-उपकरणों (बुद्धि: अहंकार) की अपेक्षा करेगी, तब तक 'स्वाधीन' नहीं हो सकती। सच्ची स्वतंत्रता तभी प्राप्त होती है, जब इस अहंकार की तृप्ति करना बन्द कर दें, जब हम अहंकार के आसन से चिंतन और संकल्प करना बन्द कर दें और प्राकृत जीवभाव से ऊपर उठ जायें।

श्री रामकिंकर जी का मत है कि 'रामचरितमानस' का दृष्टिकोण एकांगी नहीं है, वह दोनों की सत्ता स्वीकार करता है। दोनों का क्षेत्र पृथक्-पृथक् है, पर पड़ोसी राज्य की भांति वे एक दूसरे को विजित करने के लिए आक्रमण-प्रत्याक्रमण करते रहते हैं। कभी पुरुषार्थ भाग्य की सीमारेखा छिन्न-भिन्न कर देता है, और कभी दैव पुरुषार्थ को तहस-नहस कर देता है। जब उसका प्रयास सफल होता है, तब वह पुरुषार्थ की जय ध्वनि करता है और जब शत-शत प्रयास असफल हो जाते हैं, तब भाग्य-देवता के समक्ष झुक जाता है। वास्तव में भारतीय संस्कृति सर्वाधिक पुरानी है। उसने काल की गति सर्वाधिक देखी है। विष्णु का सुदर्शन 'काल' का प्रतीक है। राम का कोदण्ड 'काल' ही है, जहाँ से निर्गत बाण की गति सीधी होकर भी निसंग की ओर मुड़ती है—**काल जासु कोदण्ड।** अर्थात् नये राष्ट्र उत्साह के समर्थक हैं। पौरुष के पक्षधर हैं, बूढ़ा भारत विजय-पराजय की चक्राकार गति पार करता रहा है। अतः वह पौरुष के साथ प्रारब्ध की भी बात करता है। काल की इस चक्राकार गति में जहाँ तक और 'नियति' का रहस्य है, वहीं दूसरी ओर पुरुषार्थ मनुष्य के स्वभाव में है। स्वतंत्रता के प्रति आकर्षण उसके रक्त की झंकार है। पुरुषार्थ इसी स्वतंत्रता का उद्घोष है। पराजय के क्षणों की 'नियति' स्वीकृति भी मनुष्य को निराशा से बचाती है और यह आश्वासन प्रदान करती है कि काल की इस चक्राकार गति में पराजय शाश्वत वस्तु नहीं है। अतः विजय की मनोदशा पुरुषार्थ को और पराजय की मनोदशा नियति को मान्यता दिलाती है। **"होइहि. . ."** ऐसी ही असफलता के क्षण की मनोविज्ञान सम्मत वाणी है। रहीम ने कहा—**रहिमन चुप ह्वै बैठिये देखि दिनन को फेर।** शिव के लाख समझाने पर भी सती का न मानना नियति की अपरिहार्यता ध्वनित करता है।

नियति की इस प्रबलता को देखकर मनुष्य जब झुंझला उठता है, तब मुंहफट व्यक्ति की भांति "कर्मसिद्धान्त" ही रास्ता निकाल देता है और कहता है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर्म प्रधान विस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ।

नियति का निर्माता भी व्यक्ति का कर्म ही होता है। बालि ने राम से छिपकर बाण मारने पर प्रश्न किया कि उन्होंने सुग्रीव और बालि में भेद क्यों किया? और भेद कियाही तो सामने आकर युद्ध क्यों नहीं किया? राम ने कहा--इसके लिए तुम्हारा कर्म ही उत्तरदायी है। पौरुष से तुमने विजय पाई, 'नियति' ने तुम्हें परास्त किया। न्यायाधीश दण्ड देता है, युद्ध नहीं करता। वृक्ष की आड़ में छिपकर बाण चलाने का प्रतीकात्मक तात्पर्य भी यही था। विनयपत्रिका में तुलसी ने 'कर्म' को तरु ही कहा है

संसार कान्तार अतिघोर गंभीरवन
गहन तरु कर्म सकुल मुरारी।

मतलब यह कि ईश्वर भी दण्ड-व्यवस्था कर्म को ही सामने रख कर करता है। यह नियति ही थी जो वाण के माध्यम से वृक्ष के पीछे से (कर्म के पीछे से) आकर उसकी विजय को पराजय में बदल देती है। बालि ने दूसरा प्रश्न किया—सुना है कि (बाण चालक) राम जिसके सामने रहते हैं, वह निष्कलुष हो जाता है। फिर अब पाप कहाँ, जो दण्ड दे रहे हो? उत्तर में राम का हाथ बालि के मस्तक पर करुणा-द्रवित हो फिरने लगता है—

बालि सीस परसेउ निज पानी।

* * *

अचल करहुँ तन राखऊं प्राना।

निष्कर्ष यह कि 'मानस' भी पौरुष और प्रारब्ध दोनों की सत्ता स्वीकार करता है। मानव कर्म करने में स्वतंत्र, फलतः पौरुषापेक्षी है और कर्म भोगने में परतंत्र, फलतः नियति का मुखापेक्षी है।●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी का प्रतिपक्ष | डॉ० युगेश्वर

मध्यकाल में तुलसीदास ने एक प्रतिपक्ष की स्थापना की। राजनीति में नहीं। साहित्य में। साहित्य, जो राजनीति को प्रेरित करता है। समाज को समाज से ऊपर उठाता है। उनका मानस प्रतिपक्ष की कहानी कहता है। प्रतिपक्ष क्यों बनता है? प्रतिपक्ष कैसा होना चाहिए? प्रतिपक्ष का आचरण कैसा हो? भाषा कैसी हो? तुलसी का काल अकबर बादशाह का काल था। अकबर उदार बादशाहों में से था। किन्तु था बादशाह। प्रजा का शोषण उसका काम था। देश की आर्थिक दशा खराब थी। उत्पादन का मुख्य केन्द्र किसान परेशान था। उसमें भयंकर बेकारी और बेरोजगारी थी। अकबर का शासन कैसा था? प्रजा की क्या स्थिति थी? इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्री क्या सोचते हैं, यह महत्वहीन है। आज के शासन के बारे में भी भिन्न सोचने वाले लोग हैं। घोर अन्यायी शासन भी कुछ बुद्धिजीवियों को पालता है। शासक-बुद्धिजीवी को जनता की पीड़ा प्रायः नहीं दीखती। किन्तु भक्त तुलसी ने क्या देखा, यह हमारे लिये अधिक महत्व रखता है। तुलसी किसी राजा के चाकर नहीं थे। दरबारी नहीं थे। वे दरबारी संस्कृति के विरोधी थे।

ऐसे तुलसी ने देखा। प्रजा त्रस्त है। अनाचार बढ़ गया है। जिस काशी में वे रहते थे, उसमें दिन दहाड़े डाके पड़ रहे थे। रातें चोरों से भरी थीं। नागरिक जीवन परेशान था। लोग अरक्षा से आतंकित थे। किन्तु राज्य अपराधियों के पकड़ने में असमर्थ था। निरपराध दंडित किये जाते थे। (दोहावली २३९, ४०, ४१) बार-बार अकाल पड़ रहा था। लोग दाने-दाने के लिये तरस रहे थे। स्त्रियों की इज्जत सुरक्षित नहीं थी। हिंसा का बोलबाला था। बेकारी बढ़ गयी थी। रोजगार-धंधे खतम हो रहे थे। भीख मिलना भी कठिन हो गया था। दुष्ट लोग शासन का सहारा लेकर अनीति कर रहे थे। बादशाह की अपेक्षा, बादशाह के कर्मचारी अधिक दुख दे रहे थे। नीति

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धर्म का नामोनिशान मिट गया था। लोग बेटे-बेटियों को बेच रहे थे। दरिद्रतारूपी रावण ने सबको दबा लिया था। राज-समाज नित्य नया कुसाज सजा रहा था। नयी-नयी कुचालें कल्पित की जा रही थीं। (दे० विनय और कवित्त रामायण)।

साधु तुलसी के लिये ये स्थितियाँ असह्य थीं। उन्होंने प्रतिपक्ष की भूमिका आरम्भ की। प्रतिपक्ष का मानस तैयार किया। उनके राम परमब्रह्म थे। जनजन में रमे थे। जन का कष्ट राम का कष्ट था। **'विश्वरूप रघुवंशमणि'** कष्ट भोग रहे थे। भक्ति-लोक निरपेक्षता नहीं, लोक-कल्याण का मार्ग है। तुलसी ने शासन को ललकारा। शासन की भ्रष्टता स्वीकार नहीं की जायगी। भक्त अपने को शुद्ध करता है। समाज को शुद्ध करता है। वहाँ अशुद्ध और अपवित्र के लिये स्थान नहीं है। लोक-सत्ता में विश्वास प्रतिपक्ष की पहली शर्त है। लोक महान है। जनता ही सब कुछ है। तुलसी ने पूरे जग को 'सिया-राम मय' माना। तुलसी संत थे। परदुखकातरता संत की विशेषता है। **पर दुख द्रवे सो संत पुनीता।** वैष्णव पराई पीड़ा की अनुभूति करता है। अपनी पीड़ा भगवान को समर्पित कर देता है। निजी पीड़ा की अनुभूति चित्त को आत्मार्थी बनाती है। पर-पीड़ा की अनुभूति से चित्त-वृत्तियों का प्रसादन होता है। प्रसार और विकास होता है। पर पीड़ा को समझना विकास का मार्ग है। मानवतावादी मार्ग है। उर्ध्वगामी पक्ष है। इससे मनुष्य ऊपर उठता है। उठता जाता है। पहले भक्त बनता है और उठते-उठते भगवान बन जाता है। भगवत्स्वरूप प्राप्त कर लेता है। भक्त और भगवान का भेद मिट जाता है। संत भगवंत में अंतर नहीं।

अब सवाल बना कि प्रतिपक्ष क्यों बना? इसलिये कि समाज में अन्याय, अनाचार और शोषण थे। किन्तु प्रतिपक्ष के बनने के लिये उतना ही पर्याप्त नहीं है। अन्याय को बर्दाश्त न करने की चेतना होनी चाहिये। इसके लिए आवश्यक है, शोषकवर्ग से न जुड़ कर जनता से जुड़ना। तुलसी जनता-जनार्दन से जुड़े थे। इसलिये वे अन्याय को देख सके। केवल अपने स्वार्थों से जुड़ते तो अन्यायी के साथ होते। शासकों के गीत गाते। जीवन में पक्ष और प्रतिपक्ष साथ-साथ है। सबको सीताराम मय मानना सत्पक्ष है। गो-गोचर मन की पहुंच के भीतर जो कुछ है, वह माया है। माया त्याज्य है। यह जीवन का असत् पक्ष है। तुलसी इसी असत् से लड़ते हैं। यह असत् शासक के पास है। यह असत् शासित के भीतर भी है। शासक अन्याय छोड़े। शासित अन्याय को बर्दाश्त न करे। अपने को सुधारे। शासक को सुधारे। सुधार की आवश्यकता दोनों को है। शासित को भी। शासक को भी। एकतरफा सुधार नहीं चलेगा। तुलसी कहते हैं, सुधारने वालों को पहले स्वयं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुधरना होगा। पूंजीपतियों के भोग को खतम करने के लिये पहले अपना भोग छोड़ो। सर्वहारा बनो। सब कुछ ईश्वर को समर्पित कर दो। क्योंकि ईश्वर ट्रष्टी है। समस्त सम्पत्ति का मालिक है। फल वही देता है। मनुष्य तो केवल श्रम करता है। सच्चे अर्थों में श्रमिक बनो। दृष्टि श्रम पर रखो। ईश्वर ने तुम्हें काम सौंपा है। तुम ईश्वर के दास हो। क्रीतदास। ईश्वर पर्यायी समाज तुम्हारा मालिक है। मालिक जो दे, उसे लेकर संतुष्ट रहो। हाँ, यह भी देखो कि मालिक अनाचार तो नहीं कर रहा है। किन्तु जो मालिक ईश्वर है, यह अनाचार और अन्याय करेगा कैसे? जो अन्याय और अनाचार करता है, वह अपनी जगह से गिरा है। उस पर माया हावी है। कहीं उसे शैतान कहा गया है। वह असुर हो गया। असुर जो सुर नहीं है। सुर का का अर्थ है शक्ति। ताकत। असुरों में ताकत नहीं होती। आसुरी ताकत निर्बलों की ताकत है। बलवान की ताकत आसुरी नहीं। दैवी होती है। रावण की ताकत आसुरी थी। राम की दैवी। सुर की ताकत जीतती है। आसुरी का नाश होता है—**जैहै कुलसमेत परिवारा।**

रावण वैभव और विलासिता है। आसुरी शक्ति से दुनिया को जीते है। सोने की लंका बसायी है। सबको जीतने वाला रावण अपने भाई को न जीत सका। स्त्री को न जीत सका। और तो और, स्वयं अपने को न जीत सका। दुश्मन तो घर में बैठा है। भाई और स्त्री तो उसके बाह्य प्रतिविम्ब हैं। राम ने भाई, पत्नी, मां सबको जीता था। कैकेयी राम विरोधी लगती है। किन्तु उसने अयश की पिटारी लेकर राम के दैवी मार्ग को प्रशस्त किया। कैकेयी न होती तो राम क्या होते? न रावण-वध होता। न ऋषियों का उद्धार। युद्ध में कई प्रकार के सैनिक होते हैं। इसीलिये राम कैकेयी से भी घृणा नहीं करते थे। बल्कि कैकेयी के वरदानों को लोक-कल्याण की दृष्टि से शुभ मानते हैं। प्रतिपक्ष शासक दल से बड़ी तबीयत का होता है। उसे एक साथ ही ध्वंस और निर्माण दोनों करना है। दोनों समान ढंग से महत्वपूर्ण हैं। शासक जो भी करता है, संचित साधनों द्वारा करता है। प्रतिपक्ष को स्वयं साधन जुटाने पड़ते हैं। जन-आन्दोलनों में उसे बार-बार अपनी योग्यता की परीक्षा देनी होती है। शासक तो परीक्षा में उत्तीर्ण है। ऐसी मान्यता है। चाहे वह कितना ही कमजोर क्यों न हो। किन्तु प्रतिपक्ष स्थापित नहीं होता। वह स्थापना के लिये संघर्ष करता है। राम बार-बार संघर्ष करते हैं। सुग्रीव जैसा भगोड़ा भी मित्र बनाने के पहले उनकी परीक्षा लेता है। राम के कैम्प में शरण लिये विभीषण भी राम की परीक्षा लेता है। राम सबमें उत्तीर्ण होते हैं।

श्रेष्ठ प्रतिपक्ष अपना भिन्न हथियार रखता है। रावण के पास रथ है। राम विरथी हैं। रावण भारी हथियारों वाला है। राम केवल वाणों से लड़ते

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं। पेड़ और पहाड़ उखाड़ कर युद्ध करते हैं। रावण की सेना में कुंभकर्ण, मेघनाद, अतिकाय, अकंपन आदि हैं। इधर बानर-भालू। राम इन्द्रिय-निग्रही हैं। घर आयी स्त्री को वापस कर देते हैं। एक पत्नी-व्रत का निग्रह है। रावण राम के घर से स्त्री को चुरा लेता है। इन्द्रिय निग्रह के अभाव में सीता को धमकाता है। लोभ, मोह, भय की भावना जगाता है। अच्छे प्रतिपक्ष में इन्द्रिय निग्रह होना चाहिये। अपरिग्रह उसका महान गुण है। बनवासी राम स्वयं निर्वासित हैं। किन्तु दो निर्वासितों को राज्य देते हैं। चाहते तो राज्यों को जीत कर रावण से लड़ाई लड़ते। किन्तु नहीं; राज्य को राज्य से नहीं लड़ाते हैं। राज्य से जनता को लड़ाते हैं। एक तरफ है राज्य की संगठित सैनिक शक्ति। दूसरी ओर है जनशक्ति, जनता का संगठन। राम का जन-संगठन जीतता है। जनता जीतती है। **ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे, भये समर सागर कह बेरे।** शासक वर्ग माया फैलाता है। अनेक छल-बल दिखाता है। प्रतिपक्ष सीधी लड़ाई में विश्वास करता है। माया का नाश करता है। माया काटता है। राम की लड़ाई में अनैतिकता और माया के लिये स्थान नहीं है। माया तो राम के दूर रहने पर बढ़ती है। प्रतिपक्षी तुलसी की स्वराज्य कल्पना आज के प्रतिपक्षी से भिन्न स्तर की है। तुलसी स्वराज्य को सुराज्य भी बनाना चाहते हैं। वे अन्यायी शासन के हिस्सेदार नहीं हैं। आज का प्रतिपक्ष अन्यायी शासन का एक अंग है। वह केवल शासन की त्रुटियाँ प्रकाशित करता है। मौका मिलते ही स्वयं शासक बन, पुराने शासन को दुहराने लगता है। तुलसी पुराने शासन को दुहराने में विश्वास नहीं करते। वे केवल त्रुटियाँ बताने वाले प्रतिपक्ष नहीं हैं। वे आमूल-चूल परिवर्तन चाहते हैं। क्रान्तिकारी परिवर्तन। इसके लिये वे पुराने शासन को बिलकुल समाप्त कर देने में विश्वास करते हैं। तुलसी की निर्ममता केवल अन्यायी शासन को समाप्त करने में है। अन्यायी को तो राम निज धाम देते हैं। क्योंकि ये अन्याय को बुरा मानते हैं। अन्यायी को नहीं। अन्याय निकलते ही अन्यायी पवित्र हो जाता है। उसकी स्थिति बदल जाती है। सत्य की लड़ाई का प्रभाव रावण पर भी पड़ता है। किन्तु वह स्वयं अपने में परिवर्तन करने में असमर्थ था। प्रतिपक्ष अन्यायी को सुधरने का मौका देता है। किन्तु न सुधरे तो वह अहिंसा के नाम बैठता नहीं। आवश्यक सुधार करता है। सोने की लंका को जलाकर पुनः उसकी प्रतिष्ठा करता है। जलाना और प्रतिष्ठा, प्रतिपक्ष के दो धर्म हैं।

सत्य की संभावना हर जाति-धर्म और देश-काल में है। आवश्यकता है, भीतर के राम को जगाने की। राम की दृढ़ता रावणत्व को समाप्त कर देती है। रावणत्व में बारबार जी-जाने की संभावना है। अतः सजगतापूर्वक राम को जीवित रखना होगा। तुलसी के राम जीवित हैं। राम के अभाव में रावण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फिर जी सकता है। प्रतिपक्ष को बराबर सजग रहना होगा। उसे मुक्ति नहीं चाहिये। चाहिये, केवल भक्ति। ताकि वह समाज की सेवा करता रहे। समाज सेवा है। प्रतिपक्ष सेवक है। मुक्ति का अर्थ है, अन्याय से मुक्ति। अनाचार से मुक्ति। किन्तु संघर्ष से मुक्ति नहीं चाहिये। इसीलिये तुलसी केवल एक चीज चाहते हैं। **जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन।** राम से अतिरिक्त और कौन काम? काम को तो तुलसी मानस के आरम्भ होते ही जला देते हैं। जला काम शक्ति बन जाता है। शासक काम और भोग को शासन का आधार बनाता है। तुलसी काम को इसलिये जलाते हैं कि वह तपस्या भंग करता है। शासक अपने विरोधी को साम, दाम, काम से जीतने की कोशिश करता है। तुलसी इसके लिये अवसर ही नहीं देते।

तुलसी के प्रतिपक्ष में आत्म-विश्वास गहरा है। अन्याय मिटेगा। अन्यायी राज्य का नाश होगा। एक रावण मिटा। दूसरे रावण भी मिटेंगे। दुनिया रावण-मुक्त होगी। कौरव सौ भाई थे। वे भी गये।[1] यहाँ 'सहित समाज' शव्द ध्यान देने योग्य है। अन्यायी का ही नाश न होगा, उसके समर्थकों का भी नाश होगा। पूरे वर्ग की समाप्ति होगी। प्रतिपक्ष कष्ट से घवड़ाता नहीं। उसे जंगलों की खाक छाननी पड़ती है। खाक छानकर ही वह जन नेता बनता है। जनता के साथ जीकर जन-कल्याण करता है। अच्छा प्रतिपक्ष अपनी सुविधायें छोड़कर जनता की गरीबी की अनुभूति करता है। ऐसा ही प्रतिपक्ष वशिष्ट और केवट दोनों में प्रिय होता है। भीलनी के जूठे वेर खाता है, किन्तु सुग्रीव के राजमहल का निमंत्रण ठुकरा देता है—**दुर्योधन के मेवा त्यागे साग विदुर के खाये।** यद्यपि सुग्रीव उसी का निर्माण है। फिर भी वह जनता है। शासन शासक को विलासी बना देता है। इस विलासिता को दूर रहकर ही रोका जा सकता है। चौदह वर्षों में राम राजमहल-राजधानी तो क्या, गाँव भी नहीं जाना चाहते। नहीं गये। यह राम को पिता के आदेश की अपेक्षा आंतरिक प्रतिज्ञा अधिक थी। केवल बाह्य आदेश का पालन करने वाले में छल होता है। वह तर्क के सहारे राजधानी में चला जाता। किन्तु राम राजधानी में न जाने का निश्चय आत्म-नियंत्रण के रूप में स्वीकार करते हैं। यह राम-राज्य की तैयारी थी। जंगल में घूमनेवाले राम ने ही नये रामराज्य की स्थापना की। मात्र अयोध्या के राम रामराज्य की स्थापना कर पाते, इसमें संदेह है। उनका राज्य परंपरित होता। प्रवाह पतित होता। नवीन के लिये विद्रोह

१—राज करत बिन काज ही करहि कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज।
—दोहा ४१६ ४१७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और कष्ट सहन आवश्यक है। दशरथ की राज व्यवस्था से भिन्न बनाने के लिये राम भिन्न प्रकार के लोगों से मिले। उनके बीच में निवास किया। वैसी जीवन-पद्धति को आत्मसात किया।

तुलसी ने रावण की मात्र आलोचना ही नहीं की। उसे समाप्त कर दिया। उन्होंने इंद्र को भी नहीं छोड़ा। इन्द्र रावण जैसा नहीं है। रावण असुरों का राजा है। इन्द्र सुरों का। रावण अन्याय का प्रतीक है। और इन्द्र सुर शासन का। सुर आज का सामंतवर्ग है। इसका दिमाग भी जन विरोधी है। उसकी प्रवृत्ति कुत्तों जैसी है--**सरिस स्वान मघवान जुवानू**। इन्द्र जैसा बादशाह जनता की सूखी हड्डियाँ छीन रहा है—

सूख हाड़ ले भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेउ जनि जान जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज।।

इनका सुर सामंत भी नीच है। उनका आसन ऊँचा है, किन्तु कर्तव्य नीचा है--**ऊँच निवास नीच करतूती**। वे स्वार्थी हैं। मलिन मन हैं। इन्द्रिय-सुख के अधीन हैं। विषयी और भोगी हैं। तुलसी आसुरी सभ्यता वाले विदेशी रावणी-सत्ता को तो समाप्त ही कर देते हैं। किन्तु वे देशी सामंत-सत्ता को भी वर्दाश्त नहीं करते। सुर देशी सामंत है। जो भोगी और विलासी हैं। उनके राज्य को भी बदलना है। राम के राज्य का अर्थ है—जनता का राज्य। भोग के स्थान पर सबके सुख और समानता का राज्य। विषमता की समाप्ति और समता की स्थापना, रामराज्य की मुख्य विशेषता है। पहली शर्त है। रामराज्य के अतिरिक्त सभी राज्य विषमता-मूलक हैं। जन-विरोधी हैं। तुलसी संपूर्ण समता-मूलक समाज के लिये एक संगठित प्रतिपक्ष की स्थापना करते हैं। उनके प्रतिपक्ष का आचरण पवित्र है। आचरण की पवित्रता उसकी मुख्य विशेषता है—

सूधे मग सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति।।

जहाँ सब सीधा है, वहाँ भाषा ही क्यों खराब हो। प्रतिपक्ष की भाषा में संयम किन्तु शक्ति होनी चाहिये। गाली-गलोज का सर्वथा अभाव हो, किन्तु आतंक समाप्ति की क्षमता भी हो। भाषा क्रिया का अंग है। कभी-कभी बोली से, बहुत से काम बन जाते हैं। अतः बोली में वाक्-चातुर्य भी आवश्यक है। राम, लक्ष्मण, हनुमान, अंगद का वाक्‌चातुर्य देखा जा सकता है। सूधा का अर्थ सपाट नहीं; प्रपंच मुक्त है। झूठ और धोखा रहित है। भक्तों की भाषा में छल नहीं, निष्ठा का बल है। मानस में रामराज्य की स्थापना शैडो कैबिनेट सा है नहीं, शैडो कैबिनेट उसका एक रूप है। असल में वह नवीन मानव-राज्य का प्रारूप है। अभिजन के बारे में तुलसी की दृष्टि विशेष प्रकार की है। वे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिजन की उपेक्षा करते ह। हँसी उड़ाते हैं। किन्तु निरादर नहीं करते। इसलिये कि किसी भी समाज में अभिजन की भूमिका को इनकार नहीं किया जा सकता। सुग्रीव और विभीषण अभिजन ही थे। देवता की भूमिका अभिजन जैसी है। ये जीत पर फूल बरसाते हैं। किन्तु साथ मिलकर लड़ते नहीं। लड़ते हैं बानर-भालू ही। इन्द्र भी अपना रथ तब भेजते हैं, जब जीत सुनिश्चित हो जाती है। तुलसी स्पष्ट ही देवों को स्वार्थी कहते हैं। फिर भी एक बात स्पष्ट है कि प्रतिपक्ष को कहीं न कहीं अभिजन से समझौता करना पड़ता है। हाँ, प्रतिपक्ष को अभिजन की भूमिका के बारे में पूर्णतः सावधान रहना चाहिये।

प्रतिपक्ष की विशेषता है कि स्थापित सत्ता की शक्ति का खोखलापन जनता को बताये। जनता में उसका रोब समाप्त हो। जनता में सत्ता परिवर्तन की इच्छा जगे। यह इच्छा तभी जगेगी, जब जनता में आत्मविश्वास पैदा हो। आत्मविश्वास के साथ ही सत्ता की शक्ति समाप्ति का विश्वास पैदा हो। इसी-लिये तुलसीदास बराबर अपनी जनता को राजाओं के राजा से जोड़ते हैं। अपने चरित्र को शासकी चरित्र से ऊँचा रखते हैं। ताकि जनता को नेतृत्व में दृढ़ आस्था पैदा हो सके। तुलसी ने देखा, '**राज समाज बड़ोई छली**। यह राज-सामज साम, दाम, भेद कुछ नहीं जानता, केवल कराल दंड से काम ले रहा है। राजे केवल टैक्स वसूलना चाहते हैं। जनता का कल्याण नहीं करते। राज मरी जनता को और मार रहा है। वे भयानक स्वार्थी हैं। विचार का बिलकुल अभाव है। **मुए मार सुविचार हत, स्वारथ साधन एह**। शासक सिंह होने का स्वांग मात्र भरता है, किन्तु उसका व्यवहार कुत्तों जैसा है। बाहरी शत्रुओं के सामने दुम हिलाता है। अपनी जनता पर गुर्राता है—**सारदूल को स्वांग करि, कूकर की करतूति**। तुलसी ने सिंह और ग्राम-सिह के अन्तर पर अच्छा प्रकाश डाला है। तुलसी को मालूम है, अन्यायी राजा का पतन अवश्यं-भावी है। रावण और कौरवों जैसा उनका हाल होगा। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महाकवि तुलसीदास और भारतीय साहित्य

डॉ० प्रभाकर माचवे

महाकवि तुलसीदास के सम्बन्ध में गये चार वर्षों में अनेक लेख और ग्रन्थ हिन्दी में और अन्य भारतीय भाषाओं में लिखे गये हैं। उनकी पूरी सूची बनाने से ही एक नया ग्रन्थ बन सकता है। मैंने वह सब साहित्य पढ़ा हो, ऐसा मेरा दावा नहीं है। पर बहुत सी सामग्री मेरी दृष्टि से गुजरी है। कुछ तो प्राध्यापकीय लेक्चरों के नोटों की तरह हैं, जिनमें चर्वित-चर्वण अधिक है। मौलिक चिंतन बहुत कम हो पाया है। मेरी दृष्टि में तुलसी-विषयक समीक्षा-ग्रंथों में तीन विदेशियों का योगदान सर्वाधिक है, जिनके उल्लेख से मैं यह विहंगम सर्वेक्षण प्रस्तुत कर रहा हूँ। लेनिनग्राद् विश्वविद्यालय के स्वर्गीय अकादेमिशियन अलैक्सान्द्र बारान्निखोव, जिन्होंने तुलसी रामायण का समच्छन्द अनुवाद रूसी भाषा में प्रस्तुत किया, उनकी 'मानस की रूसी भूमिका' पहली महत्वपूर्ण कृति है, जिसने मुझे आकृष्ट किया। इसके दो हिन्दी अनुवाद उपलब्ध हैं---'मानस की रूसी भूमिका' (केसरीनारायण शुक्ल) तथा 'रूसी रामायण की भूमिका' (वी० राजेन्द्र ऋषि)।

दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति है कु. शार्लोत् वोदविल की फरांसीसी में लिखी गई तुलसी के अध्यात्मिक स्रोतों पर शोध-पुस्तक। इसका अनुवाद अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी से प्रकाशित है, और अनुवादक हैं पैरिस-स्थित डॉ० बलवीर। अध्यात्म-रामायण और तुलसी के रामचरितमानस का इसमें तुलनात्मक विवेचन है। यह दर्शनशास्त्र और साहित्यशास्त्र की अद्‌भुत् गवेषणापूर्ण पुस्तक है।

तीसरी पुस्तक डॉ० कामिल बुल्के की 'रामकथा का विकास' है, जो मूल हिन्दी में है। और उसकी तुलना में और कोई पुस्तक इतनी संपूर्ण नहीं है। यद्यपि इलाहाबाद विश्वविद्यालय का यह डी. लिट् का शोधग्रंथ है, जिसका अब सुधरा हुआ पुनर्संशोधित संस्करण भी उपलब्ध है। तथापि उसके लेखक को हम विदेशी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किस तरह से कहें ? जन्मना चाहें वे बेल्जियन और जूसुइट पादरी हों, फिर भी उनके कोश क्षेत्र में और तुलसी के सन्दर्भ में शोधकार्य के अवदान से वे हिन्दी के अनन्य भक्त पूर्णतः भारतीय मित्र हैं।

इनके अलावा कई और पुस्तकें हैं जैसे ग्रीन्ज की मानस व्याकरण जैसी उन्नीसवीं शती की रचना। और अनेक लेख उनपर ग्रियर्सन और रामचरितमानस के तीन अंग्रेजी अनुवादक हिल, ग्रादर्ज, एटकिन्स् की भूमिकाएँ और लेखों में प्राप्य हैं। इटालवी टेसीट्टेरी और फरांसीसी गार्सा द तासी का भी कार्य कैसे भुलाया जा सकता है। तुलसी सम्बन्धी यह सारा यौरपीय शोधकार्य उन्नीसवीं सदी से चला आ रहा है, जो बीसवीं सदी तक परम्परित है। चाहे कई भारतीय अर्द्धांग्ल विद्वान् उस सारे महान कार्य से अपरिचित हों।

भारत में पूर्वांचल में असमिया भाषा में माधव कन्दली की रामायण मिलती है। १४०० ईस्वी के करीब वह लिखी गई। उसके सिर्फ पाँच काण्ड उपलब्ध हैं। दो लुप्त हो चुके थे। उनकी पूर्ति आसाम के महान् संत शंकरदेव (१४४९-१५६८) ने की। उत्तरकाण्ड स्वयम् लिखा और आदि काण्ड लिखवाया अपने शिष्य माधवदेव कायस्थ से। यह रामायण वाल्मीकि का ही अनुसरण करती है। बाँग्ला रामायण के रचनाकार कृतिवास फुलिया गाँव में पन्द्रहवीं सदी में जनमे। स्वाभिमानी ब्राह्मण थे। किसी गौड़ेश्वर ने पुरस्कार देना चाहा तो उन्होंने नहीं लिया। गायक कथकों ने इस रामायण में कई प्रसंग अपने मन से जोड़े। वाचिक परम्परा चलती गई। इन अवांतर प्रसंगों को 'रंगचीया' कहते हैं। श्रीरामपुर के मिशनरियों ने जयगोपाल तर्कालंकार से इस बाँग्ला रामायण का प्रथम संस्करण प्रकाशित कराया। पहले में मूल पाठ ठीक था। वह अब उपलब्ध नहीं। बाद में उसमें अनेक प्रक्षेप जोड़े गये। ओड़िया रामायण के लेखक बलरामदास १४७०-८० के करीब हुए ; उन्होंने रामायण १५१० ईस्वी में लिखी। वे शूद्रजातीय थे। जगन्नाथ दास के परम भक्त थे। उन्होंने मूल कथा को छोड़कर अन्य कई रोचक विवरण दिये हैं। डॉ० रमानाथ त्रिपाठी ने इन तीन रामायणों पर हिन्दी में शोध की है।

द्राविड़ भाषाओं में सबसे पुरानी रामायण कम्बन् की है, जो ग्यारहवीं शती में रची गई। इसका अनुवाद डॉ० न० वि० राजगोपालन ने हिन्दी में किया है। इस पर वाल्मीकि के अलावा 'जानकीहरण' काव्य का बड़ा प्रभाव है। ओट्टकूतन का उत्तरकांड इसमें जोड़ा गया है। तेलुगु रामायण बारहवीं सदी की द्विपद रामायण है। रंगनाथ रामायण में यह सब दिया गया है, जो वाल्मीकि के उदीच्य पाठ में हैं। इस रामायण का अनुवाद भी हिन्दी में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से छपा है। भास्कर रामायण, मोल्ला नामक कुम्हारिन की रची रामायण तेलुगु भी प्रचलित है। कन्नड़ में ग्यारहवीं शती से जैन रामायण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रचलित थी। सोलहवीं शती में तोरवे रामायण लोकप्रिय हुई। इसमें वाल्मीकि के दाक्षिणात्य पाठ का अनुकरण है। आधुनिक युग में कु० वे० पुट्टप्पा ने 'श्री रामाभयदर्शनम्' महाकाव्य लिखकर रामकथा पर अरविन्द दर्शन का अरोपण किया है। वैसे वह अध्यात्म रामायण पर आधारित है। मलयालम में 'रामचरितम्' और रामकथप्पाट्टु' में वाल्मीकि का ही अनुकरण है। बाद में चौदहवीं शती में कण्णश्श रामायण की रचना हुई, जो वाल्मीकि का ही कन्नड़ अनुवाद है।

भारत के पश्चिम में गुजराती में चौदहवीं शती में 'रामलीला ना पदों', भालण कवि का 'रामविवाह' (१५ वीं शती), मंत्री कर्मण का सीताहरण, लावण्यसमय का रावण-मन्दोदरी संवाद (१६ वीं सदी) आदि थे ही। पर उन्नीसवीं सदी का गिरिधरदास की रामायण सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। मराठी में सोलहवीं सदी के एकनाथ की 'भावार्थ रामायण' एक अत्यंत श्रेष्ठ साहित्यिक रचना है, जिसका हिन्दी अनुवाद अभी नहीं हुआ है। इसमें योगवासिष्ठ के कई श्लोकों को उद्धृत किया है। कश्मीरी की प्रकाशराम कुरिगामी की रामायण बहुत बाद की है। पंजाबी में सोढ़ी मेहरबान की रामायण भारतीय भाषाओं की रामायणों में सबसे आधुनिकतम है।

उर्दू और फारसी में भी रामायणें लिखी गईं :—

रामायण मेहर, लेखक—सूरजनारायण 'मेहर'
रामायण खुश्तर, लेखक—जगन्नाथ 'खुश्तर' (१८६४)
रामायण मंजूम, ले०—शंकरदयाल 'फर्हत'
रामायण बहार, ले०—बाँकेबिहारीलाल 'बहार'

अलबदायूनी ने १५८४-१५८९ में वाल्मीकि रामायण का फारसी अनुवाद अकबर बादशाह के कहने पर कराया। जहाँगीर के समय, तुलसी रामायण का फारसी अनुवाद गिरिधर दास ने संक्षेप में पद्य में किया। मुल्ला मसीह का मसीही रामायण (५००० छंद), रामायण फैजी, गोपालकृत तर्जुमा-इ-रामायण (१७ वीं शती), बेदिल चंद्रभान का बाल्मीकि रामायण अनुवाद औरंगजेब के समय का है। लाला अमरसिंह का रामायण अमर प्रकाश १७०५ का है। अमानत राय का वाल्मीकि रामायण पद्यानुवाद १७५४ की रचना है।

यह सब भारतीय भाषाओं में रामायण-कथा के विस्तार की चर्चा करने का हेतु यह है कि हिन्दी में कुछ भाषाओं की रामायणों का तुलसी रामायण के साथ तुलनात्मक अध्ययन शोध-विषय बना है। परन्तु सब भाषाओं में ऐसा नहीं हो सका है। कोई व्यवस्थित योजना ऐसी नहीं बनी कि तुलसी रामायण के सारी भारतीय भाषाओं में—जिनमें न हों—अनुवाद कराये जायें। या कि उसकी तुलना भारतीय भाषाओं की अन्य रामायणों के साथ की जाये, जिससे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारतीय साहित्य और संस्कृति की एकात्मता बढ़ती। यह कार्य तुलसी चतुश्शती की समिति को करना था। वह ठोस कार्य होता जो आगे आनेवाली पीढ़ियों के लिए रहता। पर अधिक धन और समय प्रदर्शन-प्रधान संगीत, नृत्य समारोहों-संगोष्ठियों, हवा में खो जानेवाले शब्दों पर खर्च किया गया।

तुलसी रामायण के साथ-साथ हमने भारतीय भाषाओं की कुछ और रामायणें पढ़ी हैं। प्रत्येक प्रदेश की रामायण में तत्तद् स्थानीय रंग, पशुपक्षी, सामाजिक, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, मत-विश्वास, देवी-देवताओं का उल्लेख है। तुलसी दास ही उन सबकी तुलना में अधिक सार्वजनीन, सार्वलौकिक, सार्वकालिक ठहरते हैं। इसी कारण उस ग्रंथ के स्वेच्छा से देश-विदेश में इतने अनुवाद उपलब्ध हुए।

तुलसी समन्वय के पोषक थे। वह समन्वय कई स्तरों पर था। निर्गुण-सगुण, शैव-वैष्णव, लोक-धर्म-राजधर्म, पिता-पुत्र की मर्यादा, माता-पुत्र की मर्यादा, बंधु-बंधुभाव का आदर्श, पति-पत्नी के सम्बन्ध, शत्रु-मित्र का युद्ध में विचार, स्वामी और दास का भाव, सखा का सखा के प्रति अनुराग—कितने-कितने मानवीय सम्बन्धों पर तुलसी सहज-भाष्य करते चले जाते हैं। कथा के साथ-साथ वे मानवीय व्यथा को भी बांटते जाते हैं। केवल समता नहीं, ममता उनका प्रेय और श्रेय है।

'दोहावली' में वे समाज की सटीक अवस्था वर्णित करते जाते हैं :

गोंड गँवार नृपाल कलि, पवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल॥

आज भी हम देख रहे हैं, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में जिसकी लाठी उसकी भैंस का कैसा मान-'दंड' (!) उपस्थित है!

तुलसी लिखते हैं :—

काल तोपची चुपुक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहुपी पाल॥

पृथ्वीपाल या राज्य की हालत देखिये। 'अनय' और 'पाप' का कैसा सुन्दर प्रयोग राजनीति से दूर रहनेवाले बाबा तुलसीदास ने किया। और वह भी चार शताब्दी पहले। आज भी राजनीति की क्या स्थिति है? विश्व में 'गैंग आफ फोर', और भुट्टो को फाँसी और खुमैणी की मुल्लाशाही अपने दुश्मनों के साथ क्या कर रही है? देश में जिसके हाथ में जितनी सी भी 'पुहुभी' पड़ गई, सत्ता मिल गई, उसी पर वह इतरा रहा है और चिपटे जा रहा है! चुनाव के दल-दल में देश की नैया धँसी हुई है।

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद् ग्रंथ।
दंभिन्हं निज मति कल्पि करि, प्रकट कीन्ह बहु पंथ॥

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्या अपने देश में 'पंथों' की और छोटे-छोटे 'गुरुओं' की कमी है ?

आश्चर्य तब होता है जब **सम्पति सब रघुपति कै आही** लिखनेवाले तुलसी पर कुछ लोग वर्ण विशेष के पक्षपाती होने का आक्षेप लगाते हैं। तुलसी स्पष्ट कह गये हैं :

स्वपच सवर खस जमनजड़ पाँवर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन विख्यात।

(अयोध्याकाण्ड, १९४)

और

मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी।।

(अयोध्याकाण्ड—७२४।४)

ऐसे महाकवि से भारतीय साहित्य और संस्कृति के अध्येता को सामयिक सन्दर्भ में भी बहुत सीखने और जानने को है। परन्तु एक ओर वे रूढ़िग्रस्त अन्ध भक्त हैं, जो खींच-तानकर एक-एक चौपाई के सत्तावन अर्थ निकालते हैं, दूसरी ओर वे हमारे मत 'वादी' हैं, जो तुलसी को कामरेड बनाने पर तुले हैं। एक विद्वान ने तो कलकत्ते में कह दिया कि तुलसी ने लेनिन के 'दो कदम पीछे, एक कदम आगे' नीति को अपनाया था। इन लोगों ने बेचारे तुलसी को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न नहीं किया। संस्कृत ही काफी नहीं है—अन्य भारतीय भाषाएँ भी हैं, जो अनेक नदियों की तरह हमारे सांस्कृतिक भू-मानस को सिंचित करती रही हैं। तुलसी 'क्वचिदन्यतोऽपि' लेते हैं, उनके लिए कुमार गुरु भी ठीक हैं, 'पउम चरिउ' के स्वयंभू भी ठीक हैं। वे सब तरह के विरोधों का 'समाहार' करते हैं—अध्यातम और भौतिकता का, अवधी और ब्रज का, कवित्त-सवैया शैली और पद-शैली और बरवै का। वे विस्तार को विस्तार दिये जाते हैं ; इसलिए 'निराला' ने 'तुलसीदास' में उन्हें सततोर्द्धव-दृष्टिगामी बताया है। आज तुलसी के पुण्यस्मरण में हमें उनकी वह भूमा-भूमि अपनानी है। 'नाति अल्पं'। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी की भक्ति : उच्चकोटि का मानवतावाद

डॉ० रामविलास शर्मा

कलकत्ते में तुलसी के प्रति श्रद्धाज्ञापन की परम्परा काफी पुरानी है। १६ अगस्त १९२४ के 'मतवाला' में एक भव्य तुलसी जयन्ती समारोह का विवरण छपा है। उस सभा में राधामोहन गोकुलजी, अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी, सकलनारायण शर्मा, लक्ष्मण नारायण गर्दे, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, माधव शुक्ल, झाबरमल जी शर्मा आदि हिन्दी-प्रेमी विद्वान और साहित्यकार उपस्थित थे। उस सभा में श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने तुलसी दास पर अपना निबन्ध पढ़ा।

'मतवाला' के विवरण में लिखा है, सज्जनों की सम्मति से 'निरालाजी' अपना प्रबन्ध पढ़ने के लिए उठे। आपने अपने प्रबन्ध में तुलसीकृत रामायण में अद्वैतमत की प्रधानता दिखाई। आपने कहा, अद्वैत ही सत्य है, यही सबसे उच्च तत्व है। जड़ विज्ञान अभी अपने चरम लक्ष्य पर नहीं पहुँचा है। गोस्वामी जी सिद्ध महात्मा थे। वे द्वैत भाव की पुष्टि तो कर ही नहीं सकते थे :

सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं। जिमि अविबेकी पुरुष सरीरहि ॥

इस तरह रामायण के अनेक उदाहरण देकर 'निरालाजी' ने अद्वैत मत की पुष्टि की। आपने रामायण की भूमिका में भी अद्वैतवाद सिद्ध किया। आपने कहा—"रामचरितमानस-सरोवर अद्वैत का ही रूपक है।" इत्यादि।

निरालाजी ने तुलसीदास की रचनाओं में अद्वैत मत की जो पुष्टि की, उसके अलावा ध्यान देने की बात यह है कि स्वयं युग प्रवर्तक कवि होते हुए उन्होंने किस तरह हिन्दी-साहित्य की परम्परा और तुलसीदास से अपना सम्बन्ध तोड़ा नहीं, वरन् उसे दृढ़ किया। तुलसी को निकाल कर हिन्दी-साहित्य की परम्परा से सम्बन्ध जोड़ना असंभव है। इस परम्परा में जो कुछ मूल्यवान है, जो कुछ महत्व-पूर्ण है, जो कुछ सदा के लिए संग्रह करने योग्य है, वह तुलसी में सुरक्षित है, और बहुत बड़ी मात्रा में सुरक्षित है। यह तथ्य तुलसी की अपराजेय प्रतिभा का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्योतक है कि उन्हें त्याग कर कोई भी युग प्रवर्तक कवि हो नहीं सकता।

निरालाजी ने तुलसीदास पर अनेक बार लिखा है। कहना चाहिए, तुलसीदास जीवनभर उनके प्रिय कवि रहे। जिस समय उन्होंने कविता लिखना आरम्भ न किया था, उस समय भी वे तुलसीदास के भक्त थे। जिस समय उनकी प्रतिभा पूर्ण विकास पर थी, उस समय उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'तुलसीदास' लिखी। निरालाजी की जो दो सर्वश्रेष्ठ कविताएँ हैं, उनमें एक है 'राम की शक्ति पूजा' और दूसरी है 'तुलसीदास'। इससे स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कैसे इस युग में भी हमारे कवियों के लिए तुलसीदास अजस्र प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि निरालाजी की रचना से अच्छी कविता अभी तक तुलसीदास पर दूसरी लिखी नहीं गई।

अनेक आलोचकों ने तुलसी के दैन्य को देखा है, राम के सामने उनकी करुण पुकार को सुना है, किन्तु उनके वीरतापूर्ण संघर्ष को नहीं देखा।

निरालाजी ने बड़े ही ओजपूर्ण ढ़ंग से तुलसीदास के साधनाकाल के इस संघर्ष का चित्रण किया है। कवि की चेतना की लहरें जिस समय तामसी संस्कारों का नाश करने के लिए उमड़ती हैं, उस समय का चित्रण है :

कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम
वह रुद्ध द्वार का छाया-तम तरने को——
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार
तोड़ने को विषम वज्र द्वार
उमड़े, भारत का भ्रम अपार हरने को।

तुलसी की चेतना की लहरें ज्ञानोद्धत प्रहार करती हैं। जिसे तोड़ना है, वह विषम वज्र-द्वार है, साधारण प्रहार से वह टूट नहीं सकता। इस क्रिया का जो फल है, वह असाधारण है ; वह केवल तुलसी के लिए नहीं, सारे भारत के लिए है। उनके ज्ञान से सारे भारत को प्रकाश मिलता है। तुलसी के सार्वदेशिक महत्व का इससे अच्छा प्रतिपादन और क्या हो सकता है !

तुलसीदास भक्त कवि थे। उनके साधनाकाल के लिए निरालाजी ने 'ज्ञानोद्धत प्रहार' शब्दों का प्रयोग किया है। तुलसीदास अपने युग में साधारण जनता के लिए ज्ञान-मार्ग को कठिन समझते थे। इसलिए उन्होंने भक्ति पर विशेष बल दिया है और भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन किया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे स्वयं ज्ञानी न थे या ज्ञान-मार्ग पर चलनेवाले सन्त योगी जिसे ज्ञान कहते हैं, वह उन्हें प्राप्त न हुआ था। मानस के आरम्भ में ही गुरुपद वन्दना करते हुए उन्होंने दिव्य दृष्टि का उल्लेख किया है। इस दृष्टि से मोहान्धकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नष्ट हो जाता है और **उघरहिं विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ।।** ये हृदय के विमल विलोचन ज्ञान-नेत्र ही हैं, जिनके खुलने पर अज्ञान की रात्रि दूर हो जाती है। तुलसी की भक्ति का दृढ़ आधार है उनका ज्ञान। दूसरों को वह भले दुर्लभ हो, उन्हें तो वह सुलभ ही है।

तुलसी के ज्ञान में कौन-सी मौलिक विशेषता हो सकती है? ज्ञान की जितनी बातें थीं, वे सब प्राचीन दार्शनिक पहले ही कह गए थे। तुलसीदास ने अधिक से अधिक उन्हें पढ़कर दोहराया होगा। कुछ विद्वानों ने तुलसी के युग को भारतीय दर्शन का ह्रास-युग कहा है। दार्शनिक चिन्तन उच्चतम शिखर तक पहुँच चुका था, अब उसके टीकाकार रह गये थे। देश में अनेक मतमतान्तर फैले हुए थे। ऐसी स्थिति में तुलसीदास क्या करते? विद्वानों के अनुसार उन्होंने विभिन्न मतों का समन्वय किया और इस प्रकार समाज को टूटने और विशृंखल होने से बचाया। कठिनाई तब पैदा होती है जब इस समन्वय की छानबीन की जाती है। तुलसीदास की रचनाओं में जहाँ-तहाँ प्रत्येक दार्शनिक धारा के तत्व दिखाई देते हैं, किन्तु वे किसी भी दर्शन विशेष की सीमाओं में बँधते नहीं दिखाई देते।

तुलसीदास के दार्शनिक दृष्टिकोण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन से विमुख नहीं है; वह लोकोन्मुख है, वह जीवन को सुखी और सार्थक बनाने के लिए है। अनेक वैरागियों की तरह तुलसीदास मृत्यु के गीत नहीं गाते। संसार क्षणभंगुर है, इसलिए परोक्ष सत्ता से लौ लगाओ—यह उनका उपदेश नहीं है। संसार में ऐसे अनेक धर्म हैं, अनेक मत हैं, जो मनुष्य को सिखाते रहे हैं कि संसार ही दुख का कारण है, संसार में जब तक जीना है, तब तक दुख उठाना है, इसलिए मनुष्य को परलोक-साधना में लगना चाहिए। तुलसी का दर्शन इसी जीवन में, इस संसार में, रहते हुए ही संसार के बन्धनों से मुक्त होने की बात कहता है। उनका प्रसिद्ध पद है:

अब लौं नसानी अब ना नसैहौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे अब न डसैहौं।।

तुलसी को जागरण की यह अवस्था इस जीवन में ही प्राप्त हुई है, उनकी भवनिशा इस भवसागर में रहते हुए ही समाप्त हुई है। अपनी साधना से उन्होंने अपने जीवन में जो परिवर्तन देखा, उसका उल्लेख उन्होंने अनेक बार किया है।

परलोक की चिन्ता उन्हें बिल्कुल नहीं थी, यह कहना ठीक न होगा। किन्तु परलोक की ओर से जितना वे निश्चिन्त हैं, उतना बहुत कम भक्त मिलेंगे—**लोक को न डर, परलोक को न सोच देव सेवा न सहाय गर्व धाम को न धन को।** तुलसी की दृष्टि में परोक्ष ब्रह्म की चिन्ता में लीन रहनेवाले साधकों को चिन्ता के मारे नींद नहीं आती। संसार के मोह में फंसे हुए भोगियों को भी सुख नहीं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मिलता। संसार में रहते हुए जीवन-मुक्त कवि तुलसी ही राम के भरोसे निश्चिन्त होकर सोते हैं। कहा है :

जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।
जागैं राजा राजकाज, सेवक समाज साज,
सोच सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के।।
जागैं बुध बिद्याहित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के।
जागैं भोगी भोग ही, बियोगी रोगी सोगबस,
सोवैं सुख तुलसी भरोसे एक राम के।।

तुलसी को दर्शन का फल इस जीवन में प्राप्त है। वे लोक के मोह और परलोक की चिन्ता से मुक्त होकर सुख की नींद सोते हैं।

तुलसी जिस राम या ब्रह्म के उपासक हैं, वह परोक्ष सत्ता नहीं हैं। वह उनके लिए प्रकट सत्य है। साथ ही उनका ब्रह्म प्रत्यक्ष सत्ता मात्र नहीं है। वह परोक्ष भी है और प्रत्यक्ष भी। इसीलिए तुलसीदास न विशुद्ध निर्गुणवादी हैं, न विशुद्ध सगुणवादी। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है :

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।

यदि प्राचीन दर्शन की शब्दावली को थोड़ी देर के लिए छोड़ दें तो इस उक्ति में कोई ऐसी बात नहीं जो आधुनिक विज्ञान को अग्राह्य हो। मनुष्य का ज्ञान सीमित है, उसके ज्ञान के साधन सीमित हैं। जगत् अनन्त है। इसलिए वह जितना जानता है, वह पूर्ण इकाई का अंश मात्र ही है। साथ ही जो नहीं देखा वही सत्य है, जो देखा है, वह भ्रम ही होगा, यह सोचना भी सही नहीं है। इसलिए वैज्ञानिक दृष्टि-कोण के अनुसार संसार को व्यक्त और अव्यक्त, परोक्ष और प्रत्यक्ष की एकता मानना चाहिए। इसके सिवा जो भौतिक रूप स्थिर और अचल दिखाई देते हैं, वे वास्तव में स्थिर और अचल नहीं हैं। वे प्रतिक्षण गतिशील हैं और शक्ति या ऊर्जा के ही मूर्त रूप हैं। यह ऊर्जा हमारी दृष्टि से ओझल रहती है। प्राचीन दर्शन की शब्दावली में इसी बात को यों कहते हैं :

एक दारुगत देखिये एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू।।

अग्नि दिखाई भी देती है और काष्ठ के अन्दर अव्यक्त भी रहती है। यही हाल ब्रह्म का है।

इससे एक निष्कर्ष निकलता है। जो प्रत्यक्ष जगत को पूर्ण मानते हैं, उन्हें रज्जु में अहि का भ्रम हुआ है। जो इसके दृश्य रूपों को स्थिर अचल मान लेते हैं, वे मोह में फंस जाते हैं। पूर्णता परोक्ष और प्रत्यक्ष की एकता में है। एक दूसरा निष्कर्ष भी निकलता है। जिसे हम देखते हैं, वह अनदेखे से विलग नहीं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, उसी का अभिन्न अंग है। इस प्रकार जिसे हम सगुण और प्रत्यक्ष सत्ता कहते हैं, वह असत्य नहीं है, वह परोक्ष और निर्गुण सत्ता से अभिन्न रूप में जुड़ी हुई है। इसी न्याय से तुलसी को प्रत्यक्ष जगत ब्रह्ममय दिखाई देता है :

सियाराम मय सब जग जानी, करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

उन्होंने संसार के जो चेतन प्राणी हैं, उन्हीं को रायमय नहीं देखा। जड़ और चेतन सभी को राममय मानकर वे पहले ही स्पष्ट कह चुके हैं :

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
बंदउं सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ।।

मनुष्य का मोह मिथ्या है, उसका अहंकार मिथ्या है। प्रत्यक्ष संसार तो राममय है, मिथ्या नहीं हो सकता। तुलसी के राम अन्तर्जामी ही नहीं, बाहिरजामी भी हैं :

अंतर्जामिहु तें बड़ बाहरजामी हैं राम जो नाम लिये तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिये तें ।।

इन पंक्तियों को उद्धृत करने के बाद स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसीदास पर अपनी पुस्तक में भक्ति-मार्ग के लिए लिखा था, "वह लोक या जगत् को छोड़कर नहीं चल सकता। भक्तिमार्ग का सिद्धान्त है भगवान को बाहर जगत में देखना।"

संसार को राममय जानकर सत्य मानना तथा स्वार्थ और अहंकार से मुक्त होना—यह एक प्रकार का दृष्टिकोण है। संसार मिथ्या है। ब्रह्म इससे परे है, मनुष्य का जीवन ही उसका बन्धन है—यह मानना दूसरा दृष्टिकोण है। एक लोकोन्मुख है; दूसरा लोकविमुख। तुलसी का दृष्टिकोण लोकविमुख नहीं है, इसीलिए वे समाज के आचार-विचारों, मानव-जीवन के विविध व्यापारों का विस्तार से वर्णन करते हैं। भवसागर से मुक्ति पाने के लिए इन लोक-व्यापारों को छोड़ना आवश्यक नहीं है। आवश्यक है स्वार्थ और अहंकार का त्याग :

बहु उपाय संसार तरनहित बिमल गिरा श्रुति गावै।
तुलसिदास मैं मोर गए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै ।।

इस 'मैं' और मोर की भावना का दूर होना ही मनुष्य का जागना है। जब तक मनुष्य इस अहंकार से बँधा रहता है, तब तक वह बराबर कष्ट सहता है। बिस्तर पर सोते हुए मनुष्य को जैसे स्वप्न में लगता है कि वह समुद्र में डूब रहा है, वैसे ही मनुष्य को अहंकारजन्य कष्ट सहने पड़ते हैं :

सुभग सेज सोवत सपने बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुं नाव न पार पाव कोउ जब लगि आपु न जागै ।।

बारिधि में डूबने का भय मिथ्या है ; सुभग सेज पर सोना मिथ्या थोड़े ही है। जो लोग संसार को मिथ्या कहते हैं, तुलसीदास ने उनका तीव्र खण्डन किया है। कवितावली का प्रसिद्ध पद है :

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है।।
जानपनी को गुमान बड़ो, तुलसी के बिचार गंवार महा है।
जानकी जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है।।

इस पद का अर्थ यही लगाया जाता रहा है कि जो लोग संसार को झूठा कह कर ज्ञान का दंभ करते हैं, वे वास्तव में अज्ञान में फंसे हुए हैं। तुलसी-साहित्य के विशेषज्ञ डॉ० उदयभानु सिंह ने अपने शोध-ग्रन्थ 'तुलसी-दर्शन-मीमांसा' में इसका दूसरा अर्थ किया है। उनका विचार है कि तुलसी ने यहाँ संसार को मिथ्या घोषित करनेवालों का ही समर्थन किया है।

पहली दो पंक्तियाँ उद्धृत करने के बाद उन्होंने लिखा है, "'कवितावली' की उपर्युक्त पंक्तियों में तुलसी ने अपनी मान्यता बड़े ही जोरदार शब्दों में उपस्थित की है। कवि की ये पंक्तियाँ जगन्मिथ्यावादियों का मजाक उड़ाने के लिए लिखी गई हैं—यह कहना न्यायोचित नहीं हैं। हमारे विचार से तुलसी का आशय बिल्कुल स्पष्ट है—तत्त्वज्ञानी वेदांतियों ने जिस जगत् के मिथ्यात्व की डंके की चोट पर बारम्बार घोषणा की है, उसके लिए मूढ़ जीव करोड़ों क्लेश सहता है, चारों ओर खीस निपोरता फिरता है। जगत् के असत्यत्व और दोष दर्शन की यह व्यंजना विराग भाव उद्दीप्त करने के लिए की गई है। यहाँ पर उन्होंने जगन्मिथ्यावाद का समर्थन किया है।"

डॉ० उदयभानु सिंह ने केवल दो पंक्तियां उद्धृत की हैं और यह नहीं बताया कि तुलसी ने आगे किसके जानपनी के गुमान पर व्यंग्य किया है। जानपनी का गुमान है उन्हें, जो भक्तों को क्षुद्र समझते हैं, जो संसार को मिथ्या कहते हुए भी कष्ट पाते हैं। उत्तरकाण्ड में वेद संसार विटप की स्तुति करते हैं, **पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे**। यदि संसार मिथ्या है, तो 'संसार बिटप नमामहे' कहना निरर्थक है। अहंकार और मोह में फंसे हुए मनुष्य को संसार जैसा दिखाई देता है, वह असत्य है; इसका यह अर्थ नहीं कि संसार की सत्ता ही नहीं है। विनयपत्रिका के एक पद में तुलसीदास ने कहा है :

केसव कहि न जाइ का कहिए?
देखत तब रचना बिचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए।।

और आगे लिखा है :

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै।।

डॉ० उदयभानु सिंह ने इन पंक्तियों की बहुत सुन्दर व्याख्या की है। उन्होंने बताया है कि ये पंक्तियाँ पुष्पदंत के महिम्न स्तोत्र के एक श्लोक पर आश्रित हैं और उस श्लोक की व्याख्या मधुसूदन सरस्वती ने की थी, जिसके अनुसार सांख्य-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पातंजलमतानुसारी संसार को सत् कहते हैं; क्षणिकतावादी बौद्ध उसे असत् कहते हैं, न्यायवैशेषिक दर्शनों के अनुयायी वायु, तेज, जल और पृथ्वी को अनित्य तथा आकाश, काल, दिक्, और आत्मा को नित्य मानते हैं।

संसार तुलसीदास के लिए किस अर्थ में सत्य है, यह हम ऊपर देख चुके हैं। वह असत्य है क्षणवादियों के लिए और मायावादियों के लिए भी—यह मानना चाहिए।

तुलसीदास को मानव-जीवन पर गर्व है, अपने देश पर गर्व है, भारत में मानव जन्म पाने की सार्थकता उनके लिए भगवद्भक्ति में है :

भलि भारत भूमि भले कुल जन्म समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजि कै परुषा बरषा हिम मारुत घाम सदा सहि कै।।
जो भजै भगवान सयान सोई तुलसी हठ चातक ज्यों गहि कै।
न तु और सबै विष बीज बये हर-हाटक कामदुहा नहि कै।।

यदि संसार माया है, तो भारतभूमि भी माया है और भारतभूमि में जन्म लेनेवाले महाकवि तुलसीदास भी माया हैं।

मानस के अरण्य काण्ड में माया के दो रूप बताये गये हैं :

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा।

यह मोह और अहंकारवाली माया है, जिससे मनुष्य में अज्ञान उत्पन्न होता है। इसी का नाम अविद्या है। दूसरी माया विद्या है, वह आदिशक्ति है, वह संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार का कारण है। सीता इसी आदि-शक्ति का अवतार हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि संसार को मिथ्या कहनेवाले लोग जिस माया की बात करते हैं, वह माया सीता नहीं हैं।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

सीता सर्वश्रेयस्करी हैं, वे रामवल्लभा हैं, तुलसी उनके सामने नत हैं। वे तुलसी को राम के निकट ले जाने वाली हैं। इसीलिए उन्होंने विनय की थी :

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ।।

अम्ब और जगज्जननी कहकर तुलसी ने उनके प्रति आदर-भाव व्यक्त किया है। सीता के प्रति तुलसीदास का जो दृष्टिकोण है, उसे ध्यान में रखते हुए उन्हें प्रचलित अर्थ में मायावादी सिद्ध करना आसान नहीं है। डॉ० उदयभानु सिंह ने अविद्या को भी सीता का एक रूप माना है। यदि उनका एक रूप अविद्यामय है, तो उनके प्रति पूज्य बुद्धि क्यों है? इस समस्या का निराकरण उन्होंने यह कह कर किया है, "वे भक्तों के लिए विद्यारूपा हैं और अभक्तों के लिए अविद्यारूपा" (पृ० ८६)।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अब दूसरा प्रश्न उठता है, क्या वेदान्त में भी माया का कोई ऐसा रूप स्वीकार किया गया है, जो भक्तों के लिए कल्याणकारी हो? स्पष्ट ही ऐसा कोई रूप वेदान्त में स्वीकार नहीं किया गया। डॉ० उदयभानु सिंह ने ही लिखा है, "अद्वैतवाद में अज्ञान, अविद्या और माया शब्दों का प्रायः पर्याय रूप में प्रयोग हुआ है।" अर्थात् माया अज्ञान और अविद्या का पर्याय है, विद्या का नहीं। इसके बाद उन्होंने बताया है कि अविद्या की दो शक्तियाँ हैं, एक विक्षेप शक्ति, जो रजोगुणी है और जो सभी प्रवृत्तियों का कारण है, दूसरी आवरणशक्ति जो तमोगुणी है और जिससे भ्रम उत्पन्न होता है। वेदान्त के लिए दोनों शक्तियाँ अविद्या हैं। किन्तु, डॉ० उदयभानु सिंह कहते हैं—

"किन्तु अध्यात्मरामायणकार आदि की भाँति तुलसीदास भी विक्षेपशक्ति को विद्या माया और आवरणशक्ति को अविद्या माया मानते हैं।" इस वाक्य के आरम्भ में जो 'किन्तु' शब्द आया है, वह स्पष्ट घोषित कर रहा है कि लेखक की दृष्टि में वेदान्त तथा तुलसी-दर्शन में महत्वपूर्ण भेद है।

तुलसीदास संसार को सियाराममय कहते हैं, तब उसकी सृष्टि, स्थिति और लय की आदिशक्ति को असत्य और अविद्या कैसे कह सकते हैं? तुलसीदास के लोकोन्मुख दर्शन का यह प्रमाण है कि जो लोक को रचनेवाली शक्ति है, उसे वे अविद्या नहीं मानते। संसार के प्रति उनके जिस दृष्टिकोण का उल्लेख पहले किया गया है, वह विद्या माया अथवा आदिशक्ति के प्रति उनकी धारणा से पुष्ट होता है। संसार और सृष्टि करनेवाली आदि शक्ति दोनों ही के प्रति उनका दृष्टिकोण स्वीकृति का है, अस्वीकृति का नहीं।

अब जीव को लीजिए। मायावादियों के लिए जीव की प्रतीति मिथ्या है। डॉ० उदयभानु सिंह ने यहाँ स्पष्ट स्वीकार किया है कि जीव के प्रति तुलसी का दृष्टिकोण वेदान्ती नहीं है। उन्होंने लिखा है कि वेदान्त के अनुसार प्रकृति पर ब्रह्म का जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, वही जीव है, "जो एक काल्पनिक वस्तु है, भ्रान्ति-भावना या मिथ्या प्रतीति है। इस अन्तःकरण (अर्थात् जीव के जीवत्व) का नाश ही मोक्ष है।" किन्तु तुलसीदास के अनुसार जीव के जीवत्व का नाश हो नहीं सकता, क्योंकि **ईस्वर अंश जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥** इसलिए डॉ० उदयभानु सिंह को मानना पड़ा है कि 'जीव के विषय में अनित्य प्रतिबिम्बवाद तुलसी-संमत नहीं है, क्योंकि वे जीव को मिथ्या न मानकर उसे नित्य और ईश्वर का अंश मानते हैं।"

ब्रह्म, जगत् और जीव—तीनों के प्रति तुलसी के विचारों में तारतम्य है। ऐसा नहीं है कि ब्रह्म की चर्चा में तो उन्होंने वेदान्त की बात कही है और जीव की चर्चा में उनकी मान्यता वेदान्त-विरोधी हो गई है। जो दार्शनिक ब्रह्म को व्यक्त और अव्यक्त, सगुण और निर्गुण, दोनों मानता है, वह जगत को भी ब्रह्ममय स्वीकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करता है और जीव को ब्रह्म का अंश मानकर चेतन और अविनाशी मानता है। यह है तुलसीदास का ज्ञान जो जीवन की स्वीकृति का दर्शन है, जीव के जीवत्व का विनाश करके मोक्षलाभ करने का दर्शन नहीं है। जिसने **'संसार बिटप नमामहे'** लिखा था, उसने यह भी बताया था कि संसार में कैसे जीना चाहिए। तुलसी की रचनाओं में जो व्यवहारिक ज्ञान की सैकड़ों बातें भरी पड़ी हैं, वे उनके लोकोन्मुख दर्शन से विच्छिन्न नहीं हैं, वरन् उसका अनिवार्य परिणाम है। तुलसी ने जनसाधारण को भरमाने के लिए किसी काल्पनिक स्वर्ग की रचना नहीं की जहाँ रामनाम जप कर पहुँचने से सब दुख दूर हो जायेंगे। दुख दूर करना है इसी संसार में और भक्त को रामकृपा की आवश्यकता है इसी संसार में रहते हुए मुक्ति पाने के लिए। रामचरितमानस के आरम्भ में उन्होंने संत समाज को तीर्थराज कहा है, राम-भक्ति गंगा के समान है। उसमें स्नान करने से इस शरीर के रहते हुए ही चारों फल प्राप्त होते हैं :

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।।

इस संसार में रहते हुए मनुष्य को अनेक कष्ट होते हैं। इन कष्टों का एक कारण काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकार हैं। एक दूसरा कारण और है जिसे तुलसीदास ने बार-बार याद किया है। यह कारण है दरिद्रता—**नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।** शायद दरिद्रता पर जितना अकेले तुलसीदास ने लिखा है, उतना हिन्दी के समस्त नये-पुराने कवियों ने मिलकर न लिखा होगा। दरिद्रता का दुख ऐसा है जिसे संसार को माया कहकर मिटाया नहीं जा सकता। रामचरितमानस, विनयपत्रिका और सबसे अधिक कवितावली में भूख और दरिद्रता का वर्णन किया गया है। कहीं कलिकाल का वर्णन करते हुए इनका उल्लेख किया गया है, कहीं तुलसी ने स्वयं को इनसे पीड़ित दिखाया है। समुद्र के भीतर जिस भयानक अग्नि की कल्पना कवियों ने की थी, उससे भी भयानक पेट की आग है, ऐसा तुलसीदास का विचार था—**आगि बड़वागि ते बड़ी है आगि पेट की।** उन्होंने एक कवित्त में देश की आर्थिक दशा का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। किसानों की खेती चौपट है, व्यापारियों का वाणिज्य तबाह हो गया है, नौकरीपेशा लोग बेकार हो गये हैं। इस कवित्त में उन्होंने दरिद्रता को रावण कहा है जिसने सारे संसार को दबा रखा है। उस 'दारिद दसानन' से वे अपनी और संसार की मुक्ति चाहते हैं।

तुलसीदास ने भगवान के आगे अपनी दीनता दिखाने के लिए कुछ बातें बढ़ा चढ़ा कर कही हैं ; जैसे उन्होंने अपने को संसार में सबसे अधम कहा :

तुलसी सो पोच न भयो है नहिं ह्वै है कहूँ,
सोचें सब याके अघ कैसे प्रभु छमि हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भयो न तिकाल तिहूं लोक तुलसी सो मंद,
निदैं सब साधु, सुनि मानौ न सकोचु हौं।

उन्होंने तीनों कालों और तीनों लोकों में अपने को सबसे बड़ा पातकी और अधम घोषित किया है। यह सब दैन्य-प्रदर्शन के लिए कहा गया है। इसे अति-रंजित चित्रण भी नहीं कह सकते। पातकी होने का यह घोष इसलिए किया गया है कि दीनदयालु का ध्यान जरा जल्दी आकर्षित हो। किन्तु यही बात उनकी बाहु पीड़ा के बारे में नहीं कही जा सकती। बाहु पीड़ा वास्तविक थी और उन्हें इस बात की ग्लानि होती है कि इतनी छोटी-सी बात के लिए इष्टदेव से बारबार कहना पड़ता है। काशी में जिस भयंकर महामारी का उन्होंने वर्णन किया है, वह भी वास्तविक है। इसी तरह उन्होंने अपने जीवन के कष्टों और दरिद्रता का जो वर्णन किया है, उसकी सच्चाई किसी सहृदय से छिपी नहीं रह सकती। इसीलिए उन्होंने राम को दारिद्र्यनाशक कहा है :

तुलसी भजु दारिद दोष दवानल संकट कोठि कृपानहि रे।

× × ×

दीनता दारिद दलै को कृपा बारिधि बाज।

तुलसी के राम दीनबन्धु हैं। इन दीनों में गरीब हैं, समाज के दलित प्राणी हैं, स्त्रियाँ हैं, नीच समझे जानेवाले लोग हैं। तुलसी की भक्ति का सामाजिक उत्पीड़न से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे राजाओं, सामंतों, धनी लोगों के सामने हाथ पसारने वालों में आत्म-सम्मान का भाव जागृत करते हैं। उनसे कहते हैं, राम से मांगो, वह सब कुछ देगा, मनुष्य के आगे हाथ मत फैलाओ :

जाचै को नरेस, देसदेस को कलेस करै,
दैहै तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंडिये।
कृपापाथनाथ लोकनाथ नाथ सीतानाथ,
तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िये॥

राम का भरोसा होने से उन्हें मनुष्य की दासता से मुक्ति मिल जाती है :

जग में गति जाहि जगत्पति की, परवाह है ताहि कहा नर की।

तुलसी ने अपने और दूसरों के दुख का जो यथार्थ वर्णन किया है, उसका कारण भी उनका लोकोन्मुख दर्शन है। इस दुख ने उन्हें सिखा दिया था कि संसार को असत्य कह देने से उसके दुख असत्य न हो जायेंगे। उन्होंने दुख का ही नहीं, संसार के अनेक व्यापारों, मानव जीवन के अनेक पक्षों का चित्रण किया है। यहाँ उनका विवेचन करना अनावश्यक है। दुख की चर्चा इसलिए की गई है कि उससे उनकी भक्ति का घनिष्ठ संबन्ध है।

तुलसी के युग में किसी ने अपने बारे में इतना नहीं लिखा जितना उन्होंने। हम उनके बारे में बहुत सी बातें जानना चाहते हैं ; इसलिए उन्होंने अपने बारे में जो कुछ लिखा है, वह अपर्याप्त मालूम होता है। किन्तु उस युग के अन्य कवियों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से तुलना करने पर पता चलेगा कि उन्होंने जितना लिखा है, वह बहुत लिखा है। तुलसी के लिए मनुष्य का व्यक्तित्व नगण्य नहीं है। इसीलिए उनके अपने व्यक्तित्व की इतनी चर्चा है। तुलसीदास हिन्दी के पहले कवि हैं जिनकी रचनाओं में कवि का व्यक्तित्व इतना उभर कर आया है। उनका व्यक्तित्व किस तरह का है? इस व्यक्तित्व से उनकी भक्ति का क्या सम्बन्ध है? इन प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है।

तुलसीदास के व्यक्तित्व का एक पक्ष है उनका दैन्य। उन्होंने अतिशय विनम्रता से अपने को तीनों कालों और तीनों लोकों में महाअधम कहा। उनके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष है उनका गर्व, उनकी आत्मसम्मान की भावना। इस आत्मसम्मान के कारण वे किसी को भी सर झुकाने को तैयार नहीं होते; वैसे साधारण रूप से सियाराममय कहकर समस्त संसार को प्रणाम कर लें, वह बात अलग है। उनके विचार से कवियों ने मनुष्यों की प्रशंसा में छन्द रचे, इसीलिए सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगी। वे रामभक्त हैं, उन्हें किसी के भी सामने हाथ न फैलाना चाहिए, सर न झुकाना चाहिए, यह भाव सदा उनके मन में रहता है। जिस मनुष्य को आजीवन तरह-तरह के कष्ट सहने पड़े हों और जिसने भूख और निर्धनता की यातना का स्वयं अनुभव किया हो, उसके लिए तत्कालीन समाज में भक्ति ही सबसे बड़ा संबल थी।

तुलसी को अपनी भक्ति पर ही गर्व नहीं था, उन्हें अपनी साहित्य-रचना के सौन्दर्य का भी ज्ञान था और उस पर सहज अभिमान भी था। पहले उन्होंने अपने को **सकल कला सब विद्या हीनू** कहा, **कबित्त बिबेक एक नहिं मोरे**—यह घोषणा की; उसके बाद उन्होंने अपने दोहों और चौपाइयों की प्रशंसा में जो कुछ कहा उससे अधिक उनकी प्रशंसा आज तक कोई कर नहीं सका:

पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनिसीप सुहाई।
छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।।

तुलसीदास उन कवियों में न थे, जो बेसुध अवस्था में कुछ ऊँची बातें कह जाते हैं, और स्वयं उनका मर्म नहीं समझते। वे सचेत कवि थे और पाठकों से भी सचेत होकर ही मानस को पढ़ने के लिए कहते हैं, **सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना।।** उनके **विमल बिलोचन** ही के खुल चुके हैं। वे भक्त हैं, इसलिए कोई ज्ञानी उनसे बड़ा होगा, यह मानने को वे तैयार नहीं हैं। पाठकों से भी ज्ञान-नेत्र खोलने को कहते हैं।

ऐसे अभिमानी कवि के हृदय से जब आर्त पुकार निकलती है तब उसकी वेदना को असाधारण ही मानना चाहिए। विनयपत्रिका में उनकी वेदना के स्रोत मुख्यतः काम, क्रोध, मद, लोभ आदि मनोविकार ही हैं, फिर भी अनेक पदों में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनके भौतिक जीवन की वेदना, उनकी युवावस्था के कष्ट आदि भी व्यक्त हुए हैं :

नाम राम रावरोई हित मेरे।
स्वारथ परमारथ साथिन्ह सों भुज उठाइ कहौं टेरे।
जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो अबडेरे
मोहु से कोउ कोउ कहत रामहि को सो प्रसंग केहि केरे ?
फिर्‌यौ ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे।

कहते हैं, दुख भी मुझे देखकर दुखी हो जाता था। उन्होंने अवश्य असह्य यातना सही होगी, तभी उन्होंने राम के द्वार पर आर्त पुकार की थी :

द्वार हौं भोर ही को आज।
रटत रिरिहा, आरि और न, कौर ही तें काज।

तुलसी के लिए प्रसिद्ध है कि बाँसुरीवाले भगवान को देखकर उनका माथा न झुका था—**तुलसी मस्तक तब नवै, धनुषबान ल्यो हाथ**—उनका माथा झुकाने के लिए भगवान को धनुषवाण धारण करना पड़ा था। इस कहानी में सार यह है कि भगवान के सामने भी उनका माथा आसानी से न झुकता था। वे ही तुलसीदास जब कहते हैं कि भोर ही से मैं द्वार पर पुकार रहा हूँ, तब समझना चाहिए कि उनकी वेदना साधारण नहीं है।

तुलसीदास की भक्ति की विशेषता समझने के लिए यहाँ भक्ति-आन्दोलन के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना जरूरी है। कुछ लोगों का विचार है कि भारत में मुसलमानों का शासन कायम होने से देश में निराशा फैल गई, निराशा में भगवान का भजन करने के सिवा कोई चारा न था, इसलिए मुस्लिम शासन की प्रतिक्रिया रूप में भक्ति-आन्दोलन का प्रसार हुआ। यह धारणा सही नहीं है, क्योंकि भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात यहाँ तुर्कों के आक्रमण से बहुत पहले हो गया था। इसके सिवा भक्ति-आन्दोलन का प्रसार उत्तर से पहले दक्षिण के उन प्रदेशों में हुआ जहाँ मुसलमानों का शासन नहीं था। वास्तव में भक्ति-आन्दोलन भारत से बाहर यूरोप के देशों में भी पाया गया है। इसका कारण विभिन्न देशों में एक-सी समाज व्यवस्था की सामान्य परिस्थितियाँ हैं। इस समाज व्यवस्था में समाज का मुख्य वर्ग भूमिपतियों का होता है। धर्म, संस्कृति और शिक्षा आदि का कार्य पुरोहित वर्ग के हाथ में रहता है। इस समाज में थोड़े से महाजन और व्यापारी होते हैं और शेष जनता खेती करती है या कपड़ा आदि बुनने जैसे दस्तकारी के अन्य काम करती है। इस समाज-व्यवस्था में धर्म और संस्कृति कर्मकाण्ड से बँध जाते हैं। धर्म की साधना के लिए भी द्रव्य आवश्यक होता है। श्रम करनेवाली जनता को दबाकर रखने के लिए पुरोहित वर्ग नरक का भय दिखाता है। यूरोप में धार्मिक कार्यों का माध्यम लैटिन थी और भारत में संस्कृत। इन भाषाओं को मध्यकाल में कुछ थोड़े से पढ़े-लिखे ही समझते थे। इन परिस्थितियों में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भक्ति-आन्दोलन का जन्म हुआ। यह संपत्तिशाली वर्गों का साँस्कृतिक आन्दोलन न था। इसका नेतृत्व उन लोगों ने किया जिन्होंने संस्कृत की जगह भारतीय भाषाओं और लैटिन की जगह यूरोपीय भाषाओं को प्रतिष्ठित किया। इस आन्दोलन में उच्च वर्णों के अलावा निम्न वर्णों के लोग भी आए और इस तरह धर्म और संस्कृति पर पुरोहितवर्ग का एकाधिकार टूट गया। हर देश का भक्ति आन्दोलन कर्मकाण्ड के बदले प्रेम को महत्व देता है। यदि हृदय में प्रेम नहीं है तो कितने भी यज्ञ करो, भगवान प्रसन्न होने को नहीं। इस प्रकार धार्मिक साधना सबके लिए सुलभ हो गई ; जाति और जन्म के कारण कोई ईश्वर-भक्ति से वंचित न रह सकता था। आधुनिक शब्दावली में कहें तो कह सकते हैं कि भक्ति आन्दोलन मध्यकालीन समाज-व्यवस्था में जनता का सामंत-विरोधी सांस्कृतिक आन्दोलन था।

कुछ विद्वान संतों, सूफियों और भक्तों को अलग करके देखते हैं। वास्तव में ये सब एक ही आन्दोलन के अंग हैं। प्रेमतत्व इन सब में सामान्य है। ये सभी जन प्राचीन धार्मिक रुढ़िवादिता के विरुद्ध दिखाई देते हैं। इस आन्दोलन में न केवल हिन्दी वरन् भारत की अनेक भाषाओं में मुसलमान भी शामिल रहे हैं। सूफियों ने विशेष रूप से धार्मिक कट्टरता का विरोध किया है। यही कारण है कि तुलसीदास के युग में, उससे पहले और बाद भी मुसलमान संतों ने उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं और उनके साहित्य की उल्लेखनीय सेवा की है। साथ ही भक्ति-आन्दोलन अपने व्यापक रूप में सामन्त विरोधी था, इसलिए वह हिन्दू सामंतों के साथ मुस्लिम सामंतों और उनके उत्पीड़न के विरुद्ध भी था।

भक्ति आन्दोलन का सर्वत्र संबन्ध लोक भाषाओं से रहा है। तुलसीदास का युगान्तकारी महत्व इसी बात से प्रकट है कि वे हिन्दी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में विख्यात हैं। अपने रामचरितमानस द्वारा उन्होंने हिन्दी भाषा को संस्कृत के समकक्ष महत्व प्रदान किया। रामचरितमानस ने पिछली अनेक शताब्दियों में करोड़ों हिन्दी और अहिन्दीभाषियों के हृदय को स्पर्श करके उन्हें मानसिक शान्ति प्रदान की है और उनके जीवन को उन्नत बनाया है ; उसकी तुलना मेरी दृष्टि में संसार की किसी भी भाषा के किसी भी ग्रन्थ से नहीं की जा सकती। और जिन तुलसीदास को मालूम था कि उनकी चौपाइयां पुरइन के सघन पात हैं और छंद सोरठा सुन्दर दोहा कमल के फूल हैं, वे अपने मन में यह भी भलीभांति जानते थे कि वे एक अमर ग्रन्थ की रचना कर रहे हैं, जो शताब्दियों तक भावी संतति द्वारा पढ़ा जायेगा। तात्पर्य यह कि जैसे उन्हें अपने काव्य सौन्दर्य का बोध था, वैसे ही लोक भाषा के महत्व का भी ज्ञान था। इसीलिए उन्होंने भाषा के कवियों की वंदना करते हुए लिखा था।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जे प्राकृत कबि परम सयाने । भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने ।
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे । प्रनवउँ सबहि कपट छल त्यागे ।

उन्होंने भाषा के उन समस्त कवियों को प्रणाम किया है जो उनसे पहले हो चुके थे । जो उनके युग में थे और जो भावी युगों में होनेवाले थे ।

हिन्दी भाषा की सेवा—तुलसी की भक्ति का यह मधुर फल था ।

भक्ति-आन्दोलन सामन्ती समाज की विषम परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ था, इसीलिए उसमें जनता की वास्तविक दशा का चित्रण मिलता है, भक्त कवियों की करुण पुकार तत्कालीन जनता की ही करुणपुकार है । तुलसी की भक्ति-सम्बन्धी रचनाओं में हृदय को विगलित करनेवाली करुणा के स्रोत फूट पड़े हैं । कोई भी भक्त कवि अपने इष्टदेव से इतना खुलकर इतनी स्पष्टता से, अपने दुख-सुख की हर छोटी-बड़ी बात इतने कवित्वपूर्ण ढंग से नहीं कर सका, जितना तुलसीदास । ऐसी गेयता, ऐसी आत्मविभोर तल्लीनता, ऐसा मार्मिक आत्म निवेदन जैसा विनयपत्निका और कवितावली में है, अन्यत्न दुर्लभ है । सैकड़ों वर्षों तक भारतीय जनता ने जो कुछ सहा था, जो कुछ सोचा था, जिस कुछ की कामना की थी, वह सब सिमट कर विनयपत्निका और कवितावली के छन्दों में समा गया है । यहाँ करुणा और वेदना का ऐसा विशाल और अगाध सागर लहराता है कि उसके आगे और सब करुण संगीत हेय मालूम होते हैं ।

तुलसी आत्मकेन्द्रित व्यक्ति न थे । उन्हें जितना अपने दुख का ज्ञान था, उतना ही दूसरों के दुख का भी । उन्होंने राम में जितनी करुणा की कल्पना की थी, वह सब उनके हृदय में विद्यमान थी । तुलसी की यह विराट मानवीय सहानुभूति उनकी भक्ति का अभिन्न अंग है । इसी कारण वे हमारी जनता के गुणों का जितना सुन्दर चित्रण कर सके हैं, उतना अन्य कवि नहीं । राम, लक्ष्मण, सीता, भरत आदि के चरित्न में उन्होंने भारतीय जनता की ही शूरता, धैर्य, त्याग, स्नेह आदि गुणों की उदात्त अभिव्यंजना की है । कामायनीकार जयशंकर प्रसाद ने तुलसी और राम के संबन्ध में एक बड़ी मार्मिक पंक्ति लिखी थी—**मानवता को सदय राम का रूप दिखाया ।** राम के जिस रूप से हम परिचित हैं, उसे तुलसी ने ही हमें दिखाया है । तुलसी की करुणा भरत और कौशल्या के चित्रण में दिखाई देती है, उनकी मानवीय सहानुभूति निषाद, शबरी, सीता से प्रश्न करनेवाली ग्रामवधुओं आदि के संदर्भ में दिखाई देती है । जहाँ वे कलिकाल, दुर्भिक्ष, महामारी आदि का वर्णन करते हैं, वहाँ उनकी यही सहानुभूति प्रकट होती है । तुलसी की नैतिकता का यही स्रोत है । सबसे बड़ा धर्म है, दीनों की सेवा, सबसे बड़ा पाप है, उनका उत्पीड़न—**परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई ।** इसीलिए उन्होंने प्रजापीड़क राजाओं के लिए नरक की व्यवस्था की है :

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । ते नृप अवसि नरक अधिकारी ।

तुलसी की करुणा का अन्त न तो भाग्यवाद में होता है, न निराशा में। उनके इष्टदेव आदर्श कर्मवीर हैं। वे साधारणतः युद्ध नहीं करते, अपने तीर तरकस में ही रखते हैं, किन्तु उनकी प्रतिज्ञा है—**जो रन हमैं प्रचारै कोई, लरहिं सुखेन काल किन होई ।** राम के चरित्र में ही नहीं, तुलसी की अपनी उक्तियों में भी ओज और आवेश की मात्रा कम नहीं है। वे प्रजापीड़क राजाओं को शाप देते हुए कहते हैं :

राज करत बिनु काजहीं, करहिं कुचालि कुसाज ।
तुलसी ते दसकंध ज्यों, जइहैं सहित समाज ।।
राज करत बिनु काजहीं ठटहिं जे कूर कुठाट ।
तुलसी ते कुरु ज्यों जइहैं बारह बाट ।।

तुलसी इस स्वर में बोल सकते थे, क्योंकि उनके पास भक्ति के अलावा अपना और कुछ नहीं था। वे अपने युग के सर्वहारा थे अर्थात् उनका स्थान संपत्तिहीन जनों में था। उन्होंने दरिद्रता और भूख का दुख भोगा था, तो राम के भरोसे निश्चिन्त होकर सोने का सुख भी भोगा था। उनकी रचनाओं में जगह-जगह चुनौती का स्वर सुनाई देता है, उसका रहस्य यही है कि उन्हें किसी की गुलामी नहीं करनी पड़ती। **मांगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ**—वे ही लिख सकते थे। उनके व्यक्तित्व में कातरता नहीं है ; **लोग कहैं पोचु, सो न सोचु न सकोचु मेरे व्याह न बरेखी, जाति पांति न चहत हौं ।** वे किसी की सुनकर चुप रहजाने वाले जीव नहीं हैं। खरी-खरी कहना उनका स्वभाव है। बाहुपीड़ा से जब बहुत कष्ट होता है और बारबार प्रार्थना करने पर भी वह पीड़ा दूर नहीं होती, तब वे शंकर, हनुमान, राम, सभी को सावधान करके सुना देते हैं—आप नहीं सुनते हैं तो मैं भी अब चुप हो जाऊँगा, जो बोया था, वही काट रहा हूँ :

कहौं हनुमान सों, सुजान राम राय सों
कृपानिधान संकर सों, सावधान सुनिए ।
हरष - बिषाद - राग, रोग-गुन-दोष-मई,
बिरची बिरंचि सब देखियतु दुनिए ।।
मायाजीव काल के, करम के सुभाय के,
करैया राम, बेद कहैं साँची मन गुनिए ।
तुमतें कहा न होय, हा हा ! सो बुझैये मोहिं,
हौं हूँ रहौं मौन ही, बयो सो जानि लुनिए ।।

यह स्वर तुलसी का सहज और साधारण स्वर नहीं है, फिर भी यह उनकी रचनाओं में एक से अधिक बार सुनाई देता है, जिससे उनकी असाधारण यातना

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का अनुमान होता है। ऊपर के छंद में उन्होंने बाहुपीड़ा के संदर्भ में मौन रहने-की बात कही है, कवितावली के एक अन्य छन्द में जीवनभर दुख पाने, स्वप्न में भी सुख न पाने की चर्चा के बाद कहा है कि उन्हें न कुछ और कहना है, न करना है बस मरना ही शेष रह गया है :

जीव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ तुलसी तिहुँ दाह दहो है।
दास न काहू, कियो अपनो, सपनेहुँ नहीं सुख लेस लहो है।।
राम के नाम तें होउ सो होउ, न सोऊ हिये, रसनाही कहो है।
कियो न कछू, करिबो न कछ, कहिबो न कछू, मरिबोई रहो है।।

ऐसी तिक्तता तुलसी-काव्य में अपवाद रूप में ही है, किन्तु उससे अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने कितने घोर दुख में डूबकर यह सब लिखा होगा। इन पंक्तियों को पढ़कर मुझे निरालाजी के वे मर्मवेधी शब्द याद आते हैं, जो उन्होंने अपनी पुत्री सरोज के देहान्त के बाद लिखे थे :

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कही!
हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के से शत दल!
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

संभवत: दुख की यह अतल गहराई देखे बिना कोई बड़ा कवि हो नहीं सकता। तुलसी ने उसे देखा था और उनके दुख का स्मरण इसलिये आवश्यक है कि हम आज के युग में उनकी भक्ति को कल्पना-विलास न समझ लें। भक्ति उनकी जीवन साधना की गाढ़ी कमाई थी, विषम सामाजिक परिस्थितियों में वह उनका एकमात्र सम्बल थी। इस दुखानुभूति ने उनकी भक्ति का साधारणीकरण कर दिया। जिस करुण रस को भवभूति ने सभी रसों का स्रोत कहा था, उसने तुलसी की भक्ति को मानवमात्र की सम्पत्ति बना दिया।

तुलसी की भक्ति उन सबकी संपत्ति है, जिन्हें राम में आस्था है, यह उन लोगों की संपत्ति भी है, जिनकी आस्था का केन्द्रबिन्दु मानव ही है। इसका कारण यह है कि अपने युग में मानवतावाद की सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठा तुलसी की भक्ति में ही हुई है। प्रचलित अर्थ में जिसे हम धर्म कहते हैं, और जिसके लिए लड़ते हैं, वह रहे चाहे न रहे, तुलसी की भक्ति अवश्य रहेगी और प्रत्येक मानवप्रेमी को उसका स्मरण करके श्रद्धानत होना होगा।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भगवान बड़ा है, उससे बड़ा और कुछ हो नहीं सकता ; तुलसी भगवान को और बड़ा न बना सकते थे। किन्तु भक्त भगवान की तुलना में छोटा होता है ; तुलसी ने उसे बड़ा बनाया है। उत्तरकाण्ड में उन्होंने काकभुशुण्डि से कहलाया है— **मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा, राम तें अधिक राम कर दासा।** राम का दास राम से भी बढ़कर है। मध्यकालीन भक्ति में मानवतावाद की यह पराकाष्ठा है।

रामचरितमानस के कथा-प्रसंग में उन्होंने अपने इसी विश्वास को चरितार्थ किया है। राम भी बन गये थे और उन्हें वापस लाने के लिए भरत भी गये थे। किन्तु बादलों ने छाया करके भरत के लिए मार्ग जैसा सुखद कर दिया, वैसा राम के लिए भी न किया था :

किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात।।

राम ने पिता की आज्ञा पालने के लिए राज्य छोड़ा था, भरत ने भाई के प्रेम के कारण राज्य त्यागा। इसीलिए भक्त भगवान से बढ़ गया। और भी कहा है :

तुलसी रामहु ते अधिक, राम भक्त जिय जान।
ऋनिया राजा राम भे, धनिक भए हनुमान।।

भक्त के प्रति इस आदरभावना के कारण तुलसीदास के व्यक्तित्व में कितना परिवर्तन आया है, यह देखते ही बनता है। एवं एक ओर यदि उनका दैन्य चरम सीमा को पहुँचा हुआ है, तो दूसरी ओर उनका गर्व भी, उनका यह भाव भी कि भक्ति ने उनमें असाधारण परिवर्तन कर दिया है :

नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो भांग ते, तुलसी तुलसीदास।।

भांग और तुलसी, दोनों का एक साथ उल्लेख करके उन्होंने दैन्य और गर्व की भावनाओं का एक साथ निर्वाह किया है। ध्यान देने की बात है कि भक्ति ने उनका दैन्य-भाव दूर कर दिया है। वे भांग के पेड़ नहीं, पवित्र तुलसी के वृक्ष हो गए हैं। मानस के अन्त में उन्होंने अपनी सिद्धि का उल्लेख करते हुए कहा है :

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

परम विश्राम मृत्यु के बाद मिले, यह उनकी कामना नहीं है। इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि वह उन्हें इसी जीवन में मिल गया है।

कवितावली में तुलसीदास कहीं कहते हैं कि राम ने बक समान तुलसी को हंस बना दिया, कहीं कहते हैं कि खर के असवार को हाथी पर चढ़ा दिया। विनय-पत्रिका में वे कहते हैं :

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पतितपावन राम नाम सों न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो।।

नामस्मरण से ऊसर भी उर्वर भूमि में परिणत हो गया। राम नाम के कारण यद्यपि उनका व्यक्तित्व महान बना, किन्तु दूसरे भक्तों के सामने उन्होंने अपने को छोटा ही कहा। बड़ी ही प्रीति और विनम्रता से उन्होंने राम पर सब कुछ वारने-वालों के लिए कहा है :

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम।
तेहि के पग की पानहीं, तुलसी तनु को चाम।।

जिस भक्ति की परिणति ऐसे उत्कृष्ट मानवतावाद में हो, उसका प्रभाव आधुनिक हिन्दी-साहित्य पर जितना ही पड़े, उतना ही अच्छा है। तुलसीदास की परम्परा से आधुनिक साहित्य का सम्बन्ध कैसे जोड़ना चाहिए, यह निराला जी ने अपने काव्य और लेखों से अच्छी तरह प्रकट कर दिया है। तुलसी की भक्ति का आधार ज्ञान है। वे भक्त होने के साथ दार्शनिक कवि भी हैं। उनके लिए ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों हैं ; ब्रह्म संसार से परे नहीं है, वह प्रत्यक्ष जगत् में व्याप्त है। संसार को रचनेवाली शक्ति विद्या है, अविद्या नहीं ; वह मनुष्य के लिए श्रेयस्करी है। राम ब्रह्म हैं तो सीता आदि शक्ति हैं। जीव ब्रह्म का ही अंश है। तुलसी का यह लोकोन्मुख दर्शन है जिसके कारण वे संसार के विभिन्न व्यापारों, अपने तथा अन्य मनुष्यों के दुखों का वर्णन करते हैं। उनकी भक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध मानवीय सहानुभूति और करुणा से है। इसीलिए वे उसके द्वारा उच्चकोटि के मानवतावाद की प्रतिष्ठा करते हैं। वे अपने जीवन में भक्ति द्वारा किये जानेवाले परिवर्तन का उल्लेख करते हैं और भक्त को भगवान से भी बड़ा कहकर मनुष्य की महत्ता की घोषणा करते हैं। इसी कारण उनकी भक्ति का महत्व सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी का जीवन-दर्शन | डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव

मंत्रद्रष्टा गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व भारतीय जन-जीवन तथा विश्व-चेतना के सांस्कृतिक इतिहास में अप्रतिम ज्योति-शिखर के रूप में प्रतिष्ठित है। जीवन और जगत के बाह्य एवं आभ्यंतर सत्य को उन्होंने निकट से परखा था और नानारूपात्मक प्रकृति के बहुरंगी आकर्षण एवं सम्मोहन के पीछे झांकती हुई विराट चिन्मय सत्ता का सम्यक् साक्षात्कार किया था। धरती के स्थूल भौतिक क्रिया-व्यापारों से लेकर आध्यात्मिक आकाश के सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्पंदनों तथा उनकी अनुभूति का क्षेत्र संचरणशील था। लोक और शास्त्र के व्यापक अनुशीलन से अनुप्राणित उनकी मेधा सच्चे अर्थों में ऋतम्भरा-प्रज्ञा के रूप में उदात्त भव्यता से आलोकित थी। श्रोत्रिय का हस्तामलक ज्ञान-वैभव तथा ब्रह्मनिष्ठ का सतत ऊर्जस्वी वर्चस्व उनकी प्रतिभा में सहज ही विद्यमान था। नित्य नवोन्मेषशालिनी सृजन-शक्ति से समृद्ध उनकी रागात्मिका वृत्ति व्यष्टिगत संस्कार की एकनिष्ठता तथा समष्टिगत अभिरुचि की विविधरूपता को आत्मसात् कर सकी थी। मानवीय आस्थाओं और विश्वासों की सुदीर्घ परम्परा के साथ-साथ इतिहास के प्रगतिशील संचरणों की गतिविधि को पहचानने और अपनाने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। यही कारण है कि उनकी जीवनदृष्टि के विस्तार तथा युग की परिधि को समेटती हुई भी युग की सीमाओं का अतिक्रमण करती हुई उन्हें एक भविष्यदर्शी लोकनायक का अभिनंदनीय स्वरूप प्रदान कर सकी है।

तुलसी का जीवन-दर्शन सत्यद्रष्टा और सौन्दर्यस्रष्टा का दर्शन है, जो प्रेम-सौन्दर्य के माध्यम से श्रेयमय चरम सत्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति करता है। यह एक भक्त-ऋषि का दर्शन है, जो कोरे बौद्धिक विचारक और मतवादी चिन्तक के जटिल ऊहापोह और मानसी विकल्पोंके प्रपंच से परे चराचर-व्यापिनी मंगलमय परम सत्ता के चिद्विलास का साक्षात्कार करता और कराता चला है। उनकी दार्शनिक धारणाओं को किसी विशिष्ट मतवाद की संकुचित सीमाओं के भीतर मापना और परखना न तो उचित ही है और न आवश्यक ही। ऐसा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रयास उनकी अतलस्पर्शिनी व्यापक जीवनदृष्टि के साथ न्याय नहीं कर सकेगा। तुलसी वस्तुत: मतवादी कोटि के दार्शनिक थे भी नहीं। उनमें दार्शनिकता का पुट जहाँ-जहाँ मिलता है वह उनकी भक्तिभावनापरक दृष्टिकोण के ही संपोषण के लिए, उसे एक प्रौढ़ वैचारिक आधार देने के लिए है। लक्ष्य सर्वत्र भक्ति ही है, उसी की सिद्धि हेतु विचारणा भी अग्रसर हुई है। यह बात दूसरी है कि तुलसी की भक्ति का स्वरूप इतना व्यापक है कि उसके सम्यक् निर्वाह में लोकजीवन के समग्र नैतिक एवं सांस्कृतिक आचार पक्ष का सहज समाहार हो जाता है। तुलसी का भक्ति-दर्शन स्वयं अपने आप में एक समग्र जीवनदृष्टि से परिपूर्ण है, जिसमें एक ओर कर्म, ज्ञान और उपासना का सारतत्व आ जाता है, तो दूसरी ओर व्यक्तिगत ऐकान्तिक साधना तथा समष्टिगत लोकसंग्रह का समन्वित आदर्श चरितार्थ हो गया है।

तुलसी का जीवन-दर्शन प्राचीन वैदिक ऋषियों एवं मुनियों के उस विराट आदर्श से प्रेरणा ग्रहण करता है, जो अभ्युदय और नि:श्रेयस के संसिद्धिकारी धर्म-चेतना के संरक्षण के प्रति निष्ठावान रहा है। नानापुराणनिगमागमसम्मत उनका रामचरितमानस इसी भव्य जीवन-दर्शन का मूर्तिमान बिंब है। विनय-पत्रिका उनके निजी ऐकांतिक जीवन-दृष्टि की सिद्धान्त-गीता है, तो मानस उनके विश्वजनीन सामाजिक दर्शन की 'आचार संहिता।' कवितावली के उत्तरकांड तथा दोहावली में युग-चेतना के प्रति उनकी अनेक धारणाओं और प्रतिक्रियाओं के स्फुट संकेत बिखरे हुए हैं। इस प्रकार तुलसी का जीवन-दर्शन विशिष्ट संदर्भों में उनकी विभिन्न कृतियों में अभिव्यक्त हुआ है।

तुलसी के जीवन-दर्शन का अनुशीलन कई दृष्टियों से संभव है। एक तो उसका सैद्धान्तिक पक्ष है, जिसके अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत और माया आदि के संबंध में तुलसी की मान्यताओं का निरूपण आ जाता है और दूसरा उसका व्यावहारिक पक्ष है, जिसके अन्तर्गत नीति, धर्म, परिवार, समाज, आचार, अध्यात्म आदि विभिन्न संदर्भों में चर्चित आचारों और क्रिया-व्यापारों का प्रतिपादन आता है। व्यावहारिक पक्ष के भी दो स्थूल विभाग संभव हैं—१—निजी व्यक्तिगत साधनापरक आदर्श और २—लोकसंग्रहपरक सामाजिक विचारधारा। इन दोनों क्षेत्रों में प्रेम, सौन्दर्य, दु:ख-सुख, साधन और साध्य आदि के स्वरूप का चित्रण भी समाविष्ट हो जाता है।

भक्त तुलसी की दृष्टि में इस जीवन के चरम लक्ष्य और प्रतिपाद्य राघवेन्द्र भगवान् राम हैं, जो परमार्थरूप साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं और नित्य सच्चिदानंद-स्वरूप हैं। वे सर्वतंत्र स्वतंत्र परमेश्वर परमात्मा हैं, जिनका स्वरूप मन, वाणी और बुद्धि से परे है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अविगत अलख अनादि अनूपा ।
सकल विकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहिं वेदा ।
राo २।११६

राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहि तहँ मोह निसा लवलेसा ।
सहज प्रकास रूप भगवाना । नहि तहँ पुनि विग्यान विहाना ।।
राo २।११६

राम सो परमातमा भवानी । राo १।११९

राम स्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धिपर । राo २।१२३

अनादि राम ही सारी इन्द्रियों के अधिष्ठाता, देवों तथा जीवों के परम प्रकाशक हैं, मायाधीश ज्ञान और गुण के धाम हैं। यह सारा जगत प्रकाश रूप है, उसके प्रकाशक भगवान् राम ही हैं—

विषय करन सुर जीव समेता । सकल एक तें एक सचेता ।
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ।
जगत् प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ।।
राo १।११७

तुलसी के राम ज्ञानियों के परमब्रह्म हैं, योगियों के परमात्मा हैं तथा भक्तों के भगवान् भी। वे एक साथ ही अवतारी भी हैं, अवतार भी। सारी चराचर सृष्टि के नियामक होते हुए, समस्त आकारों से परे रहते हुए भी वे भक्तों के प्रति प्रेमाधीन होकर दशरथसुत राघवेन्द्र राम के नर-रूप में लीलार्थ-अवतरित होते हैं। अवतारवाद तुलसी के जीवन-दर्शन का मेरुदण्ड है। वे उस परब्रह्म के उपासक हैं जो अपने चिदानन्द-स्वरूप में ही नहीं रमण करता, वरन् जो धरती की पीड़ा, मानवता की पुकार के प्रति भी निरंतर जागरूक रहता है। वह नित्य सभी के उर में निवास करने वाला 'अगजगमय' है और प्रेम के संवेग से प्रत्यक्ष होकर धर्म-संरक्षण तथा लोकरंजन के हेतु देहधारी होकर अपनी ललित लीलाओं और आदर्श आचरणों द्वारा लोक में आनंद और मर्यादा की प्रतिष्ठा करता है। तुलसी का जीवन-दर्शन किसी ऐसे परमात्मा का प्रतिपादक नहीं है, जो कभी धरती पर अवतरित ही नहीं हो सकता। उनका सारा रामचरितमानस वस्तुतः इसी अवतारवाद के जनव्यापी संदेश का प्रतिष्ठापक महाकाव्य है, इस अवतार-वाद के पीछे तुलसी का मानवतावादी दृष्टिकोण भी विद्यमान है जो परमात्मा को देवत्व की रक्षार्थ मानव-देह धारण करने को प्रेरित करता है। मनुजरूपधारी भगवान के अवतार को जो परमात्मा से अन्य सामान्य नर समझता है, उसके प्रति तुलसी की वाणी बड़ी कठोर है। पार्वती के जरा से संदेह पर अवतारवाद के आचार्य भगवान शंकर रोषावेश में आकर जो कड़ी फटकार सुनाते हैं, वह वस्तुतः

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपने युग के उन सभी के प्रति तुलसी की फटकार है, जो अवतारवाद के विश्वास के खंडन में प्रवृत्त थे। इस प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

एक बात नहिं मोहिं सोहानी । जदपि मोह बस कहेहु भवानी ।।
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना । जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ।।

कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषण्डी हरि पद विमुख जानहिं झूठ न साच ।।

अग्य अकोविद अंध अभागी । काई विषय मुकर मन लागी ।।
लंपट कपटी कुटिल विसेषी । सपनेहु संतसभा नहिं देखी ।।
कहहिं ते वेद असंमत बानी । जिन्ह के सूझ लाभु नहिं हानी ।।
मुकुर मलिन अरु नयन विहीना । राम रूप देखहिं किमि दीना ।
जिन्ह के अगुन न सगुन विवेका । जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ।।
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं । तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं ।।
बातुल भूत बिबस मतवारे । ते नहि बोलहिं बचन बिचारे ।
जिन्ह कृत महामोह मद पाना । तिन्ह कर कहा करिअ नहि काना ।

रा० १।११४

स्पष्ट है कि तुलसी उन सभी व्यक्तियों को मोहग्रस्त पाषण्डी, अज्ञ, अकोविद और अभागा समझते हैं, जो राम को परमब्रह्म परमात्मा से भिन्न समझते हैं। यहाँ **दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना । राम नाम का मरम है आना ।** की पुकार लगानेवाले निर्गुनिया संतों के अवतार-विरोधी प्रचार पर भी तुलसी का व्यंग्य परोक्ष रूप में मुखर हुआ है। अवतारविरोधी दृष्टिकोण के लिए तुलसी के जीवन-दर्शन में कोई स्थान नहीं। अलख जगानेवाले जोगियों को दी हुई उनकी फटकार भी अवतार और धरती के प्रत्यक्ष सत्य के दर्शन की ओर एक सबल संकेत स्वर है—

हम लखि लखहि हमार लखु हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जपु नीच।

दोहावली, १९

तुलसी की जीवन-दृष्टि अन्तर्यामी भगवान में आस्था रखती है, पर उससे भी अधिक उनकी निष्ठा 'बाहिरजामी' राम में है जिनके द्वारा प्रत्यक्ष सक्रिय रूप में भगवान की सर्वशक्तिमत्ता और भक्तवत्सलता का उद्घाटन संभव होता है। कवितावली में ब्रह्म की प्रत्यक्ष शक्तिमत्ता के साक्षात्कार पर बल देनेवाली तुलसी की यह वाणी उनकी व्यावहारिक जीवनदृष्टि की परिचायिका है—

अंतर्जामिहु ते बड़ बाहरजामि हैं राम जे नाम लिये तें।
धावत धेनु पेन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तें।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिये की न बावरि बात बिये तें।
पैंज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन ते, न हिये तें।

क० १२९

अन्तर्यामी राम से भी बहिर्यामीराम की भक्त-वत्सलता को महत्व देने वाली यह जीवनदृष्टि तुलसी के प्रत्यक्षधर्मी आदर्श की द्योतक है।

जीव को स्वरूपेण, तुलसी ईश्वर का अविनाशी अंश, अत: चैतन्य, अमल, सहज सुख की राशि मानते हैं, यद्यपि माया के वशीभूत होने पर वह अहंकार और अज्ञान के बंधन में पड़ कर, हर्ष, विषाद आदि के द्वन्द्व से ग्रस्त रहता है—

ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो मायाबस भयउ गोसाईं। बंध्यों कीट मर्कट की नाईं॥

रा० ७।११७

हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥

रा० १।११६

माया को तुलसी ईश्वर की ही वशीभूत शक्ति मानते हैं, जिसके दो भेद हैं १—अविद्या माया और २—विद्यामाया। अविद्या माया जीवन को बंधन में डाल कर दुखमय भवकूप में निमग्न रखती है और विद्या माया प्रभु की प्रेरणा से सृष्टि की रचना करती है। मैं, मोर, तोर, तैं, के काल्पनिक गोचर संबंधों का सम्मोहक प्रपंच ही माया है। तुलसी के राम के ही शब्दों में—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया॥
गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहिं कर भेद सुनुहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥

रा० ३।१५

इस माया का निराकरण तुलसी की दृष्टि में भक्ति द्वारा ही संभव है। माया भगवान् की नर्तकी की भांति है और भक्ति उनकी प्रियतमा, जिससे माया भयभीत रहती है और जिसके उर में अबाध रूप से रामभक्ति का निवास होता है, उसे देख कर माया सकुचाती है और अपना बल नहीं दिखा पाती। अत: विज्ञानी मुनि समस्त सुख की खानि भक्ति की ही याचना करते हैं—

पुनि रघुबीरहिं भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ।।
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी । जाचहिं भगति सकल सुख खानी ।।

रा० ७।११६

जगत् के विषय में तुलसी की मान्यता है कि उसका एक रूप तो भव-संसृति अथवा संसार है, जो बंधनकारी है, अतः दुख का हेतु है, मिथ्या एवं निस्सार होते हुए भी अज्ञानवश मायिक आवरण के कारण सत्य सा दिखता है और एक रूप वह है जो ब्रह्ममय दृष्टि में चिद्विलास अर्थात् परम सत्ता की चिन्मय लीला है। पहला रूप अर्थात् संसार जड़ माया का प्रपंच है और दूसरा रूप भगवच्चैतन्य का ही विस्तार है। संसार का स्वरूप विनयपत्रिका के निम्नलिखित पद में द्रष्टव्य है—

मैं तोहि अब जान्यो संसार।
बांधि न सकहि मोहि हरि के बल प्रगट कपट-आगार।
देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि किये विचार।
ज्यों कदलीतरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार।
तेरे लिए जनम अनेक मैं फिरत न पायो पार।
महामोह-मृगजल-सरिता महँ बोर्‌यो हौं बारहि बार।

वि० १८८

अथवा कवितावली के अन्तर्गत :—

झूठो है झूठो है झूठो सदा जग संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक काढ़त दंत करंत हहा है।

क० ७।३९

वस्तुतः जगत् का निवास सूक्ष्म रूप से मन में ही है। नाना प्रकार के रूप-रंग इस मन के भीतर ही लीन रहते हैं, जो अवसर पाकर आविर्भूत होते रहते हैं—

असन बसन बहु वस्तु विविध विधि सब मनि महँ रह जैसे।
सरग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे।
विटप मध्य पुत्रिका सूत्र महं कंचुकि बिनहिं बनाए।
मन महं तथा लीन नाना तनु प्रगटत अवसर पाए।।

वि० १८४

पर यह चिद्विलास जग बड़ा रहस्यमय है, बूझते-बूझते ही बूझने में आता है, वह रामभक्ति के जल से प्रक्षालित चित्त को अनायास ही सूझ जाता है—

रघुपति भगति-बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद्‌बिलास जग बूझत बूझत बूझै।।

बि० १८४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मानवशरीर को तुलसी एक देव-दुर्लभ उपलब्धि मानते हैं, और उस उपलब्धि की भी चरम उपलब्धि पारमार्थिक कल्याण, उन्हीं के शब्दों में, भवसागर का संचरण है। उनकी मान्यता है कि मानव-योनि भगवान की अहैतुकी कृपा से प्राप्त होती है और उसको पाकर भी जो उच्चतम आदर्श एवं लक्ष्य की ओर अग्रसर नहीं होता, वह अभागा है—आत्महन्ता है। विनयपत्रिका तथा मानस की निम्नलिखित पंक्तियों में इस दृष्टिकोण की सबल अभिव्यक्ति हुई है—

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो।
साधन धाम विबुध दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों।

वि० १०२

स्वयं भगवान् राम के शब्दों में—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सदग्रन्थन्हि गावा।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक संवारा।।
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ।

रा० ७।४३

× × ×

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।
नर तनु भव बारिधि कहुं बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।
करनधार सद्गुरुदृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।
जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।

रा० ७।४४

तुलसी का जीवन-दर्शन कितना व्यावहारिक है, इसका प्रमाण उत्तरकांड के अन्तर्गत गरुड़ के सप्त प्रश्नों के उत्तर में कथित कागभुशुंडि के वचन हैं, जिनमें जीवन और जगत् के अनेक नैतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का सार आ गया है—गरुड़ के द्वारा उठाये गये प्रश्न विश्व के मानव-मात्र के मन में उठनेवाले प्रश्न हैं—ये सात प्रश्न है—१—सर्वाधिक दुर्लभ शरीर कौन है? २—सबसे बड़ा दुख क्या है? ३—सबसे बड़ा सुख क्या है? ४—संत और असंत का धर्म एवं सहज स्वभाव क्या है? ५—सबसे बड़ा पुण्य क्या है? ६—सबसे बड़ा पाप क्या है? ७—मानस रोग कौन-कौन से हैं।

उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—१—नर तन के समान कोई शरीर नहीं। साथ ही यह शरीर नरक, स्वर्ग और अपवर्ग सभी का सोपान बन सकता है, ज्ञान विराग और भक्ति का विकास इसी शरीर में संभव है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नर तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत जेही ।
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी । ग्यान विराग भगति सुभ देनी ।।

रा० ७।१२१

नरक, स्वर्ग, अपवर्ग की सीढ़ी कहकर तुलसी ने इस तथ्य पर बल दिया है कि मानव शरीर उपयोग के आधार पर पतन और उत्थान--दोनों का साधन हो सकता है। २--दरिद्रता के समान संसार में कोई दूसरा दुख नहीं--**नहि दरिद्र सम दुख जग माही** (रा० ७।१२१) समाज के स्थूल अभाव के प्रति भी तुलसी कितने जागरूक हैं, इसका बोध इस कथन से होता है। मानस के रूसी अनुवादक वरान्निकोव ने इसी पंक्ति को देखकर यह घोषित किया था कि इस प्रकार की बात एक जनवादी महाकवि के मुख से ही निकल सकती है। तुलसी ने अभाव और दारिद्र्य की पीड़ा की तीव्रता का अनुभव किया था। ३--संसार में संत समागम के समान दूसरा कोई सुख नहीं है। तुलसी जहाँ एक ओर दरिद्रता को सबसे बड़ा दुख कहते हैं, वहाँ वे समृद्धि मात्र को सबसे बड़ा सुख नहीं कह पाते। वे संत-मिलन को सर्वाधिक सुख के रूप में महत्व देते हैं, जिसके द्वारा मानव-जीवन चरम श्रेय की ओर अग्रसर होता है, जो सारी समृद्धियों का वास्तविक लक्ष्य है। इस प्रकार धरती की स्थूल पीड़ा से लेकर आध्यात्मिक समृद्धि की असीमता तक तुलसी की जीवन-दृष्टि का विस्तार रहा है--**संत-मिलन सम सुख जग नाहीं ।**

रा० ७।१२१

संत का सहज स्वभाव मनसा, वाचा, कर्मणा परोपकार-वृत्ति है। दूसरों के लिए दुख सहन करना उनकी प्रवृत्तिगत विशेषता है। वस्तुतः तुलसी की दृष्टि में परहित ही सबसे बड़ा धर्म है--**परहित सरिस धरम नहिं भाई ।**

जिस प्रकार संत जन परोपकार के लिए दुख सहते हैं, उसी प्रकार अभागी असंत जन का स्वभाव यह है कि वे पर दुख के लिए कष्ट सहते हैं--

संत सहहिं दुख परहित लागी ।
पर दुख हेतु, असंत अभागी ।
सन इव खल पर बंधन करई ।
खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई । रा० ७।१२१

× × ×

खल बिनु स्वारथ पर अपकारी ।।

बिना किसी स्वार्थ के रहने पर--अपकार में तत्पर रहना असंत की प्रकृतिगत विशेषता है। 'अहिंसा परम धर्म अथवा परम पुण्य है तथा परनिंदा के समान कोई भारी पाप नहीं है।

परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गरीसा ।।

रा० ७।१२१

5

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार 'अहिंसा परमो धर्मः' का विश्वमैत्रीमय स्वर तुलसी के जीवन-दर्शन में मुखरित हुआ है।

७——मानस रोगों की चर्चा करते हुए मोह को सकल मानसिक व्याधियों का मूल कहा है और उसी के परिणामस्वरूप उभरने वाले काम, क्रोध, अहंकार, तृष्णा, मत्सर आदि कुरोगों का उल्लेख करते हुए अन्ततः सदगुरु के संपर्क से प्राप्त होने वाली रामभक्ति द्वारा उनका नाश संभव माना गया है।

तुलसी ने एक आदर्श मानव का स्वरूप संत के भीतर देखा है। उनका संत सारे नैतिक सदगुणों का सहज पुंज है। समता, सरलता और परोपकार-वृत्ति उसके आचार में स्वतः सिद्ध है। संत स्वभाव को ही 'आदर्श रहनी' मानकर स्वयं तुलसी उसको अपने जीवन में उतारने को लालायित रहे हैं——

'विनयपत्रिका' में इसी स्पृहणीय संत-स्वभाव का सजीव चित्र खींचते हुए वे कह उठते हैं——

कबहुँक हौं यहि रहिनि रहौंगो?
श्री रघुबीर कृपालु कृपा ते संत सुभाव गहौंगो।
यथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
पर हित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम सीतल मन, पर-गुण नहिं दोष कहौंगो,
परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो।।

वि० १७२

तुलसी का जीवन-दर्शन एक पूर्ण दर्शन है, वह कहीं भी एकांगी नहीं। वह जीवन और जगत् के सभी बाह्य और अन्तरंग पक्षों की समृद्धि को आत्मसात् किये हैं। एक ओर उन्होंने श्रुतिसम्मत वर्णाश्रम व्यवस्था की मर्यादा पर बल दिया है, तो दूसरी ओर उन्होंने भक्ति के नाते सभी प्राणियों के समान स्नेह और सम्मान पर बल दिया है। एक ओर नारियों के पातिव्रत धर्म का गुणगान किया है तो दूसरी ओर पुरुषों के एकनारीव्रत की महिमा चरितार्थ की है, एक ओर सामान्य लोकधर्म का चित्र खींचा है तो दूसरी ओर उदात्त प्रेरणाओं के संरक्षक व्यक्तिगत विशेष धर्म का भी निर्वाह किया है। एक ओर उनका ध्यान सदाचार के पूर्ण वैभव पर है तो दूसरी ओर शारीरिक स्वास्थ्य और रूप-सौन्दर्य पर भी है। एक ओर शक्तिमत्ता का प्राचुर्य है तो दूसरी ओर सुकुमार शील-तत्व की प्रतिष्ठा भी है। तुलसी के 'रामराज्य' में जिस आदर्श समाज का चित्रण हुआ है, वह उनके व्यावहारिक जीवन-दर्शन की पूर्णता का परिचायक है। ऐसे समाज की स्थापना, जहाँ कोई दरिद्र नहीं, कोई दुखी नहीं, कोई दीन नहीं, कोई बुद्धिहीन नहीं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोई सदाचारविहीन नहीं, उनका लक्ष्य है। उनके आदर्श-समाज में सभी नर नारी निर्दम्भ, सभी धर्मवान्, पुण्यवान्, चतुर, गुणी, गुणज्ञ, ज्ञानी, कृतज्ञ और निष्कपट हैं। काल कर्म, स्वभाव और गुण की विषमता से उत्पन्न दुखों की ऐसे समाज में कोई स्थिति ही नहीं है। सभी उदार एवं परोपकारी हैं। सभी दीर्घायु, सुन्दर और स्वस्थ हैं। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

सब नर करहिं परसपर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिहुं पीरा। सब सुन्दर सब विरुज सरीरा।।

× × ×

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दम्भ धर्मरत धुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।
राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन-कृत दुख काहुहि नाहिं।।

रा० ७।२१

× × ×

सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरन सेवक नर नारी।
एक नारिव्रत रत सब झारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी।।

रा० ७।२२

तुलसी का विश्वास है कि मानव तथा मानवों का नेता चरित्रवान होता है, तो बाह्य प्रकृति भी सहज ही उसके लिए सब प्रकार के वैभव विखेर देती है—सुबेल पर्वत पर राम आते हैं, तो सभी तरु अनायास कालगति त्याग कर सभी ऋतुओं में फलदायी हो जाते हैं—

सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु कालगति त्यागी।

रा० ६।५

राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम के चारित्र्य के प्रताप से ही समाज और प्रकृत्ति की सारी विषमता विलीन हो जाती है—और सारी प्रकृति मानव की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति सहज ही करती रहती है—

बयरु न कर काहु सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।
वरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग।।

रा० ७।२०

भय, शोक, रोग से सर्वथा मुक्त सुखी समाज, भगवान राम के परम आदर्श स्वभाव का ही परिणाम है, जिनमें जगदातमा की पूर्ण प्रवृत्ति का अविर्भाव हुआ है। तुलसी के जीवन-दर्शन के अनुसार राम स्वय चरम परात्पर ब्रह्म के अवतार हैं,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और रामत्व परम आदर्श है, जिसकी अवतारणा द्वारा ही जीवन और जगत् की सारी प्रकृति में पूर्णता का विकास संभव है। तुलसी का जीवन दर्शन परम व्यावहारिक है, जो इसी जीवन में भव्य आदर्श की चरितार्थता का आनन्द देने वाली रहनी पर बल देता है, उनकी स्पष्ट घोषणा है—

को जानै को जैहे जमपुर को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहिं बहुत भली लागत जग जीवन राम गुलाम को।।

वि० १५५

व्यष्टि और समष्टि के सारे ऐकान्तिक और सामाजिक आदर्शों को आत्मसात् करते हुए भी तुलसी की जीवन दृष्टि मूलत: एक भक्त की अर्न्तदृष्टि है, जिसके अनुसार 'राजीव लोचन' भगवान राम के परिचय के विना सारी समृद्धि एक विडम्बना मात्र है। उनको जाने बिना सौन्दर्य, यश, शील, सम्मान, सत्य-वादिता, महत्ता, राजसत्ता, मनन, वक्तृत्व और चिरजीविता आदि सभी व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं—

काम से रूप प्रताप दिनेस से, सोम से सील, गनेस से माने।
हरिचंद से साँचे, बड़े विधि से, मघवा से महीप विषै सुख साने।
सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस से अधिकाने।
ऐसे भए तो कहा तुलसी जु पै राजिवलोचन राम न जाने।

क० ७।४३

सारजीवन, सारी प्रकृति राममय हो जाय—एक एक क्रिया-व्यापार प्राप्य राम के प्रति अर्पित हो जाय, यही तुलसी की दृष्टि में जीवन का वास्तविक फल है—

सिय राम सरूप अगाध अनूप विलोचन मीनन को जलु है।
श्रुति राम कथा, मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहि को थलु है।
मति रामहि सो, गति रामहि सो, रति राम सो, रामहि को बलु है।
सब की न कहै, तुलसी के मते इतनो जगजीवन को फलु है।।

क० ७।३७

इस प्रकार तुलसी का जीवन-दर्शन प्रगाढ़ लोकानुभव और गहन स्वाध्याय का ही नहीं, वरन् सतत साधना और दिव्य आत्मसिद्धि की परिपक्व विचारभूमि पर प्रतिष्ठित है। उसमें निजी ऐकान्तिक प्रेरणा का ऊर्ध्वारोहण और जन-मानस की बहुमुखी चेतना का सर्वोदयी संचरण समान ऊर्जा के साथ प्रतिफलित हुआ है। उनके मर्यादा पुरुषोत्तम राम परात्पर ब्रह्म के नरावतार होने के साथ-साथ एक सार्वभौम आदर्श और लक्ष्य के अप्रतिम प्रतीक हैं। उनके चराचर-व्यापी चिन्मय स्वरूप के अनुरूप ही उनके अनन्य नैष्ठिक भक्त और मनीषी मंत्र-द्रष्टा विश्वकवि तुलसी का वरणीय जीवनदर्शन भी युग-युग की मानवता के लिए एक अनमोल निधि और लोकोत्तर सांस्कृतिक उपलब्धि है। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामान्यजन के दृश्य और तुलसी | डॉ० प्रेमशंकर

तुलसी अपने समय और समाज के सम्पूर्ण यथार्थ का विवरण, वृत्तान्त प्रस्तुत करने में अधिक रुचि लेते नहीं दिखाई देते और उनकी रचनाओं में जो असंख्य संकेत बिखरे हुए हैं, उन्हीं के सहारे उस जीवन-यथार्थ को पकड़ना होगा, जिसे तुलसी चित्रित करना चाहते हैं। राम की कथा दो स्थलों से विशेष सम्बन्ध रखती है---एक ओर अयोध्या का नगर समाज है, जो राम-सीता-विवाह के माध्यम से मिथिला से भी जुड़ जाता है। दूसरी ओर ग्राम और वन्य समाज हैं, जहाँ राम वनवास के दिन काटते हैं। इसके अतिरिक्त रावण की स्वर्णपुरी लंका भी है। अयोध्या, मिथिला और यहाँ तक कि लंका के दृश्यों से गुजरते हुए तुलसी की दृष्टि नगर पर उतनी नहीं है, जितनी वहाँ के जनसमाज पर और वह भी सामान्यजन पर। जहाँ तक सामाजिक प्रतिक्रियाओं का प्रश्न है, तुलसी इन्हीं की ओर देखते हैं। राजा दशरथ के घर पुत्र जन्मा है, तो उसमें केवल राजभवन ही सम्मिलित नहीं है, सामान्यजन भी :

गृह गृह बाज बधाव सुन प्रगटे सुषमा कंद,
हरषवंत सब जहं तहं नगर नारि नर वृंद।
कोसलपुर वासी नर नारि वृद्ध अरु बाल,
प्रानहुँ ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल।

राम के राज्याभिषेक का क्षण आता है, तो जनता सुखी होती है, पर वनवास की बात सुनते ही विषाद मग्न :---

पुनि भए विकल सकल नरनारी।
बेलि विटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहं सुनइ धुनइ सिरु सोई।
बड़ विषादु नहिं धीरजु होई॥

तुलसी ने इस अवसर पर अयोध्यावासियों की विस्तृत प्रतिक्रियाएँ दी हैं---

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुख सुखांहि लोचन स्रवहिं सोकु न हृदय समाइ। लोग कैकेयी को गाली देते हैं, जिसने बनी बात बिगाड़ दी। पापिन ने छाये भवन पर आग रख दी। अपने हाथ से अपनी आँख निकालकर देखना चाहती है :—**भइ रघुबंश बेनु बन आगी।** और दशरथ ने भी ठीक नहीं किया—**बरु विचार नहिं कुमतिहि दीन्हा।** यहाँ तक कि भरत की भी साजिश इसमें देखते हैं, जिसका अधिकांश जन प्रतिवाद करते हैं : **राम भरत कहुं प्रान पियारे।** जठेरी स्त्रियां भी इसमें सम्मिलित हैं—कैकेयी की भर्त्सना करते हुए। लगभग सारे समाज को तुलसी ने सड़क, चौराहे, गली-कचों पर लाकर खड़ा कर दिया है और शेष को राजभवन से बाहर लाकर सामान्यजन तक फैला दिया है :—**नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी।** अयोध्या की जनता राम के साथ ही वनवास भोगना चाहती है : **बालक वृद्ध विहाइ गृह लगे लोग सब साथ।** चौदह वर्ष तक अयोध्या दर्द में डूबी रहती है और जब राम अयोध्या लौटते हैं, तब जनता की उत्सुकता: **बहुतक चढ़ी अटारिन्ह, निरखहिं गगन विमान।**

जनकपुरी में विदेह कन्या का विवाह है, सामान्यजन उसमें पूरी दिलचस्पी ले रहे हैं। राम-लक्ष्मण जनकपुरी देखने के लिए जाते हैं तो **आए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी** और स्त्रियों की तरह-तरह बातें कि राजा इन्हें देख लें, तो प्रतिज्ञा को एक किनारे रख इन्हीं से सीता का विवाह कर दें, आदि। 'जानकीमंगल' की तो रचना ही सामान्यजन की प्रेरणा से हुई है। मानस के बालकांड के अन्त में बारात का विस्तृत वर्णन तुलसी ने किया है जहाँ कथा लगभग ठहर गयी है, पर जानकीमंगल में साधारणजन उपस्थित हैं : **दुलह दुलहिनिन्ह देखि नारि नर हरषहिं** और' **लै लै नाउं सुआसिनि मंगल गावहिं, कुंवर कुंवरि हित गनपत गौरि पुजावहिं।** पार्वतीमंगल और रामलला नहछू में निश्चित ही तुलसी के सामने उनका सामान्यजन बराबर उपस्थित रहा है। ग्रामजन की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में हुई है, पर प्राय: समीक्षक वनमार्ग में जाते हुए राम-सीता-लक्ष्मण के प्रति उनकी भावना को मार्मिक प्रसंग के रूप में उद्धृत करते हैं। यहाँ कवि राम को अयोध्या अथवा जनकपुरी की नगर-सभ्यता से हटाकर ग्रामजन तथा आदिवासियों के बीच उपस्थित करता है। निषादराज गुह जब राम के आगमन का समाचार पाता है, तो वह तत्काल सेवा में प्रस्तुत हो जाता है। राम-सीता को घास-फूस पर सोते देख उसकी आँखों में करुणा का जल भर आता है। वह नहीं चाहता कि राम उसे छोड़कर जाएं, सोचता है : चरण रज पा लूँ तो जीवन सार्थक हो जाय। सहज सीधी भाषा में कहता है, चरण पखार लूँ, तब नौका पर चढाऊँ। मेरी पूंजी ही क्या है? पत्तल भर मछली, छोटे-छोटे बच्चे। केवट जाति का हूँ, वेद तो पढ़ाऊँगा नहीं, सारा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परिवार इसी नौका से तो जीविका पाता है, दीन-वित्तहीन हूँ, दूसरी कहाँ से पाऊँगा ?

एहि घाट ते थोरिक दूरि अहै कटि लौं जलु थाह देखाइहौं जू
परसे पगधूरि तरै तरनी घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू
तुलसी अवलम्ब न और कछू लरिका केहि भांति जियाइहौं जू
बरु मारिये मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू।

इसी क्रम में ग्रामबधुओं की प्रतिक्रियाएं हैं––जिनकी चर्चा प्रायः समीक्षकों द्वारा की जाती है। मानस, कवितावली, गीतावली में लगभग समान रागात्मकता से तुलसी ने इस दृश्य को उपस्थित किया है। ग्राम की सरल-स्वभावा नारियाँ कहती हैं : **ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन-बालक ऐसे।** उन्हें अपनी सीमाओं का बोध है, विनयपूर्वक सीता से कहती हैं : **स्वामिनि अविनय छमबि हमारी। बिलगु न मानव जानि गंवारी।** और फिर उनकी सहज जिज्ञासा : **कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को आंहि तुम्हारे।** 'कवितावली' में ग्रामबधुओं की प्रतिक्रियाएं कई छन्दों में। ग्रामनारियां एक दूसरे से सहज भाव से बातचीत करती हुई कहती हैं : **पायन तै पनही न पयादेंहि क्यों चलिहें सकुचात हियो है।** वे कैकेयी को **पवि पाहन हू तें कठोर हियो है** कहती हैं। और :

ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आंखिन में सखि! राखिबे जोग इन्हें किमि कै बनवासु दियो है।

दोहावली में यह प्रसंग सबसे अधिक विस्तार प्राप्त करता है : लगभग पंद्रहवें पद से लेकर ४२ वें तक। सारी प्रतिक्रियाएं तुलसी ने ग्रामवासियों के पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम से व्यक्त की हैं। पहले वे पथिकों के सौन्दर्य पर मुग्ध होती हैं––कामदेव के साक्षात अवतार **मधुर मूरति मदनमोहन जोहन जोग** (पद १९)। सौन्दर्य जैसे यहाँ परिभाषित होता है, सखी कहती है : ये मनोहरता के भण्डार हैं : **स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ सुमुखि निरख भरि नैन** (पद २४)। इन्हें जी भर कर निहार लो। इस सौन्दर्य चित्र के बाद तुलसी हृदय में करुण-प्रसंग लाते हैं : वे माता-पिता, प्रिय-परिजन कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे सुन्दर बालकों को बन भेजा है (पद २४)। उनका कथन है––

पथिक पयादे जात पंकज से पाय हैं
मारग कठिन कुस-कंटक-निकाय हैं।

अथवा :

पानहीं न, चरन सरोजनि चलत मग
कानन पठाए पितु-मातु कैसे ही के हैं?

गीतावली में ग्रामबधुओं का प्रसंग तुलसी ने इतने विस्तार से दिया है कि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राम-सीता-लक्ष्मण के चले जाने पर सखी कहती है **नीके कै मैं न विलोकन पाए।** जाहिर है, प्राणों की तृप्ति नहीं हुई। वे पथिक लौट कर क्यों नहीं आए? (पद ३६) और इस प्रसंग में वनकन्याएं-किरातिनियां सम्मिलित हैं (पद ४२), जिससे स्पष्ट है कि तुलसी के अनुभव-संसार में सामान्यजन बराबर उपस्थित हैं। इसका एक प्रमाण लंकापुरी से भी देना उचित होगा। कवितावली का सुन्दर-काण्ड अशोकवन के वर्णन से आरम्भ होता है और तीसरे कवित में लंका-दहन का दृश्य है। इस अवसर पर पहले तो कौतुक के लिए **बाल किलकारी-कै-कै, तारी दै-दै गारी देत, पांछे लागे, बाजन निसान ढोल तूर हैं** (कवित ३)। पर लंका जलती देखकर राक्षसिनियां ही कहती हैं : **बार-बार कह्यौ पिय, कपि सों न लागि रे** (कवित १२)। मानस के लंकाकाण्ड में मेघनाद जब लक्ष्मण के हाथों मारा जाता है, उस समय की स्थिति है कि जनता भी रावण को नीच कहते लगती है :

मंदोदरी रुदन कर भारी। उर ताड़न बहु भांति पुकारी
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधर पोचा।

तुलसी की रचनाओं में सामान्यजन विभिन्न रूपों में उपस्थित है और कवि उनकी सहज प्रतिक्रियाओं को स्थान देता है। जीवन की अनेक स्थितियों को तुलसी ने रामकथा के द्वारा प्रस्तुत करना चाहा है, यद्यपि यहाँ स्वीकारना होगा कि यथार्थपरक दृश्यों के बावजूद उनकी दृष्टि आदर्शवादी है। इसीलिए कई बार व स्थल बरा दिये गये हैं, या उनका तार्किक समाधान खोज लिया गया है, जिन्हें कवि सामाजिक मर्यादा की उसकी अपनी आदर्शवादी दृष्टि के विपरीत पाता है। प्रायः रामचरितमानस में सौन्दर्य, शृंगार के दृश्यों के विस्तार में कवि नहीं जाता, यही कह कर काम चलाता है **गिरा अनयन, नयन बिनु बानी**—अथवा **सिय सुन्दरता बरनि न जाई। लघुमति बहुत मनोहरताई।** नीति, मर्यादा, आदर्श के कारण शृंगार के दृश्य भी संयमित हैं, पर कवितावली अथवा गीतावली में तुलसी निश्चय ही अधिक उन्मुक्त हैं। जनकपुरी का दृश्य है : **रंगभूमि आए दसरथ के किसोर हैं।** ऐसी स्थिति में उन्हें देखने के लिए जैसे जनसमूह उमड़ा पड़ रहा है : **पेखनों सो पेखुन चले हैं, पुर नर नारि, बारे-बूढ़े, अंध-पंगु करत निहोर हैं** (गीतावली : बालकाण्ड ७३)। जब से राम लक्ष्मण को देखा है, सब जैसे विदेह हो गये हैं—सौन्दर्यमग्न। मिथिलावासियों के माध्यम से राम-सीता-दम्पति का चित्र है :

दूलह राम सीय दुलही री
घन-दामिनि वर वरन, हरनमन, सुन्दरता नखसिख निबही री।
ब्याह विभूषन-वसन-विभूषित सखि अवली लखि ठगि सी रही री।
जीवन जनम लाहु लोचनफल इतनोइ लह्यो आजु सही री।
सुखमा सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही री।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मथि माखन सिथ राम संवारे, सकल भुवन छवि मनहु मही री।
तुलसिदास जोरी देखत सुख-सोभा अतुल न जात कही री।
रूप रासि बिरची विरंचि मनो, सिला लवनि रति काम लही री।

तुलसी इस विषय में सजग थे कि अपनी मर्यादा दृष्टि के कारण यदि वे शृंगार का निषेध कर देंगे तो जीवनदृश्य अधूरे रह जायेंगे और फिर उनकी रचनाएं जीवन वैविध्य का दावा नहीं कर सकेंगी। इसीलिए उन्होंने कवितावली, दोहावली के अतिरिक्त जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, रामललानहछू आदि में लोक-मानस को खुली भूमि पर प्रस्तुत किया और इस कार्य में लोक-उपादानों की सहायता ली——लोककथा, लोक जीवन, लोकोक्तियां आदि। उनकी चेष्टा है कि वैवाहिक कार्यक्रम का मध्यकालीन दृश्य सजीव हो जाय। 'जानकीमंगल' में कन्यादान, सिन्दूर वन्दन, होम, जुआ आदि रीति-रिवाजों का उल्लेख है। कौसल्या आदि 'परिछन' तथा 'निछावरि' करती हैं। 'पार्वतीमंगल' में पहले पार्वती (अपर्णा) की तपस्या है फिर विवाह के दृश्य : वर की आरती उतारी जा रही है——**परिछन और पूजि कीन्ह मधुपर्क, अमिय अंचवायउ।** जनवासा का जिक्र है। यहाँ तक कि **जुआ खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहिं।** 'नहछू' का तो निर्माण ही जैसे सामान्यजन के लिए हुआ है——अहिरिनि से नाउनि तक सब राम के नहछू में सम्मिलित हैं :

बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो
बिहंसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो
अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवहि हो
उनरस जोवन देखि नृपति मन भावइ हो।

रूप सलोनि तंबोलिनि बीरा हाथहि हो
जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि साथहि हो
दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो
केसरि परम लगाइ सुगंधन बोरा हो।

मोचिनि बदन-संकोचिनि हीरा मागन हो
पनहि लिहै कर सोभित सुन्दर आंगन हो
बतिया सुघर मलिनिया सुन्दर गातहि हो
कनक रतनमनि मोर लिहै मुसकातहि हो।

कटि कै दर्शन बरिनिया छाता पानिहि हो
चन्द्रबदनि मृगलोचनि सब रसखानिहि हो
नैन बिसाल नउनिया भों चमकावइ हो
देह गारि रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मानस के बालकाण्ड में लगभग पचास दोहों तक राम-सीता, लक्ष्मण-उर्मिला, भरत-माण्डवी, शत्रुघ्न-श्रुतिकीर्ति के विवाह वर्णित हैं जिसमें सभी लोकाचारों का वर्णन है—बजते हुए ढोल-नगाड़े, आम, मौलश्री, कदली आदि के वृक्ष, हल्दी, दूब दही, फूल, पानी, सुपारी मांगलिक दृश्य उपस्थित करते हैं। पीत जनेउ, कर-मुद्रिका, पियर उपरना, मंजुल झौर सबसे वर की सूचना मिलती है। फिर भोज का सविस्तार वर्णन, जेवनार। पांवड़े बिछे हुए हैं, सबके पांव पखारे गये हैं, पनवारे पड़ने लगे, 'पंच कंवल करि जेवन लागे. . . . ।' सीता की विदाई का प्रसंग है—पहले राम की विनय फिर करुण दृश्य—

सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू । बोलि न सकहिं प्रेम बस सासू ।
हृदय लगाइ कुंअरि अब लीन्हीं । पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्हीं ।।
करि विनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै
बलि जाउं तात सुजान तुम्ह कहुं विदित गति सबकी अहै
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानवी
तुलसी सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानबी।

शकुन्तला की विदाई के ऐसे ही अवसर पर 'शाकुन्तलम्' में महर्षि कण्व ने अपनी व्यथा कही थी : शकुन्तला चली जायगी, यह सोचकर ही हृदय बैठा जा रहा है। आँसुओं के बाहर न आने से कण्ठ अवरुद्ध हो गया है—शब्द नहीं निकलते, इसी चिन्ता में आँखें धुंधली कर दी हैं। जब मुझ वन में रहने वाले को इतनी व्यथा हो रही है, तो उन गृहस्थों की क्या स्थिति होगी, जो पहली बार अपनी कन्या को विदा देते होंगे।

जीवन में प्रामाणिक दृश्य देने के कारण तुलसी की रचनाओं में लोक-विश्वासों और शकुन-अपशकुन आदि को भी स्थान मिला है। मांगलिक क्षण आनेवाला है, इसकी पूर्व सूचना शकुन के द्वारा दी जाती है। अयोध्या में बारात के प्रस्थान का दृश्य है, तो जैसे सारे शकुन एक साथ तुलसी ने उपस्थित कर दिए हैं :—

बनइ न बरनत बनी बराता । होंहि सगुन सुन्दर सुखदाता ।
चारा चाषु वाम दिसि लेई । मनहु सकल मंगल कहि देई ।।
दाहिन काग सुखेत सुहावा । नकुल दरस सब काहू पावा ।
सानुकूल बह त्रिविध बयारी । सघट सबाल आव बरनारी ।।
लोवा फिरि-फिरि दरसु देखावा । सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा ।
मृगमाला फिरि दाहिनि आई । मंगल गन जनु दीन्ह देखाई ।।
छेमकरी कह छेम विसेषी । स्यामा बाम सुतरु पर देखी ।
सनमुख आयउ दधि अरु मीना । कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना ।।
मंगलमय कल्याणमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार ।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रामकथा में जहाँ भी मांगलिक क्षण आने वाला होता है, शकुन की सूचना कवि देता है। सीता गौरी-पूजा को जाती हैं, तो उन्हें आशीश मिल जाती है : **जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हरषु न जाइ कहि, मंजुल मंगलमूल, बाम अंग फरकन लगे।** इसी प्रकार उधर रावण का वध होता है और इधर सीता के **फरकेउ वाम नयन अरु बाहू।** गीतावली के लंकाकाण्ड में मां कौशल्या राम की प्रतीक्षा में हैं : **बैठी सगुन मनावत माता** ऐ कौए बताओ मेरे बालक कब सकुशल घर लौटेंगे? राम-सीता, लक्ष्मण को जी भरकर देख लूंगी तो दूध-भात खिलाऊंगी, सोने से चोंच मढ़ा दूंगी। शकुन-अपशकुन, टोना-टटका मध्यकालीन जिन्दगी के अनिवार्य उपादान रहे हैं और तुलसी ने जीवन का चित्र पूरा करने के लिए उन्हें स्थान दिया है। माताएं बार-बार तिनका तोड़ती हैं कि बालकों को नजर न लग जाय—**र्दलि तृन, प्रान निछावरि करि करि लेहैं मातु बलैया,** आदि।

शकुन के साथ अपशकुन भी आये हैं—अमंगल की सूचना देनेवाले अयोध्या में अनर्थ आरम्भ होते ही भरत को कैसे पूर्व-सूचना मिल जाती है और नगर प्रवेश में ही अपशुकन :

अनरथ अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुं तब तें।
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहि कटु कोटि कलपना।

००　　　　००　　　　००

असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभांति कुखेत करारा।।
खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि-सुनि होइ भरत मन सूला।।
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा।

तुलसी अपशकुन-भरी स्थिति को सारे परिवेश से जोड़कर दृश्य को गहरा देते हैं—पुरजन मिलते हैं, पर बोलते कुछ नहीं, चुपके से जोहार करके चले जाते हैं, बस। भरत किसी से कुशल-समाचार भी पूछ नहीं सकते—भय, विषाद से भरे हुए। हाट-बाट तक देखे नहीं जा सकते, जैसे नगर में दावाग्नि लगी हो। यहाँ पर तुलसी ने लिखा है : **जनु पुर देह दिसि लागि दवारी।** क्या कवि दसों दिशाओं में लगी दावाग्नि से यह व्यंजित नहीं करना चाहता कि दसों दिशाओं में जिसका रथ निर्भय होकर जाता है, वह चक्रवर्ती दशरथ अब नहीं हैं? रावण जब युद्ध के लिए प्रस्थान करता है **असगुन अमित होहिं तेहि काला** (मानस : लंकाकाण्ड ७८।५)। मंदोदरी भी रावण को समझाते हुए कहती है, उसने भयानक स्वप्न देखा है। विभीषण से यह जानकर कि रावण के नाभिकुण्ड में अमृत का वास है और वह उसी के बल पर जीता है, राम कराल वाण हाथ में लेते हैं और रावण वध के ठीक पूर्व का दृश्य है :

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना।
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहं तहं केतू।।
दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रवि उपरागा।
मंदोदरि उर कंपित भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी।।
प्रतिमा रुदहिं पबि पात नभ अति बात बह डोलत मही।
बरसहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही?

तुलसी मध्यकाल में प्रचलित लोकविश्वासों को प्रस्तुत कर अपनी रचनाओं में सामयिक संदर्भ भरते हैं। आवश्यक नहीं कि इनके साथ उनकी आस्था भी हो। इसीलिए जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, विवाह से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार तक का उल्लेख उन्होंने किया है और वशिष्ठ इसका संचालन करते हैं। राम वन में भी पिता की मृत्यु के लिए शुद्धि करते हैं : **शुद्ध सो भयउ साधु संमत अस।** ये सभी विधान मध्यकालीन हिन्दू समाज के लिए हैं, जिसमें आस्था-अनास्था का प्रश्न तुलसी की जीवन-दृष्टि से जुड़ा है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जनकवि तुलसीदास | डॉ० राजकिशोर पाण्डेय

गोस्वामीजी पहले भक्त और बाद में कवि हैं। तुलसी की भक्ति एक ओर तो हमें आत्म शुद्धि का उपदेश देती है, दूसरी ओर लोकहित का सन्देश। वह केवल व्यक्तिगत साधना की वस्तु नहीं है। वह व्यक्ति को संसार छोड़कर जंगल में जाने का सन्देश नहीं देती, अपितु संसार में अपने कर्त्तव्यों के प्रति आकृष्ट करती है। इसीलिए रामचरितमानस का सन्त, लोक से उदासीन रहने वाला मनमौजी संत नहीं है। तुलसी के मत में सन्त वह है, जो भगवान राम के चरित्र को अपना चरित्र बनाता है और उनके शील, स्वभाव और गुण को अपनाकर अपने को लोक-हित में लीन कर देता है। रामचरितमानस में "पर हित" भक्त का सर्वश्रेष्ठ गुण बतलाया गया है। तुलसी का भक्त संसार के सभी जीवों को "सिया राम मय" देखता है। वह संसार के असंख्य प्राणियों को नंगा-भूखा देख, उन्हें विपत्ति में पाकर, केवल अपनी व्यक्तिगत साधना से सन्तुष्ट नहीं हो सकता। संसार के प्राणियों की आंखों के आंसू में उसे अपने इष्ट देव की आँखों के अश्रु विन्दु दिखलायी देते हैं और उनकी मुस्कराहट में वह अपने आराध्य की मनोहर मुस्कान देखता है।

गाँधीजी की भाँति रामचरितमानस का भक्त राजनीति को धर्म से अलग नहीं समझता। राजनीति और धर्म दोनों व्यक्ति और समाज के कल्याण के साधन हैं। "रामचरितमानस" में विश्वामित्र और वशिष्ट जैसे ऋषि समाज के शत्रुओं के साथ संघर्ष में तत्पर दिखलाई पड़ते हैं। तुलसी के आराध्य राम दक्षिण में राक्षसों के अत्याचार को देखकर उनके संहार की प्रतिज्ञा करते हैं। राम की यह प्रतिज्ञा व्यक्तिगत शत्रुता के कारण नहीं है, बल्कि इसलिए है कि उन्हें राक्षस, लोक-पीड़क के रूप में दिखलाई पड़ते हैं।

गाँधीजी के विचारों पर रामचरितमानस का बड़ा प्रभाव है। गाँधीजी जिस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था चाहते थे, उसका बहुत कुछ रूप रामचरित-मानस में दिखलाई पड़ता है। देश की राजनीतिक स्थिति के लिए गाँधीजी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बराबर रामराज्य की चर्चा किया करते थे। 'रामराज्य' गोस्वामीजी के रामचरितमानस की ही देन है। राजनीति में अहिंसा के प्रयोग का सिद्धान्त गाँधीजी को रामचरितमानस से ही मिला। इस कथन का आधार "मानस" के लंकाकाण्ड में वर्णित "धर्म-रथ-रूपक" का प्रसंग है। एक ओर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित राक्षसों की विशाल सेना थी। दूसरी ओर बानर-भालुओं का अव्यवस्थित समूह था, जिसके पास ईंट-पत्थर के अतिरिक्त अस्त्र-शस्त्र नाम की दूसरी वस्तु न थी। विभीषण ने उस विषमता का अनुभव किया। उस समय राम ने विभीषण की शंका का समाधान करने के लिए जो कुछ कहा, ठीक वे ही शब्द हमें बीसवीं शताब्दी में गांधीजी के मुख से सुन पड़े।

गोस्वामीजी ने राजनीति में अहिंसा को सिद्धांत के रूप में व्यक्त किया और गांधीजी ने उसे कार्य रूप में परिणत किया। राजनीतिक दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास का समय गांधीजी के समय से विशेष भिन्न न था। दोनों समयों में देश पराधीन था। ऐसी स्थिति में अहिंसा और आत्मबल के अतिरिक्त देश के पास और कोई साधन न था, जिससे देश को पराधीनता से मुक्त किया जा सके।

समाज में अछूतों के प्रति जो घृणा का भाव था, उसके विरुद्ध गोस्वामीजी ने बड़ी जबर्दस्त आवाज उठाई। तुलसीदासजी, समाज-संगठन में वर्ण-व्यवस्था के महत्व को स्वीकार करते हुए भी, इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि विभिन्न वर्गों के बीच विषमता और ऊँच-नीच का भाव समाज के लिए श्रेयस्कर नहीं है। रामचरितमानस में वशिष्ट जैसे आचार्य और महर्षि, निषाद को गले लगाते हैं। राम शबरी के जूठे बेर तक खाने में संकोच नहीं करते और भालू-बन्दरों से मित्रता करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास को हम सच्चे अर्थों में उस युग का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक त्रुटियों की ओर बड़ी निर्भीकता से संकेत किया है। उन्होंने धर्म का सच्चा स्वरूप लोगों के सामने रखा है। विभिन्न सम्प्रदाय के द्वारा समाज में जो विडम्बना फैलाई जा रही थी, उसको उन्होंने बड़े कड़े शब्दों में भर्त्सना की है। साथ ही परस्पर विरोधी संप्रदायों के विचारों में सामंजस्य स्थापित कर समाज में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया है। गोस्वामीजी ने रामचरितमानस में जिस समाज का आदर्श रखा है, उसमें वर्ग हैं, उसमें बड़े और छोटे हैं, राजा और प्रजा हैं, ब्राह्मण और शूद्र हैं। किन्तु उनमें किसी प्रकार का संघर्ष नहीं है। सभी अपनी मर्यादा को समझते हैं। समाज के लिए किसी की स्थिति कम महत्व की नहीं है—यह धारणा समाज को एकता के सूत्र में बांधे हुए है। समाज और राष्ट्र के उत्थान-पतन की जिम्मेदारी सबके ऊपर समान रूप से है।

तुलसीदास ने जिस राज्य का आदर्श रखा है, वह राज्यतन्त्रात्मक है। उसमें

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजा का एक महत्वपूर्ण स्थान है। आज के जापान और ब्रिटेन के समान रामचरितमानस का राजा, राष्ट्र की एकता का प्रतीक है। किन्तु वह प्रजाशोषक नहीं, अपितु एक विनम्र दास है। जो राजा, जितनी ही विनम्रता और तन्मयता से प्रजा की सेवा कर पाता है, वह उतना ही महान है। वह ऋषि-मुनियों के यज्ञों को निर्विघ्न बनाने के लिए अपने प्राणों से प्रिय पुत्रों को उनके साथ कर देता है। वह राज्य के कामों में केवल मन्त्रियों से ही नहीं, अपितु जनता के प्रमुख व्यक्तियों से भी सलाह लेता है। प्रजा का दुःख-सुख उसका अपना दुःख सुख है। इसीलिए उसके राज्य में प्रजा केवल धन-धान्य से ही पूर्ण नहीं है, उसे 'दैविक और दैहिक ताप' भी नहीं सताते।

गोस्वामीजी ने तत्कालीन राजाओं की कड़ी भर्त्सना की है। वे उन्हें 'भूमिचोर' तक कहने में नहीं चूके हैं, क्योंकि वे समझते थे कि उन राजाओं का एकमात्र उद्देश्य राज्य-विस्तार है। प्रजा की सेवा उनका लक्ष्य नहीं है। ऐसे राजाओं को क्या दण्ड भोगना पड़ेगा—इसका संकेत **जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी**--वाली चौपाई में दिया गया है।

तुलसीदास ने तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को समझने का प्रयत्न किया है। उनके ग्रन्थों में उन समस्याओं का वर्णन ही नहीं है, उनका समाधान भी है।

गोस्वामीजी की आत्मा, मानो मानवात्मा के साथ मिल-सी गयी है। मानव ही क्या—समस्त चराचर उनके अपने हैं। जहाँ वे भगवान से प्रार्थना करते हैं, वहां भी उन्हें केवल अपना ही नहीं, बल्कि समस्त संसार का ध्यान है। इसलिए तो "स्वान्तः सुखाय" लिखी गई गोस्वामीजी की रामायण संसार के अन्तःकरण को सुख देती है। गोस्वामीजी इतनी ऊंची स्थिति में हैं, जहाँ अपने अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखलाई पड़ता। संसार के समस्त जीवों में अपनी ही आत्मा दिखलाई पड़ती है।

गोस्वामीजी लोक भाषा का महत्व समझते थे। बहुत विरोध होने पर भी उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना संस्कृत में न करके अवधी और ब्रजभाषा में की। उनमें मार्मिक स्थलों को समझने और उन्हें मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने की अद्भुत शक्ति थी। बड़ी से बड़ी गम्भीर बात को सरल ढंग से कहने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। दर्शन के कितने गूढ़ सिद्धान्तों को उन्होंने अपनी इस प्रतिभा से जनता के लिए अत्यन्त सुलभ बना दिया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गोस्वामी तुलसीदास और उनका रामचरितमानस : एक दृष्टिकोण

डॉ० शिवकुमार मिश्र

गोस्वामी तुलसीदास और उनकी कृतियों के बारे में, विशेषत: रामचरितमानस के बारे में हिन्दी प्रदेशों की जनता, बुद्धिजीवियों एवं साहित्यप्रेमियों के बीच सामान्यरूप से तीन प्रकार की धारणाएं देखने को मिलती हैं। बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है, जिनके लिए गोस्वामी जी और उनका कृतित्व वैतरणी पार करने का अचूक साधन है। उनके अनुसार सब प्रकार की समस्याओं का निदान इनमें है। ये शंकाओं और प्रश्नों से परे है और जो इन पर शंका करते हैं, सवाल उठाते हैं, वे नास्तिक हैं, समाज और धर्म के शत्रु हैं, आदि-आदि। जाहिर है कि यह भक्त लोगों का समाज है, अतएव उनकी धारणा पर हम बहस करना जरूरी नहीं समझते। इन भक्तों के प्रति हमारी सहानुभूति है। हमारी थोड़ी-बहुत चिंता का कारण ये तब बनते हैं, जब ये साहित्य के क्षेत्र में भी दखलंदाजी करने का प्रयास करते हैं और चाहने लगते हैं कि हम भी गोस्वामी जी और उनकी किताबों को उन्हीं के नजरिए से देखें। दूसरे प्रकार के लोग साहित्य के लोग हैं और प्रबुद्ध हैं। इनके लिए रामचरितमानस या गोस्वामी जी की दूसरी किताबें धर्मग्रन्थ न होकर साहित्य की विरासत हैं और ये अपने युग-संदर्भों में उनका नया मूल्यांकन करते हुए उनके महत्व को रेखांकित करना चाहते हैं। इन लोगों से हमारा मतभेद इनके लक्ष्य को लेकर नहीं, इनके निष्कर्षों को लेकर है। नव-मूल्यांकन की नई दृष्टि और नए-नए तर्कों के स्वामी होते हुए भी इनके निष्कर्ष हमें इस नाते मान्य नहीं हो पाते कि ये युगीन अंतर्विरोधों को कतई नजरंदाज करते हुए गोस्वामी जी और उनके कृतित्व को इस सीमा तक युग की प्रगतिशील चेतना से एकाकार कर देते हैं, गोया गोस्वामी जी पर अपने समय की सीमाओं की छाप पड़ी ही न हो। जाहिर है कि ये निष्कर्ष भी एकपक्षीय निष्कर्ष ही हैं और ये हमें

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास और उनके कृतित्व को उसकी समग्रता में तथा सारे यथार्थ के साथ जानने में बाधा पहुंचाते हैं। इसके विपरीत तथाकथित आधुनिकतावादियों का एक दल है, जो इस हद तक आधुनिक है कि अपनी विरासत को पूरी तरह नकारने, उसे दकियानूस और बेकार साबित करने में ही अपनी आधुनिकता की पूर्ति मानता है। इन लोगों के लिए गोस्वामी जी निरे रूढ़िवादी, सामंती मानसिकता के निहायत अविवेकी व्यक्ति हैं। उनकी कृतियाँ सिवाय इसके कि देश की अशिक्षित और भोलीभाली जनता को धर्म-मूढ़, अंधविश्वासी और दकियानूस बनावे और कुछ नहीं कर सकतीं और यही वे कर रही हैं। ऐसे लोगों के अनुसार गोस्वामी जी और उनके कृतित्व से पीछा छूटने में ही देश और उसकी जनता का कल्याण है। जाहिरा तौर पर ये आधुनिकतावादी आधुनिकता के भ्रम से ग्रस्त हैं। ये न आधुनिक हैं और न बुद्धिजीवी। ये कुछ चौंकानेवाली बातें कहकर अपनी ओर लोगों का ध्यान भर आकर्षित करना चाहते हैं। जिनके लिए देश की विरासत का कोई मूल्य नहीं, जिनके पास उस विरासत को पहचानने और परखने की कोई दृष्टि नहीं, उन्हें लेकर भी किसी प्रकार की बहस से कोई फायदा नहीं है। हम जो कुछ भी यहाँ गोस्वामी जी के बारे में या उनके रामचरितमानस के बारे में कहना चाह रहे हैं, वह दूसरे प्रकार के वर्ग की बातों और निष्कर्षों को ध्यान में रखकर है, क्योंकि हम अनेकशः उनसे सहमत हैं। हमारी उनके साथ असहमति इसी बात पर है कि गोस्वामी जी के मूल्यांकन में वे जहाँ उनके अंतर्विरोधों को एकदम नजरंदाज कर देते हैं, हमारा कहना यह है कि गोस्वामी जी तथा उनके कृतित्व को उनके युग से काट कर न देखा जाय। यदि गोस्वामी जी की सोच की सीमाएँ हैं, तो उन्हें भी उजागर किया जाय और वे हैं, और जहाँ गोस्वामी जी अपने युग की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं, जैसा कि उन्होंने किया है, उनके इस पहलू को भी रेखांकित किया जाय, ताकि साफ-साफ सामने यह तथ्य उजागर हो कि गोस्वामी जी की विरासत का कितना कुछ अपने समय से ऊपर न उठ पाने के कारण हमारे युग की प्रगतिशील चेतना की संगति में नहीं है, अतः त्याज्य है, तथा कितना कुछ उसमें ऐसा है जो आज की प्रगतिशील चेतना की संगति में है, अतएव हमारे लिए अपरिहार्य है। अतीत के क्लासिक्स के मूल्यांकन का यही तरीका वैज्ञानिक भी है और सही भी। गोस्वामी जी को यदि हम कालजयी रचनाकार मानते हैं, जैसा कि वे हैं, तो इसीलिए कि उनकी सोच में, उनकी दृष्टि में और उनके कृतित्व में ऐसा बहुत कुछ है, जो आज भी हमारे लिए मूल्यवान है, जो आज भी हमारे लिए प्रेरणास्पद है। हम अपने हित में उसे अपने साथ लेकर चलना चाहते हैं। सवाल केवल उनकी सोच और उनके कृतित्व में गहराई से उतर कर उसे अपने युग और अपने लिए नई तरह से पहचानने का है। जब दृष्टि नई होगी, तो पहचान भी नई होगी। गोस्वामी जी के अंतर्विरोधों को

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ढंक कर हम उनके प्रति और अपने युग के प्रति न्याय नहीं करेंगे। अंतर्विरोध बड़े से बड़े रचनाकार में होते हैं, फिर भी वह आगामी युगों में अपने बड़प्पन को इसी नाते बरकरार रख पाता है कि उसमें ऐसा भी बहुत कुछ होता है, जो उसे अपने समय की प्रगतिशील चेतना से जोड़ता है, सीमाओं से उसे उठाते हुए एक ऐसी जमीन से भी उसका रिश्ता कायम करता है, जो आगे के समय से उसकी पहचान कराती है, उसे कालजयी बनाती है। यही बात गोस्वामी जी के बारे में भी सही है, सूर और कबीर के बारे में भी सही है। अतएव सवाल न तो अंतर्विरोधों को नजरंदाज करने का है और न ही, उन्हें ही समग्र सत्य मान लेने का। सवाल वस्तुस्थिति को उसके यथार्थरूप में पेश करने का और उसके बीच से किसी रचनाकार को संपूर्णत: और सही रूप में पहचानने का है।

जाहिर है कि गोस्वामी जी मध्ययुगीन समाज की उपज थे, उसी प्रकार जिस प्रकार सूर और कबीर। जाहिर है कि उन पर और उनकी सोच पर इस मध्य-युग की, उसके द्वारा पोषित विचारों की, उन तमाम संस्कारों की स्पष्ट छाप है जो अपने परिवेश से, अपनी शिक्षा तथा गुरु-परम्परा से उन्हें मिले थे। गोकि अपने तई गोस्वामी जी ने तत्कालीन रूढ़िवादी पंडित वर्ग की लीक को बड़ी सीमा तक अमान्य किया था और इसी नाते कट्टरपंथी पंडित समाज का विरोध भी उन्हें सहना पड़ा था, फिर भी वर्णाश्रम के दायरे को, वेद और शास्त्र सम्मत आचार-विचारों के दायरे को और बहुत-सी सामाजिक मान्यताओं को वे अमान्य नहीं कर सके। उसी प्रकार जिस प्रकार कबीर रहस्य के कुहासे को नहीं भेद पाए, सूर पुष्टि मार्ग की शास्त्रीयता से एकदम परे नहीं जा सके, गोस्वामी जी अनेक बातों में मध्यकाल की सीमाओं का साक्ष्य देते हैं। किन्तु जिस प्रकार रहस्य की भूल-भुलैया के बावजूद कबीर, पुष्टि मार्ग के शास्त्रीय जाल के बावजूद सूर अपनी सोच और अपने कृतित्व में अपने समय के सीमित संदर्भों का अतिक्रमण करते हुए काल की व्यापक भूमि से, चिन्तन की प्रशस्त जमीन से जुड़ते हैं और हमें हमारे हमसफर होने का अहसास देते हैं, हमारी मूल्यवान विरासत बनते हैं, उसी प्रकार गोस्वामी जी भी अपनी युगीन सीमाओं के बावजूद हमारे अपने समय में हमारा मार्गदर्शन करते हैं। हमें उन्हें इस रूप में पहचानना भर है। हमने उनके साथ यह पहचान कायम न की तो जाहिर है कि वे लोग उनके साथ अपनी पहचान जरूर दृढ़ करेंगे जो उन्हें वैतरणी पार करने का अचूक साधन समझते हैं, उन्हें अपने हित में इस्तेमाल कर रहे हैं और निरंतर करना चाहते हैं। अस्तु—

मानस में गोस्वामी जी ने मात्र रामकथा ही नहीं कही है, सदियों से दैन्य, भय, आतंक, अन्याय और संत्रास में जीती कोटि-कोटि मनुष्यता की व्यथा-कथा भी कही है। व्यथा की यह वह कथा है जो मानस की समूची आध्यात्मिकता एवं पुनरुत्थान-चर्चा के बीच पूरी मार्मिकता के साथ मानस की पंक्ति-पंक्ति में प्रति-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ध्वनित होती है। परंपरागत मूल्यों एवं सीमाओं में बद्ध तुलसीदास का धार्मिक सामाजिक नेता रूप भले ही उन्हें वर्ण, धर्म, श्रुति तथा शास्त्रसम्मत नियमों पर टिकी समाज-रचना की प्रशस्ति तथा पुनर्प्रतिष्ठा से विरत न होने देता हो, क्या यह भी कहने की बात है कि लोक के हृदय को, उसके अंतर्तम में जाकर पहचानने वाले, लोक की पीड़ा से अभिन्न निश्छल हृदय भक्त तथा कवि तुलसीदास की मानवीय संवेदना उससे कहीं गहरी, कहीं बड़ी और कहीं अधिक अर्थवान है। इस मानवीय संवेदना से परिचित होने के लिए हमें मानस के पन्ने नहीं उलटने पड़ते, वह तो मानस की अंतरात्मा ही है। अपनी इसी मानवीय संवेदना के बल पर मानस और मानसकार लोकमानस के केन्द्र में सदियों से प्रतिष्ठित है। अन्यथा रामकथा तो केशव ने भी लिखी है और अधिक पंडिताई से लिखी है। तब फिर क्या कारण है कि आचार्य-कवि केशव शोधकर्ताओं तक ही सीमित होकर रह गए हैं और सन्त तथा भक्त कवि तुलसी सदियों का अन्तराल लांघते हुए, शासन की समूची अवमानना के बावजूद जनता के हृदय में प्रतिष्ठित हैं। कहने की जरूरत नहीं कि इस प्रश्न का उत्तर हमें उसी लोक संपृक्ति में पाना होगा, जो तुलसीदास की आधारभूत संपत्ति है। इस प्रश्न का उत्तर हमें नर की मनसबदारी अथवा प्राकृत जन के गुणगान को अपनी प्रतिष्ठा तथा अपने आत्मसम्मान पर लानत मानने वाले, राम और राम-कथा के प्रति लोक की आकांक्षा को सौ जोखिम उठाकर भी साहस के साथ मूर्त्त करने वाले लोकनायक तुलसी की, लोक और अपने आराध्य के प्रति उस निष्कम्प आस्था में खोजना होगा जो तत्कालीन सारे अंधकार के बीच कभी न बुझने वाली एक मशाल की तरह जलती और लोक का पथ आलोकित करती है। बड़े से बड़े प्रलोभनों के समक्ष न विकने वाली अपनी इस आस्था एवं जिन्दगी के नरक का भीतर तक साक्षात्कार करते हुए उपलब्ध होने वाली अपनी गहरी लोक संपृक्ति के बूते पर ही सदियों की शिलाओं पर अपने पदचिह्न छोड़ते हुए मानस और मानसकार आज जिस मंजिल पर आ पहुंचे हैं, देश और विदेश के विरले रचनाकार उसकी कल्पना कर सकते हैं।

तुलसी लोकजीवन की पीड़ा के ही नायक नहीं हैं, उनकी रामकथा राम जैसे चरितनायक के माध्यम से लोक को इस पीड़ा से उबारने और उबरने का रास्ता सुझाने वाली कथा भी है। उनके यहाँ रावण दरिद्रता का प्रतीक भी है, जिसका समूल नाश करने के लिए तुलसी अपने दीनबंधु से प्रार्थना करते हैं। उनके ये राम सत्ता के नहीं, प्रेम के प्यासे हैं। सत्ता को वे बटाऊ की तरह इस प्रकार छोड़ कर चल देते हैं, जैसे उससे उनका कोई नाता न हो। यह भक्ति-आन्दोलन की चेतना है, जो तुलसी में अपने पूरे प्रभाव के साथ विद्यमान है।

कुल मिलाकर मानस और मानसकार को इस रूप में पहचानना उनके माध्यम से लोक और लोक की पीड़ा को पहचानना है। यह पहचान इसलिए जरूरी है, ताकि मानस और मानसकार को युगसापेक्ष रूप में युग के प्रगतिशील संदर्भों से जोड़ते हुए अपनी मूल्यवान विरासत के रूप में हम जानते समझते रहें। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गोस्वामी तुलसीदास का बचपन और रामचरितमानस

श्यामनारायण पाण्डेय

साधारण से साधारण मनुष्य भी अपने सद्धर्म, कर्म, आचार-व्यवहार तथा अपनी लगन-निष्ठा से देवता का सम्मान प्राप्त कर सकता है, इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे श्रद्धास्पद गोस्वामी तुलसीदास जी हैं।

सन्तशिरोमणि जन-कवि गोस्वामी तुलसीदास का स्मरण करते ही उनका समस्त जीवन हस्तामलक की तरह आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाता है। कौन जानता था कि आत्माराम और हुलसी का मुरहा अभागा पुत्र, रोटी के एक टुकड़े के लिये दर-दर से दुत्कारा हुआ, घूँट-घूँट तिरस्कार का विष पीता हुआ, हीनभाव से कुंठित, सब की छाया बचाता हुआ और राजापुर की गलियों में भूख से तड़पता हुआ 'रामबोला' एक दिन अभ्युदय की सब से उच्च चोटी पर दर्शन दे जायेगा। भगवान राम का शरणागत बनकर भवित की गंगाधार बहा देगा और उसकी भक्ति-परक जनजीवन से जुड़ी सहज रचनाएँ सामान्य जनता से लेकर धुरंधर विद्वानों को समानरूप से प्रभावित कर देंगी। कौन जनता था कि झोपड़ी से महल तक उसके रामचरितमानस की आरती उतारी जायेगी, उसकी अनेक पाण्डुलिपियाँ देश-विदेश के संग्रहालयों में आगामी पीढ़ी के दिशा निर्देशन के लिये सुरक्षित रखी जायेंगी। किसे मालूम था कि उसकी चौपाइयाँ घोर प्रकृतिवादी नास्तिकों को भी माथा टेकने के लिये विवश कर देंगी। सभी धर्मावलम्बी रामायण पर चन्दन-अक्षत, फूल-फल चढ़ाकर भगवान राम का कीर्ति कीर्तन करने लगेंगे। ऐसे करोड़ों श्रद्धालुओं की श्रद्धा के भाजन गोस्वामीजी के चरणों में शतशत वन्दन, शतशत प्रणाम।

पाषाण हृदय को भी पिघला देनेवाली तुलसीदास के बचपन की कहानी अत्यधिक कारुणिक है। किन्तु जनता के सौभाग्य से, हिन्दी कविता के प्रसाद से अथवा भगवान राम की असीम कृपा से तुलसीदास के जीवन की रक्षा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुई। एक दिन धर्माचार्य वैष्णव सम्प्रदाय के महान सन्त स्वामी नरहरि दास जी उधर से निकले। सबने झुक-झुक कर पाँव छुए। तुलसी ने भी डरते-डरते चरण धूलि माथे चढ़ाई। साथ के लोगों ने डाँटा। वह डर के मारे एक ओर खड़े हो गये दोनों हाथ जोड़े हुए और याचक एवं डबडबायी आँखों से एकटक उस भव्य मूर्ति, तेजस्वी महात्मा की ओर देखने लगे। महात्मा ने पूछा, यह किसका लड़का है? लोगों ने कहा--गुरुजी, यह पंडित आतमाराम का मुरहा पुत्र है, जो इसको प्यार करता है या कुछ देता है, उसका अनिष्ट हुए बिना नहीं रहता। स्वामी जी की भौंहें चढ़ गयीं। क्रुद्ध स्वर में बोले--यह कहते आपलोगों को शर्म नहीं आती। एक ब्राह्मण का बालक पेट की भूख शान्त करने के लिए दर-दर भटकता है, भीख माँगता है। आजतक इसका संस्कार तक नहीं हुआ। फिर बालक की ओर देखकर बोले--क्यों बेटा, तुम मेरे साथ चलोगे? मैं तुम्हें स्नान कराकर अभी-अभी यज्ञोपवीत पहनाऊँगा, पढ़ाऊँगा और व्यायाम कराऊँगा। जीवन में पहली बार स्वामी जी की सहानुभूति का स्वर सुनकर रोते हुए तुलसीदास ने हुँकारी भरी। स्वामी जी हाथ पकड़कर आश्रम पर ले गये, स्नान कराया, मन्त्र पढ़कर यज्ञोपवीत पहनाया और उसी दिन अक्षरारम्भ भी करा दिया। मन्त्रों को कण्ठ कराकर त्रिकाल संध्या की विधि भी बता दी।

एक दिन स्वामी जी नालाचिरप्रबन्ध (भक्तिज्ञान सम्बन्धी तमिल का आध्यात्मिक ग्रन्थ) का अध्ययन कर रहे थे। अचानक उनके कानों में ब्रह्मचारी तुलसीदास के वेदपाठ की ध्वनि पड़ी। हर्षातिरेक से उनकी आँखें भर आईं। सोचा--मैंने इस लड़के को मन्त्र नहीं पढ़ाया। स्वर के उतार-चढ़ाव की विधि नहीं बताई। इतनी कठिन ऋचाओं का स्वरसहित विशुद्ध उच्चारण, यह तो अद्भुत प्रतिभाशाली है। यह तो कीचड़ में कमल मिल गया। अभी-अभी इसको अध्ययन के लिये काशी ले जाऊँगा। यह तो मुझ से भी अधिक मधुर स्वर से शुद्ध वेदपाठ कर रहा है। अब एक क्षण रुकना इस होनहार बालक के लिये घातक होगा।

तुलसीदास को लेकर स्वामी जी काशी चल पड़े। मार्ग में रामायण-महाभारत तथा उपनिषदों की कहानी सुना दी। इसका प्रभाव तुलसीदास के हृदय पर गहराई के साथ पड़ा, इस उपदेशात्मक यात्रा को वह जीवन भर नहीं भूल सके। वही कहानियाँ उनकी थाती बन गयीं। काशी जाकर स्वामीजी ने तुलसीदास को पंडितराज शेष सनातनजी के यहाँ अध्ययन के लिये छोड़ दिया। बारह वर्ष तक व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष एवं दर्शन का अध्ययन कर तुलसीदास एक अच्छे पंडित हो गये। शेष सनातन के छात्रों में उनका स्थान बहुत ऊँचा था। अध्ययन के साथ काव्य रचना भी करते थे। पं० शेष सनातन जी को यह बात छात्रों द्वारा बहुत दिनों के बाद मालूम हुई। भाषा में कुछ दोहों को सुनकर शेष-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सनातन जी निहाल हो गये और प्रसन्न होकर बोले--तुलसी, तुम संस्कृत में भी इसी तरह की सुन्दर रचना करो। लोगों का बड़ा कल्याण होगा। बाईस वर्षीय युवा तुलसीदास के कवित्व और पाण्डित्य की प्रसिद्धि सर्वत्र फैल गयी। पुनीत चर्चा के विषय बन गये।

धर्माचार्य स्वामी नरहरि दास की आज्ञा से तुलसीदास ने कुछ दिन तक भरण-पोषण के लिये कथावाचक का कार्य किया। ललित कण्ठ से कथा बाँचने की कला बड़ी ही मनोहर थी। बाल्मीकि रामायण के श्लोकों को जिस मनोहारी ढंग से प्रस्तुत करते थे, वह वर्णनातीत था। श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। गोस्वामी तुलसीदास की प्रतिभा देखकर उन्हें स्वामीजी ने गोस्वामी पद पर प्रतिष्ठित किया, किन्तु उनके स्वर्गवास हो जाने पर उस प्रतिष्ठित पद को छोड़ दिया और रामभक्ति में लीन हो गये। छन्दों में उन्हीं का कीर्तिकीर्त्तन करने लगे।

रामचरितमानस

दुखद वातावरण में ही क्रान्ति जन्म लेती है। तुलसीदास की सारी जीवन-कथा क्रान्ति से भरी है। भगवान राम के पवित्र जीवन से सम्बन्धित उन्होंने अनेक ग्रन्थरत्न उपस्थित किये। विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली, बरवै, नहछू, दोहावली, वैराग्य संदीपनी, पार्वती मंगल, जानकी मंगल तथा कृष्ण गीतावली आदि। किन्तु तुलसीदास का रामचरितमानस सर्वश्रेष्ठ तथा बेजोड़ है। उसकी तुलना में हिन्दी का कोई काव्यग्रन्थ नहीं आता। सब में कुछ न कुछ हृदयंगम करने की बात है, किन्तु मानस में सब कुछ उपलब्ध है।

रामचरितमानस पर बाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण तथा संस्कृत के अनेक पुराणों और उपनिषदों का भारी प्रभाव है। प्रभाव ही नहीं, कहीं-कहीं अविकल अनुवाद भी है, लेकिन गोस्वामी जी ने अपनी भाषा में इस तरह से पचा लिया है कि उनका ही होकर रह गया है। रामायण में अनेक क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग है, किन्तु उन्हें अपनी कला से ब्रज और अवधी का बना दिया है। कथा में कहीं कोई अन्तर नहीं आने दिया। धन्य है उनकी प्रतिभा और धन्य है उनकी लेखनी।

समन्वयवादी लोकनायक कवि तुलसीदास का जिस समय अवतार हुआ, उस समय धर्म, जाति, समाज और राष्ट्र की नौका डगमगा रही थी। समाज के सामने कोई ऊँचा आदर्श नहीं था। ऊँचे स्तर के लोग विलासिता के शिकार थे। नीचे स्तर के लोग वैरागी का ढोंग बनाकर भीख माँगते थे। शिक्षा और संस्कृति के अभाव में गर्वोन्मत्त होकर ऊँची जातियों से दम्भ करते थे। पंडितों और ज्ञानियों का समाज के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। सारा समाज आदर्शहीन, बिना लक्ष्य का जीवन जी रहा था। राजा और प्रजा दोनों अपने कर्त्तव्य से पतित हो चुके थे।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गोस्वामी जी ने प्राचीन संस्कारों में नये ढंग से समन्वय स्थापित किया। तीव्र विषमताओं का उन्मूलन करके एक नवीन आदर्श उपस्थित कर दिया। समाज में एक मनोहारिणी क्रान्ति पैदा कर दी। कठिनता को सरलता से जोड़ दिया।

व्यक्ति और समाज का कोई ऐसा भाग नहीं, मनुष्य का कोई ऐसा व्यवहार नहीं, जिसका सफल चित्रण तुलसीदास ने नहीं किया हो। रामायण के पाठक तुलसी की प्रतिभा पर मुग्ध हो जाते हैं। उनके मुँह से अनायास निकल पड़ता है कि व्यापक व्यवहार का चित्रण तुलसीदास के समान किसी ने नहीं किया है। राम-कथा की पवित्र गंगाधार में जो स्नान करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों को अपने पुण्य से पवित्र कर देता है।

रामकथा जगमंगल करनी

तत्कालीन धार्मिक मतभेदों को राम के व्यक्तित्व में शैव-शाक्त और पुष्टि-मार्गियों की पूर्ति करके समाप्त कर दिया। रामभक्ति में गहन व्यापकता के साथ अद्भुत शक्ति ला दी। विचार-भिन्नता की समाप्ति युगद्रष्टा कवि तुलसीदास की लेखनी से हुई। उस समय के समस्त कवियों ने उन्हें जनकवि की उपाधि देकर प्रतिष्ठित किया। शास्त्रों से शुद्ध शब्दों के धनी कवि तुलसीदास का भारत सदा ऋणी रहेगा। उनके चरणों में युगयुग तक प्रणाम करता रहेगा और रामचरित-मानस की आरती उतारता रहेगा। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी की जीवन दृष्टि | डॉ० भगवती प्रसाद सिंह

भारतीय महाकवियों की प्रथम पंक्ति में तुलसी के प्रतिष्ठित होने के कारणों की मीमांसा करने पर ज्ञात होता है कि उनकी इस विशिष्ट स्थिति या प्रतिष्ठा के पीछे व्यापक संवेदना, गहन जीवनानुभव तथा मूल्यों के प्रति एक सहज आलोचनात्मक दृष्टि है। उनकी सर्वांगपूर्ण जीवन-दृष्टि अपने आप में एक आचार-पथ का संकेत है और अनाचार या मूल्यहीनता से बचने के लिए मानवमात्र के प्रति चेतावनी है। इसके निर्माण में उनके जीवन संघर्ष तथा साधना की महत्वपूर्ण भूमिका की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

गोस्वामी जी उन महान् सन्तों, महात्माओं तथा अनुभवसम्पन्न कवियों में हैं, जो अपने कृतित्व के पीछे कोई बड़ी प्रेरणा, कोई बड़ा प्रयोजन मानते हैं। छोटे उद्देश्य उनकी दिशा के निर्धारक नहीं हैं। जीवन का लक्ष्य तुलसीदास की दृष्टि में स्पष्ट है—समर्पित भक्ति से बाहर मानव जीवन की कोई सार्थकता उन्हें नहीं जान पड़ती।

सिय-राम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नामु, हिए पुनि रामहि को थलु है॥
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहैं, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है॥[1]

तुलसीदास स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करते हैं कि उनकी दृष्टि में जीवन की सार्थकता का आधार है—अनन्य निष्ठा, अनन्य समर्पण। राम के प्रति अगाध विश्वास ही जीने का प्रयोजन है। वे सर्वशक्तिमान हैं—यह विश्वास ही जीवन को अन्यथा भटकने से बचाता है—जीवन को गहरे अर्थों में समझने की प्रेरणा देता है। तुलसी का विश्वास है कि राम की कृपा उनके लिए सुरक्षित रहे, तो दूसरों की अकृपा से कुछ बिगड़ने वाला नहीं है—

को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै।
उथपै तेहि को, जेहि राम थपै, थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै॥

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी यहु जानि हिए अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन की जो पै जानकी नाथ मया करिहै ।।[२]

इस प्रकार की अनन्यता एवं अगाध आस्था स्वाभिमान रक्षा की प्रेरणा देती है। जिसके पास इतनी विशद मूल्यदृष्टि है, वही अन्यथा न झुकने वाली दृढ़ता या तेजस्विता प्राप्त कर सकता है। आज के जीवन में महत्वपूर्ण कहे और समझे जाने वाले कितने ही लोग मूल्यहीनता की स्थिति में भिखमंगे बने रहते हैं, यह आधुनिक समाज में प्रतिदिन का अनुभव है। उन्हें ध्यान में रखते हुए गोस्वामीजी की उपर्युक्त प्रसिद्ध पक्तियों की मार्मिकता समझ में आ सकती है। महान कवियों के ऐसे अनुभव दूरगामी संकेतों से सम्पन्न होते हैं। यही उनके सब समय प्रासंगिक होने का रहस्य है। अनन्यता से ही संभूत इस स्वाभिमानवृत्ति की ओर गोस्वामी जी का प्रत्यक्ष संकेत है——

जग जाँचिये कोऊ न; जाँचिए तौ पुनि जाँचिये जानकी जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाय जो जारत जोर जहानहि रे ।।[३]

× × × ×

नहिं जाचत नहिं संग्रही सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मांगनेहि को बारिद बिन देइ ।।[४]

× × × ×

परहुँ नरक, फलचारि-सिसु, मीच डाँकिनी खाउ।
तुलसी राम सनेह को, जो फल सो जरि जाउ ।।[५]

इस प्रकार का निष्काम-भक्ति और आस्था के समक्ष मुक्ति के निरादर का संदभ स्पष्ट है। तात्पर्य यह कि गोस्वामी जी की दृष्टि में बड़े से बड़े प्रलोभन, यहाँ तक कि मुक्ति का प्रलोभन भी सच्ची आस्था को विचलित नहीं कर सकता।

गोस्वामीजी जानते हैं कि मूल्यादर्शों के ग्रहण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा जनसामान्य की स्वार्थपरता है। सम्पन्नता हो या विपन्नता——दोनों स्थितियों में लोग अपना उल्लू सीधा करने की ताक में रहते हैं, जिंदा निगल जाने का डौल बनाते रहते हैं——

हरो चरहिं, तापहिं बरत, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ ।।[६]
सहवासी काचो गिलहिं पुरजन पाक प्रवीन।
कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन ।।

इतना भी हो जाय कि मनुष्य अपने द्वारा किये गये पापों के लिए पश्चात्ताप करते हुए राम के परम गुणों को उनका प्रच्छालक और अपना दिशा निर्देशक स्वीकार कर ले तो भी उसका कल्याण हो सकता है। विडम्बना यह है कि साधारण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जीवन में मनुष्य अपने अपराधों को दूसरों के सर मढ़ करके स्वयं को बेदाग साबित करने के प्रपंच में लीन रहता है—

निज दूषन, गुन राम के समुझे तुलसीदास।
होइ भलो कलिकालहू उभय लोक अनयास।।[7]

गोस्वामी जी की विशाल सहृदयता की कल्पना इसी से जी जा सकती है कि वे जहाँ राम से ममत्व को अभीष्ट अथवा काम्य बताते हैं, वहाँ विश्व में व्याप्त समत्व को समझने, स्वीकार करने की प्रेरणा भी देते हैं—विषमता की ज्वाला में जलते हुए आज के अभिशप्त समाज को गोस्वामी जी के शब्दों से सीख लेनी चाहिए। पूंजी, विज्ञान और महत्वाकांक्षा का अतिरेक विषमता का जहर बोकर विश्व को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। उससे बचने के लिए दो ही रास्ते हैं—मर्यादा अथवा मर्यादा पुरुषोत्तम में निष्ठा और जीवमात्र में समत्व दृष्टि—

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भए भवपार।।[8]

सफल लोकजीवन तथा परमार्थ–पुष्ट दिव्य जीवन की प्राप्ति के लिए तुलसी के विचार से दूसरी शर्त है। मनसा-वाचा-कर्मणा ऋजु अथवा सरल मार्ग का अव-लंबन। योग की शब्दावली में यही सुषुम्ना मार्ग है, जिसका अनुसरण इड़ा, पिंगला की दक्षिण तथा वामगति का, वक्रपथ का, निरोध करके किया जाता है। यह सरलता या भोलापन ही सारी साधना का सार है, साधकों का काम्य है। लोक-लाभ और पर लोक-निर्वाह का सर्वोत्कृष्ट साधन है। तुलसी का अपना अनुभव है कि राम में दृढ़ आस्था होने से इसकी प्राप्ति अनायास ही हो जाती है—

सूधे मन, सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति।।[9]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गोस्वामी जी के विचार से राम की शरणागति परमार्थ सिद्धि के साथ साधक की अंतः वृत्तियों को परिष्कृत कर उसके सांसारिक जीवन को भी प्रकाशमय पथ पर अग्रसर करती है। उसे परलोकवाद या निवृत्ति मार्ग से हटाकर लोकवादी बनाता है। और जागतिक जीवन में रुचि लेकर उसे उन्नत बनाने की प्रेरणा देता है। जनकपुर में राम के प्रथम साक्षात्कार के पश्चात् महाविरक्त विदेह ने कुछ ऐसा ही अनुभव किया था—

प्रमुदित हृदय सराहत भल भव सागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक, बिधि बड़ नागर।।
विषय विरत मन मोर सेइ परमारथ।
इन्हहिं देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ।।[10]

जो भी मनीषी जीवन के उदात्त लक्ष्यों की ओर अपने को अभिमुख कर पाते हैं, उन्हें इह-पर का यह पूर्ण संतुलन ही जीवन-यात्रा का सर्वोत्कृष्ट संबल जान पड़ता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसके विपरीत प्रवंचनापूर्ण असंतुलित दृष्टि ही अधःपतन का मूल कारण है। आधुनिक परिवेश का व्यंग्य उस कालजयी भक्त की उक्ति में रह रह कर झलक आता है। सदियों पहले गोस्वामी जी जिस विषम आचरण को लक्ष्य कर रहे थे वह अब पराकाष्ठा पर है—

बेष बिसद, बोलनि मधुर, मन कटु करम मलीन।
तुलसी राम न पाइए, भए बिषय-जल-मीन।।[11]

कथनी और करनी में भेदपरक व्यवहार करने वालों पर गोस्वामी जी का व्यंग्य स्पष्ट है—

ठाढ़ो द्वार न दै सकैं, तुलसी जे नर नीच।
निंदहिं बलि हरिचंद को, का कियो करन दधीच।।[12]

संसार इतना ही तो नहीं समझता कि आज आतंक से जो काम बन सकता है, आतंक मिट जाने पर, दंभ का रहस्य खुल जाने पर, कल उसका बिगड़ना अपरिहार्य है। स्वार्थान्ध महत्वाकांक्षियों की यह अदूरदर्शिता हमारे सारे जीवनमूल्यों को ध्वस्त कर रही है—

बचन तें बेष तें जो बनइ, सो बिगरइ परिनाम।
तुलसी मन तें जो बनइ, बनी बनाई राम।।[13]

गोस्वामी जी ने सत्यनिष्ठा को सर्वोपरि मूल्य माना है। सत्य की रक्षा के लिए कोई भी त्याग अधिक नहीं है। दशरथ ने सत्य के लिए राम को छोड़ा—यद्यपि राम के विरह में उन्होंने प्राण ही त्याग दिए। सत्यनिष्ठा इतनी ही बड़ी कुर्बानी की माँग करती है—

तुलसी जान्यो दसरथहि, धरमु न सत्य समान।
रामु तजे जेहि लागि, बिनु राम परिहरे प्रान।।[14]

उन्होंने जो आदर्श बताये हैं वे इस लोक में भी उतने ही प्रयोजनीय हैं, जितने किसी विरक्त मन के कल्पित दूसरे लोक के लिए अर्थात् लोकोत्तर जीवन के लिए। 'घर', 'वन' के बीच राम के प्रेम का संसार निर्मित करने की प्रेरणा लोक और लोकोत्तर के संतुलन की प्रेरणा है। साधारण गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए राम के प्रेम की उच्चस्थिति की प्राप्ति में वस्तुतः कोई बाधा नहीं है—

घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच हीं, राम प्रेम पुर छाइ।।[15]

तुलसी का जीवन के प्रति आलोचनात्मक विवेक इतना सजग है कि वे अपने इष्टदेव की चूक को भी यथार्थ परक दृष्टि से लक्ष्य कर सके हैं—

बैरिबंधु निसिचर अधम, तज्यो न भरे कलंक।
झूठे अघ सिय परिहरी, तूलसी साइँ ससंक।।[16]

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जेहि अध बधेउ व्याध इब बाली। सोइ सुकंठ पुनि कीन कुचाली।।
सोइ करतूति विभीषन केरी। सपनेहु सो न नाथ हिय हेरी।।[१७]

सामंतीय प्रवृत्ति के पोषक और रूढ़िवादी कहे जाने वाले इस मध्यकालीन भक्त के स्वतंत्र-चिंतन-प्रसूत उपर्युक्त उद्गार कुर्सी के लोभ से प्रेरित निर्णयों को 'आत्मा की आवाज़' बताने वाले 'जी हजूर' जनसेवियों का दृग दोष दूर करने के लिए अमृतांजन का काम दे सकते हैं।

गोस्वामी जी के जीवन का यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि अहित करने वाले अनेक हैं, हित करने वाला कोई बिरला ही है (व्यंग्य यह कि इस वास्तविकता को स्वीकार कर सबसे हित की आशा भी नहीं करनी चाहिए)——

तुलसी जगजीवन अहित, कतहुँ कोउ हित जानि।
सोषक भानु कृसानु महि पवन, एक घन दानि।।[१८]

कल्पित आदर्श और अनुभूत यथार्थ के बीच कितना बड़ा अन्तराल है——

सुनिअ सुधा देखियहि गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल।।[१९]

इसलिए संतजन, जो हंस प्रकृति के हैं, दोष-जल का परित्याग कर गुण-रूपी क्षीर को ग्रहण करते हैं। अर्थात् मूलग्राही विवेक ही अपनाने योग्य है——

जड़ चेतन गुन-दोष-मय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।।[२०]

उनकी तत्वान्वेषी दृष्टि समाज के गूढ़ से गूढ़ स्तर तक पहुँची है और उसकी मानसिकता का उन्होंने अपनी तरह से विवेचन-विश्लेषण किया है। उनको वे महत्वपूर्ण जान पड़ते हैं, जो विनम्र स्थिति में रहकर निष्ठा तथा सेवा द्वारा अपनी उपयोगिता प्रमाणित करते हैं। उनकी अपेक्षा ऐसे लोगों की संख्या बड़ी है, जो अकारण महत्वाकांक्षी हैं, केवल शासन करना चाहते हैं, सेवा का मर्म नहीं जानते, कर्तव्य की अवहेलना कर असीम अधिकार-भोग में ही जीवन की सार्थकता समझते हैं——

सासु, ससुर, गुरु, मातु, पितु प्रभु भयो चह सब कोइ।
होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ।।[२१]
अति ऊँचे भूधरन पर, भुजगन के अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, अन्न ऊख औ पान।।[२२]

सामाजिक जीवन की भाँति राज्यव्यवस्था के सम्बन्ध में इस वीतराग महापुरुष के विचार अत्यन्त व्यावहारिक हैं। उनका अभिमत है कि राज्य चलाने के लिए नैतिक आधार सर्वथा आवश्यक है। आज की मूल्यहीन राजनीति जहाँ पहुँच गयी है, उसके सन्दर्भ में गोस्वामी जी की अनुभव-दृष्टि को समझना कठिन नहीं है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधुनिक लोकतंत्र में व्यवस्थाएँ प्रतिदिन बनती हैं, नष्ट होती हैं—इसी कुचाल के कारण :

राज करत बिन काजही, करहिं कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकंध ज्यों, जइहैं सहित समाज।।[23]

अतः प्रजा को कष्ट देने वाले तंत्र—वह जनतंत्र हो या राजतंत्र—के नियामक के लिए यमदंड का विधान करने में उन्हें कोई हिचक नहीं—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।[24]

आन्तरिक गुणों के अभाव में महत्वाकांक्षी व्यक्तियों का पराभव अपरिहार्य है—

भरुहाए नट भाट के, चपरि चढ़े संग्राम।
कै वै भाजे आइहैं, कै बाँधे परिनाम।।[25]

निरा उत्साह, निरी महत्वाकांक्षा, किसी काम की नहीं—जब तक अपने पास वास्तविक क्षमता की पूँजी न हो। जो दूसरों के भड़काने से रणक्षेत्र में चला जाएगा, वह या तो उलटे पाँव भाग आयेगा या बन्दी बना लिया जायेगा। इसलिए आधारहीन प्रशस्ति हानिकारक होती है। इसके विपरीत गोस्वामीजी का संकेत है कि आलोचना हर स्थिति में गुणकारी होती है, जो अंजन लगाने का कष्ट सह लेता है, वह अंधा होने की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से बच जाता है। व्यंग्यार्थ को स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं—

लोकरीति फूटी सहहिं, आँजी सहइ न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहइ, सो आँधरो न होइ।।[26]

इसी प्रकार विवेकहीन संघर्ष की अपेक्षा न्यायसंगत समझौते को वे वरीयता देते हैं। जीवन में समायोजन और सहिष्णुता का अपना मूल्य है, किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना अन्याय होगा कि वे समझौतावाद की अनैतिकता के भी समर्थक हैं। वस्तुतः साधारण स्थिति में उत्तेजना, संघर्ष एवं कलह के स्थान पर वे समझ-बूझ कर गुत्थियों को सुलझाने के पक्षधर हैं। प्रायः देखने में आता है कि व्यवहार जगत में कभी-कभी जीत से हार अच्छी होती है—ठगने से ठगा जाना ही श्रेयस्कर होता है—यह समझ परिपक्व मानसिकता का अंग है—

जूझे ते भल बूझिबो, भली जीति तें हार।
डहके स डहकाइबो, भलो, जो करिय बिचार।।[27]
सुमति बिचारहिं, परिहरहिं तृन पुप्फहु संग्राम।
सकुल गए, तब बिनु भये, तुलसी जादौ काम।।[28]

प्रेम और विश्वास अध्यात्मोन्मुख जीवन के दो अनिवार्य तत्व हैं—इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए तुलसी को शास्त्रों की अपेक्षा लोकान्वीक्षण से अधिक सहायता मिली थी। शिक्षा और सभ्यता के प्रकाश से वंचित गाँव की भोली-भाली स्त्रियों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को पूर्वोत्सवों पर उन्होंने अपने हाथ से अपने घर की दीवार पर, अपने ही हाथों पीसी हुई हल्दी और चावल से देवता का चित्र बनाकर पूजते और अभीष्ट प्राप्त करते देखा था। प्रेम की सघनता किस प्रकार देवरूप धारण कर लेती है और देवसुलभ वरदान देने की क्षमता भी प्राप्त कर लेती है, लोक जीवन में इसका उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया था—

अपनो ऐपन निजहथा, तिय पूजहिं निज भीति।
फलइ सकल मनकामना, तुलसी प्रीति-प्रतीति।।[२९]

पर इससे यह समझने की भूल नहीं होनी चाहिए की तुलसी अंधविश्वास के पक्षधर थे। वे अंधानुसरण के कितने आलोचक और स्वतंत्र चिंतन के किस सीमा तक हिमायती थे, इसका अंदाजा 'दोहावली' की निम्नांकित पक्तियों से लगाया जा सकता है—

तुलसी भेड़ी की घंसनि जड़-जनता-सनमान।
उपजतही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान।।[३०]
लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ।।[३१]

उनकी यह आलोचनात्मक दृष्टि समकालीन धार्मिक स्थिति पर भी पड़ी थी। तीर्थों और देवालयों में किस तरह अव्यवस्था व्याप्त थी—भ्रष्टाचार फैल गया था, और कलियुग अपने समस्त साधनों के साथ आ धमका था, इसकी ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं—

सुर सदननि, तीरथ, पुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज।।[३२]

कलियुग कहाँ नहीं है पर मनुष्य की आस्था अपने स्थान पर अक्षुण्ण रह सके तो इसी कलियुग में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के गुणों के स्मरण से उसका उद्धार भी हो सकता है अर्थात् परिस्थितियाँ बाधा नहीं हैं। बस उच्च जीवन-मूल्यों में अटूट निष्ठा एवं स्मरणासक्ति बनी रहनी चाहिए—

कलिजुग सम जुग आन नहिं, जौ नर कर बिस्वास।
गाइ रामगुन गन बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास।।[३३]

हाँ यदि प्रयास करने पर भी स्थिति अनुकूल न बनाई जा सके तो सज्जन इतना ही कर सकते हैं कि जब दुर्जनों का वर्चस्व हो वे अपने में केन्द्रित होकर रहें—आत्माभिमुख बने रहें, चुप रहें। युग प्रभाव के निराकरण का यह एक सार्थक ढंग है—

तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन।।[३४]

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐसे वातावरण में जीवन यापन करते हुए इस दिशा में सतत् सावधान रहना चाहिए कि बड़े से बड़ा मूल्य चुकाकर घोर आपत्ति और अपमान पर भी अपने धर्म कर्तव्य तथा नैतिक आदर्शों की रक्षा होती रहे--

सहि कुबोल, सांसति, सकल, अंगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न छोड़िए, कहि करि गये सुजान।।[35]

इस असिधार-व्रत के पालन में यदि सगे से सगे सम्बन्धियों, स्नेहियों और आदरणीयों का भी त्याग करना पड़े, तो हिचकना नहीं चाहिए। जो राम और सीता का विरोधी है, मर्यादा और शांति की रक्षा के मार्ग में बाधक है, उसका त्याग करने में ही अपना तथा समाज का कल्याण है--

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।।
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि भए मुद मंगलकारी।।[36]

जीवनोत्कर्ष की दिशा में यह काम्य स्थिति सहज ही प्राप्त नहीं हो जाती--इसके लिए अथक प्रयास करना पड़ता है। लोक व्यवहार को आदर्श स्थिति में लाने का एक विशिष्ट साधनाक्रम है, वह है संत स्वभाव को ग्रहण करने की प्रतिज्ञा--

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपाल-कृपा तें संत सुभाव गहौंगो।।
जथा-लाभ-संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो।।
परुषवचन अतिदुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन, नहिं दोष कहौंगो।।
परिहरि देहजनित चिंता, दुख-सुख सम-बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो।।[37]

भक्ति का यह आदर्श व्यावहारिक जीवन पर भी घटित किया जा सकता है।

गोस्वामी जी का मूल्य-विवेक अनुभव-ज्ञान की प्रक्रिया से विकसित है। वे सारे आदर्शों की संभावना के मूल में लोकजीवन के रग-रग में रमे हुए राम का साक्षात्कार करते हैं और प्रत्यक्ष व्यवहार की एक-एक स्थिति पर दृष्टि बनाए रखते हैं। मानव-व्यवहार-ज्ञान की दिशा में उनके साहित्य की अनुपेक्षणीय उपयोगिता का यही रहस्य है। लोकदृष्टि और अध्यात्म-दृष्टि के संतुलन से ही इस प्रकार के अनुभव-पुष्ट विचार संभव हो पाते हैं। तुलसी की समकालीन प्रासंगिकता की थाह लेनेवालों को उनकी जीवन-दृष्टि का सजग अध्ययन करने की आवश्यकता है। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संदर्भ ग्रंथ

१. कविता वली/उत्तरकांड/३७
२. वही/उत्तर कांड/४७
३. कवितावली, उत्तरकांड/२८
४. दोहावली/२९०
५. वही/९२
६. वही/५२
७. वही/७७
८. वही/९४
९. वही/१५२
१०. जानकीमंगल/४७/५०
११. दोहावली/१५३
१२. वही/३८२
१३. वही/१५४
१४. वही/२१९
१५. रामचरितमानस
१६. दोहावली/१६६
१७. रामचरितमानस
१८. दोहावली/३४६
१९. वही/३४७
२०. वही/३६९
२१. वही/३९१
२२. रामचरितमानस
२३. दोहावली/४१६
२४. रामचरितमानस
२५. दोहावली/४२२
२६. वही/४२३
२७. वही/४३१
२८. वही/४२५
२९. वही/४५४
३०. वही/४९५
३१. वही/४९६
३२. वही/५५८
३३. वही/५६२
३४. वही/५६४
३५. वही/४६६
३६. विनय पत्रिका/१७४
३७. „ „ १७२

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गोस्वामी तुलसीदास और उनकी अप्रतिम प्रतिभा

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

वाल्मीकिस्मृतिमन्दरेण मथितः सीता-रमा-सम्भवः
सुग्रीवामरभूरुहोंगदगजः सौमित्रिचन्द्रोदयः ।
वातोत्पन्नमणिर्विभीषणसुधः पौलस्त्य-हालाहलः
श्रीरामायणदुग्धसिन्धुरमलः भूयात् स नः श्रेयसे ॥

(वाल्मीकि की स्मृति के मन्दराचल से मथा हुआ वह शुद्ध श्रीरामायण-रूपी क्षीरसिन्धु हमारा कल्याण करे, जिसमें से सीता-रूपी लक्ष्मी, सुग्रीव-रूपी कल्पवृक्ष, अंगद-रूपी ऐरावत, लक्ष्मण-रूपी चन्द्रमा, हनुमान-रूपी कौस्तुभ मणि, विभीषण-रूपी अमृत और रावण-रूपी हलाहल का जन्म हुआ) । इसलिए कोई भी कृतज्ञ भारतीय वाल्मीकि को और उनके रामायण को कभी भूलने का प्रमाद कर नहीं सकता । रामायण के जन्म के समय ही यह भविष्यवाणी कर दी गयी थी——

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरिताश्च महीतले ।
तावद्रामायणी कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

(जब तक संसार में पर्वत और नदियाँ पृथिवीतल पर विद्यमान रहेंगी, तब तक रामायणी कथा का लोकजीवन में प्रचार होता ही रहेगा ।)

यदि वाल्मीकि ने अपने रामायण में आदर्श मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की सृष्टि की तो गोस्वामीजी ने लोकभाषा में रामायण की कथा कहकर राम के साथ-साथ भारतीय शील, सामाजिक संस्कृति, विवेकशील पौरुष, पारिवारिक निष्ठा, राज-नीतिक मर्यादा सब कुछ रामचरितमानस के माध्यम से घर-घर में स्थापित किया । नाभादासजी ने इसीलिए गोस्वामीजी को सबसे अधिक महत्वपूर्ण विरुद प्रदान करते हुए अत्यन्त भावमग्न होकर भक्तमाल में लिखा था——

कलि कुटिल-जीव-निस्तार हेतु, वाल्मीकि तुलसी भयो ।

8

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(कलियुग के कुटिल जीवों का उद्धार करने के लिए बाल्मीकि ही तुलसी के रूप में उत्पन्न हुए।) इससे बढ़कर कोई भी संस्तुति किसी कवि की आज तक नहीं हो पाई। यद्यपि गोस्वामीजी ने रामचरितमानस की रचना स्वान्तः-सुखाय ही की थी, तथापि उनका स्वान्तःकरण विश्वान्तः करण बना हुआ था। इसलिए उनके रामचरितमानस से केवल उनके ही अन्तःकरण को ही नहीं वरन् मानवमात्र के अन्तःकरण को सुख मिलता है।

इतालिया (इटली) में कई शताब्दियों तक एक उक्ति बड़ी प्रसिद्ध रही—

इन्दिग्नो क्वान्दोके बोनस दौर्मिताल हमेरस।

(जब यूनानी महाकवि होमर की उपेक्षा होने लगती है, तब हमारा जी झल्ला उठता है।) इसी को कुछ परिवर्तित करके हम कह सकते हैं कि जब भारत में तुलसी की उपेक्षा होने लगती है, तो जी झल्ला उठता है, क्योंकि तुलसी ने केवल महाकाव्य की ही रचना नहीं की, उन्होंने हमारे मुमूर्षु समाज को रामचरितमानस-रूपी औषधि देकर जीवित बने रहने की संजीवनी शक्ति भी दी है। प्राचीन मन्त्र-द्रष्टा महर्षियों के समान भविष्यद्रष्टा, आदर्शस्रष्टा, दूरदर्शी निर्देशक, समर्थ उपदेशक, विचारशील आख्याता, अतिकुशल व्याख्याता, एकान्त साधक और एकनिष्ठ आराधक होने के कारण उन्होंने सत्यभावित भक्ति की स्थापना और ज्ञापना करके समस्त मानव-समाज को इस प्रकार भावित, प्रभावित और विभावित किया कि संसार के सभी महाकवि—होमर, दाँते, वर्जिल, मिल्टन और फ़िरदौसी सब पीछे छूट गये।

यूनानी कवि होमर ने अपने महाकाव्य उदीसी और ईलियाद में वीरता के अत्यन्त प्रबुद्ध आदर्श स्थापित किए। किन्तु एकिलीज-द्वारा हैक्तर का बध किए जाने पर उसका एकिलीज अपने शत्रु हैक्तर के शव के टुकड़े-टुकड़े करके अपने रथ के पीछे बाँधकर त्रौय नगर के चारों ओर घुमाता है, किन्तु गोस्वामीजी के राम अपने दुर्दान्त शत्रु और पत्नी का हरण करनेवाले रावण का वध कर चुकने पर उसका तेज अपने भीतर समा लेते हैं और वाल्मीकि के अनुसार तो वे विभीषण को यहाँ तक कह देते हैं—

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥

(वैर तो रावण की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गया और हमारा प्रयोजन भी पूर्ण हो गया। अब तुम इसका संस्कार कर डालो क्योंकि अब तो यह मेरा भी वैसा ही बड़ा भाई है जैसा तुम्हारा)

इतालिया के महाकवि दाँते ने अपने 'दिविना कमीदिया' में दिखाया है कि विद्वान्, दार्शनिक, महात्मा, साधु, राजा, समाजसेवी और दानी सब के सब नरक में ही ले जानेवाले हैं, केवल प्रेयसी बिएत्रिस ही स्वर्ग में ले जाती है। अंग्रेज

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कवि मिल्टन के 'पैरेडाइज लौस्ट' का ईश्वर तो अत्यन्त निःशक्त, दुर्बल, कायर और भीरु है, किन्तु शैतान सर्वशक्तिमान् और प्रतापी है। फ़ारस के कवि फ़िर-दोसी ने अपने महाकाव्य 'शाहनामा' में केवल बादशाहों के गौरव के गीत गाए हैं, लोक-कल्याण और मानवीय आदर्श से उसका बादरायण सम्बन्ध भी नहीं, किन्तु तुलसी ने रामचरितमानस के द्वारा हमारे समाज के लिए ऐसे आदर्श चरित्र की स्थापना कर दी है, जिनकी अद्‌भुतता, असाधारणता और अलौकिकता के कारण उनके प्रति अनायास श्रद्धा उमड़ पड़ती है। पाठक सहसा मानस के पढ़ने के साथ-साथ सामान्य मानव स्तर से बहुत ऊँचे उठ जाता है।

साहित्य का वर्चस्व वैदिक युग से ही वन्दनीय रहा है, जिसके महत्वपूर्ण गौरव की स्थापना महर्षि प्राचेतस (वाल्मीकि) ने अपने आदि काव्य रामायण के द्वारा की। आज भी हम जिन अर्हेडमान (आदरणीय) साहित्यिक ऋत्विजों की स्नेह, सम्मान और सुरुचि के साथ सपर्या करते हैं, उन्होंने भारत की उस अत्यन्त सात्विक गौरवमयी परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रक्खा, जिसने सदा त्याग, तपस्या और तितिक्षा का शाश्वत जीवन्त सन्देश दे रक्खा है।

तमसा (वर्तमान टौंस) नदी के तट पर व्याध-द्वारा कामविमोहित क्रौंच (सारस) के जोड़े में से एक के मारे जाने पर उसकी सहचरी क्रौंची ने भी जब आर्तनाद के साथ अपने प्राण दे डाले, तब उस करुण दृश्य को देखकर जिन महर्षि वाल्मीकि का शोक तत्काल श्लोक बनकर शाप के रूप में फूट पड़ा—

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

(अरे व्याध ! इस काममोहित क्रौंच के जोड़े में से एक को जो तूने मार डाला है तो जा, तू भी अनन्त काल तक कभी शान्ति (सुख) नहीं प्राप्त कर पावेगा)

उन महर्षि के मुख से नूतनश्छन्दसामवतारः (नये छन्द के अवतार) के साथ जो लोक-काव्य का मार्ग प्रशस्त हुआ, उसने मन्त्र-द्रष्टा ऋषि भले ही न उत्पन्न किए हों किन्तु मानव-मात्र के लिए उदात्त आदर्शों के स्रष्टा उन्होंने अवश्य उत्पन्न किए, जिनके शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी हैं। अपने प्रारम्भिक जीवन में अनेक कष्ट, अपमान, उपेक्षा, अनादर और विरोध सहते हुए भी अपनी अप्रतिम प्रतिभा और एकनिष्ठ भक्ति के कारण अपने जीवनकाल में ही वे मुनि समझे जाने लगे थे।

राम के एकनिष्ठ भक्त होने पर भी और अपनी भावात्मक उदारता के कारण सारे विश्व को सियाराम-मय समझते हुए अन्य सभी देवताओं की वन्दना करते हुए भी उन्होंने उनसे यही वर मांगा—

बसहु राम सिय मानस मोरे, या रामचरन-रति देहु।

वैराग्य-सन्दीपनि में उन्होंने स्पष्ट रूप से डंके की चोट कह दिया—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास।।

चातक ही उनकी एकनिष्ठ भक्ति का सच्चा प्रतीक था जो पिउ-पिउ करके बादल को टेरता ही रहता है, चाहे बादल उस पर ओले बरसावे, उसे तर्जन करे या उसके पंखे तोड़े। चातक की इस एकनिष्ठा के गौरव का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने अत्यन्त भावमग्न होकर कहा है—

नहिं जाचक, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि को बारिद बिनु देइ।।

किन्तु गोस्वामीजी ने राम के प्रति अपनी अविचल भक्ति को उससे भी अधिक सिद्ध करते हुए चातक को उपदेश दिया है—

चातक! तुलसी के मते, स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम-तृषा बाढ़ति भली घटे घटेगी आनि।।

उनका कथन है कि जितनी देरतक चातक ऊपर चोंच उठाकर स्वाती का जल पीता है, उतनी देर तक तो उसकी रटन बन्द रहती ही है। इसीलिए वे उसे सुझाव देते हैं कि भाई चातक! तुम स्वाती का भी जल पीना बन्द कर दो क्योंकि जितनी देर तक तुम स्वाती का जल पीते रहते हो, उतनी देर तक तो पिउ-पिउ न रटने से तुम्हारी निष्ठा में कमी पड़ ही जाती है। तात्पर्य यह है कि अपने इष्ट-देव को निरन्तर पुकारते रहो, सतत स्मरण करते रहो, यहाँ तक कि उसकी कृपा से जितनी देर तक सुख मिलता रहे; उस सुख के समय में भी उसे पुकारने में प्रमाद न करो। गोस्वामीजी की भक्तिभावना का यह चरम स्वरूप है।

कवितावली के दो सवैयों में तो उन्होंने अपने इस मत को और भी अधिक दृढ़ता के साथ स्पष्ट कर दिया है।

राम हैं मातु-पिता-गुरु-बन्धु औ संगी-सखा-सुत-स्वामी-सनेही।
रामकी सौंह भरोसो है रामको, राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही।
जीयत राम, मरे पुनि राम, सदा गति रामहिकी इक जेही।
सोइ जियै जग में तुलसी, न तु डोलत और मुए धरि देही।।
सिय-राम-सरूप, अगाध, अनूप, विलोचन-मीननको जलु है।
श्रुति राम-कथा, मुख रामको-नाम, हिये पुनि रामहिको बलु है।
मति रामहिसों, गति रामहिसों, रति रामसों, रामहिको बलु है।
सबकी न कहैं, तुलसीके मते, इतनो जग जीवनको फलु है।।

उनकी रचनाओं का अनुशीलन करने से ज्ञात हो जाता है कि वे अपने समय की सभी काव्य-भाषाओं के पारंगत पंडित थे। भारत की सांस्कृतिक भाषा संस्कृत, काव्य-भाषा ब्रज और अवधी तथा राजभाषा फारसी पर उनका अखण्ड अधिकार था। वे काशी के तत्कालीन परम विद्वान श्रीशेषसनातन के प्रौढ़ और विद्यासिद्ध

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिष्य थे और उन्होंने व्यापक रूप से वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य, तथा नाटकों का अर्थात् राम-सम्बन्धी तथा भारतीय संस्कृति-सम्बन्धी समस्त संस्कृत साहित्य का भलीभाँति आलोडन किया था। इतना होने पर भी उन्होंने राम के प्रति अपनी एकनिष्ठ भक्ति का द्वार जनसाधारण के लिए खोलने के निमित्त लोक-भाषा में अपनी रचना की, क्योंकि वे जानते थे कि लोक-भाषा के माध्यम से ही वे जनसाधारण के मानस तक अपना सन्देश पहुँचा सकते हैं। संस्कृत छोड़कर लोक-भाषा में रचना करने के उन्होंने दो कारण दिए हैं—

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जुआवै कामरी, का लै करे कुमाच।।
स्याम सुरभि, पय बिसद अति, गुनद, करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य, सिय-राम-जस, गावहिं सुनहिं सुजान।।

(वास्तव में संस्कृत या भाषा का महत्व नहीं है। महत्व तो सच्चे प्रेम का है। जहाँ कम्बल से ही काम निकल पा सकता हो, वहाँ दुशाला किस काम का।) उन्होंने एक दूसरा भी कारण दिया है, वे कहते हैं कि 'गाय का रंग काला भले ही हो किन्तु काली गाय का ही दूध अत्यन्त स्वच्छ और गुणदायक होता है। इसीलिए लोग काली गाय का ही दूध पीये को मचलते हैं। इसी प्रकार राम और सीता के गुणों की जो गाथा ग्राम्य या लोकभाषा में होगी, उसे बुद्धिमान् लोग बड़े आदर के साथ गावेंगे और सुनेंगे।'

गोस्वामीजी से पूर्व भारत में, विशेषकर उत्तर भारत में स्थान-स्थान पर अनेक निर्गुणब्रह्मवादी सन्तों ने लोक-भाषा के माध्यम से ही अपने मत और सिद्धान्त जनमानस तक पहुंचाए थे, जिसके परिणाम-स्वरूप समस्त समाज ब्रह्मवाद के फेर में पड़कर अत्यन्त अव्यवस्थित और निरंकुश हो चला था। उसका प्रतिकार करने के लिए भी यह आवश्यक था कि लोक-भाषा में ही सगुण भक्ति का प्रचार करके जनमानस को प्रभावित किया जाय। इसीलिए दक्षिण भारत के प्रसिद्ध भक्ति के अचार्यों—श्रीरामानुजाचार्य, श्रीनिम्बार्काचार्य तथा श्रीवल्लभाचार्य जी ने संस्कृत के धुरन्धर पंडित होते हुए भी सगुण भक्ति के प्रचार के लिए लोक-भाषा ब्रज का ही आश्रय लिया, जो उन दिनों गुजरात से असम तक समस्त उत्तर भारत की प्रसिद्ध काव्य-भाषा थी। यहाँ तक कि श्रीमद्भागवत और रामायण की कथा कहनेवाले व्यास भी ब्रज-भाषा में ही कथा-व्याख्या करते थे। इसी कारण गोस्वामीजी ने भी अत्यन्त बुद्धिमानी करके लोकभाषा अवधी और ब्रज का ही आश्रय लेकर अपने काव्यों की रचना की, जिससे उनकी रचनाएँ लोक-सामान्य को सरलतापूर्वक अपनी ओर आकृष्ट कर सकें।

काव्य में लोक-भाषा का महत्व बताते हुए मिथिला-कवि-कोकिल विद्यापति ने घोषणा ही कर दी थी—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देसिल बयना सब जन मिट्ठा।
तं तैसन जम्पेउ अवहट्ठा॥

(देसी बाणी या लोक-भाषा सब को मीठी लगती है, इसीलिए मैंने भी अवहट्ठ या लोक-भाषा में ही अपनी रचना की है।)

प्राकृत में तो एक सूक्ति ही प्रसिद्ध है—

परुसा सक्कय-बन्धा, पाउअ-बन्धोवि होइ सुउमारो।
पुरुस-महिलाणं जेत्तिअ तेत्तिअमिमन्तरमिमाणं॥

(संस्कृत की रचना बहुत कर्कश और प्राकृत की रचना बहुत कोमल होती है। उन दोनों में उतना ही अन्तर है, जितना पुरुष और महिला में होता है।)

विभिन्न काव्य-भाषाओं में रचना करने के साथ-साथ उन्होंने तत्कालीन सभी काव्य-शैलियों में भी अपने काव्यों का निर्माण किया। प्राकृत और अपभ्रंश से ही मुक्तक काव्य के लिए प्रयुक्त होती चली आती हुई दोहा, शैली में दोहावली, और चारणों-भाटों की कवित्त-सवैया-घनाक्षरी-छप्पय शैली में उन्होंने कवितावली या कवित्त रामायण की रचना की। अब्दुररहीम खानखाना द्वारा लोकप्रिय किये हुए बरवै छन्द में उन्होंने बरवै रामायण लिखी। विशेष लोकप्रिय कुण्डलिया छन्द में उन्होंने कुण्डिलिया-रामायण लिखी और अष्टछाप तथा कृष्ण-भक्त कवियों द्वारा स्वीकृत गीति-शैली में राग-निर्देश-पूर्वक उन्होंने गीतावली, कृष्ण-गीतावली और विनयपत्रिका लिखी। इतना ही नहीं साधु और वैरागियों के लिये वैराग्य सन्दीपनी, ज्योतिषियों के लिए राम-शलाका और रामाज्ञा प्रश्न तथा मंगलकार्यों में गाये जा सकने वाले स्त्रियों के लोक-गीतों के रूप में उन्होंने जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल तथा रामलला-नहछू की रचना की। सामान्य व्यक्ति से लेकर परम विद्वान् पण्डित तक को तुष्ट करने के लिए उन्होंने रामचरितमानस का निर्माण किया। रामचरितमानस के निर्माण से जब कलिकाल (कलियुग के लोग) उन पर अधिक रुष्ट हुए, तब उनसे त्रस्त होकर उन्होंने कलियुग के अत्याचारों के विरुद्ध श्रीराम के दरबार में विनय-पत्रिका के रूप में अपना आवेदन-पत्र तक भेज दिया। इस भूमण्डल के काव्य-इतिहास में भगवान् के पास प्रौढ़ और प्रपत्ति-भावित पत्र के रूप में अपनी विनति भेजने का यह एकमात्र उदाहरण है, जिसकी तिथि राग-रत्नाकर में इस प्रकार दी हुई है—

संबत सोलहसौ इकतीसा, ज्येठ मास छठि स्वाती।
तुलसिदास यह अरज करत है पठइ अरजकी पाती॥

(रागरत्नाकर; पृष्ठ २९२)

इसका अर्थ यह है कि जब संवत् १६३१ की चैत्र शुक्ल नवमी से उन्होंने मानस लिखना प्रारम्भ किया, तभी से कलिकाल-द्वारा अत्यधिक व्याकुल, त्रस्त, खिन्न और प्रताड़ित होकर उन्होंने तीन मास के अनन्तर ही ज्येष्ठ की षष्ठी को स्वाती

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नक्षत्र में उन्होंने निम्नांकित छहों प्रकार की शरणागति से युक्त विनय-पत्रिका का संव्यूहन प्रारम्भ कर दिया था—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासः गोप्तृत्ववरणं तथा।।
आत्म-निक्षेप-कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।।

(यह संकल्प करना कि अबसे मैं आपके ही अनुकूल रहूँगा, जो आपके प्रतिकूल होंगे उन सबको छोड़ दूँगा, मुझे विश्वास हो गया है कि आप ही मेरी रक्षा करेंगे, इसलिये मैंने आपको ही अपने रक्षक के रूप में वरण कर लिया है, मैंने अपने आपको आपके हाथों में पूर्णतः सौंप दिया है। मैं अत्यन्त दीन हूँ और आपके अतिरिक्त अन्य किसी को जानता ही नहीं। यह छह प्रकार की शरणागति है।)

अनुकूलता को व्यक्त करने वाले **अबलों नसानी अब न नसैहौं,** प्रतिकूलों को छोड़ने के सम्बन्ध में **जाके प्रिय न राम वैदेही, तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही,** राम ही रक्षा करेंगे इस विश्वास के लिए—**ऐसो को उदार जग-माही, बिनु सेवा जो द्रवै दीनपै राम सरिस कोउ नाहीं,** रक्षक-रूप में वरण करने के निमित्त **जाउ कहाँ तजि चरन तिहारे,** आत्मसमर्पण की पुष्टि में—'**तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी** और कार्पण्य की अभिव्यक्ति के लिए **मैं हरि पतित पावन सुने, हम पतित, तुम पतित पावन दोउ बानिक बने**—जैसे सैकड़ों पद विनयपत्रिका में आद्यन्त भरे पड़े हैं। विचित्र बात है कि विनयपत्रिका और रामचरितमानस दोनों में जितने स्तोत्र हैं वे सब संस्कृत में न होते हुए भी ऐसी शैली में लिखे गए हैं मानों वे संस्कृत में ही हों—**जय राम रमा रमणं समनं भव-ताप भयाकुल पाहि जनं।** इतना अद्भुत कवि-कौशलयुक्त, व्यापक पाण्डित्यपूर्ण और व्युत्पत्तिनिष्ठ विद्वान् कवि विश्वसाहित्य में कोई दूसरा नहीं हुआ।

गोस्वामीजी ने विश्व साहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्धि और अमरता यदि प्राप्त की तो अपने रामचरितमानस के द्वारा ही की जिसे वे अपनी रचना न मानकर महादेवजी की ही रचना मानते हैं—

शंभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा।
रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचे शंभु सुहावन पावन।
रचि महेस निज मानस राखा। सुसमउ पाइ सिवासन भाखा।

मानस के अन्त में भी उन्होंने कहा है—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीमशम्भुना दुर्गमं, श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यैतु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(सर्वश्रेष्ठ कवि भगवान् शंकर ने राम के चरण-कमलों में नित्य, निरन्तर, भक्ति उत्पन्न होते रहने के लिए जिस अलभ्य मानस या रामायण की रचना की थी, उसमें निरन्तर राम ही राम का नाम देखकर तुलसीदास ने भी अपने अन्तःकरण का अन्धकार दूर करके शान्ति प्राप्त करने के लिए इसे लोक-भाषा में लिख डाला है। उन्होंने स्वयं कहा है—

भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

रामायण के मूल रचयिता महादेवजी ने इसकी रचना करके बड़ी कृपा करके उमा को जो कथा सुनायी थी, वही कथा शिवजी ने कागभुशुण्डी जी को सुनायी थी। कागभुशुण्डी से वही कथा याज्ञवल्क्य ने प्राप्त की थी और उन्होंने वह कथा मुनिवर भरद्वाज को सुनायी थी। कागभुशुण्डी ने याज्ञवल्क्य को वह कथा कब सुनायी थी इसका विवरण मानस में कहीं प्राप्त नहीं है)। वही कथा सूकरक्षेत्र (गंगा और घाघरा के संगम पर पसका के पास तुलसीदास के गुरु ने उन्हें बार-बार जब वह कथा सुनायी, तब उसका संस्कार पाकर गोस्वामीजी ने वह कथा प्रबन्ध विचित्र बनायी। वेद, पुराण, शास्त्र तथा अन्य ग्रन्थों तथा स्रोतों से सामग्री लेकर गोस्वामी जी ने उस कथा को केवल भाषा-निबद्ध किया है, जिसके मूल रचयिता महादेवजी हैं।

यह राम-कथा सुनने के लिए पार्वतीजी ने महादेवजी से जितने प्रश्न किये थे, उन सब प्रश्नों का समाधान ही रामचरितमानस है। बहुत से विद्वानों का कथन है कि शिवजी ने अन्य सब प्रश्नों का उत्तर तो दे दिया, किन्तु एक प्रश्न का उत्तर नहीं दिया—

बहुरि कहउ करुनायतन कीन्ह जु अचरज राम।
प्रजा-सहित रघुबंशमनि किमि गवने निज धाम।।

किन्तु शिवजी तो इस प्रश्न का उत्तर आरम्भ से अन्त तक स्थान-स्थान पर राम को व्यापक ब्रह्म बताकर निरन्तर देते चले ही गए थे। जो राम सर्वव्यापक ब्रह्म हैं, उनका धाम क्या? सारा विश्व ही उनका धाम है। फिर भी जब वाल्मीकिजी के आश्रम में राम पहुंचे तो उन्होंने वाल्मीकि जी से पूछा—**अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय-सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ।** इस पर वाल्मीकि जी ने बड़ा सटीक उत्तर दिया—

पूछहु मोहिं कि कहँ रहउँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हिं दिखावहु ठाउँ।।

(बताइए, आप मुझ से पूछे जा रहे हैं कि कहाँ रहा जाय, पर मैं तो आपसे ही यह पूछते झिझक रहा हूँ कि पहले मुझे ही वह स्थान बतला दीजिए, जहाँ पर आप न हों, तब मैं बताऊँ कि आप कहाँ जाकर रहें। इसके पश्चात् वाल्मीकिजी ने अत्यन्त भावमग्न होकर ब्रह्म राम के निवास के लिए भक्तों के हृदय में निवास करने के लिए

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक बड़ी लम्बी सूची दे दी है, जिसका तात्पर्य यही है कि आप भक्तों के हृदय में ही जाकर निवास कीजिए---

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो राउर निज गेह॥

श्रीरामचरितमानस की रचना संस्कृत काव्य-रचना की पद्धति और परम्परा से पूर्णतः भिन्न है। संस्कृत के महाकाव्यों में सूक्ष्म मंगलाचरण अथवा वस्तु-निर्देश के साथ कथा प्रारम्भ कर देने का विधान है, किन्तु तुलसीदासजीने बालकाण्ड का अधिकांश भाग मानस की मूल कथा से पूर्व भूमिका के रूप में ला जोड़ा है, जिसमें बड़ी लम्बी-चौड़ी वन्दना है (जिसमें दुष्टों तक की वन्दना कर डाली गई है), मानस का लम्बा रूपक है, उमा के प्रश्न हैं, मानस के वक्ता और श्रोता हैं तथा राम और रावण के जन्म के कारणों से सम्बद्ध नारद-मोह, प्रतापभानु और मनुशतरूपा की कथा भी है। यह आश्चर्य की बात है कि योगवासिष्ठ में राम के जन्म के जो तीन कारण दिए हुए हैं, उनमें से कोई भी कारण मानस में दिए हुए राम के जन्म के कारणों से मेल नहीं खाते। योगवासिष्ठ के अनुसार (१) एक बार ब्रह्मपुरी में विष्णु के आगमन पर जब सनत्कुमार ने उनका पूजन नहीं किया, तब विष्णु ने उन्हें कामातुर होने और स्वामि कार्तिकेय के रूप में जन्म लेने का शाप दिया; जिसके बदले में सनत्कुमार ने भी शाप दिया कि तुम्हारा सर्वज्ञता का अभिमान नष्ट होकर तुम्हें भी (पत्नी के विरह में) अज्ञानियों जैसा आचरण करना पड़ेगा।

(२) अपनी पत्नी के विरह में शोकमग्न महर्षि भृगु को देखकर जब विष्णु हंस पड़े, तब मुनि ने उन्हें शाप दिया कि जाओ तुम भी स्त्री के विरह में इसी प्रकार रोओगे।

(३) जब गंगा-तटपर देवशर्मा की स्त्री नृसिंह के भयानक रूप और उनका गर्जन सुनकर स्वर्गत हो गई, तब देवशर्मा ने शाप दिया कि तुम भी पत्नी के वियोग में ऐसे ही दुखी होओगे।

अपने रामचरितमानस में उन्होंने कविता की परिभाषा और उसके उद्देश्य की पूर्णतः नवीन व्याख्या की है। संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने काव्य की निम्नांकित परिभाषाएं दी हैं---

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। रसगंगाधर।
वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। --साहित्यदर्पण
तददोषो शब्दार्थं सगुणावनलंकृति पूनः क्वापि--काव्यप्रकाश
काव्यस्य आत्मा ध्वनिः। --ध्वन्यालोक
वक्रोक्ति काव्य जीवितम्। --वक्रोक्तिजीवितम्
सालंकाररसानेक वृत्तिर्वाकाव्यंनामभाक्॥

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार किसी ने रमणीयार्थ-प्रतिपादक शब्द को, किसी ने रसात्मक वाक्य को, किसी ने अदोष और सगुण शब्दार्थ को, किसी ने वक्रोक्ति को और किसी ने अलंकारमयता को ही काव्य माना है, किन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी ने काव्य की नई परिभाषा दी है—

सरल कबित, कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान।।

(कविता सरल हो, उसमें किसी विमल कीर्तिवाले का वर्णन हो और स्वाभाविक बैर भुलाकर शत्रु भी आदर के साथ जिसे सुनकर उसकी प्रशंसा करे, वही श्रेष्ठ काव्य है।) तात्पर्य यह है कि गोस्वामीजी ने रस, अलंकार, वक्रोक्ति आदि को काव्य के लिए आवश्यक न मानकर सरलता तथा विमल कीर्तिवाले का जीवन-चरित ही काव्य के लिये महत्वपूर्ण माना है। काव्यशास्त्र के इतिहास में काव्य की यह नितान्त नवीन परिभाषा है।

काव्य के प्रयोजन के सम्बन्ध में भी उनका कथन है—**कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरिसम सब कर हित होई।।** अर्थात् काव्य तो गंगाजी के समान सबका कल्याण करने वाला होना चाहिए, किसी एक वर्ग, जाति या समाज का नहीं। इसीलिए गोस्वामी जी जन-कवि या लोक-कवि हैं, क्योंकि वे अपने काव्य के द्वारा सबका ही हित करना चाहते हैं। अंग्रेज कवि कीट्स ने ऐलेग्-जेण्डर पोपके रेप औफ दी लौक महाकाव्य पर टिप्पणी करते हुए कहा था—

'......फौर्गेटिंग दि ग्रेट एंड
औफ पोइट्री, दैट इट शुड बी ए फ्रैंड
टु सूद दि केअर्स ऐंड लिफ्ट दि थौट्स औफ मैन्।।

ऐलेग्जेण्डर पोप, काव्य का यह महान् उद्देश्य भूल गया कि काव्य तो ऐसे मित्र के समान होना चाहिए जो चिन्ताओं का शमन करे और मनुष्यों के विचारों को समुन्नत कर दे। अर्थात् काव्य में लोक-मंगल और लोक-कल्याण की भावना होनी ही चाहिए।

रामचरितमानस इस भूमण्डल पर सबसे अधिक अप्रतिम, अलौकिक और अद्भुत महाकाव्य है। महाकाव्य के सब गुणों से पूर्ण और धीरोदात्त नायक राम की पूर्ण कथा होने के कारण यह महाकाव्य तो है ही, साथ ही गेय होने के कारण यह गीति-काव्य भी है। तत्वज्ञों की दृष्टि से यह दार्शनिक ग्रन्थ भी है। स्तोत्र के रूप में इसके सुन्दरकाण्ड का पाठ किया जाता है। इसकी निम्नांकित चौपाई मन्त्र के रूप में जपी जाती है—

जनक-सुता जग-जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
ताके जुगपद कमल मनावौं। जासु कृपा निर्मल मति पावौं।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्रीमद्भागवत के समान इसका भी सप्ताह, नवाह या मासिक पाठ भी होता है और अखण्ड पाठ भी। भारतीय समाज-शास्त्र का अक्षय भण्डार है, नीति शास्त्र का अगाध सागर और मनोविज्ञान की यह अप्रतिम निधि है। मनुष्य के आध्यात्मिक उत्थान के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा सर्वसुलभ धर्मग्रन्थ नहीं है। इतने अधिक रूपों में प्रशस्त दूसरा कोई भी काव्य इसके समान विश्व साहित्य में नहीं है। कुछ भक्तों ने तो भक्ति के आवेश में इसकी चौपाइयों से ही करन्यास और अंगन्यास आदि के पूरे कर्मकाण्ड का आडम्बर ही बना छोड़ा है।

हमारे यहाँ मान्यता है कि मानस के विभिन्न काण्डों का पाठ करने से उनके अलग-अलग फल प्राप्त होते हैं—जैसे बालकाण्ड का पाठ करने से पुत्रलाभ, अयोध्या-काण्ड का पाठ करने से वैराग्य, अरण्यकाण्ड का पाठ करने से मनःशान्ति, किष्किन्धाकाण्ड के पाठ करने से राज्य-सम्पत्ति का लाभ, सुन्दर काण्ड का पाठ करने से सर्वसंकट-दलन, लंकाकाण्ड का पाठ करने से सर्वत्र विजय और उत्तरकाण्ड का पाठ करने से अविचल भक्ति प्राप्त होती है।

सूरदास ने सगुण-लीला-पद गाने का कारण देते हुए कहा है रूप-रेख-गुण-जाति कुछ भी न होने के कारण निर्गुण रूप अगम है—

रूप-रेख-गुन-जाति-जुगुति-बिनु निरालम्ब कित चक्रित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातें सूर सगुन लीलापद गावै॥

किन्तु तुलसीदास जी ने ठीक इसके विपरीत कहा है—

निर्गुन रूप सुगम अति, सगुन न जानइ कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि-मन-भ्रम होइ॥

जब कागभुशुण्डि, गरुड़ और पार्वतीजी को भ्रम हो गया, तब अन्य मुनियों की तो बात ही क्या है। संस्कृत के महाकवि कालिदास अपने एक श्लोक के कारण दीपशिखा कवि कहलाते थे। इन्दुमती के स्वयंवर का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि जब इन्दुमती की सखी सुनन्दा किसी राजा के रूप, गुण, पराक्रम और उसके देश के प्राकृतिक वैभव का वर्णन दे चुकती थी और उसे प्रणाम करके इन्दु-मती आगे बढ़ जाती थी, तब उस राजा का मुख ऐसा धुन्धला पड़ जाता था जैसे किसी राजमार्ग में दीपशिखा (मशाल) लेकर चलते हुए जिन भवनों के आगे से वह दीपशिखा आगे बढ़ जाती है, वे भवन धुन्धले दिखाई पड़ने लगते हैं।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

तात्पर्य यह है कि महाकवि कालिदास जिस कवि के आगे से निकल जाते हैं, वही गतप्रभ हो जाता है। किन्तु तुलसीदासजी ऐसे दीपशिखा कवि थे कि—**सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छबिगृह दीपशिखा जनु बरई।** (जैसे शीशमहल के बीच रक्खे हुए महादीप के कारण वह सुन्दर शीशमहल और भी सुन्दर लगने लगता

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है वैसे ही सीताजी की सुन्दरता के कारण विश्व की सुन्दरता को और भी चार चाँद लग गए।) अर्थात् जो राम-कथा स्वयं अपने में सुन्दर थी उसे तुलसीदासजी ने रामचरितमानस के द्वारा और भी सुन्दर बना दिया।

रामचरितमानस की एक और भी विशेषता है कि इसमें गोस्वामीजी ने सभी चरित्र निर्दोष और निष्पाप रूप से चित्रित किए हैं। राम के बनवास का सारा दोष कैकेयी और मन्थरा के सिर न देकर सरस्वती के द्वारा मन्थरा की बुद्धि फिरवा कर उनके दोष का परिहार कर दिया गया। जिस रावण को सारा संसार अभिमानी, परस्त्रीहरण करनेवाला, सज्जन पुरुषों का दमन करनेवाला बताता है, उसे भी गोस्वामीजी ने दोषमुक्त कर दिया है। जब शूर्पणखा ने रावण से जाकर अपने नाक-कान कटने और खर-दूषण के वध की बात कही तो रावण ने अपने मन में यही विचार किया--

खर-दूषन मो सम बलबता। तिन्हहिं को मारइ बिनु भगबंता।
सुर रंजन भंजन महि भारा। जो भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तो मैं जाइ बैर हठि करऊँ। प्रभु-सर-प्रान तजे भव तरऊँ।
होइहि भजन न तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र दृढ़ एहा।।

और जब वह सीताजी का हरण करने चला तब भी उसने सीताजी के चरणों को प्रणाम किया---

मन महँ चरन बंदि सुख माना।

इसका तात्पर्य यह है कि रावण भी राम का भक्त ही था और उसने राम के बाण से मुक्त होने के लिए ही सीताहरण किया था। राम-रावण के युद्ध के समय जब कुम्भकर्ण को रावण ने जगाया और उसे सारी कथा कह सुनायी, उस समय---

सुनि दसकंधर बचन तब, कुम्भकरन बिलखान।
जगदम्बा हरि आनि अब, सठ चाहत कल्यान।।
अजहुँ तात त्यागिय अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना।।
अब भरि अंक भेंटु मोहिं भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई।।
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन।।
राम-रूप-गुन सुमरतहि, मगन भयउ छन एक।

इसके पश्चात् जब विभीषण उससे मिलने के लिए आया तब---

अनुज उठाइ हृदय तेहि लायउ। रघुपति भगत जानि मन भायउ।।

और विभीषण से उसने कहा---

बन्धु बंस तें कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा-सुख-सागर।।

इस प्रकार गोस्वामीजी ने इतिहास-प्रसिद्ध दुष्ट चरितों के चरित्रों का भी परिष्कार कर दिया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राम के चरित्र पर प्राय: यह दोष लगाया जाता है, कि राम ने बाली को छिपकर मारा। इस घटना पर नीति की दृष्टि से विचार करना चाहिए। राम ने अग्नि को साक्षी देकर सुग्रीव से मित्रता की थी। अत: सुग्रीव पर संकट आने के समय, मित्र के नाते उनका धर्म था कि वे अपने मित्र के शत्रु बाली के आघात से मित्र की रक्षा करें। मित्र का शत्रु भी शत्रु ही होता है और शत्रु का विनाश करने में किसी प्रकार का विचार नहीं किया जाता।

राम में गोस्वामीजी की जो आत्यन्तिक, तीव्र और ऐकान्त निष्ठा तथा भक्ति थी, उसके अनुसार उन्होंने भले ही स्वान्त: सुखाय मानस की रचना की हो, किन्तु उसका सुफल यह हुआ है कि उन्होंने अपने इस महाग्रन्थ के द्वारा विपद्ग्रस्त, निराश, हताश, किंकर्तव्यविमूढ़ और जर्जर हिन्दूजाति को सहारा देकर सहसा ऊपर उठा दिया और समाज में आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श स्वामी, आदर्श मित्र और आदर्श प्रजापालक राजा के रूप में राम को, आदर्श पतिव्रता के रूप में सीता को, आदर्श त्यागी भ्राता के रूप में भरत को, सेवा-भाव से पूर्ण अत्यनुरक्त निष्ठावान् भ्राता के रूप में यती लक्ष्मण को, परम आदर्श सेवक के रूप में हनुमान् को, आदर्श माताओं के रूप में कौशल्या और सुमित्रा को तथा आदर्श रघुवंशी सत्यप्रतिज्ञ तथा पुत्रवत्सल पिता के रूपमें दशरथ की स्थापना करके भारतीय समाज को उच्चतम शिखर पर पहुंचाने के लिए विशाल निसैनी खड़ी कर दी। इस प्रकार उन्होंने केवल भारत का ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानव-समाज का जो परम उपकार किया है, वह सामाजिक दृष्टि से तो अपरिमेय है ही, किन्तु महाकाव्य की दृष्टि से भी यह बेजोड़ है, क्योंकि संसार का कोई भी महाकाव्य इतनी श्रद्धा, भक्ति और तन्मयता के साथ लोकसामान्य द्वारा व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से नहीं पढ़ा जाता, जितना रामचरितमानस पढ़ा जाता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी के प्रति श्रद्धांजलि | डॉ० फ़ादर कामिल बुल्के

गोस्वामी तुलसीदास अपनी कवितावली में कहते हैं—विधाता ने मेरे मस्तक पर कोई अच्छी बात नहीं लिखी :—

विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई !

तुलसीदास के जीवन-काल में कोई भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि बनारस के असी घाटके आश्रम में रहनेवाले वयोवृद्ध बाबा को अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त होगी, भारत में मुद्रण की व्यवस्था हो जाने के बाद तुलसी की रचनाओं की लाखों प्रतियाँ बिकेंगी, बीसवीं शताब्दी में भी हजारों संस्थाओं द्वारा प्रति वर्ष तुलसी-जयन्ती का आयोजन होता रहेगा, स्वतंत्र भारत में राष्ट्रीय स्तर पर रामचरित-मानस की चतु:शती मनाई जाएगी और सन् उन्नीस सौ पचहत्तर में प्रथम विश्व-हिन्दी-सम्मेलन के उपलक्ष्य में देश-विदेश के हिन्दी विद्वानों की उपस्थिति में गोस्वामी तुलसीदास की मूर्ति का अनावरण सम्पन्न होगा।

आजकल तुलसी के ऐतिहासिक महत्व के विषय में किसी को सन्देह नहीं है।

इतिहासकार विन्सेन्ट ए० स्मिथ ने अकबर की जीवनी में तुलसीदास के विषय में यह लिखा :—

"उनका नाम तत्कालीन इतिहास-ग्रंथों में नहीं मिलेगा, फिर भी वह भारत में अपने समय के सब से महान् व्यक्ति थे। वह अकबर से भी महान् थे। अकबर युद्ध में कितनी ही बार विजयी क्यों न हुए हों, तुलसीदास उनसे कहीं अधिक महान् विजेता हैं, क्योंकि उन्होंने करोड़ों पुरुषों और स्त्रियों का हृदय और मन जीत लिया है।"

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकार सर जार्ज ग्रियर्सन ने कहा :—"मैं तुलसीदास को समस्त भारतीय साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व मानता हूँ।"

तुलसी के महत्व के दो पक्ष हैं—वे कवि और भक्त दोनों हैं। इन दोनों तत्वों को तुलसी में अलग कर देखना इस महान कवि और अनन्य भगवद्भक्त के प्रति अन्याय है। तुलसी, काव्य-शक्ति को दिव्य वरदान समझते थे :—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संभु-प्रसाद सुमति हिय हुलसी । रामचरितमानस कवि तुलसी ।।

और वे 'प्राकृत-जन' अर्थात्—साधारण मनुष्यों–की प्रशंसा करना उस वरदान का दुरुपयोग समझते थे :—

कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।।

फलस्वरूप तुलसी-काव्य का सर्वस्व भक्ति ही है—उन्होंने अपने काव्य में न केवल भक्तिमार्ग के मूल तत्वों का प्रतिपादन किया, किन्तु साथ-साथ अपने हृदय की अनन्य भक्ति को भी अभिव्यक्त किया है। वास्तव में 'विनय-पत्रिका' विश्वभर और युग-युगों के साधना-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचनाओं में अग्रगण्य है। तुलसी के भक्ति-मार्ग के मूल-तत्व विश्वजनीन हैं और यह विश्वजनीनता उनकी स्थायी लोकप्रियता का रहस्य है। फिर भी यदि वे कवि नहीं होते, तो वे करोड़ों लोगों को भक्ति का रसास्वादन नहीं करा पाते। 'रामचरितमानस' के अयोध्या-काण्ड में 'भरत-वचन' के विषय में कहा गया है कि वह मुकुर (दर्पण) में मुख की भाँति प्रत्यक्ष तो है, किन्तु उसका मर्म हमारी पकड़ से परे हैं :—

ज्यों मुख मुकुर, मुकुरु निज पानी । गहि न जाइ अस अद्भुत बानी ।

तुलसी की 'अद्भुत वाणी' ऐसी ही है। उनकी सरल स्वाभाविक काव्यकला अनिर्वचनीय है।

* * *

तुलसीदास वाल्मीकि की तरह जन-कवि हैं। उनकी भाषा जनता की भाषा है। उनका वाक्य-विन्यास इतना सरल है कि उनकी पद्य-भाषा गद्य से भी बोधगम्य है। उनके अकृत्रिम अलंकार, सजीव वर्णन, मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, मार्मिक स्थलों की पहचान, कल्पान्तस्थायी सत्यों को मन में अंकित करनेवाली सूक्तियाँ, असंख्य परम्परागत संस्कृत नीति-वाक्यों का सरल स्वाभाविक अनुवाद—यह सब पंडितगण और साधारण जनता को समान रूप से मोहित करने में समर्थ सिद्ध हुआ है।

तुलसी अपनी विनम्रता का परिचय देते हुए कहते हैं कि **'कबित विवेक एक नहिं मोरे'** फिर भी उनमें कवि का जन्मजात स्वाभिमान था। वे जानते थे कि उनके हृदय से एक अमर रचना, एक 'सुभग कविता', नदी की तरह फूट निकली है :—

भयउ हृदय आनन्द उछाहू । उमगेउ प्रेम-प्रमोद प्रवाहू ।।
चली सुभग कविता सरिता सो । राम विमल जस जल भरिता सो ।।

तुलसीदास संसार के उन इने-गिने कवियों में से हैं जिनकी रचनाएँ शताब्दियों-तक लाखों मनुष्यों द्वारा पढ़ी जाती हैं।

* * *

तुलसी द्वारा प्रतिपादित भक्तिमार्ग की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

तुलसी अपने समय में प्रचलित सम्प्रदायों के संघर्ष और उनके परस्पर-विरोधी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिद्धान्तों से परिचित थे। उन्होंने देखा कि जनता में संन्यास, घोर तपस्या तथा रहस्यवादी साधना के प्रति श्रद्धा बढ़ती जा रही है। ये सब साधन जन-साधारण की शक्ति से परे थे, किन्तु तुलसी की अपनी धारणा थी कि भगवान के पास पहुँचने के लिए न तो संन्यास, न जटिल कर्मकाण्ड, न घोर तपस्या, न रहस्यवादी साधना और न दर्शन का प्रकाण्ड ज्ञान आवश्यक है, इसके लिए एकमात्र भक्ति का अवलंब ही सहायक हो सकता है। अतः उन्होंने भक्तिमार्ग का एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया जिस पर साधारण जनता भी चल सकी है और उन्होंने उस मार्ग को 'राजडगर' (राजमार्ग) की संज्ञा दी है। 'विनय-पत्रिका' में वे कहते हैं :—

बहु मत मुनि, बहु पन्थ पुराननि, जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो रामभजन नीको, मोहि लगत राजडगरो सो॥

तुलसी यह बात दुहराते नहीं थकते कि जो साहब (भगवान) वेदों के लिए अगम्य है, वह 'साँचली चाँह' (सच्ची भक्ति) द्वारा सबों को पानी और भोजन की भाँति सुलभ हो जाता है :—

निगम अगम साहब, सुगम सांचली चाँह।
अम्बु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माँह॥

तुलसी ने अपने अयोध्याकाण्ड में भरत को आदर्श भक्त के रूप में प्रस्तुत किया। इस काण्ड के अन्त में तुलसी कहते हैं कि राम, सीता और लक्ष्मण वन में तपस्या करते हैं, किन्तु भरत 'भवन बसि' अर्थात् अपने साधारण कर्तव्यों का पालन करते हुए असाधारण साधना करते हैं और इसलिए वह राम की अपेक्षा अधिक सराहनीय हैं :—

लखन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब विधि भरत सराहन जोगू॥

० ० ०

तुलसी द्वारा प्रतिपादित भक्ति के राजमार्ग का एक मूल सिद्धान्त भक्ति और नैतिकता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। वे नैतिकता के अभाव में भक्ति को असम्भव समझते हैं, इसलिए उन्होंने वाल्मीकि रामायण का लोक-संग्रही स्वरूप अपनाकर नैतिकता पर बहुत बल दिया है और आदर्श पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा करोड़ों लोगों को नैतिक बल प्रदान किया है। वे अपनी रचना के इस गुण से अनभिज्ञ नहीं थे। अरण्यकाण्ड में अनसूया सीता से कहती हैं :—

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।

० ० ०

इष्टदेव के प्रति अनन्य आत्मसमर्पण तथा अपने दैन्य का तीव्र अनुभव तुलसी की भगवद्भक्ति के प्रधान तत्व हैं। इन दोनों भावों के हृदयस्पर्शी उद्गार तुलसी की रचनाओं में पढ़ने को मिलते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आत्म-समर्पण

एक भरोसो, एक बल, एक आसविश्वास ।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ।।
जाउँ कहाँ, तजि चरण तिहारे ।
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं,
रसना और न गैहौं ।
रोकिहौं न नैन बिलोकत औरहि
सीस ईस ही नैहौं ।

दैन्य निवेदन--

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंजहारी ।।

० ० ०

भक्ति भावुकता मात्र नहीं है। सच्चा भक्त अपनी नहीं, भगवान की इच्छा पूरी करता है। अयोध्याकाण्ड के नायक आदर्श-भक्त भरत राम को वापस ले जाने के उद्देश्य से चित्रकूट पहुँचते हैं, किन्तु जब राम उनका आग्रह स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाते हैं, तो भरत नम्रतापूर्वक कहते हैं :—

आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा ।

विश्वभर के साधना-साहित्य से पता चलता है कि एक स्तर पर पहुँचकर साधक को अनुभव हो जाता है कि वह जो चाहेगा, ईश्वर उसके लिए वही करेगा। किन्तु सभी साधक भरत की तरह एक ही स्वर से कहते हैं--मेरी नहीं, बल्कि तेरी ही इच्छा पूरी हो।

० ० ०

तुलसी ने एक ओर अपनी सभी रचनाओं में परहित की आवश्यकता और महत्व का प्रतिपादन किया है :—**परहित सरिस धरम नहिं भाई,**

दूसरी ओर उन्होंने निर्भीकता पूर्वक कर्मकाण्ड की अनावश्यकता पर बल देते हुए कहा है :—**बलि-पूजा चाहत नहीं, चाहत एक प्रीति ।**

और वे आगे बढ़कर कहते हैं कि कर्मकाण्ड का समस्त कार्य-कलाप इस प्रकार व्यर्थ है, मानो कोई बालू से रस्सी बाँटना चाहता हो :—

जोग जाग जप बिराग तप तीरथ अटत ।
बाँधिबे को मद-गयन्द रेनु की रजु बटत ।।

० ० ०

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो लोग उन बातों का पालन करते हैं जिनपर तुलसी ने बल दिया है, वे नैतिकता को भक्ति और धर्म का आधार मानते हैं, भगवान के प्रति अपने को समर्पित करते हैं, उसका विधान स्वीकार कर उसकी इच्छा पूरी करते हैं, किन्तु साथ-साथ वे परहित को अपने भगवद्भक्ति की कसौटी और अपनी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धर्म-साधना का परमावश्यक अंग समझते हैं। यही तुलसी के भक्ति-मार्ग का सार है और इन विशेषताओं के कारण तुलसीदास सब धर्मों और सम्प्रदायों के ऊपर उठकर मनुष्य मात्र को हितकारी उपदेश देने में समर्थ हुए।

० ० ०

तुलसी-काव्य की लोकप्रियता को देखकर किसी भी कवि को ईर्ष्या हो जाना स्वाभाविक है। तुलसी-हृदय की भगवद्भक्ति की झलक पाकर प्रत्येक भक्त के हृदय में अनायास ही यह अभिलाषा उत्पन्न होती है कि वह कब, तुलसी की तरह, सन्त-स्वभाव ग्रहण कर पाएगा और वह तुलसी के शब्दों में प्रार्थना करता है :—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपा तें संत सुभाव गहौंगो ।।
जथा लाभ सन्तोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत, निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ।।
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो ।
विगत मान, सम शीतल मन, पर-गुन, नहि दोष कहौंगो ।।
परिहर देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख सम बुद्धि सहौंगो ।
तुलसीदास प्रभु यदि पथ रहि अविचल हरि-भगति लहौंगो ।।

अनेक अर्वाचीन रामकथाओं में इसका वर्णन किया गया है कि अयोध्या में वानरों की विदाई के अवसर पर जब सीता ने हनुमान को एक बहुमूल्य माला दी थी, तो हनुमान ने माला स्वीकार कर उसे ध्यान से देखा और इसके बाद वे उसकी बहुमूल्य मणियाँ तोड़कर खाने लगे। अपने व्यवहार का स्पष्टीकरण पूछे जाने पर, उन्होंने कहा कि इन मणियों में राम का नाम नहीं है, इसलिए इनका कोई मूल्य नहीं। इस पर लक्ष्मण ने पूछा—तो, तुम अपना हृदय क्यों नहीं फेंक देते हो! और यह सुनकर हनुमान ने नखों से अपनी छाती फाड़कर दिखलाया कि राम उनके हृदय में विराजमान हैं। इस कथा का मनोवैज्ञानिक आधार यह है कि जिन लोगों पर हम श्रद्धा रखते हैं, उनकी मूर्ति हमारे हृदय-मंदिर में स्थापित हो जाती है। तुलसी की जो मूर्ति भारत के करोड़ों लोगों के हृदय में विराजमान है, वह आज आप लोगों के सामने प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत है।

० ० ०

गोस्वामी तुलसी न केवल महान् कवि और अनन्य भगवद्भक्त हैं, वे महामानव भी हैं। उनकी सहृदयता, उनकी विनम्रता और उनके सन्तुलन की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही है। समय के अभाव के कारण उनके व्यक्तित्व के इन गुणों पर प्रकाश डालना असम्भव है, अतः मैं निर्गुण राम-भक्त कबीरदास के शब्दों में सगुण राम-भक्त तुलसीदास को सम्बोधित करते हुए अपनी श्रद्धांजलि समाप्त करता हूँ—हे तुलसी !

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय ।
सात समुद की मसि करूँ, तव गुन लिखा न जाय ।। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अप्रमेय मानस का राजहंस तुलसी | वासुदेव पोद्दार

वाल्मीकि यदि यथार्थ के कवि हैं तो कवियश: प्रार्थी तुलसीदास आदर्शवादी यथार्थ के कवि हैं। आदि कवि ने जिसे छुआ था, देखा था, सुना और गाया था, तुलसी ने उसे पाया था, जनपद तक पहुँचाया था। वाल्मीकि के राम की प्रतिभा कालजयी थी, भारतीय-प्रज्ञा ने वहाँ अर्चना के नवधा प्रकारों से पुष्पों के पहाड़ लगा दिये, मंदिरों की दीवारें उपासना के शतकोटि-प्रदीपों से प्रकाशमान हो रही थीं। आदि कवि के क्रौंच कंठों के करुण-कल निनाद से उभड़ता हुआ रामकथा का महानद सारे विश्व में फैल गया। उस महानद के दशाश्वमेघ पर महर्षि तुलसीदास भी थे। स्वभाव और संस्कार दोनों से तुलसी वैखानस थे। इस परम्परा का दार्शनिक इतिहास बहुत पुराना है। तुलसी इसी परम्परा के महान् आचार्य हैं।

तुलसीदास धार्मिक साहित्य की धारा के आत्मद्रष्टा कवि हैं। इनका सारा जगत आत्मानुभूति की उदात्त परिधि का केन्द्र है। तुलसी की यह अनुभूति रामाकार थी। दशरथ राम के पिता हैं, कौशल्या राम की माता हैं। राम के वियोग में व्याकुल दशरथ और कौशल्या की आत्म-यात्रा और राम से उनका भावनात्मक राग तुलसी के लिये सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है। इसी सन्दर्भ में राम और सीता को अपने पिता और माता के रूप में ग्रहण करते हुए तुलसी ने अपनी आत्मा के भावनात्मक राग को अपरिमित विस्तार प्रदान किया। यहाँ इनके सबसे बड़े सहायक हनुमान हैं। वैसे सम्बन्ध-स्थापन का जहाँ तक प्रश्न है, तुलसी अपने को भरत के साथ, ऋषि-पात्रों के साथ, यहाँ तक की गीध, शबरी, केवट, विभीषण सबके साथ अपने स्व को उनमें विलय कर देने का रहस्यवादी प्रयास करते हैं। इससे भी परे चौबीस अवतारों से जुड़ी भक्तों की विभिन्न श्रेणियों में अपने व्यक्तित्व को एकाकार करते हुए वे एक आत्मानुभूत भूमाकवि की तरह प्रकट होते हैं। वे द्रौपदी की तरह करुण चीत्कार भी करते हैं, उनके हृदय में प्रह्लाद का दृढ़ निश्चय और सहिष्णुता भी है, ध्रुव की सी आत्मग्लानि भी है,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनमें केवट, गीध, शबरी की परम वैष्णव स्वाभाविक नम्रता भी है और व्यक्तित्व की सहजता भी है। अहं उनके पास भी नहीं। अजामिल और गणिका से भी अधम कोटि में अपने स्व को रखते हुए महर्षि तुलसी राम के दरबार में भारतीय संस्कृति के सबसे बड़े भक्त व्यक्तित्व के रूप में हनुमान की तरह अविचल खड़े हैं। चरणों में अंगद की दृढ़ता, वक्ष में हनुमान का पवन-वेग और नेत्रों में राम की दृष्टि लिये हुए तुलसीदास अपने पूर्व सूरियों की महती परम्परा में कितने असाधारण हो उठे थे, इसका आकलन भारत सम्राट अकबर के सारे स्वर्णभार से नहीं लगाया जा सकता, वह काव्य के इस अप्रमेय मंदराचल के समक्ष हल्का और तुच्छ है, जो काल के हल्के से तूफान में तिनके की तरह कहीं जाकर गिर गया। तुलसी का शासन अजर है। विभीषण से भी अधिक महिमामय-राजतिलक नियति ने तुलसी के विशाल-भाल-पट्ट पर कर दिया।

तुलसी के मानस में बाल्मीक का उपाख्यान-विन्यास अविकृत भाव से हुआ है। 'रामायण मंजरी' से लगता है, तुलसी ने कथानक-इन्डेक्सिंग में क्षेमेन्द्र की सहायता ली थी। वाल्मीकि का चरित्रादर्श तुलसी तक आते-आते शिल्प-सज्जा का विभाविग्रह बन चुका था। भास, कालिदास और भवभूति जैसे कुशल-शिल्पियों के द्वारा राम की वाङ्गमयीमूर्ति साहित्य में उट्टंकित हो चुकी थी। आदि कवि के महान् कृतित्व को आनन्दवर्धन ने ध्वनिकाव्य की संज्ञा दी है। वाल्मीकि का जो गहन अनन्य-सामान्य ध्वनि-तत्व था, वह मानस में नव तन ग्रहण करते समय असाधरण हो उठा। आदि कवि का सर्वगुणाधार राम तुलसी का पूर्णावतार बन गया। कवि ने रामचरित के समुन्नत शौध में एक नया कक्ष खोल दिया। यह कक्ष इतना भव्य और विराट था, जिसमें भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण अवेग समा गया। काल के स्रोत में अविराम युग पर युग आते और समाहित होते चले जाते हैं। इस स्रोत के मुख पर काल के क्रमान्तर से विराट लहर उठती है, विराट व्यक्तित्व का अविर्भाव होता है, जिस के ध्यान-लोक में युगयुगान्तरों की भावधारा और प्राण-प्रवाह आकार ग्रहण करते हैं, बड़ी बड़ी प्रतिमाओं की सर्जना होती है। युग के अवचेतन मन का यह स्रोत निरन्तर बहता हुआ सतत गतिमान रहता है, यह दुर्वार प्राणों का ज्वार अगणित प्रतिमाओं को अधीर बना देता है। इसी विराट तरंग-माला का महान् रूप-सम्भार तुलसी के गतिमय काव्य स्रोत से मुक्त हुआ।

भारतीय-संस्कृति का पट-परिवर्तन उसके घात-प्रतिघात, आलोड़न-विलोड़न का चिरन्तन क्रम सहस्राब्दियों से एक सशक्त आधार की खोज में भटक रहा था, उसे तुलसी जैसा विराट अधिष्ठान मिल गया या यों कहना चाहिए, भारतीय संस्कृति के मृत्युञ्जयी मूल्यों को पुनः तुलसीदास के रूप में चिरन्तन-मुक्ति का एक मार्ग मिल गया, जो इस्लाम के लोहे से टकराकर विनष्ट और विच्छिन्न हो रहा था,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सांस्कृतिक-प्रलय में समाया हुआ भारतवर्ष पुनः तुलसी की अनामिका को पकड़ कर राम को ढूंढता हुआ वेद और वेदान्त के शिखरों पर चढ़ गया। तुलसी का सत्य रस-निष्पत्ति और काव्य के उपादान विश्लेषण के रूढ़ सन्दर्भों तक ही सीमित नहीं था, वह तो जीवन के चिरन्तन मूल्यों का दर्शन-शास्त्र था, जहाँ खण्डित युग के विगलित अपूर्ण मानव ने विश्राम पाया। विश्व के कितने काव्यों और महा-काव्यों का निर्माण मूल्यों की इस वृहत्तम परिधि पर हुआ है, यह प्रश्न तुलनात्मक साहित्य के अध्येता के लिये कम महत्व का नहीं है। तुलसी का जीवन प्रतिकूलता के शिलाखण्डों से प्रतिपद दुर्गम और कठोर था। जन्म से मृत्यु पर्यन्त ये प्रति-कूलतायें इनके जीवन से क्षण भर के लिये भी अलग न हो पाईं, पर पल भर भी तुलसी ने इनके अवसाद का आश्रय न लिया। कालिदास और भवभूति भी इससे मुक्त नहीं—**"आ परितोषाद्विदुषौं--' ये नाम के**

चिदिद् न प्रथयन्त्यवज्ञाम्'—जैसे शब्द तुलसी के होठों तक न आये। तुलसी के राम जितने वीरोज्ज्वल हैं, उतने ही प्रशान्तोज्ज्वल। अवसाद से जितना मुक्त तुलसी का नायक है, तुलसी भी उतने मुक्त हैं। तुलसी का राम प्रतिकूलता से एक अविचल संघर्ष है, उसकी आनन-श्री शाश्वत है। उसी तरह अक्लान्त तुलसी की काव्य-श्री अवसाद मुक्त और **प्रसन्नमुखाम्बुजश्री** है। तुलसी के ध्यानलोक का प्रत्येक क्षण राममय है, रामाकार है। यही कारण था कि इतिहास की चिरन्तन दुर्वार गति का स्पन्दन तथा समग्र विश्व की अनादि और अनन्त प्राणलीला का कम्पन कवि के मानस-लोक में जीवन के अन्तिम क्षणों तक अविराम ध्वनित और अनुरणित होता रहा। कहीं एक स्वर उदात्त हुआ, कहीं स्तिमित पर विरोधी कहीं न हो पाया। तुलसी कवि और दार्शनिक दोनों हैं। दार्शनिक के रूप में उन्होंने परम सत्य को अखण्डित रूप में पाया। तुलसी ने अपने मार्ग की यात्रा की एक कवि-चित्त के साथ। इस यात्रा में न तो कहीं सम्प्रदायवाद का आग्रह था, न राजनैतिक दृष्टिकोण का पंक। अशान्ति के रुद्रों से घिरे तुलसी न कहीं पराजित थे और न श्लथ। मुगल युग की ताल को उनके स्वर समर्पित न थे, इस अर्थ में तुलसी मुगल-युग के सबसे बड़े विद्रोही रचना-कार थे। सर्वथा निरंकुश, स्वतंत्र, विद्रोही, न उन्हें संस्कृतज्ञों द्वारा हुए भीषण प्रहारों का भय था, न दरबारी सुखों का लोभ। वे मुक्त थे और उनके साथ-साथ उनकी काव्य-चेतना। शेक्सपीयर के सन्दर्भ में आर्नल्ड के ये शब्द तुलसी के लिये भी उतने ही सार्थक है :—

Others abide or question
Thou art free
We ask and ask
Thou smilest and art still.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राय: कवि काव्य-सर्जना के समय समसामयिकता के वात्याचक्र में डूब जाता है। तुलसी का युग दरबारी चाकचिक्य का युग था, नव-रत्न के कम्पीटीशन में कवियों से महाराजा अकबर का दरबार भरता चला जा रहा था। तुलसी के समक्ष भी समसामयिकता के ये बड़े-बड़े प्रलोभन थे, तुलसी जैसे कवि के लिये अकबर के दरबार में सीट सुरक्षित करा लेना कोई कठिन समस्या भी न थी। वहाँ यश भी था और सोने के सिक्के भी, कवियों को बड़े-बड़े पट्टे बख्शे जा रहे थे, जागीरें मिल रही थीं, पर तुलसी तो तृतीय पन्था थे। कांटों से भरा प्रताड़ना का मार्ग उन्होंने चुना। सामयिकता का यह प्रलोभन इनके लिये नगण्य था और तुलसी आदि कवि की तरह कालजयी बन गये। प्राय: काव्य समसामयिक समाज की रुचि एवं उसकी छाया के अनुकरण पर निर्मित होते हैं। ये काव्य उस नियमित समाज और निर्दिष्ट समय में ही आदृत हो पाते हैं। परवर्ती और परिवर्तित समाज में उनका आदर और उपयोगिता क्रमशः क्षीण होती चली जाती है। जो काव्य जितने परिमाण में सामयिकता से प्रतिबद्ध होते हैं, वे उतने ही परिमाण में उतने ही अल्पस्थायी भी होते हैं।

तुलसी की काव्य-चेतना भारतीय इतिहास का युगान्तरव्यापी चिन्तन है। वह काल के किसी खण्ड का खण्डहर मात्र नहीं। भाषा का दैन्य और भावों की जड़ता तुलसी के सारे साहित्य में कहीं नहीं है। तुलसी के महान्-प्रबन्ध का शरीर गठन सरलता और स्पष्टता के औज्वल्य से हुआ है। तुलसीदास ने आदि-कवि कृत आदर्श पर बड़े सतर्क हाथों से वर्ण-संयोग पूर्वक तत्कालीन भारतीय जन-मानस के चित्र उसी अनुगतभाव से चित्रित किये हैं। अलंकारों के गुरुभार से उनकी कविता-सुन्दरी कहीं भाराक्रान्त न हुई। भारत की सांस्कृतिक आर्त्ति से यह महान् साधक तद्भाव-भावित हुआ। कवि जब तक तद्भाव-भावित नहीं होगा, साहित्य में लोकोत्तर असाधरणता का प्रवेश ही असम्भव है। कब, किस दिन, कितने सहस्र वर्ष पूर्व तमसा के तट पर 'मा निषाद——" के साथ वाल्मीकि ने अपने गान का प्रारम्भ किया था, आज भी उस गान का विराम न हुआ, भारतीय-आत्मा उस गान से सतत उर्मिल होती रही, किसी शुभ नक्षत्र में पतितोद्धारिणी के तीर पर बैठकर तुलसी ने भी उसी तान को छेड़ा था।

किसी भी महान् कृत्ति के दो ही प्रबल पक्ष हैं—संवेदन और सम्प्रेषण। संवेदन के द्वारा कवि विश्व-आत्मा के संगोपित रहस्यों पर आरूढ़ होता है। संप्रेषण के द्वारा वह उसमें प्रवेश कर जाता है। तुलसी का काव्याधिष्ठान इतना व्यापक है, वह आकाश की तरह पूरे भारतवर्ष पर छाया हुआ है। किस युग और संस्कृति ने राम पर न लिखा, चाहे वे बौद्ध और जैन ही क्यों न रहे हों। जैन और बौद्ध परम्पराओं की उदात्ततम् भावनायें राम के लोक में प्रवेश पाने के लिये मचल उठीं। आदि-कवि ने सर्वप्रथम राम पर लेखनी उठाई, मानवीय गुणों की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सारी उच्चतम विभूतियाँ रामाकार हो उठीं। कोई ऐसी ऊंचाई भारतीय आकाश की नहीं बची जो रामाकार न हो उठी हो। भास, कालिदास, भवभूति, मुरारी, शक्तिभद्र राजशेखर, जयदेव, भास्कर, सुभट, हनुमन् यहाँ आकर सारी भारतीय काव्य-प्रौढ़ि ने प्रौढ़ता प्राप्त की। राम-नद के महाप्रवाह से सारी जनपद भाषायें-बोलियाँ उफन रही थीं। तुलसीदास तक आते आते राम का व्यक्तित्व पूर्ण-ब्रह्म के रूप में भारतीय समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। भारतीय परम्परा हठात् किसी को ब्रह्म कह दे, यह सम्भव नहीं। भारतवर्ष के इतिहास में भी राम के ईश्वरत्व के आख्यान की ऐतिहासिक दूरियाँ कम नहीं हैं। वाल्मीकि का राम ईश्वर है या नहीं, यह सामान्य विवाद का विषय नहीं है, पर भास और कालिदास ने वाल्मीकि से जिस राम को पाया था, वह नर राम नहीं, ईश्वर राम था। पुराणों का विपुल साहित्य राम के ईश्वरत्व से भरा पड़ा है। तुलसी ने इतने बड़े व्यापक-अधिष्ठान को अपने काव्य का आधार बनाया। जो कुछ भी सर्वसुन्दर था, जो कुछ भी सर्वोत्तम था, जो भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वशक्तिमान था वह अपनी सारी उदात्तता के साथ फिर तुलसी में साकार हो उठा। क्षेत्रीय लघुकाय भाषा अवधी में निबद्ध होते हुए भी अपने सर्वसुन्दर, सर्वश्रेष्ठ, सर्वशक्ति-सम्पन्न अधिष्ठान के आश्रय से तुलसी की महावाणी लोकातिशायी हो उठी। महाकवि जायसी प्रतिभा की दृष्टि से तुलसीदास से कहीं कम नहीं। तुलसी से पूर्व जायसी ने अवधी को समुद्र की गहराई प्रदान की, जायसी का कलात्मक जगत तुलसी से बहुत बड़ा है। पर तुलसी का अधिष्ठान सर्वतोव्यापी था, जहाँ जायसी का कथानक कोई अस्तित्व भी नहीं रखता। भारतीय चेतना के कोटि-कोटि प्राण रामचरितमानस के अपार सौन्दर्य में अतर्कित भाव से उतरते गये। दर्शन तर्क से जो कार्य नहीं कर पाता, काव्य वही कार्य और भी परिपूर्णता के साथ अपनी अभिव्यंजना से कर डालता है। तुलसी ने इस दिशा में अतुलनीय सफलता प्राप्त की।

भाषा का प्रवाह तो एक महान् नदी की तरह है, किसी अज्ञात अधित्यका से, किसी अज्ञात शैलोत्स से यह उमड़ती है, कितने वृहत् क्षुद्र, स्वच्छ, पंकिल, क्षार-मधुर स्रोत उसमें अविच्छन्न भाव से लीन होते चले जाते हैं। यह समवेत-सलिल-समष्टि वक्र, खरं,-रूद्र-गम्भीर होती हुई आगे बढ़ती है। अन्त में सागर संगम तक आते-आते यह मन्थर, आयत, शतमुख हो उठती हैं। भाषा का प्रवाह भी यही है। कितने आर्त्त-दीर्घश्वासों का स्पन्दन, प्रणयी-हृदयों के प्रेमोच्छ्वास, वीरों की तर्जना, भक्तों की साधना सब कुछ इस सलिल-समष्टि में एक हो जाती है। भाषा के उद्भव की उपत्यकायें बहुत ऊंची हैं। कितने गायक, लेखक, भावुक हृदयों के काव्य-स्रोत, गीत-स्रोत, रचना-स्रोत, चिन्ता-स्रोत इसके अतल तल को आप्यायित करते हैं। भाषा अपनी चरम ऊंचाई के क्षणों में जातीय

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साहित्य के प्रशान्त गम्भीर सर्वतोमुख प्रसार को प्रकट कर देती है। तुलसी अवधी के इस प्रकाण्ड प्रवाह के कुशल विशेषज्ञ थे। वे जानते थे, इसकी प्रकृति कहां है, गति, स्थिति और इसका विराम कहाँ है। तुलसी की भाषा का संयोग-तन्तु बड़ा व्यापक था, वेद से लेकर मुगल युग तक का भारतीय चिन्तन प्रवाह उसमें समाहित हो गया। अवधी विश्व-कल्याण का शत-मुख आधार बन गयी। सर्वकालानुयायिनी, सर्वतोव्यापिनी, सर्वतोगामिनी भाषा का यही तो सहस्रमुख, सहस्रशिर, सहस्रपाद आयाम है।

रामचरितमानस में रामकथा का आयाम सागर की गहराइयों को लिये, जहाँ महाकाव्य-गत स्थिरता में प्रसृत और दीर्घ, है, वहाँ नाट्य धर्मिता के साथ उत्ताल और उत्तुंग भी है। महाकाव्य में नाटक के तत्वों का समानान्तर निर्वाह साधारण प्रतिभा का कार्य नहीं, महाकाव्य जहाँ जातीय संस्कृति का स्थिर महा-समुद्र है, वहाँ नाटक जातीय संस्कृति के संक्रमणात्मक स्वरूप का आवेग है। इति-वृत्त प्रधान काव्य में प्रत्यक्षाय-मानत्व का स्थान सर्वोपरि है। वाल्मीक ने स्वयं महाकाव्य में उसकी नाट्य-धर्मिता को आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकृति प्रदान की है :—

चिरनिर्वृ तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्। मानस की कविता में नाटकत्व का अभिनिवेश उसे जनमानस से समक्ष एक नाटक के रूप में प्रस्तुत कर देता है। राम-कथा अपने ऐतिहासिक क्रम में नाटक के रूप में कम प्रसिद्ध नहीं रही है। चित्र के रूप में भी रामकथा की प्रस्तुति कम प्राचीन नहीं, कालिदास ने इसका उल्लेख किया है। भवभूति के प्रसिद्ध नाटक उत्तररामचरितम् में चित्ररामायण की योजना बड़ी सफलता के साथ हुई है। तुलसीदास ने अपने जगत प्रसिद्ध महाकाव्य में राम-कथा को नाटकीय अभिनिवेश प्रदान करने के पूर्व चित्रों के आलेख्य-शिल्प का शैलीगत विन्यास बड़ी कुशलता से किया है। तुलसी इस शिल्प कला में सबसे आगे बढ़े हुए हैं। इनके शिल्प सौष्ठव ने विश्व में जितना कुछ महान, सुन्दर, नूतन, निर्मल, मनोहर था, उसे एक स्थान पर एकत्र कर दिया। भारतीय काव्य शास्त्र का सुप्रसिद्ध कथन है—**रामादिवत्प्रर्वातितव्यं न रावणादिवत्** देखा जाय तो तुलसी में यह आदर्श जितना मूर्तिमन्त हुआ इस से पूर्व अन्यत्र कहीं नहीं। राम का मानस में इतना महान्-समुदय ही इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। जो कुछ सुन्दर है, प्रकांड है, अनुपम और अपापविद्ध है, वही तो तुलसी के महान् काव्य का उपजीव्य है। जो सुन्दर नहीं उसका तुलसी स्पर्श भी नहीं करते। जिसके समुदय से मनुष्य देवता बन जाता है, पृथ्वी स्वर्ग बन जाती है, जीवन मन्दाकिनी बन जाता है, वही तो तुलसी का प्रतिपाद्य है। वेद ने महिमामय कवि के लिये लिखा है—

कविः कवित्वा दिवि रूपमासजत् ऋग्वेद १०-१२४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसका अर्थ है—कवि अपनी क्रान्तदर्शिता से आकाश को उदीप्त करता है। सीता के श्रम-सीकर तुलसी की कल्पना के अर्घ्य थे, भरत की असंग तपोमयी मूर्ति ही मानस का सर्वोत्कृष्ट अलंकार है। लक्ष्मण का तेजोमय व्यक्तित्व तुलसी की प्रचण्डता है।

मानस में राम का लोकातिशायी व्यक्तित्व सर्वत्र लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित है। ऋजुता से वक्रता का संघात राम और रावण का द्वन्द्व है। जीवन की सुविशाल-पट भूमि पर व्यक्तित्व की महान् प्रतिष्ठा करने में असाधारण शिल्प-प्रतिभा अपेक्षित है, इसे तुलसी जानते थे। **नाना पुराणनिगमागम्** के अनन्त सन्दर्भों को ध्यान में रखते हुए, अपनी महती-शिल्प क्षमता को तोलते हुए, प्रचेतस् वाल्मीकि के छन्दित हृदय की विस्तृत-पट-भूमि का विषय प्रवर्तन **'वर्णानां अर्थ संघानाम्'** से हिन्दी साहित्य के प्राचेतस् तुलसी करते हैं। तुलसी भाट्टमत के मीमांसक थे, उन्होंने इस महान्-अनुष्टप को मानस की **उपोद्घघात-संगति** के रूप में प्रस्तुत किया है। भारतीय-इतिहास की दो क्रान्तदृष्टियां रही हैं—एक समन्वयात्मक, दूसरी विश्लेषणात्मक। प्रथमदृष्टि के प्रवर्तक राम थे, द्वितीय के कृष्ण। राम के समन्वयात्मक अधिष्ठान में तुलसी ने पूर्वोत्तर-मीमांसा को आधार बनाते हुए दर्शन की विभिन्न दृष्टियों का समन्वय किया। राम के पश्चात् भारत की इस विशाल-भूमि पर समन्वय का सबसे बड़ा आचार्य तुलसीदास है। मानस केवल दर्शन का विराट् संगम-स्थल बनकर ही रह गया हो, ऐसी बात नहीं। तुलसीदास साहित्य-शास्त्र के महान् सिद्धान्ताचार्य थे। उन्होंने रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, गुण, वक्रोक्ति, औचित्य आदि साहित्य के सारे सम्प्रदायों का समन्वय उस जीवन की कहानी में कर डाला, जो सुदीर्घकाल से विभिन्न देश, भाषा, विचित्र, अलभ्य परिस्थितियों में भी समन्वय के मार्ग की निरन्तर खोज कर रही थी। नाटकीय ऐक्य के साथ इतने बड़े आयाम को एक प्रबन्ध में समेट लेना तुलसी के प्रबन्ध पाटव का लोकोत्तर उदाहरण है, रचना नैपुण्य का चरमोत्कर्ष है। विश्व में कोई ऐसा महाकाव्य नहीं, जिसका कथानक काव्य में शीघ्रता से प्रवेश न करता हो, बालकाण्ड आधे से अधिक जब आगे बढ़ जाता है, तब मूल कथानक का प्राकट्य—**भये प्रकट कृपाला** से होता है। इसके पूर्व का काव्य रामचरित-मानस के शास्त्रपक्ष का प्रतिपाद्य है, जिसकी दृढ़ सुचिन्तित भूमिका पर राम के सम्पूर्णावयव अपार्थिव स्वरूप का अवतरण होता है।

राम का जन्म, उनकी किशोर वय के कार्य, विवाह से पूर्व भार्गव-विजय और उसके पश्चात् पाणिपीड़न तक प्रस्तुत होने वाले राम में प्रकाण्डत्व, कोमलत्व, तेजस्विता को मधुरत्व में बदलते हुए तुलसी अयोध्याकाण्ड में प्रवेश करते हैं। वहां शोक-समुदय के अप्रतिम चित्र का अनावरण करते हुए वे भरत के अप्रमेय-व्यक्तित्व को सामने लाते हैं। कैकेयी का कराल छाया-पात राम को ढक लेने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के लिये सामने आया। सत्यव्रती रघुवंशियों की महान् परम्परा दशरथ के समक्ष मृत्यु की ज्वाला बनकर सामने आकर खड़ी हो गई। प्राणों का अतिक्रमण कर दशरथ ने सत्य का मूल्य चुकाया। राम के व्यक्तित्व के प्रवर्तन का सबसे बड़ा मूल्य रावणवध नहीं, कैकेयी का यह छाया-पात था। दो वरदान के अलावा कैकेयी ने कहीं कुछ न कहा, वह पूरी रामकथा में मौन है। कैकेयी के लिये जो वरदान था, राम कथा के सारे सामाजिकों के लिये एक मर्मच्छेदी शल्य-क्रिया है। वृद्ध दशरथ पर प्रौढ़ कैकेयी का आधिपत्य वाल्मीकि के लिये जितना शूल-प्रद था, तुलसी के लिये तो वह और भी बहुत अधिक था। राम-भक्तों से काम योंही बहुत दूर रहता है—**जहां राम तहं काम नहिं**, फिर दशरथ तो राम के पिता थे। तुलसी ने बिना किसी हिचक और संकोच के बड़ी तर्जना और व्यंग भरे आक्रोश के साथ भारतीय-समाज को वृद्ध दशरथ के बारे में बतलया, जो मुनिवृत्ति के आकांक्षी हो चुके थे, जिनके कानों के नीचे की पंक्तियाँ श्वेत हो चुकी थीं—**श्रवण समीप भये सित केसा।** मुनिवृत्ति से हट कर दशरथ कैकेयी की कटाक्ष वृत्ति में उलझते चले गये—

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई।
सूल कुलिस असि अंगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।

अयोध्या २४।२

तुलसी ने यहाँ रघुवंशियों की सत्यवृत्ति से दशरथ की कामवृत्ति पर अधिक बल दिया है। कैकेयी के सर्पदंश दोनों वरदानों को वे **काम-कौतुक** ही समझ रहे थे—

दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरू देखई।
तुलसी नृपति भवतव्यता बस काम कौतुक लेखई।।

अयोध्या०

करुणा का मर्मच्छेदी बाण सत्य की प्रत्यंचा से नहीं काम की प्रत्यंचा से अपने वेग को प्राप्त करता है। कैकेयी के इस क्रूर छाया-पात से दशरथ और राम का ही नहीं, वशिष्ठ सहित सारे राम-परिवार और उनसे सम्बद्ध प्रजाजनों तक का चरित्र उभर कर सामने आता है। व्यक्तित्वों के उभरने की इस प्रक्रिया में सबसे बड़ा व्यक्तित्व भरत का है, राम की दूसरी आकृति, राम का दूसरा शरीर—वही आकार, वही ऊंचाई, वहीं रंग, बिम्ब से उठता हुआ प्रतिबिम्ब। तुलसी के राम का हृदय। तुलसी ने उन्हें ब्रह्म कहा है। भरत का हृदय? भरत ब्रह्म नहीं है। भरत उस ब्रह्म की सारी ऊँचाइयों को माप लेने का मानवीय मापदंड है। कुछ देर पहले वहाँ एक प्रलयंकर तूफान गुजर चुका था, जिसने वहाँ के राजा को समाप्त कर दिया, उसके सबसे बड़े उत्तराधिकारी को, नवविवाहिता सुकुमार पत्नी और लक्ष्मण जैसे दुर्धर्ष भाई के साथ चित्रकूट के घने जंगलों में ला

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पटका, नियति ने राज्य के भावी स्वामी के आने की प्रतीक्षा भी न की। सूर्य-वंशियों का यह महान् राज्य, इतने बड़े प्रचण्ड तेजस्वी चार पुत्रों के होते हुए भी कुछ समय तक अनाथ की तरह नियति के चरणों पर अनाश्रित पड़ा रहा, वशिष्ठ जैसे प्राज्ञ भी सही निर्णय लेने में असमर्थ थे। उनकी प्रजा जड़ और कुंठित हो चुकी थी। अयोध्या की आधी जनता पागलों की तरह जंगलों में राम के लिये भटक रही थी। कुछ मार्ग में बेहोश पड़े थे। नगर का बचा-खुचा जन-समुदाय अपने आंसुओं को भी न सम्हाल पा रहा था। महलों में दशरथ की लाश अपने भौतिक-दाह के लिये अपने उन विष्णु अंशी पूर्णावतारों की प्रतीक्षा कर रही थी। कुछ समय पूर्व राजकुल की नीच गृह कलह में राज्य का स्वामी तड़प-तड़प कर मरा था। नियति के नियमों से तुलसी का यह लाडला अवतार राम कहीं भी मुक्त न था। नियति की यह कितनी क्रूर विडम्बना थी, तुलसी का सबसे महान् पात्र भरत कैकेयी की कोख से उत्पन्न हुआ था। पाश्चात्य नाटकों की जटिलतम समस्याओं में भी वह कथानकगत जटिलता नहीं, जो भरत के कैकेयी-पुत्रत्व में है-- चाहे वह ओडिपस की समस्या हो, चाहे हेमलेट या मेकवेथ की। उनके कथानक-बिन्दुओं का वृत्त-वन्ध उन समस्याओं की वृत्त-गति में ही घूमकर समाप्त हो जाता है, उर्ध्व सन्तरण की तो वहाँ कल्पना भी न थी। कैकेयी का यह लाड़ला, इस सारे भीषण विनाश का कारण था। राज्य-घरानों के गृह-कलह से भारतीय इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। महाभारत की रचना का विन्दु यह गृह-कलह है। दो भाइयों की सन्तति सत्ता के संघर्ष में जुट जाती है। वहाँ जूआ है, अपहरण है, नग्नता है, निर्वासन है, साथ ही गीता के ज्ञान से जुड़ा हुआ भयंकर विनाश का पांचजन्य है जिसका कठोर निध्वान युग के सारे नभोमंडल को व्यावृत करता जा रहा था। धरती पर खड़े धरती के लिये लड़ते हुए भाई, भाई का रक्तपान कर रहे थे। इस गृह-कलह का अन्त एक इतने बड़े विनाश में हुआ, जिसमें भारतीय संस्कृति का सर्वस्व स्वाहा हो गया--ज्ञान, विज्ञान, शिल्प, संस्कृति उसका अपार वैभव सब कुछ भस्म बन गया। हाँ, उपलब्धि के नाम पर हमें एक वस्तु मिली— उस सारी समृद्धि के मूल्य से भी अधिक गरिमामय गीता से संलग्न महाभारत का महासमुद्र। इस कलह को शान्त करने का कौन-सा प्रयत्न उस युग की महान् मनीषा ने न किया--वहाँ भीष्म थे, विदुर थे। सारे ऋषि उस कलह को मिटाने के लिये चले आये। वेदों के विभाग-कर्ता, पुराणों के महान् स्रष्टा वेदव्यास ने भी उस कलह को समाप्त करने का कौन-सा प्रयत्न न किया, तुलसी का राम भी वहाँ कृष्ण के कपड़े पहन कर खड़ा था। दूत बनकर युग-गुरु कृष्ण भी उस कलह को समाप्त करने कौरव-सभा में गये, पर सुलह के नाम पर पांच-गांव भी न मिल सके। पर वहां उस कुल में रामकथा के महान् पात्र भरत न थे, यही कारण था कि समाधानमूलक निष्कर्ष सामने न आ सका। उस युग के परम ज्ञानी वशिष्ठ

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के महान् चिन्तन को यदि भरत अपना लेते तो भरत 'भरत' न रह पाते। रामायण की जगह महाभारत लिखी जाती। लंका के युद्ध का दृश्य चित्रकूट और अयोध्या के मध्य भागों में कहीं दिखलाई देता, जहां भरद्वाज और वाल्मीकि के विश्वविद्यालय भारत के उत्तरावर्त में नये प्रकाश की सृष्टि कर रहे थे। पर महान् भरत का मनोविज्ञान सारी रामायण के नियति-पट का महानिदेशक है—ठीक उस आचार्य भरत के निर्देशित रंग-मंच की तरह है, जिसकी प्रस्तावना के विरुद्ध नाटककार का मनोविन्दु अपने पात्र को कहीं भी भटकने नहीं देता। सागर पर पत्थरों का सेतु बनने के पूर्व अयोध्या से चित्रकूट तक एक हाइवेज बनाने की जरूरत थी, रावण-वध से पूर्व दशरथ का शव-संस्कार होना बहुत जरूरी था। यह सब जानते हुए भी तुलसी के सर्वज्ञ राम दशानन-वध की मुद्रा में **प्रसन्न-मुखाम्बुजश्री** दण्डकारण्य की ओर दौड़े चले जा रहे थे। वानरों से मैत्री, भ्रातृत्व और पितृत्व के सम्बन्धों को स्थापित करने से पहले भाई-भाई के अपने सम्बन्धों को सम्हाल लेने की बहुत बड़ी आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी। उस गृह-कलह में पिता की आहुति लग चुकी थी। राम इस कलह को जानते हुए भी असहाय और असमर्थ थे। एक बहुत बड़ी दार्शनिक असंगता के साथ बाप के राज को बटाऊ की तरह छोड़कर राम जंगल में चले गये। भीतर ही भीतर उनके ईश्वरत्व को लंका का रणक्षेत्र दिखलाई दे रहा था। अयोध्या के वर्तमान परिवेश से उनकी दृष्टि हटी हुई थी। पर विभीषण को गले लगाने से पहले उस मर्यादा पुरुषोत्तम के लिये यह बहुत आवश्यक था, भरत को भुजाओं में भर लेना। पर यह कार्य राम की शक्ति के नितान्त बाहर था। वे भरत से दूर भाग जाना चाहते थे। यह कार्य भरत के महान् सामर्थ्य के बाहर नहीं था, यही तो भरत का चरम पुरुषार्थ है। जो राम विभीषण को गले लगाना चाहता है, उसे पहले भरत को गले लगाना होगा। राम तो एक कुशल अभिनेता है, उनका मूलाधार उनके अभिनय का महान् नान्दी तो नन्दी ग्राम में बैठा हुआ भरत है।

रामकथा का प्रारम्भ भी कम साधारण नहीं है। एक ऐसे ऋषि को दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के लिये चुना गया जिसके शिर पर एक सींग था। ऋषि-शृंगी के नाम से वे सर्वप्रसिद्ध हैं। सभी प्रकार के मुनि देखे गये हैं, पर सींग वाले तो यही एक थे। सींग वाले मुनि के यज्ञ-फल से चारों भाई उत्पन्न हुए और काव्य की प्रमुख नायिका सीता हल के फल द्वारा धरती से उत्पन्न हुई। विदेह राज की यह कन्या भी कम असाधारण न थी। यह भूमिजा थी, वीर्यशुल्का थी और अग्निरक्षिता तथा अग्निपरीक्षिता भी थी। राम ने शिव-धनुष को तोड़ कर इसे प्राप्त किया, परशुराम को हतवीर्य करते हुए विष्णु धनुष को चढ़ाकर इसे सुरक्षित किया। फिर भी ये सुरक्षित न हो सकीं। राम ने इसे पावकाश्रित किया, केवल सीता की छाया मात्र को साथ लेकर वे आगे बढ़ रहे थे। वह भी सुरक्षित

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न रह सकी। नियति की आंखे सीता पर लगी थीं। रावण उन्हें उठाकर ले गया। कहना न होगा, रामायण का कथानक जितना सहज है, अपने अन्तर सन्दर्भों में उतना ही जटिल और ग्रन्थिल है। पुत्रेष्टि की यज्ञ-हविष् के बंटवारे में जिस जटिल गणित का आश्रय लिया गया है, वही क्या कम रहस्यमय है। इस कथा के महान् नायक राम को हम ईश्वर के रूप में लें, या महामानव के रूप में लें, वे अपनी सहज ऊँचाइयों में अनन्त और अप्रमेय हैं। राम यदि मानव हैं, तब भी उनके आत्म-नियन्त्रण का पक्ष सुदृढ़ है, जो उन्हें लोकोत्तर बना देता है। राम का यह देवोपम व्यक्तित्व वैदिक विचारधारा के समानान्तर फैलता हुआ इतना ऊपर उठता गया कि जीवन की सारी दृष्टियां उसमें समाहित होती चली गईं। इस विन्दु पर पहुंच जाने पर देव और मानव की विभाजक रेखा ही समाप्त हो जाती है। मानव और उसके भगवान का अन्तर यहीं तो समाप्त होता है। इसी अभेद की आराधना में महाकवि की महावाणी का उदय होता है। काव्य की त्रिवेणी का यही उत्स है। कवि की साधना, सृष्टि के त्रिविध छन्द की साधना है। विविध रूप, दर्शनीय रूप, विश्वलोचन, विश्वरूप यही तो उसके महान् तीन छन्द हैं। यह दिव्य जल, यह विराट् वायु, यह महान् औषधि, यह उसके ही तो प्रतिरूप हैं। यह भुवन, यह धरती इस त्रिविध छन्द की प्रतिष्ठा है। अथर्व के शब्दों में—

त्रीणिच्छन्दांसि कवयोवियेतिरे पुरूरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्
आपो वाता औषधयस्तान्येकस्मिन्भुवन आर्पितानि।

अथर्व—१८।१।१७

महर्षि तुलसीदास ने रामचरितमानस के विषय में स्वयं कहा—

युग बिच भक्ति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा।
त्रिविध ताप नासक त्रिमुहानी। रामस्वरूप सिंधु समुहानी॥

त्रिविध-ताप-नासक, त्रिमुहानी, त्रिविध छन्दा महान्-मानस, देवधुनि की वह त्रिलोक पावन धारा थी, जो नगाधिराज तुलसी से निकलती हुई रामरूपी नील-सिन्धु में समा गई।

कवि क्रान्त द्रष्टा है। यहाँ रहते हुए भी वह वहाँ के महान् संवाद को जानता है; गाता है, विभोर हो उठता है, वहाँ से वह यहाँ के लीला रहस्यों का उद्घाटन करता है। वेद ने ठीक ही कहा है—

अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम्।

अथर्व—१३।१।३९

तुलसी प्रचेतस् हैं, विपश्चित् हैं—विश्व-चित्त के महान प्रचेता हैं, अग्रदूत हैं। एक मात्र सीमित भूमि पर वास करते हुए वे असीम की वार्ता का परिवेषण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करते हैं। हमारे हृदयों तक उसे सम्प्रेषित और सम्प्रसारित करते हैं। कवि के अन्तर-अन्तर में स्वर्ग है। इसीलिये सारे विश्व के रहस्य उसके अन्तर्गत हैं, इसीलिए शाश्वत-काल का घोष उसके कंठों में है। अखिल-विश्व का आनन्द और वेदना, रस और रहस्य, प्रेम और सौन्दर्य के अमृत रसायन से उसका हृदय सिक्त है। जो अनिर्वचनीय आनन्द के तेजोमय स्वरूप में आत्मा को प्रतिष्ठित करता है, वही तो कवि है। परम तो रसघन-विग्रह है। जो स्वयं छन्दित् है, आनन्दित् है, वही अपर में आनन्द का संचार कर पाता है, जैसे दीप से दीपान्तर दीप-शिखा का संचार होता है। रस के पथ का दिशावाची और उसके आनन्द का संचारी, कवि को छोड़कर और कौन है। इसलिये अथर्व ने कहा, कवि से बड़ा ध्यानवलेन वलीयान और ज्ञान वलेन वलीयान कोई नहीं। विश्व के सारे भुवन का वह ज्ञाता है। सबके साथ वह रस-रज्जु से बंधा है, वह हमारा सखा है, परम-बन्धु है :—

न त्वदन्यः कवितरो न मेघया धीरतरो वरूण स्वधावन्
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वञ्जनो मायी विभाय।

अथर्व—५।११।४

इस महान् रामचरितमानस को तुलसी ने विश्व-कल्याण की प्रतिष्ठा के रूप में रखा है, वह कितना भव्य और दिव्य है—

अभिमत दानि देवतरुबरसे। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से।
सुकवि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से॥

आज के परमाणु युग में जहाँ मानव मोलिक्यूल्स में बंटा है, वहाँ मानव का आयाम एक विशेष प्रकार की मानसिकता का आयाम है, जहाँ वह हर क्षण विभाजित, खंडित और असम्पूर्ण है। आशंकाओं से मन कुंठित है। बौद्धिक चेतना स्नायविक दौर्बल्य की सीमा में पीड़ित है। भावनात्मक दृष्टि से विक्षिप्त है। आर्थिक असुरक्षा की भावना से खोखला और जर्जर है। राजनैतिक अस्थिरता से दिशाहीन और विभ्रान्त है। किसी भी स्तर पर राम का पक्ष जब उसके समक्ष उभरता है कभी सन्देह और निराशा के जगत में, कभी आशा और प्रकाश के जगत में, वह चौंकता है, तुलसी का मानस आज के इस **'क्षण-आयाम'** की तरह है। निस्सन्देह महर्षि तुलसीदास के रामाकार-भावछन्दित रसायन से श्रीरामचरितमानस के अप्रेमेय महासमुद्र में विश्व-मानव के अप्रेमय हृदय का उदय हुआ है। ऋग्वेद की परा-वाक् से हम महाकवि का स्तवन करते हैं—

हे महाकवि, पश्चात् सन्मुख, नीचे और ऊपर तुम अपने दिव्य काव्य से हमारी रक्षा करो, तुम नित्य हो, नवीन हो, चिर किशोर, जराहीन तुम अमर हो। हम जराशंकित, मृत्युभीत, सहमर्मी मित्र की तरह हैं। हे राजन् हमारी तुम रक्षा करो।

पश्चात् पुरस्तादधरादुदक्तात् कविः काव्येन परि पाहिराजन्
सखे सखायमजरोजरिम्णेऽग्ने मर्ता अमर्त्यस्त्वं नः॥ —ऋग्वेद १०।२७।२१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में तुलसी का जीवन-दर्शन

डॉ० विनयमोहन शर्मा

तुलसी का प्रादुर्भाव आज से ४०० वर्ष वर्ष पूर्व हुआ था। उनके काव्य रामचरितमानस को कालजयी कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि उसमें निहित जीवन-दर्शन में मानव मात्र को सतत अनुप्राणित करने की क्षमता है। जब ग्रियर्सन ने मानस को भारत का पथ-प्रदर्शक और उसके कवि तुलसी को भारत का श्रेष्ठ कवि घोषित किया और हिन्दी-साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक गार्सा द तासी ने मानस को सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली ऐसी लोकप्रिय रचना निरूपित किया कि 'जिसे अपढ़ लोग भी सुन-सुनकर याद करते और गाते हैं' तब उसकी लोकप्रियता और शाश्वतता में उन्हें सन्देह नहीं होना चाहिए, जो विदेशी मतों के आधार पर अपना मत बनाते हैं।

इन हिन्दी-प्रेमी विदेशियों के अतिरिक्त रूस के प्राच्य विद्या विशारद इलेक्से वारान्निकोव ने उसका रूसी अनुवाद प्रकाशित कर उसके जीवन-दर्शन को ऐसे देश के लिए भी आवश्यक समझा जो ईश्वर, धर्म और परम्परागत रूढ़ियों को नकारता है। वारान्निकोव को मानस में वह जीवन-दर्शन दिखलाई दिया जो आनाचार-अत्याचार के प्रति विद्रोह करता है और अधिनायकवाद तथा साम्राज्य विस्तारवाद का घोर शत्रु है। राम स्वेच्छाचारी और विस्तारवादी रावण के विरुद्ध युद्ध छेड़ते हैं, इसलिए नहीं कि युद्ध उन्हें प्रिय था, वरन् इसलिए कि उसने अपने राक्षस सहयोगियों सहित प्रथम तो शान्त जीवन व्यतीत करनेवाले ऋषि-मुनियों और विबुधों के कार्यों में, जो उस समय का बौद्धिक और आध्यात्मिक वर्ग था, बाधा पहुँचाने तथा उनकी हत्या करने का अभियान चला रखा था और समस्त लोकों में आतंक फैला रखा था, दूसरे उसने उनकी असहाय पत्नी का अपहरण किया था। राक्षसों सहित रावण को युद्ध में मारकर उन्होंने उसके राज्य पर अधिकार नहीं किया, उसे उसी के भाई विभीषण को, जिसने उसके अन्यायपूर्ण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कार्यों में सहयोग और समर्थन देने से इनकार किया था और उससे त्राण पाने के लिए उनकी शरण ली थी, सौंपकर स्वदेश लौटना श्रेयस्कर समझा।

इस प्रकार राम ने अधिनायकवादी और विस्तारवादी नीति नहीं अपनाई। अयोध्या लौटने पर भी पिता द्वारा प्रदत्त भरत के राज्य को सहसा ग्रहण नहीं किया। पहले हनुमान को भेष बदलकर भरत के पास उनके मनोभावों को परखने के लिए भेजा।

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बट रूप अवधपुर जाई।
भरतहि कुशल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु।।

क्योंकि वे जानना चाहते थे कि यदि भरत के मन में लेशमात्र भी राज्य-लिप्सा होगी तो वे अयोध्या में प्रवेश नहीं करेंगे और जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि भरत और प्रजा भी उन्हीं को राज-सिंहासन पर आरूढ़ देखना चाहती है, तब उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया और राज्य सम्भालते ही प्रजा को सुखी-समृद्ध बनाने में प्रवृत्त हो गये, जिसका परिणाम तुलसी के शब्दों में इस प्रकार है :—

बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई।।

बरणाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहि सुखहि, नहि भय, सोक न रोग।।

देश में दरिद्रता नहीं थी, अकाल नहीं पड़ते थे, विद्वानों का सम्मान होता था, लोग अपनी स्थिति के अनुसार विहित कर्म करते थे। विशेष बात यह थी कि राम के राज्य में विषमता नहीं थी। एक प्रकार का समाजवाद था। वे तत्कालीन आचरण संहिता का काम करते थे। राजा राम अपना स्वच्छन्द मत जनता पर नहीं लादते थे, वे आर्य महापुरुषों द्वारा निर्मित वैदिक उपदेशों के अनुसार स्वयं आचरण करते और प्रजा उनका अनुकरण करती थी। "मानस" में राजतन्त्र तो है, पर वह प्रजातन्त्र के अधिक निकट है। आजकल जिस प्रकार इंग्लैंड में राजतन्त्र है, लगभग उसी प्रकार का राजतन्त्र अयोध्या में प्रचलित था। राजा दशरथ राम का राजतिलक स्वेच्छा से नहीं करना चाहते थे। वे अपने गुरु तथा मन्त्रियों से परामर्श करते हैं और कहते हैं :—

जो पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका।।

पंचों को यदि मेरा विचार अच्छा लगे तो प्रसन्न हृदय से राम को टीका करो। यहाँ **हरषि हिय** शब्द साभिप्राय है। दशरथ पंचों की प्रसन्नता प्राप्त करके ही अपने विचार को कार्यान्वित करना चाहते थे। तुलसी का यह राजनीतिक दर्शन आज भी प्रेरणा दे सकता है। तुलसी ने मानस में कलियुग के वर्णन के बहाने अपने युग का जो जीवित चित्र खींचा है, वह बहुतांश में आज भी घटित होता है। शास्त्रों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये पुरुषार्थ चतुष्टय माने गये हैं। यही हमारे जीवन-मूल्य रहे हैं। तुलसी के युग में आज के समान ही सच्चे धर्म के प्रति

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लोगों की श्रद्धा डिग गई थी। अनेक तथाकथित धर्म-पन्थ चल पड़े थे। लोग मनमानी करने लगे थे, कहीं व्यवस्था नहीं रह गई थी, लफ्फाज ही पंडित बन गये थे :—

मारग सोइ जाकहं जोई भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।

समाज में कामुकता फैल रही थी, ढोंगियों का बोल बाला था :-–

नारि विवस नर सकल गोसाईं। नार्चाहं नर मरकट की नाईं।।

नारि मुई गृह सम्पति नासी। मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी।।

पारिवारिक सम्बन्ध शिथिल हो गये थे, नृप धर्म के अनुसार दण्ड-विधान नहीं करते थे। नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन हो गया था। आज भारत में ही नहीं, संसार के अन्य देशों में भी बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति दिखाई देती है। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म का जीवन में प्रथम स्थान था, अब वह निष्कासितसा हो गया है, उसका स्थान कहीं अर्थ और कहीं काम ने ले लिया है।

आज का मानव आस्था के संकट से गुजर रहा है। वह नहीं जानता कि वह जगत में क्यों आया है, उसका लक्ष्य क्या है ? वह चारों ओर मानसिक और शारीरिक हिंसा की लपटों में घिरा हुआ अपने को एकाकी अनुभव कर रहा है। वह जगत के नियंता 'ईश्वर' के प्रति शंकालु हो उठा है। कभी-कभी सोचने लगता है कि उसका अस्तित्व ही बेकार है। इस प्रकार के चिंतन ने यूरोप में अस्तित्ववादी दर्शन को जन्म दिया है। यह अनास्थावादी दर्शन व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को महत्व देने वाला, स्थापित जीवन मूल्यों को अस्वीकारने वाला और व्यक्ति को अन्धकार में भटकाने वाला है। यह व्यक्ति को स्वेच्छाचार के लिए प्रोत्साहित करता है। वह जगत, ईश्वर, मनुष्य सभी को अनर्गल (एब्सर्ड) समझने लगता है। उसके लिए वर्तमान का वह क्षण, जिसमें वह जी रहा है, अत्यन्त महत्वपूर्ण है और उसे जी भर भोग लेने को अपने अस्तित्व की सार्थकता समझता है। इस आस्थाहीन जीवन-दर्शन को विज्ञान की विश्लेषणात्मक बौद्धिकता से भी कुछ बल मिला है। विज्ञान प्रत्यक्ष परीक्षण को प्रमाण मानता है, श्रद्धा, विश्वास उसकी सीमा से बाहर हैं। यद्यपि जेम्स फ्रेजर के मत से विज्ञान भी धर्म की पराशक्ति की अनुभूति में सहायक होता है। भारतीय दृष्टि से धर्म केवल मन्दिर में विग्रहाराधन या गुफा में आत्मचिंतन तक सीमित नहीं है, वह जीवन का अपरिहार्य अंग है। धर्म जो श्रद्धा और विश्वास को लेकर चलता है, आत्मिक शांति के लिए सृष्टि के परम तत्व 'ईश्वर' की सत्ता को स्वीकारता है, परन्तु वस्तुवादी प्रोफेसर जी० ई० मूर कहता है—

"In the beginning was matter, and matter beget devil, He beget God. And God died and next the devil died and matter remained."

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(प्रारम्भ में भौतिक तत्व था, भौतिक तत्व ने शैतान को जन्म दिया और शैतान ने परमात्मा को पैदा किया। परमात्मा मर गया है, उसके बाद शैतान भी मर गया है, शेष रह गई है भौतिक वस्तु) बौद्धिक समाज में व्याप्त अनास्थापूर्ण वातावरण के प्रति देश-विदेश के चिंतक सचमुच चिंतित हैं। भारतीय दार्शनिक राधाकृष्णन ने एक बार कहा था—

"There are many roads to mass suicide but only one way to human survival. It is a road of faith which inspires us with the strong hope of things to come."

(सामूहिक आत्महत्या के अनेक मार्ग हैं, पर मानव अस्तित्व की रक्षा का एक ही मार्ग है और वह है आस्था का, विश्वास का, जो हमें भविष्य के सम्बन्ध में दृढ़ आशा की प्रेरणा देता है) तुलसी ने भी यही अनुभव किया था, इसी से उन्होंने मानस के प्रारम्भ में ही श्रद्धा और विश्वास के प्रतीक भवानी और शंकर की वन्दना की है—

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।

क्योंकि इनके बिना अपने अन्तर में स्थित ईश्वर को अनुभव नहीं किया जा सकता **याम्यां विनान पश्यन्ति सिद्धा स्वांतनस्थमीशरं।** सूत्र रूप में तुलसी का जीवन-दर्शन आस्था का दर्शन है, उनकी आस्था व्यक्ति के सामार्थ्य में है, परिवार के प्रेम और मर्यादापूर्ण सम्बन्ध में जीवन की धारणा करने वाले समन्वयात्मक धर्म में हैं और जग के अणु-अणु में व्याप्त परमतत्व 'ईश्वर' में है।

कोई भी राष्ट्र चरित्रहीनता की स्थिति में जीवित नहीं रह सकता। तुलसी ने हमें ऐसे चरित्र दिए हैं, जो हमारे राष्ट्रीय जीवन के स्तर को उठाने वाले हैं। आज व्यक्ति आदर्श से गिर गया है। परिवार के मधुर सम्बन्ध टूटते जा रहे हैं, अनैतिकता बढ़ती जा रही हैं। राम आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श समाज-सुधारक, दीन-हीन रक्षक और आदर्श राजा हैं। भरत आदर्श भाई हैं, त्याग की मूर्ति हैं, पिता के द्वारा प्राप्त राज्य को इसलिये ग्रहण नहीं करते, क्योंकि वह माता ने पिता पर दबाव डालकर और परंपरा के विरुद्ध उनके ज्येष्ठ भाई को उससे वंचित कर निर्दयतापूर्वक प्राप्त किया गया था, लक्ष्मण ज्येष्ठ बन्धु के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित हैं, हनुमान की आदर्श स्वामी-भक्ति, सीता का आदर्श पति प्रेम, कौशल्या का आदर्श मातृत्व जो राम के प्रति ही नहीं, भरत के प्रति भी समान रूप से उमड़ता है स्पृहणीय है। मानस के पात्र मर्यादा का पालन करते हैं।

मानस में स्थान-स्थान पर तप की महिमा गायी गयी है। कर्म में सतत् संलग्न रहने का नाम ही तप है। पार्वती तप करके शिव को प्राप्त करती हैं, ऋषि-मुनि तप से अपने आराध्य को प्राप्त करते हैं और रावण भी तप से अपार शक्ति प्राप्त करता है। अतः तुलसी के दर्शन को निष्क्रिय और कोरा भाग्यवादी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दर्शन नहीं कहा जा सकता। उनका राम में, जो अदृश्य शक्ति के प्रतीक हैं, अटूट विश्वास है और वे उन्हीं के प्रति शत-प्रतिशत सर्मपित है। अब विज्ञान भी सृष्टि के तत्वों में किसी विशिष्ट चेतनशक्ति की संभावना में विश्वास करने लगा है। वह मानने लगा है कि उसके कार्यों में आश्चर्यजनक व्यवस्था है ,उसमें एब्सरडिटी नहीं है। एब्सरडिटी हमारे चित में हो सकती है। तुलसी **सियाराम मय सब जग जानी** कहकर प्रत्येक प्राणी में एक ही तत्व की विद्यमानता स्वीकार करते हैं। यदि हम प्रत्येक प्राणी में अपना ही रूप अनुभव करने लगें, तो संसार में अप्रीति, अविश्वास और अनीति का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। आस्था, श्रद्धा और संतुलित कर्महीनता के इस युग में तुलसी का मानस प्रकाश-स्तंभ की तरह समस्त विश्व का मार्ग-दर्शन कर सकता है। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सांस्कृतिक युगपुरुष— तुलसीदास

डॉ० मदनगोपाल गुप्त

जब किसी देश की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आत्मा जाग्रत होती है, तो वह जन-जीवन की आशा-आकांक्षा, दर्शन, कला, साहित्य आदि सभी जीवन-पक्षों को अनुप्राणित करती हुई उसके साहित्य में आकलित होती है। मध्यकालीन हिन्दी काव्य उस युग के एक ऐसे सांस्कृतिक पुनर्जागरण की देन है, जिसके कारण राजनीतिक दृष्टि से पराजित भारतीय समाज ने शासक-वर्ग के अन्तःकरण को प्रभावित और विजित बनाया था। गोस्वामी तुलसीदास उक्त सांस्कृतिक चेतना की देन कहे जा सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं ; किन्तु इसके साथ ही वे उसके सशक्त संवाहक एवं परवर्ती काल के प्रेरणास्रोत भी हैं। वे एक ऐसे सांस्कृतिक सूर्य का-सा बिरुद धारण करनेवाले युगपुरुष हैं, जिनके अभाव में युग, देश तथा साहित्य का अन्धकार समाप्त नहीं हो सकता। अतः अन्य प्रसंग पर प्रस्तुत कवि की ये पंक्तियां उनके कृतित्व के लिये भी सार्थक कही जा सकती हैं—

राकापति षोडस उअहिं, तारागण समुदाय।
सकल गिरिन दव लाइये, बिनु रवि राति न जाय।।

कवि को स्रष्टा कहा गया है। उसका सामाजिक जीवन भले ही परिवेश की देन हो, किन्तु वह काव्य के माध्यम से एक अभिनव परिवेश की सृष्टि करता है और इसीलिये उसे स्रष्टा भी कहा जा सकता है। अपने युग की विषम विकृतियों के बीच रहकर तुलसीदास ने मानों शंकर की भांति जीवन और जगत का गरल पचाया था और दूसरी ओर शिवत्व की सच्ची साधना करके सत्य और सुन्दर को उसमें सन्निहित करके समाज को अमृततत्व प्रदान करनेवाली काव्य-निर्झरिणी प्रवाहित की। आखिर भगवान शिव ने भी गरल पीकर देवताओं के अमृतपान का पथ प्रशस्त किया था। जब हम यह स्वीकार करते हैं और इस दृष्टिकोण से उनके काव्य पर दृष्टिक्षेप करते हैं तो हम देखते हैं कि विपरीत परिस्थितियों के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बीच उनका एक सांस्कृतिक स्वप्न था, तत्कालीन जन-समुदाय के लिये वांच्छनीय जीवन की एक व्यावहारिक कल्पना थी और साथ में एक प्रखर आत्मविश्वास भी था। इस आत्मविश्वास के साथ उनमें जनमानस को समझने की पैनी दृष्टि थी। यही कारण है कि उन्होंने राम-कथा को प्रबन्ध, मुक्तक, गीत, लोकगीत सभी शैलियों में और विभिन्न जीवन-स्तर के अनुरूप प्रस्तुत करके विविध रुचियों और मानसिक स्तर के व्यक्तियों को संस्कारित करने का एक व्यापक समायोजन किया। उनकी सुप्रसिद्ध कृति "रामचरितमानस" तो उच्चकोटि के दार्शनिक से लेकर सामान्य किसान-मजदूर तक को अपने रस में सिक्त करने की अद्वितीय क्षमता रखती है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने तो केवल हिन्दू जनता पर व्यापक और कालातीत अर्थात् अपने समय को लेकर आज तक विद्यमान गहरे प्रभाव को लक्ष्य करके लिखा है कि

"Over the whole Gangetic valley his great work (Ramayan) is better known than the Bible in England."

किन्तु केवल हिन्दू समाज तक ही इस प्रभाव को सीमित नहीं माना जा सकता। शासकवर्ग और भिन्न साम्प्रदायिक आस्थावाले अब्दुर्रहीम खानखाना ने उसे मुसलमानों के लिए कुरान के समान महत्वपूर्ण स्वीकार किया है––

रामचरितमानस विमल, सन्तन जीवन-प्रान।
हिन्दुवान को वेद सम, जमनहिं प्रगट कुरान॥

अब प्रश्न यह उठता है कि तुलसीदास का सांस्कृतिक स्वप्न क्या था? अथवा उनके व्यक्तित्व एवं काव्य में वह कौन-सा गुण था जिसके कारण उन्हें सांस्कृतिक युग-पुरुष कहा जा सकता है? या उनमें ऐसी कौन-सी विशेषता है, जिसे लक्ष्य करके सुप्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ ने (Vincent A. Smith) उन्हें अपने युग का महानतम व्यक्ति निर्दिष्ट करके ऐतिहासिक मूल्यांकन द्वारा लिखा है कि करोड़ों नर-नारियों के हृदय और मन पर कवि की विजय सम्राट् अकबर की एक या समस्त बिजयों की अपेक्षाकृत असंख्यगुनी अधिक चिरस्थायी और महत्वपूर्ण थी––

"His name will not be found in 'Aine-Akbari', or in the pages of any Muslim analist, or in the books by Europeon authors based on the narratives of persian historians. Yet that Hindu was the greatest man of his age in India––greater than Akbar himself, in as much as the conquest of the hearts and minds of millions of man and women affected by the poet was an achievement infinitely more lasting and important than any or all of the victories gained in war by the monarch."

—Akbar, the Great Mughal, Page 417

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर के रूप में एक तथ्य को प्रकाशित किया जा चुका है कि उन्होंने मानव-जीवन का संस्कार जीवन के विविध स्तरों और व्यक्ति की विभिन्न रुचियों को परख कर किया और यही कारण है कि एक ही रामकथा को अनेक शैलियों और अनेकविध अभिव्यक्ति प्रकारों के माध्यम से रखा। दूसरे इस बात का समीचीन उत्तर प्राप्त करने के लिये हमारे लिये आवश्यक है कि हम उनके सांस्कृतिक व्यक्तित्व को उन्हीं की कृतियों में ढूँढ़ने का यत्न करें।

आज ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो यह मानते आये हैं कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना का विकास अंग्रेजों के शासनकाल की देन है। राष्ट्र की कल्पना विषयक वेदों का सूक्त सर्वविदित ही है, किन्तु तुलसी के साक्ष्य पर विचार करें तो राष्ट्र और समाज की यथेष्ट कल्पना उनमें मिल जायेगी। वे कहते हैं—

भलि भारतभूमि भलो कुल जन्म, समाज-शरीर भलो लहि कै।

—कवितावली

उक्त पंक्ति में देश के प्रति गौरव-भावना और व्यक्ति और समाज के अंगांगि-सम्बन्ध का संकेत सुस्पष्ट है।

उनकी एतद्विषयक चेतना को तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में भलीभाँति हृदयंगम किया जा सकता है। राजनीतिक धार्मिक सामाजिक व्यक्तिगत और आर्थिक सभी जीवन-पक्षों की विकृति उनके युग में इतनी सीमा तक पहुंच चुकी थी कि व्यक्ति का जीवन प्रवाह-पतित की भाँति नियति के अधीन हो चुका था। सत्ता के लिए भाई-भाई पुत्र-पिता-चाचा आदि के प्रति विद्रोह ही नहीं उनकी हत्या तक करने को सन्नद्ध हो जाता था। शासन द्वारा जन-जीवन का खुलेआम शोषण और इस शोषण से राजकीय वर्ग का नाना कुत्सित व्यसनों से परिपूर्ण हीन-जीवन था जिसके लिये सहृदय अमीर खुसरो को भी आखिर लिखना पड़ा कि "सरकारी खजाने का एक-एक मूल्यवान मोती गरीब किसानों की रक्तक्त आँखों का एक-एक बूंद था"। समाज-व्यवस्था नामशेष हो चुकी थी। तुलसीदास ने कहा यही कि मैं राम का गुणगान कर रहा हूँ। रामकथा लिख रहा हूँ, किन्तु वे जन-जीवन के प्रति पूर्ण संवेदनशील थे। कलियुगवर्णन उपर्युक्त विकृति का जीता-जागता चित्र उपस्थित करता है। रावण के अत्याचारों में तत्कालीन शासन के द्वारा उत्पीड़न ध्वनित है। उनका रावण सीता का हरण करनेवाला ही रावण नहीं अपितु दुनिया को चारों ओर से दबाने वाला दरिद्रतारूपी दशानन भी है जिसकी मर्मान्तक पीड़ा इस कवि को है—

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोच-बस,
कहें एक एकन सें कहाँ जाई का करी?

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
सांकरे सबें पर राम रावरे कृपा करी।
दारिद दसानन दबाई दूनी दीन बन्धु,
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी।।

उपरिनिर्दिष्ट विषम परिस्थितियों में उन्होंने रामराज्य की कल्पना कर रामराज्य के वर्णन में उन्होंने प्रजा के सर्वविध सुख, समृद्धि तथा नैतिक और सामाजिक संस्कृति या सत्कृति का जो रूपायन किया है, उसके मूल में क्या है? रामकथा पर हम ध्यान से देखें तो विशाल राज्य के सम्भावित उत्तराधिकारी राम और भरत परस्पर विवाद की कौन कहे उल्टे प्रसन्न मन से उसके अधिकार को छोड़ने में तत्पर हैं। लक्ष्मण उस परिस्थिति से राजनीतिक लाभ उठाने की नहीं सोचते जैसा कि मध्यकाल में था और आज की वर्तमान राजनीति में दिखाई देता है। पूरा का पूरा राजपरिवार जन-साधारण के सुख-सन्तोष के लिए अपना सब कुछ उत्सर्ग करने को प्रस्तुत है। रामराज्य की स्थापना करनेवाले राम को आखिर क्या मिला—वनवास कठिन संघर्ष और सिंहासनासीन होने पर भी निजी सुखों के त्याग का समायोजन। कवि ने इसकी कसौटी भी बड़ी खरी दी है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

मध्यकाल की मानसिकता में नरक का भय ही सम्भवतः अवांछनीय कार्यों से व्यक्ति को विरत कर सकता था।

राज-घराने की यह कथा जन-साधारण की भाव-चेतना को भी अपने-आप में समेटे हुए है। मानसिक जगत में हम उसके पात्रों को राजा-रानी या राजकुमार के रूप में न पाकर अपने भाई, पुत्र, पत्नी, पति, पिता आदि सर्वविध, मानों अपने पारिवारिक सम्बन्धों के बीच पाते हैं। हम चाहते हैं कि भाई हों तो राम-लक्ष्मण की जोड़ी जैसे, पत्नी हो तो सीता जैसी, माँ हो तो कौशल्यासी, पिता और गुरु हों तो दशरथ और वसिष्ठ जैसे। हम आज भी यही चाहते हैं, तब का समाज भी तुलसी के कारण यही चाहने लगा होगा।

विद्वानों ने तुलसीदास द्वारा रामलीला के आयोजन के आरम्भ का तथ्य प्रकाशित किया है। उनके मित्र मेघा भगत द्वारा प्रचलित रामलीला काशी में आज भी आयोजित होती है। उनके समकालीन प्रशंसक मधुसूदन सरस्वती द्वारा प्रवर्तित बारा चन्दवारा ग्राम की धनुष-भंग और फुलवाई लीला आज भी प्रचलित है। इसके द्वारा उन्होंने हमारे सामने धनुर्धारी राम को प्रस्तुत किया, जिसकी उस समय के परास्त और पीड़ित भारतीय समाज में आवश्यकता थी। उनकी रामलीला और उक्त प्रयास ने देश के राष्ट्रीय, सामाजिक और साहित्यिक जीवन में बड़ा काम किया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में "उसने विच्छिन्न जीवन को जोड़ दिया है और उसने यह विश्वास जताया कि अत्याचार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का अन्त होगा।" हनुमत्पूजा का भारत में प्रसार अभी अनुसन्धान की अपेक्षा रखता है। उन्होंने हनुमान मन्दिरों की जो स्थापना की उसमें राक्षस को पैरों तले दबाये हुए और कंधों पर धनुर्धारी राम-लक्ष्मण को लिए हनुमान को रखा गया है, जो कि शक्ति की उपासना का संकेत देता है। किसी भी जाति या देश में शक्ति के संचार के बिना आत्म-गौरव का भाव नहीं पैदा हो सकता। आगे चल कर युगद्रष्टा समर्थ गुरु रामदास ने मारुति-मंदिरों की महाराष्ट्र के ग्राम-ग्राम में स्थापना की जो योजना चलाई थी उसके द्वारा मराठा शक्ति का व्यापक संगठन उठ खड़ा हुआ। अतः इस समायोजन का बीज तुलसीदास के उपर्युक्त प्रयास में देखा जा सकता है। इन सभी सामान्य से दीखने वाले तथ्यों का सांस्कृतिक तथा विजिगीषु मनोवृत्ति के संचार की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व है।

उनकी राष्ट्रीय चेतना के संकेत के लिए लंका-दहन का एक प्रसंग उल्लेखनीय है। लंका जल जाने पर देवताओं का हर्षोल्लास प्रस्तुत करते हुए कवि लिखता है--

देव निसान बजावत गावत छूटि गयो सावंतपनो मोरे।

लंका जलने पर देवताओं को इस बात की प्रसन्नता है कि अब एक ऐसा सवेरा आ रहा है, जिसमें उनका सामन्तपना छूट जायेगा। मध्ययुग में मुगल बादशाहों ने राजपूत राजाओं को परास्त करके जो सामन्त पद्धति चलाई थी, उसमें वे मनसबदार कहे जाते थे और जागीरदार के रूप में उनके होते हुए भी वे बादशाह के नौकर जैसे थे। अतः इसमें सन्देह नहीं कि उक्त सामन्त पद्धति की समाप्ति का सवेरा यह स्वप्नद्रष्टा कवि देख रहा है।

अतः सांस्कृतिक युगपुरुष तुलसी विषयक यह विवेचन उनकी सन्तुलित, व्यावहारिक विजय की आकांक्षा भरी जीवन-दृष्टि को प्रभावित करता है। कवि की अमरता तथा उसकी वाणी के युगव्यापी प्रभाव का भी यही रहस्य है। दूसरे शब्दों में वे भारतीय जन जीवन के ऐसे संस्कारक कवि हैं, जिन्होंने जन-जीवन के संस्करण का व्यापक आयोजन किया था--वाणी के द्वारा ही नहीं, अपितु कार्यक्रम के माध्यम से भी। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वितीय खण्ड

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रामचरितमानस में विशेष प्रयोग

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

तुलसीदास ने रामचरितमानस में स्थान-स्थान पर विशेष प्रयोग किए हैं। इन विशेष प्रयोगों का ठीक-ठीक अर्थ समझना सामान्यतया उनके लिए कठिन होता है जो बोलचाल की भाषा की विशेषता से परिचित नहीं होते। यहाँ पर मैं कुछ ऐसे प्रयोगों की चर्चा करना चाहता हूँ जो विद्वानों के लिए भले ही कठिन न हों पर साधारणजन के लिए कठिन हैं, इसीलिए मानस की परम्परा में ऐसे शब्दों का ठीक-ठीक अर्थ आज तक नहीं लग सका। अशोक वाटिका में जब हनूमान् सीता जी के और निकट चले गए तब निम्नलिखित अर्द्धाली आती है—

तब हनुमंत निकट चलि गएऊ। फिरि बैठी मन बिसमय भएऊ॥

—मानस, ५।१३।८

मानसपीयूष में इस 'बिसमय' का अर्थ 'आश्चर्य सहित भय' किया गया है। लाला भगवानदीन ने केवल आश्चर्य अर्थ किया और उसका स्पष्टीकरण यह किया कि भला बंदर क्या राम-कथा सुनाएगा। यहाँ विचारणीय यह है कि 'बिसमय' का व्यवहार 'फिरि बैठी' के अनंतर है। 'फिर बैठने' का कारण कदाचित् यह रावण है, छल कर रहा है, आदि दिया गया है। वाल्मीकीय रामायण में स्पष्ट लिखा है—

यथा यथा समीपं स हनूमानुपसर्पति।
तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशंकते॥

इसलिए यह स्पष्ट है कि वहाँ सीता हनूमान् के रावण या रावण के प्रतिनिधि होने की शंका कर रही हैं, इसीलिए वाल्मीकि ने लिखा है कि सीता ने उनसे कुछ नहीं कहा—

एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनु मध्यमा।
न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा॥

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसलिए 'विसमय' के स्थान पर शंका, परिशंका, संदेह को व्यक्त करने वाला शब्द होना चाहिए अथवा 'विस्मय' का अर्थ ही ऐसा कुछ होना चाहिए। अवधी भाषा में 'विसमय' शब्द संदेह के अर्थ में प्रयुक्त होता है इसलिए जान पड़ता है कि इसी अर्थ में 'विसमय' शब्द का यहाँ व्यवहार किया गया है। 'विस्मय' का यह अर्थ अवधी बोली में विकसित नहीं हुआ है, प्रत्युत संस्कृत में 'विस्मय' के कई अर्थ होते हैं, जिनमें से एक संदेह भी है। वाचस्पत्यम् में विस्मय के बारे में यों लिखा हुआ है—

विस्मय--पु० वि०+स्मि-अच्। (१) आश्चर्ये-अमरः।
(२) अद्‌भुत स्थायिभावके रसभेदे वा०--दशरूपक।
विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमाति वर्त्तिषु।
विस्फारचेत्सा यस्तु स विस्मय उदाहृतः॥ सा० द०
(३) दर्पे, मेदिनी, संदेहे। शब्दरत्नाकर।

इससे यह स्पष्ट है कि संस्कृत में ही विस्मय का अर्थ दर्प और संदेह भी होता है। यहाँ विस्मय का अर्थ सीधे संदेह ही करना चाहिए। क्योंकि वह संस्कृत और अवधी दोनों में होने वाले प्रयोगों से स्पष्ट है। अवधी में तो विस्मय का ऐसा एक अर्थ है जो संस्कृत में नहीं था और जिस अर्थ में उसका प्रयोग रामचरितमानस में अन्यत्र व्यवहृत है—

विसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानत रघुनाथ प्रभाऊ॥

—मानस, २।१२।३

यहाँ 'विस्मय' का अर्थ 'विषाद' है। अयोध्याकांड में इस अर्थ में इसका व्यवहार अत्यधिक हुआ है, क्योंकि इस कांड में तुलसीदास राम का सुख-दुःख-निरपेक्ष्य स्वरूप विशेषरूप से दिखाना चाहते हैं। इस कांड या सोपान के आरंभ में ही उन्होंने राम की वंदना करते हुए उनकी सुख-दुःख-निरपेक्ष्य मुखश्री का उल्लेख किया है—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लेवनवासदुःखतः।
मुखांबुजश्री रघुनंदनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा॥

—मानस, २। श्लोक २।

दूसरा उदाहरण लीजिए—

सचिव बैद गुरु तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिहीं नास॥

—मानस, २।३७।९-१०

यह दोहा हितोपदेश के निम्नलिखित श्लोक के समानांतर निर्मित हुआ है—

वैद्योगुरुश्चमन्त्री च यस्य राज्ञः प्रियंवदः।
शरीरधर्म कोषेभ्य क्षिप्रं स परिहीयते॥

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यहाँ राजा के सचिव, वैद और गुरु प्रिय बोलने वाले हों, इतना ही कहा गया है–'भय से' विशेषण नहीं लगा है। कवि ने प्रिय बोलने का हेतु भी इसके द्वारा व्यक्त किया है। इस दोहे में क्रम-भंग भी है, किंतु दोहावली में यही दोहा पाठांतर से दिया हुआ है, जहाँ क्रम ठीक है—

मंत्री गुरु अरु बैद जौ, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तिन कर, होइ बेगिहीं नास ।।

—दोहा० ५२४।

इसमें 'भय आस' शब्द ध्यान देने योग्य है। लाला भगवानदीन ने 'आस' का अर्थ आशा किया है, किंतु कोष्टक में कारण दे दिया है अर्थात् 'भय के कारण'। मानसपीयूष में 'भय' और 'आस' को अलग-अलग मानकर 'भय' और 'आशा' से प्रिय बोलते हैं अर्थ किया गया है। आशा का अर्थ और स्पष्ट करके 'लोभ' अर्थ किया गया है। विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भय और लोभ का विकल्प यहाँ निरर्थक है। कोई स्पष्टता उससे नहीं आती। किसी लोभ ही के कारण भय होता है, उसी लोभ में बाधा उपस्थित होने की आशंका रहती है, इसलिए 'भय आस' आशा के भय से लोभ के भय से अर्थ में माना जा सकता है, पर 'भय आस' से इस प्रकार का अर्थ हिंदी में उलटे समास के कारण बनता नहीं। लालाजी का अर्थ ठीक अवश्य है, पर भय की आशा विलक्षण प्रयोग जान पड़ता है। यहाँ कवि भय के कारण या भय से इतना ही अर्थ करना चाहता है, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि 'आश' शब्द का तुलसीदास ने विशेष प्रयोग किया है। यह 'आस' वही है, जिससे आसन बना है, जिससे 'व्यास' और 'समास' शब्द बने हैं, 'आस्' धातु का अर्थ होता है—आस उपवेशने। अर्थात् 'आस' का अर्थ है—आधार, आश्रय, अवलंब, भय का अवलंबन करके, भय के आधार पर, भय से। इसलिए स्पष्ट है कि 'आस' यहाँ विशेष प्रकार का प्रयोग है।

तीसरा विशेष प्रयोग उस समय दिखाई देता है, जब अंगद ने रावण द्वारा राम की निंदा होने से क्रुद्ध होकर अपने भुजदंड कटकटा कर दे मारे। वहाँ निम्न-लिखित अर्द्धाली आती है—

डोलत धरनि सभासद खसे । चले भाजि भय मारुत ग्रसे ।।

—मानस, ६।३२।४

यहाँ 'मारुत ग्रसे' शब्द से मारुत का अर्थ मानसपीयूषकार ने 'पवन' किया है, और ग्रस के लिए ग्रसना धातु का अर्थ यों दिया है—बुरी तरह से पकड़ना, जिससे छूट न जाय और अर्थ करते हुए 'भयरूपी पवन से ग्रस्त भाग चले' लिखा है। बुरी तरह से पकड़नेवाली हवा बवंडर हो सकती है, पर उस अर्थ के लिए मारुत शब्द न हो कर कोई और शब्द होना चाहिए था। यहाँ प्रतीत होता है कि तुलसीदास ने जनता के बीच प्रचलित धारणा के अनुसार मारुत शब्द का व्यवहार भूत-प्रेत के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिए किया है। गांव में भूतप्रेत के आक्रमण को 'बयार' कहते हैं, हवा कहते हैं। पवन या मारुत के साथ ग्रसे शब्द की 'हवा' अर्थ में कोई संगति नहीं है। पर बयार अर्थात् भूत-प्रेत अर्थ करने पर उसकी पूरी-पूरी संगति दिखाई देती है। चक्रवात के अतिरिक्त वायु का तीव्र से तीव्र झोंका भी ग्रसता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, किंतु टीकाकारों ने जो अर्थ किया है, उसमें लिखा है कि ऐसा पकड़ लेना, जिससे किसी तरह छूट न जाय,—यह भूत-प्रेत के लिए जितना संगत है, उतना हवा के लिए नहीं, क्योंकि हवा की पकड़ बाहरी होती है, कोई अवरोध या अवलंब हवा के चक्कर में पड़े व्यक्ति को उसकी पकड़ से या उसके वेग से बचा दे सकता है। पानी के वेग में कोई बह सकता है, हवा के वेग में कोई उड़ सकता है, लेकिन ग्रसे ने के लिए आवश्यक है कि उभय पक्ष में सत्ता एक सी हो या भीतर से कोई पकड़ हो। ग्रस् धातु खाने के अर्थ में होती है—"ग्रसु अदने"। 'ग्रास' शब्द इसी धातु से बना है, जो खाने के कौर के लिए प्रयुक्त होता है। मानस में इस धातु का प्रयोग जहाँ-जहाँ हुआ है, उसे सामने रख लेने से स्थिति सुस्पष्ट हो जाती है। प्रथम सोपान में राहु जिस प्रकार चंद्रमा को पकड़ता है, उसके लिए इस धातु का प्रयोग किया गया है—

घटै बढ़ै बिरहिनि दुखदाई। ग्रसै राहु निज संधिहि पाई॥

—मानस, १।२३८।

टेढ़ जानि सब बंदे काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू॥

—मानस, १।२८१।६

पंचम सोपान में सर्प द्वारा मेढक के पकड़ने के लिए इस धातु का व्यवहार है—

रामबान अहिगन सरिस, निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि, जतनु करहु तजि टेक॥

—मानस, ५।३६।११-१२

तृतीय सोपान में गरुड़ द्वारा सर्प के खाने का उल्लेख है—

संसय सर्प ग्रसन उरगादः। समन सुकर्कस तर्क विषादः॥

मानस, ३।११।९

चंद्रमा और राहु के प्रसंग में इसका सब से अधिक प्रयोग है। अन्य उदाहरण लीजिए—

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू।

—मानस, १।१५६।५

निसि दिनु सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू॥

—मानस, २।२०८।४

सर्प के ग्रसने का भी उल्लेख उसके अनंतर है—

संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु बाता॥

—मानस, ७।९३।६

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पंचम सोपान में हनूमान् ने सुरसा से अपने को ग्रस लेने के लिए ललकारा है—

कवनेहु जतन देह नहिं जाना । ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना ।।

—मानस, ५।२।६

सेना और युद्ध के प्रसंग में भी इस धातु से बनी क्रियाओं का व्यवहार है—

गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका । मानहु ग्रसन चहत हहिं लंका ।।

—मानस, ५।५५।८

उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका । ग्रसन चहत मानहु त्रैलोका ।।

मानस, ६।७०।१२

रनमद मत्त निसाचर दर्पा । बिस्व ग्रसिहि जनु एहि विधि अर्पा ।।

मानस, ६।६७।५

कलि द्वारा ग्रस्त होने की अर्थात् भीतर से पकड़ की बात निम्नलिखित उदाहरणों में कही गई है—

श्रोता बकता ज्ञाननिधि, कथा राम कै गूढ़ ।
किमि समुझौं मैं जीव जड़, कलिमल ग्रसित बिमूढ़ ।।

—मानस, १।३०।११-१२

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भए सदग्रंथ ।

—मानस, ७।९७।९

लोभ ने शुभ कर्मों को ग्रस लिया—

भए लोग सब मोहबस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।

—मानस, ७।९७।११

मोह पिशाच से ग्रसे जाने की बात यों कही गई है—

कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच ।

—मानस, १।११४।९

पिशाच भूत-प्रेत कोटि के जीव हैं, प्रत्युत हिंदी शब्दसागर इसका एक अर्थ भूत भी देता है। भूत-प्रेत-पिशाच की चर्चा अमरकोश भी देवयोनि में भूत के साथ ही पिशाचों को गिनता है—

पिशाचो गुह्यकः सिद्धो, भूतो भी देवयोनयः ।

—अमरकोश

सब से अंत में यह कहना है कि ठीक ऐसा ही प्रयोग इसी सोपान में आगे चलकर किया गया है—

कोदंड धुनि अति चंड सुनि, मनुजाद सब मारुत ग्रसे ।

—मानस, ६।९१।१०

कहीं-कहीं सब के स्थान पर भय पाठ रखकर दोनों स्थानों का रूप एक ही कर दिया गया है। वायु का अर्थ अगर वातव्याधिग्रस्त अथवा सन्निपातग्रस्त की सी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्थिति की ओर संकेत माना जाय तो भी ग्रसे की संगति अपेक्षाकृत अधिक बैठेगी। 'बातबस' होने की बात द्वितीय सोपान में भी आई है—

ग्रहग्रहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार ।।

—मानस, २।१७९।९

ऐसी स्थिति में भय मारुत में रूपक मानने के स्थान पर भय से उत्पन्न शरीर के भीतर वायु के वेग से ग्रस्त अर्थ करने में अधिक संगति होगी। मोह पिशाच की ओर ध्यान जाने से ऐसा ही प्रतीत होता है कि भय और मारुत में रूपक है और रूपक होने पर भूत-प्रेत या पिशाच अर्थ लेना ही सुसंगत प्रतीत होता है। भूत के साथ पिशाच का उल्लेख मानस में हुआ भी है—

मज्जहिं भूत पिशाच बेताला । प्रथम महा झोटिंग कराला ।।

—मानस, ६।८८।१

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं । भूतपिसाच बधूं नभ नंचहिं ।।

—मानस, ६।८८।१

बेताल भूत पिसाच । कर धरें धनु नाराच ।।

—मानस, ६।१०१।२

देव दनुज नर किंनर व्याला । प्रेत पिसाच भूत बेताला ।।

—१।८५।६

संग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि, बिकट मुख रजनीचरा ।

—मानस, १।९५।१०

कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं ।

—मानस, ३।२०।१४

केवल प्रेत के साथ भी पिशाच आया है—

बहुजिनस प्रेत पिसाच जोगि जमाति बरनत नहि बने ।

—मानस, १।९३।१२

पिशाच या भूत लगने की बात इस दोहे में स्पष्ट आई है—

लागेउ तोहि पिसाच जिमि, कालु कहावत मोर ।

—मानस, २।३५।१०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मानस मंगलाचरण : प्रथम श्लोक | डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय

[अर्थ-परिरहस्य]

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ ।।

वैसे तो श्रीरामचरितमानस के इस प्रथम छन्द का एक, ऊपर से दिखलायी पड़नेवाला, अर्थ है। बालकाण्ड के मंगलाचरण का यह प्रथम छन्द ऊपर से सरस्वती और गणेश की वन्दना है। सरस्वती और गणेश दोनों बुद्धि के देवता हैं। लम्बी नासिका तीव्र बुद्धि का चिह्न है। गणाधिपति की नासिका जितनी लम्बी है, उतनी लम्बी किसी देवता की नहीं होती। इसीलिए कवि अपने काव्य के मङ्गलाचरण में सरस्वती के साथ गणेश की वन्दना भी करते हैं। विघ्न-विनाशक वही हो सकता है, जिसकी बुद्धि तीव्र हो। भगवान शंकर के गणों का अधिपति भी वही हो सकता है, जिसमें बुद्धि और बल दोनों अद्‌भुत हों। श्री गणाधिपति बुद्धि और बल के अद्‌भुत कोष हैं। इसीलिये वे विनायक, गणाधि-पति और गणेश हैं। गणपति स्तोत्र में श्री गणेश का छठवाँ नाम 'विकट' है और सातवाँ 'विघ्नराज'। इसके बाद दसवाँ नाम 'विनायक' है। इसका अभिप्राय यही है कि जो विकट नहीं होगा, वह विघ्नराज नहीं हो सकता और जो विघ्नराज नहीं होगा वह श्रेष्ठ नायक या विनायक नहीं हो सकता। इसके अति-रिक्त गणपति का नवम नाम 'भालचन्द्र' है। पिता शंकर के समान ये भी भालचन्द्र हैं। मस्तक का चन्द्रमा इस बात का सूचक है कि ये शान्त-शीतल स्वभाव वाले हैं। इसका अभिप्राय यही है कि बल-बुद्धि और शीतल स्वभाव वाला व्यक्तित्व ही आदर्श नायक या विनायक का निर्माण कर सकता है। श्री गणेश का ग्यारहवाँ नाम 'गणपति' है। नामों के इस क्रम से यही सूचना मिलती है कि बल, बुद्धि और शीतल स्वभाव को धारण करनेवाला आदर्श नायक ही शिव के गणों का पति हो सकता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्री गणपति स्तोत्र की फलश्रुति में प्रथम फल की सूचना देते हुए कहा गया है कि इस स्तोत्र का पाठ करनेवाले विद्यार्थी को विद्या प्राप्त होती है। इसका अभिप्राय यही है कि गणेश का सर्वप्रथम स्वभाव विद्यादान है। विद्यादान वही कर सकता है, जो स्वयं विद्यानिधि हो। गणेश स्तोत्र को लिख कर आठ ब्राह्मणों को दान देने से गणेश की प्रसन्नता से सब विद्याएँ प्राप्त होती हैं। यह फलश्रुति भी गणेश-स्तोत्र में है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गणेश एक विद्या के सागर ही नहीं हैं, वरन् वे सर्व प्रकार की, चौदहों प्रकार की विद्याओं के महा-सागर हैं। श्रेष्ठ नायक को विद्या की इसी प्रकार की साधना करनी पड़ती है।

पद्मासना, श्वेतवसना, वीणा पुस्तक-धारिणी सरस्वती तो देवमाता हैं। इसीलिए वे सर्वविद्याओं की माता हैं। कमलासना होने के कारण उनमें शीतल-कोमल स्वभाव है, श्वेतवसना होने के कारण वे सात्विक स्वभाव वाली हैं और वीणा-पुस्तक-धारिणी होने के कारण समग्र कलाओं और विद्याओं की अक्षय निधि हैं। करकमल में मालाधारिणी होने के कारण उनका स्वभाव उपासनात्मक भी है, क्योंकि उपासना ही सम्पन्नता और समृद्धि का मूल स्रोत है।

वर्ण, अर्थ, रस, छन्द और मंगल का सम्मिलन ही काव्य है। सरस्वती और गणेश, शब्द, अर्थ, भाव, छन्द और मंगल के देवता हैं; इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने अद्‌भुत महाकाव्य, रामचरितमानस के मंगलाचरण के प्रथम छन्द में वाणी और विनायक की वन्दना की है। परन्तु एकनिष्ठ अनुराग धारण करनेवाले गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस के मंगलाचरण के प्रथम छन्द में अपने इष्ट सीताराम को कैसे भूल सकते हैं। इसीलिए सरस्वती और गणेश या वाणी तथा विनायक की इस वन्दना में उन्होंने अपने सीताराम की भी वन्दना कर ली है। वाणी स्वयं सीता हैं और विनायक तो श्रेष्ठ नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम राम हैं ही। वाणी या सरस्वती के जितने गुण हैं, सब सीता में भी हैं। इतना ही नहीं; गोस्वामी जी ने सरस्वती को वाचाल[1] कह कर मितभाषिणी सीता से हीन ही सिद्ध किया है। तथापि वाणी और विनायक को सीता और राम का प्रतिनिधित्व करने का गौरव उन्होंने दे दिया है। गोस्वामी तुलसीदास जी सम्पूर्ण विश्व को सीताराममय देखते थे[2]। इस दृष्टि से भी सरस्वती सीता हैं और गणेश राम हैं।

वैसे गोस्वामी जी ने आलंकारिक दृष्टि से सरस्वती के समान सीता को माना है।[3] सीता को वाणी के समान और राम को अर्थ के समान अभिन्न मानकर

१–गिरा मुखर १।२४७

२–सीयाराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी। १।८।३

३–गिरा अरथ जलबीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न। वन्दउँ सीतारामपद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ।।१।१८

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गोस्वामीजी ने उन्हें प्रणाम किया है। लगभग उसी आलंकारिक पद्धति से बालकाण्ड के मंगलाचरण के इस प्रथम श्लोक में भी श्लेष के द्वारा उन्होंने वाणी और विनायक शब्द में सीता और राम को स्थापित करके सरस्वती और गणेश के साथ सीता और राम की भी वन्दना अप्रत्यक्ष रूप से कर ली है।

एक अन्य प्रकार से भी सीता, वाणी कहला सकती हैं। अध्यात्म रामायण में तो सीता को वाणी शब्द से प्रत्यक्ष ही सम्बोधित किया गया है।[3](अ) अध्यात्म-रामायण से गोस्वामी जी बहुत अधिक प्रभावित हैं। रामचरितमानस का आध्यात्मिक पक्ष, ज्ञानात्मक पक्ष, उन्होंने अध्यात्म रामायण से ही लिया है। राम ब्रह्म हैं और प्रकृतिस्वरूपा सीता उनकी विद्या-शक्ति हैं। अपनी प्रकृति-शक्ति का सहारा लेकर ही ब्रह्म नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि करता है। जगत् में वस्तुओं के जितने प्रकार के रूप हैं, उतने ही उनके विभिन्न नाम भी हैं। इसीलिए अगणित रूपात्मिका प्रकृति अगणित नामात्मिका भी है। ये अगणित नाम ही वाणी का रूप धारण करके प्रकृति के अगणित वस्तुरूपों का बोध कराते हैं।[4] इसीलिए राम ब्रह्म की प्रकृतिस्वरूपा सीता शक्ति, वाणी भी है, सरस्वती भी है। रामचरितमानस की सीता उद्भव, स्थिति और संहारकारिणी हैं, क्लेशहारिणी हैं और सर्वश्रेयस्करी हैं। वे रामवल्लभा हैं और रामस्वरूपिणी भी हैं।[5] वे राम से अभिन्न हैं। राम से अलग नाम धारण करने पर भी वे रामात्मिका हैं। इसी रामात्मिका सीता को, उपर्युक्त कारणों से, गोस्वामी जी ने वाणी शब्द के माध्यम से प्रणाम किया है।

सीता और राम की यह अभिन्नता 'राम' शब्द से भी सिद्ध होती है। 'राम' शब्द, ब्रह्मराम और प्रकृति सीता दोनों के अर्थ धारण करता है। 'र्' अग्नि बीज है तथा 'आ' व्यापकत्व की सूचना देता है। अतः 'रा' व्यापक ब्रह्मज्योति 'राम' का संकेत देता है। 'म्' बीज, बिन्दु स्वरूपिणी सीता का संकेत है। सर्वप्रथम व्याहृति, 'ॐ' (ओम्=अ+उ+म्) एकाक्षर ब्रह्म है।[6] अ, उ और म् की इन तीन ध्वनियों में से, अ और उ, नाद ध्वनियाँ हैं और 'म्' बिन्दु ध्वनि है। यही 'म्' प्रथम नाद के साथ प्रथम बिन्दु या प्रथम व्यंजन ध्वनि है। व्यंजन ध्वनियों की सहायता से समग्र नामों की अभिव्यक्ति होती है और नाद या स्वर-ध्वनियों की सहायता से व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण होता है। नाद या स्वर, स्वयं उच्च-

---

३–(अ) ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी। अध्यात्मरामायण, २।१।१३

४–आदिसक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।१।१५२

५–उद्भवस्थितिसंहारकारिणीम् क्लेशहारिणीम्। सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्। बालकाण्ड, मंगलाचरण के श्लोक।

६–ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म। गीता—८।१३।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रित होता है ; किसी अन्य स्वतन्त्र ध्वनि की अपेक्षा नहीं रखता। इसीलिए स्वर ध्वनियाँ निरपेक्ष ब्रह्म का संकेत देती हैं तथा व्यंजन ध्वनियाँ प्रकृति का संकेत देती हैं, प्राकृतिक रूपों के नामों की सृष्टि करती हैं। 'म्' ओंकार में मूल या आदि व्यंजन ध्वनि है ; इसीलिए बिन्दुस्वरूपा इस ध्वनि को ब्रह्मराम की मूल प्रकृति सीता का वाचक माना जाता है। अतः 'राम' शब्द में राम और सीता दोनों एक शब्द के द्वारा सूचित हो रहे हैं ; इसीलिए दोनों इस आधार पर भी अभिन्न हैं। अतः वाणी की मूल प्रकृति होने के कारण सीता, अभिव्यक्ति का मूल कारण है और वाणीस्वरूपा है। रामब्रह्म के साथ अभिन्न होकर प्रथम व्याहृति 'ओम्' में बैठी हुई है। इसीलिए नारायण का एक नाम बिन्दुमाधव भी है। वे बिन्दु-स्वरूपिणी प्रकृतिरूपा मा के पति हैं। 'धव' शब्द का अर्थ 'पति' होता है। इसीलिए 'राम' शब्द में रामब्रह्म और उनकी शक्ति सीता दोनों प्रस्थापित हैं। 'वाणी' शब्द में सीता की इस स्थिति के बाद 'विनायक' शब्द में राम की स्थिति पर विचार करना चाहिए। गोस्वामी जी ने रामचरितमानस में अनेक स्थलों पर राम को रघुनायक, रघुकुल नायक और त्रिलोक नायक तथा त्रिभुवन नायक कहा है। जो त्रिलोक नायक और त्रिभुवन नायक हैं, वह विशिष्ट नायक या विनायक तो हैं ही। जो जगनिवास हैं, अखिल लोक विश्राम हैं, स्वय प्रकट होते हैं, शोभा सिन्धु हैं, अनन्त हैं, माया, गुण और ज्ञान से अत्यन्त दूर हैं, अमान हैं, करुणा-सुख-सागर हैं, सब गुणों के मिवासस्थान हैं, श्रीपति हैं, जिनके रोम-रोम में मायानिर्मित अगणित ब्रह्माण्ड-समूह निवास प्राप्त करते हैं, जो सुरभूप हैं और जिन्होंने विप्र, धेनु और सुरों के लिये अपनी इच्छा से शरीर निर्मित कर लिया है, वह साधारण नायक कैसे हो सकते हैं।[७] इसीलिये रामचरितमानस के प्रथम छन्द में विनायक शब्द में श्लिष्ट करके गोस्वामी जी ने राम को पहले विनायक कह दिया है और उसी के प्रकाश में बार-बार नायक कहा है। बालकाण्ड में ही अहल्या ने अवतारी राम को रघुनायक, ज्ञानगम्य, भव-भय-मोचन और भव-मोचन कहा है। उसने यह भी कहा कि आपके चरणकमल से परम पुनीता सुरसरिता प्रकट हुई, जिसे शिव ने अपने शीश पर धारण किया और उसी पदपंकज की पूजा ब्रह्मा नित्य करते हैं। कृपा करके आपने अपना वही पदपंकज मेरे सिर पर रखा है।[८]

तुलसी के अनुसार राम के समान शीलनिधान स्वामी संभव नहीं है ;[९] इसीलिए जब साधारण स्वामी नायक कहलाता है, तब परात्पर

७–रामचरितमानस, १।१९२
८–रामचरितमानस, १।२११
९–वही, १।२९

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब्रह्म, मर्यादा पुरुषोत्तमराम केवल नायक न होकर विनायक हैं। और उन्हें मानस के इस प्रथम छन्द में गणेश के पर्यायवाची 'विनायक' शब्द में श्लिष्ट करके उन्होंने विनायक घोषित कर दिया। उसके बाद केवल नायक कहते हुए उन्हें ऐसी स्थिति में रक्खा कि 'नायक' शब्द 'विनायक' अर्थ का ही द्योतन करता है। क्योंकि जब रघुवंश के राजा श्रेष्ठ नायक थे, तब रघुनायक और रघुकुलनायक राम तो विशेष श्रेष्ठ नायक या विनायक ही होंगे।

श्लेष की इस शैली में, इस प्रकार, मानस के प्रथम छन्द में गोस्वामी जी ने सरस्वती और गणेश की वन्दना करते हुए अपने इष्ट सीता और राम की वन्दना कर ली है। अब, जब 'विनायक' शब्द का अर्थ विशिष्ट नायक हो गया, तब वर्ण, अर्थ, रस और छन्द शब्दों के अर्थ भी बदल जायँगे।

तुलसी का यह विशिष्ट नायक या विनायक रघुकुल रूपी कमल का सूर्य है उसके पुर की शोभा-सम्पत्ति, उसके कल्याण का वर्णन वेद, शेष और शारदा करते हैं, पर अन्त नहीं पाते। इसीलिए वह विनायक है।[१०] उसके जीवन की छाया बन कर आकाश के देवता मंडराते रहते हैं और प्रत्येक विशेष अवसर पर उस पर पुष्प की वृष्टि करते रहते हैं। यही तो विनायक का लक्षण है। वह स्वयं नारायण है। उसकी शक्ति सीता स्वयं लक्ष्मी है। सब गुणों की खान है। अवध को उसका वरदान प्राप्त है। राम की इस शक्ति का उनके साथ राज्याभिशेष हुआ है। ऐसी शक्ति का स्वामी नारायण जब नरभूप होगा तो विनायक ही होगा। वह शक्ति, शील और सौन्दर्य की अनन्त राशि है। गन्धर्व-किन्नर उसका यशोगान करते हैं। उसके राज्याभिषेक के समय स्वर्ग की अप्सरायें नृत्य करती हैं। उस अवसर पर सुर-मुनि परमानन्द का अनुभव करते हैं। भरतादि अनुज विभीषण, अंगद और हनुमान इत्यादि उसके छत्र, चामर, व्यजन, धनुष, असि, चर्म और शक्ति धारण करते हैं। वह दिनकर वंशभूषण है, मर्यादा पुरुषोत्तम है और कोटिकामसम सुन्दर है। यह है, तुलसी का विशिष्ट नायक या विनायक।[११]

तुलसी के इस विशिष्ट नायक के राज्याभिषेक के समय शिव इत्यादि सब देवता उसकी स्तुति करते हैं। यहाँ तक कि स्वयं नारायण अपने इस रूप पर मुग्ध हैं। रामचरितमानस में राम की स्तुति करते हुए वेदों के अनुसार, इस अनादि अनन्त काल के परिवेश में, सुर, असुर, नाग, नर, जड़ तथा चेतन सब राम की विषम माया से प्रभावित होकर अपने-अपने कर्म का भोग प्राप्त करते रहते हैं। राम की करुणा दृष्टि ही उनकी रक्षा कर सकती है। वे राम भवखेद को समाप्त करने के कार्य में दक्ष हैं। उनके चरण शिव-अज-पूज्य हैं। वे विश्व-विटप

१०—वही, ७।९
११—वही, ७।१३

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं। उन्हीं की शाखाएँ-प्रशाखाएँ विश्व के अनेक नामरूपों का आधार बनती हैं। यही निराकार विराट जब नरभूप बनता है, तब परम विशिष्ट नायक या विनायक का स्वरूप धारण कराता है और यह विशिष्टता उसकी शक्ति, उसके शील और सौन्दर्य में व्याप्त रहती है।[१२]

राज्याभिषेक के समय ही भगवान शंकर ने श्रीराम की स्तुति करते हुए उन्हें रमारमण, भवतापशमन, अवधेश, सुरेश, रमेश, विभु, रजनीचर-वृन्द-पतंग-पावक, भूमंडलमंडन, मदमोहमहाममता-रजनी तमपुंज-दिवाकर, तेज की राशि, काम-कुभेग-हन्ता, मुनिमानसपंकजभृंग, रघुवीर, महारणधीर, अजेय, हरि, भव-रोग-महौषधि और अभिमान-शत्रु तथा गुणशील कृपापरमायतन कहा है।[१३]

श्रीराम को इसी प्रकरण में अंगद ने अशरणशरण, अपनी मर्यादा की ख्याति का रक्षक एवं भक्तहितकारी कहा है।[१४] यह रघुनायक वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल है।[१५] उसके सिंहासन पर बैठते ही त्रिभुवन हर्षित हो गया है। सब प्रकार के शोक समाप्त हो गये हैं। कोई किसी से बैर नहीं करता। उसके प्रताप से विषमता समाप्त हो गयी है। सब वर्ण और सब आश्रम अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। वेद-विहित पथ पर चलने के कारण सब सुखी हैं। भय, शोक और रोग का कहीं नाम तक नहीं सुनाई पड़ता। दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं छूते। सब नर परस्पर प्रीति करते हैं। अपने वैदिक धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं।[१६]

रामराज्य में, धर्म अपने चारों चरणों से स्थिर है। स्वप्न में भी पाप नहीं दिखलायी देता। सब नर-नारी रामभक्तिरत हैं। सब परमगति के अधिकारी हो चुके हैं। सबका शील राम के शील के समान हो गया है। न अल्प मृत्यु है, न कोई पीड़ा। सब सुन्दर और स्वस्थ हैं। कोई भी दरिद्र, दुखी, दीन, बुद्धिहीन और लक्षणहीन नहीं है। सब निर्दंभ, धर्मरत और पुण्यवान हैं। सब नरनारी दक्ष और गुणी हैं। सब लोग गुणज्ञ, पंडित, ज्ञानी और कृतज्ञ हैं। कपट, चतुरता और धूर्तता किसी में नहीं है। काल, कर्म, स्वभाव और गुण से उत्पन्न दोष से सब जड़-चेतन जगत मुक्त हो चुका है।[१७]

सातों समुद्रों से घिरी हुई भूमि पर कोसल के रघुपति ही एक मात्र भूप हैं। पर जिसके रोम-रोम पर अनेक भुवन बैठे हुए हैं, उसके लिये यह कोई बड़ी बात

१२—वही, ७।१३
१३—वही, ७।१४
१४—वही, ७।१८
१५—वही, ७।१९
१६—रामचरितमानस, ७।२०-२१
१७—वही, ७।२१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं है। उस महिमा के सम्मुख यह वर्णन करना उनकी हीनता प्रकट करने के समान है, तथापि उस विराट राम को जानने वाले भी इस राम की भक्ति करते हैं। उसका कारण यह है कि अवतारी मर्यादापुरुषोत्तम सीमा को सुन्दर बनाने के लिए अवतीर्ण होते हैं।[१८] सीमित जगत में रहनेवाले विप्रों, सुरों, सन्तों के लिये वे सीमा के भीतर आ जाते हैं। धेनु की रक्षा के लिये उनका मानव अवतार होता है। माया के सीमित विस्तार के पार, गुणों और इन्द्रियों की पहुंच से दूर रहनेवाला असीम ब्रह्म, सीमा के भीतर आकर अवतारी मनुज हो जाता है। इसी मनुज शरीर से वह पृथ्वी का भार हलका करता है। आसुरी प्रकृति का संहार और दैवी सात्त्विक प्रकृति की रक्षा का कार्य उसका लक्ष्य होता है।[१९]

ऐसे अवतारी राम के राज्य में सब उदार हैं, सब परोपकारी हैं तथा सब नर-नारी विप्र चरण-सेवक हैं ; क्योंकि विप्र अपने स्वार्थ के लिये नहीं, सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान-दान करने के लिये जीवित रहता है। पुरुष एक-नारी-व्रती और सब नारियाँ मन, वाणी और कर्म से पति के हित-साधन में लगी रहती हैं। सब नर-नारी संयमी हैं ; पर जो दण्ड धारण कर लेता है, वह संन्यासी कहलाने लगता है। अन्यथा संन्यासी और गृहस्थ की पवित्रता में कोई अन्तर नहीं रहता। नृत्य समाज में नर्तन करने के कारण ही एक व्यक्ति को नर्तक कहा जाता है, नहीं तो नर्तक और अनर्तक के शील में कोई अन्तर नहीं रहता। सबको अपने-अपने मन पर अधिकार प्राप्त रहता है। सब वशी होते हैं।[२०]

व्यापक ब्रह्म जब नर की सीमा में आकर सीमित रूप धारण कर लेता है तब भी उसके राज्य में वृक्ष सदा फूल और फल देते हैं। वनों में सिंह और गज एक साथ मित्रता से रहते हैं। सब पशु-पक्षी अपना नैसर्गिक वैर छोड़कर पारस्परिक प्रेम की वृद्धि करते रहते हैं। लता और विटप मांगने पर मधु-दान करते हैं। धेनु लोगों की इच्छानुसार दूध देती है। धरणी सदा शस्य-सम्पन्न रहती है और त्रेता में सत्य युग आ जाता है। जगदात्मा जब नरभूप हो जाता है, तब अपनी ही उस आत्मा को भूप के रूप में देख कर मणियों की खानें प्रकट हो जाती हैं, सरिताओं में सुन्दर जल बहने लगता है, ये सरिताएँ शीतल अमल और सुखकारी स्वाद वाला जल प्रदान करने लगती हैं और सागर अपनी सीमा में रहकर अपने रत्नों को लोगों के लिये अपने तटों पर फेंकता रहता है। रामराज्य में सब तालाब कमलों से भरे रहते हैं और दशों दिशाएँ शुभ्र और प्रकाशवती बनी रहती हैं।

१८–वही, ७।२२
१९–वही, १।१९२
२०–वही, ७।२२

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से पृथ्वी को आप्लावित करता रहता है। सूर्य पृथ्वी को उतना ही ताप देता है, जितने की पृथ्वी को आवश्यकता रहती है और जब जल माँगा जाता है, बादल जल बरस देते हैं।[२१]

राम करोड़ों अश्वमेध यज्ञ करते हैं। ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान देते हैं। वेदों के द्वारा निर्धारित धर्मपथ का पालन करते हैं। धर्म की धुरा को अपने कन्धों पर धारण करते हैं। इन्द्र के समान भोग और ऐश्वर्य के बीच में रह कर भी इस त्रिगुणात्मक जगत् की आसक्तियों से अलिप्त रहते हैं।[२२]

सीता इसी अवतारी ब्रह्म की अनादि शक्ति है। उनके साथ पृथ्वी पर अवतरित हुई है। यह परम पावन की शक्ति, शोभा की खान, सुशील और परम विनम्र है। यह राम के प्रतिबिम्ब के समान है। शक्ति, शील और सौन्दर्य इसमें भी राम के समान ही अपरिमित हैं। यह राम की प्रभुता को जानती हैं। इसीलिए मन लगाकर उनके चरणकमलों की सेवा करती है। यद्यपि राम के राजमहल में सेवाकार्य में दक्ष अगणित सेवक-सेविकायें हैं, तथापि गृह के सब कार्य, स्वामी की सब प्रकार की सेवाएँ यह स्वयं करती है और सदा उनकी आज्ञा का अनुसरण करती है। वह सेवाविधि की मर्मज्ञा हैं। जिस प्रकार से कृपासिन्धु राम को सुख मिलता है, अवतारिणी लक्ष्मी उसी प्रकार से पति की सेवा करती है। कौसल्यादि सब सासों की परिचर्या करती है। उसे अपने पति और स्वयं अपने अनन्त ऐश्वर्य का अभिमान और मद छू तक नहीं सका है। यद्यपि ब्रह्मा इत्यादि सब देवता उनकी वन्दना करते हैं, वह सर्वगुणशक्ति-सम्पन्न है, जिसके कृपाकटाक्ष की सब देवता लालसा करते हैं, पर वे सरलता से उसके रुख को नहीं पा सकते, वही अपने इस अनन्त-अपरिसीम गुणधर्म को अलग रखकर राम के पदारविन्द की रति अपने हृदय में निरन्तर धारण करती है ।[२३]

ब्रह्मराम जब अवतारी हो जाते हैं तब वे और उनके सारे परिवार के लोग सेवा और प्रेम के महासागर को अपने हृदय में धारण किये रहते हैं। उनकी सारी प्रजा, सेवा और प्रेम के इसी महासागर के तरंगों के समान तरंगित होती रहती है। वह इसी ब्रह्मानन्द में लीन रह कर दिन-रात राम के चरणों का अनुराग ब्रह्मा से मांगती रहती है।[२४]

परम विशिष्ट इसी नायक राम और इसकी नायिका सीता के प्रति अनन्य भक्ति धारण करने के कारण गोस्वामी जी ने श्री रामचरितमानस के प्रथम श्लोक

२१—वही, ७।२३
२२—वही, ७।२४
२३—वही, ७।२४।
२४—वही, ७।२५।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में वाणी और विनायक की वन्दना में श्लिष्ट करके सीता और राम की भी वन्दना कर ली है।

वैसे तो वाणी और विनायक, सरस्वती और गणपति, के सब गुणों से भी अधिक गुण सीता और राम में हैं, पर सीता और राम में विश्वमंगल-विधान का जो प्रत्यक्ष गुण है, वह वाणी और विनायक में उतना प्रत्यक्ष नहीं है। सरस्वती और गणेश काव्य के देवता हैं, पर काव्य के माध्यम से प्रत्यक्ष विश्वमंगल-विधान नहीं होता। काव्य तो, वर्ण, अर्थ, रस और छन्द के माध्यम से अप्रत्यक्ष उपदेश देकर विश्वमंगल-विधान करता है, पर राम और सीता सगुण साकार रूप धारण करके प्रत्यक्ष विश्वमंगल विधान करते हैं।

वाणी को जब हम 'सीता' मान लेते हैं और विनायक को विशिष्ट नायक राम मान लेते हैं, तब मंगलाचरण का यह प्रथम छन्द एक अलग अर्थ प्रकट करने लगता है। गोस्वामी जी वर्णाश्रम धर्म को ही जीवन के लिये उपयोगी मानते हैं। आश्रम का विभाजन मनुष्य को शतायु मान कर किया गया। इसीलिए ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास सब पच्चीस-पच्चीस वर्ष की अवधि के हैं। संयम, विवेक और त्याग के आधार पर ये चार आश्रम आधारित हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्यार्थी पूर्ण संयम, पूर्ण विवेक और पूर्ण त्याग का पालन पच्चीस वर्ष की आयु तक करता था। गृहस्थाश्रम में विवेकपूर्ण संयम और विवेकपूर्ण त्याग का पालन करता था। पचास वर्ष का वय हो जाने के बाद वानप्रस्थ आश्रम में वनवासी जीवन बिताने की अवधि में भी ब्रह्मचर्य, विवेक और त्याग का जीवन व्यतीत करता था। इस आश्रम में पत्नी तथा कोमल वय का पुत्र उसके साथ रह सकते थे। पचहत्तर वर्ष के बाद वह पूर्ण संन्यासी और पर्यटन करनेवाला परिव्राजक बन जाता था। यहाँ भी पूर्ण ब्रह्मचर्य, पूर्ण विवेक और पूर्ण त्याग का पालन वह जीवन-पर्यन्त करता रहता था। मानव जीवन के विकास की ये चार सीढ़ियाँ थीं।

वर्ण विभाजन कर्म के आधार पर हुआ था। श्वेत, रक्त, पीत और श्याम वर्ण की ये चार जातियाँ अपने जन्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कर्म का पालन करती थीं। अध्ययन और अध्यापन ब्राह्मण का मुख्य धर्म था। रक्षाकर्म क्षत्रिय का मुख्य धर्म था। राष्ट्र-पालन का कर्म वैश्य का मुख्य धर्म था तथा राष्ट्र-सेवा शूद्र जातियों का मुख्य धर्म था। ये सब कर्म पवित्र एवं ब्राह्म कर्म माने जाते थे—परमात्मा के समान पवित्र। ये कर्म ही श्रद्धा और विश्वास-पूर्वक प्रतिपादित और अनुपालित होकर व्यक्ति को मोक्ष तक पहुँचाते थे। अतः ये सब जातियाँ मुक्तिपद की अधिकारिणी थीं। वंशानुक्रम से प्रतिपालित होकर इन कर्मों में सौष्ठव या सौन्दर्य उत्पन्न होता था। कर्म-ब्रह्म की परम सुन्दर साधना, त्यागवृत्ति से साधित होकर व्यक्ति को महान और मुक्तपुरुष बनाती थी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मण, विराट के मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य उदर और जंघाओं से तथा शूद्र जाति चरणों से उत्पन्न हुई। हिन्दू परमात्मा के चरणों की ही उपासना करता है। भारतवर्ष में ऐसी कोई जाति नहीं है, ऐसा कोई जीवधारी नहीं है और ऐसी कोई वनस्पति या ओषधि नहीं है, जिसकी उपासना न होती रही हो।

प्रत्येक वनस्पति में ओषधि का कोई न कोई गुण है। इसीलिए वैद्य उस वनस्पति का प्रयोग करने के पूर्व पूजा करके उसको प्रसन्न करता था, तब रोगी का हित करने के लक्ष्य से उस वनस्पति को कष्ट पहुंचाता था। इस प्रकार ब्रह्मवादी भारत में विश्व की प्रत्येक वस्तु सप्राण और पूज्य मानी जाती थी।

ब्राह्म कर्म के इस संदर्भ में जब हम भारत के वर्णधर्म की परीक्षा करते हैं, तब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतवर्ष में कर्म, केवल ब्रह्म के लिये विराट जगत के लिए किया जाता था; अपने स्वार्थ के लिये नहीं। कबीर विश्वरूपी भगवान के लिये कपड़ा बुन रहे थे, नामदेव विश्वरूपी भगवान के लिये सिलाई का काम कर रहे थे तथा रविदास पहले विश्वरूपी भगवान के लिये हल चला कर अन्न उत्पन्न कर रहे थे और बाद में विश्वरूपी भगवान के लिये जूते सीने लगे। इन सब महात्माओं ने अपने जातिगत कर्मों को ब्रह्मार्पित या विश्वार्पित किया तथा अपनी जाति के प्रत्येक व्यक्ति के लिये यही आदर्श स्थापित किया। ब्राह्मी दृष्टि प्राप्त कर लेने के कारण ही ये सब स्वयं महान और विराट् हो गये थे। सम्पूर्ण विश्व के सुखदुख के साथ जुड़ कर इनके हृदय विराट या अनन्त हो चुके थे। गीता धर्म में भगवान श्रीकृष्ण ने इसी विश्वार्पण का उपदेश अर्जुन को दिया।[२५] अपने सब कर्मों को मुझे अर्पित करके आत्मस्वरूप होकर युद्ध करो। कर्मों की आसक्ति छोड़ दो तो कर्म की सफलता का सुख और विफलता का दुख तुम्हें न होगा। वर्णगत कर्म को स्पष्ट करने के लिये भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—चारों वर्ण गुण और कर्म के विभाजन के साथ मेरे द्वारा ही बनाये गये। मैं ही इन वर्णों को बनाता और मिटाता हूँ। मैं कर्म के फल को अपने लिये नहीं चाहता, इसीलिये मुझ में कर्मों की आसक्ति नहीं है। कर्म और जगत् का अन्त हो जाता हैं; पर मेरा अन्त नहीं होता। मेरे इस रहस्य को जान कर जो स्वार्थ बुद्धि से काम नहीं करता, उसे कर्म बाँध नहीं सकते।[२६] इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—विश्वार्पण की बुद्धि ही ब्राह्मी बुद्धि है, जो कुछ अर्पित किया जाता

२५—मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्म चेतसा। निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ गीता—३।३०

२६—चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा। इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते। —गीता ४।१३-१४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, वह भी ब्रह्म है, जिसे अर्पित किया जाता है, वह भी ब्रह्म है, अर्पित करनेवाला भी ब्रह्म है, अर्पण का कर्म भी ब्रह्म है और इस कर्म का विधिवत् पालन करने से व्यक्ति विराट् ब्रह्म ही हो जाता है।[२७] अर्पण की दिशाओं का वर्णन करते हुए गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा, अपने सब कर्म, भोजन, यज्ञ, दान और तप मुझे अर्पित कर दो, इस प्रकार कर्मबन्धन के शुभ और अशुभ फलों से तुम मुक्त हो जाओगे और कर्मों के तुम्हारे सब बन्धन समाप्त हो जायँगे। यही अर्पण का भाव संन्यास है। 'सम्' और 'न्यास' शब्द एक साथ मिल कर यही अभिप्राय व्यक्त करते हैं। अपने सब कर्मों को ठीक तरह से मुझ में रख देने का कार्य ही संन्यास है। इस संन्यास योग से तुम मुझ से जुड़ कर मेरा ही स्वरूप प्राप्त कर लोगे। जीव की सब सीमाएँ समाप्त हो जाएँगी और तुम मेरे विराट् आत्मस्वरूप को प्राप्त कर सकोगे।[२८]

गीता का यही व्यापक धर्म, सगुण-साकार, अवतारी ब्रह्म, राजा राम के जीवन में दिखलायी पड़ता है। इस परम विशिष्ट नायक ने इस अर्पण-धर्म का पालन किया और इसी धर्म का पालन अपनी प्रजा से कराया। इसी विशिष्ट नायक के सन्दर्भ में जब हम रामचरितमानस के प्रथम श्लोक के अर्थ पर ध्यान देते हैं, तब 'वर्ण' शब्द का अर्थ 'विवेक पूर्ण जातिव्यवस्था' या 'विवेकपूर्ण श्रम-व्यवस्था', 'अर्थ' शब्द का अर्थ 'विवेकपूर्ण धन या सम्पत्ति व्यवस्था', 'रस' शब्द का अर्थ 'विवेकपूर्ण भाव-व्यवस्था' और 'छन्द' शब्द का अर्थ विवेकपूर्ण स्वातन्त्र्य-भावना हो जायगा। कवि वर्ण, अर्थ, भाव और छन्द के प्रयोग से विश्वमंगल विधान करता है और विनायक या श्रेष्ठ नायक, विवेकपूर्ण श्रम व्यवस्था, विवेक पूर्ण सम्पत्ति व्यवस्था, विवेकपूर्ण भाव व्यवस्था तथा विवेकपूर्ण स्वातन्त्र्य भावना की व्यवस्था करके विश्वमंगल विधान करता है।

साधारण नायक और आदर्श नायक या विनायक में यही अन्तर रहता है। साधारण नायक या प्रजाशासक में श्रम व्यवस्था, सम्पत्ति व्यवस्था, भाव या शील-व्यवस्था तथा स्वातन्त्र्य-भावना की व्यवस्था सामान्य कोटि की होती है। उसमें श्रम, सम्पत्ति, शील तथा स्वातन्त्र्य-भावना के साथ स्वार्थ जुड़ा रहता है। अपने सुख या भोग की भावना मुख्य बनकर बैठी रहती है। पर आदर्श नायक स्वयं भी श्रम सम्पत्ति, शील तथा स्वातन्त्र्य-भावना को मुख्यत: परार्थ में लगा कर अर्पण-

---

२७–ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेनगन्तव्यं ब्रह्मकर्म-समाधिना।। गीता––४।२४

२८–यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। शुभाशुभ फलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः। संन्यासयोगयुक्तामा विमुक्तो मामुपैष्यसि।। गीता––९।२७-२८

B—2

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भाव से विश्वमंगल विधान करता रहता है और अपनी प्रजा से भी वही कार्य कराता रहता है। रामराज्य में यही मर्यादापुरुषोत्तम विशिष्ट नायक है। जब उसके साथ विशिष्टतासूचक 'वि' उपसर्ग जुड़ा हुआ है, तब वह अपनी प्रजा के साथ भी यही उपसर्ग जोड़ देता है। वह दूसरों को सुख देने के लिये, दूसरों की रक्षा करने के लिये परिश्रम करता है; इसलिये उसकी श्रम-भावना के साथ आदर्श त्याग की भावना जुड़ी रहती है। अपनी प्रजा से भी वह इसी भावना के अनुसार कार्य कराता है या उसकी प्रजा उसके आदर्शों से आकर्षित होकर स्वयं उसी के समान अपने जीवन के आदर्श बना लेती है।

अतः इस प्रकार के विशिष्ट नायक की प्रजा की श्रमभावना, अर्थभावना, भावधारणा या भावभावना, स्वातन्त्र्य भावना और मंगलभावना के साथ विशिष्टता जुड़ी रहती है। इन सब भावनाओं के साथ विवेक जुड़ा रहता है। उसकी विवेकपूर्ण विशिष्ट श्रमभावना के साथ विश्वार्पण या ब्रह्मार्पण का विवेक जुड़ा रहता है। वह स्वार्थ से प्रेरित होकर कर्म-श्रम नहीं करती, अपितु अपने वर्ण के सब कर्म, विश्वरूपी भगवान को अर्पित कर देती है। वह समग्र विश्व को परमात्ममय देखती है, अतः अपने कर्म को भी ब्रह्मस्वरूप देख कर उसे परमात्मास्वरूप विश्व को या विराट को अर्पित कर देती है। इस प्रकार उसके कर्म स्वार्थ-कलुषित न रहकर निर्मल ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं।

विभिन्न वर्णों के लोग अपने-अपने श्रम से जितने प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त करते हैं, वे सब धर्मोपार्जित होती हैं। उनके उपार्जन में अर्पणबुद्धि के कारण अधर्म का सर्वथा अभाव रहता है। उनकी सम्पत्तियाँ स्वार्थमय भोग के लिये नहीं, त्याग के लिये होती हैं। इस विशिष्ट नायक के पूर्वज भी इसी प्रकार के शील के धनी थे। रघुकुल के राजाओं के सम्पत्ति-विवेक का संकेत देते हुए अपने रघुवंश महाकाव्य की प्रस्तावना में महाकवि कालिदास ने कहा है—**त्याग के लिये सम्पत्ति इकट्ठी करनेवाले रघुओं के वंश का मैं वर्णन करूँगा।**[२९] रघुवंश के ये राजा लोग सर्वजित अश्वमेध यज्ञ करने के बाद सर्वदान यज्ञ कर देते थे। इसी प्रकार कि स्थिति में पहुँचे हुए रघु के पास वरतन्तु ऋषि के शिष्य कौत्स ऋषि पहुँचे। ये ब्रह्मचर्य आश्रम पूरा कर चुके थे। गुरु से देय दक्षिणा सविनय जाननी चाही। वरतन्तु जी ने बार-बार इनकी सेवा को ही दक्षिणा माना। पर ये हठ करते गये। गुरु को क्रोध हो आया और चौदह विद्याओं के लिये उन्होंने चौदह करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ मांगी। इसी समस्या को हल करने के लिये ये आये थे। चक्रवर्ती रघु ने अकिंचन वेश और विधि से सत्कार करने के बाद ऋषि से आने का प्रयोजन पूछा। कौत्स ऋषि ने कहा—इस समय शरीर को छोड़ आपके

२९—त्यागाय सम्भृतार्थानां रघूणामन्वयं वक्ष्ये—रघुवंश, सर्ग—१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पास कुछ नहीं है। आपने सत्पात्रों को अपनी समग्र निधि दे दी है। आप उस नीवार धान के पौधे की तरह धन्य हो गये हैं, जो अपनी बाल ऋषियों को देकर ठूँठ बन जाता है।[३०] मैं किसी अन्य द्वार पर जा कर अपनी इच्छा व्यक्त करूँगा। तेजस्वी रघु ने अतिथि से दो-तीन दिनों के लिये यज्ञशाला में रुक जाने के लिये प्रार्थना की। कुबेर पर आक्रमण करने की सद्यः योजना बनायी ; पर ब्राह्ममुहूर्त में होनेवाले आक्रमण के पूर्व ही कुबेर ने सम्राट के कोषागार में सोने की वर्षा कर दी और चौदह करोड़ सुवर्ण मुद्राओं से अधिक निधि वरतन्तु ऋषि के आश्रम में भेजी गयी।

रघुओं का त्यागप्रधान सम्पत्ति-विवेक महान था। मर्यादापुरुषोत्तम विशिष्ट नायक राम के जीवन में भी सम्पत्ति का प्रयोग इसी प्रकार होता रहा। दिलीप से लेकर दशरथ तक सम्पत्ति के प्रति त्यागप्रधान दष्टिकोण ही स्थिर रहा। मर्यादापुरुषोत्तम ने अपने राज्य और अपनी सम्पत्ति को इसी दृष्टि से देखा।

उत्तम रीति से प्राप्त की हुई सम्पत्ति का त्यागवृत्ति से उपभोग करनेवाले व्यक्ति का भाव शुद्ध हो जाता है और शील सात्विक हो जाता है। इस प्रकार के पवित्र हृदयवाले विशिष्ट नायक की प्रजा भी अपने हृदय के सब भावों को पुनीत बना लेती है। जिसके हृदय में ऐसा पावन विवेक रहेगा, उसकी स्वातन्त्र्य-भावना भी उज्जवल होगी। ऐसे विशिष्ट नायक राम बाह्य और अभ्यन्तर शत्रुओं से मुक्त थे, अप्रभावित थे। बाह्य जगत में उनका कोई शत्रु नहीं था और काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद तथा मत्सर भी उनके हृदय पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते थे। ये आन्तरिक शत्रु भी मर्यादापुरुषोत्तम के शील में स्थान नहीं पा सकते थे। वे सच्चे अर्थ में स्वतन्त्र थे ; अविवेक परतन्त्र नहीं। वे अपने वश में थे ; वासनाओं के वश में नहीं। ऐसा विशिष्ट नायक दूसरों की स्वतन्त्रता पर भी ध्यान रखता है। मर्यादापुरुषोत्तम राम, रावण को भी अपने ही आदर्श रूप में ढालना चाहते थे ; पर हठी रावण में परिवर्तन संभव न था। अन्त तक प्रयत्न कर लेने के बाद ही, बाध्य होकर मर्यादापुरुषोत्तम ने रावण पर आक्रमण किया। यही स्वातन्त्र्य-विवेक मर्यादापुरुषोत्तम की प्रजा में भी था।

ऐसा ही स्वातन्त्र्य-विवेकी विशिष्ट नायक, विश्वमंगल-विधान कर सकता है। उसका मंगल-विवेक भी धन्य होता है। वह स्वार्थमुक्त मंगल-विधान-करता है। अपने मंगल के साथ विश्व का भी मंगल करता है। उसका मंगल विवेक 'स्व' तक सीमित न रह कर, विश्व तक पहुँच जाता है। वह विश्वमंगल विधायक होता है। मर्यादापुरुषोत्तम विशिष्टनायक राम विश्वमंगल विधायक

३०–शरीरमात्रेण नरेन्द्रतिष्ठन् आभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः। आरण्यकोपात्त-फलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः॥—रघुवंश, ५।१५

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थे। उनकी शक्ति सीता उन्हीं की आत्मा थीं ; इसीलिये उनकी सह-धर्म-चारिणी विश्वमंगल-विधायिका थीं। विश्वमंगल-विधान के प्रत्येक क्षण में उन्होंने अपने पति के मन में अपने मन को लीन रक्खा।

रससिद्ध कवि के महाकाव्य का प्रथम छन्द अपने भीतर कवि के समग्र लक्ष्य को समेटे रहता है। इसीलिए परम रस-सिद्ध तुलसी ने भी अपने नायक और नायिका के विश्वमंगल-विधायक स्वरूप को रामचरितमानस के प्रथम छन्द में गर्भित करके वाणी और विनायक के बहाने उनकी भी गुप्त वन्दना कर ली है। तुलसी के मानस का प्रथम छन्द परमपावनी सीता और परमपावन राम की वन्दना की क्षमता धारण करते हुए स्वयं भी परमपावन बन गया है और तुलसी की अनन्यता का विराट आदर्श भी स्थापित कर सका है। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रामचरितमानस का अंगी रस | डॉ० नगेन्द्र

रामचरितमानस का काव्यरूप क्या है ? वह प्रबन्ध काव्य है अथवा भक्ति काव्य––इष्टदेव का लीला-गान ? यदि प्रबंधकाव्य या महाकाव्य माना जाए तो मानस का मुख्य प्रतिपाद्य है––राम का उदात्त जीवनचरित, जिसकी प्रेरक-भावना है धर्म :

निसिचरहीन करउँ जग भुज उठाइ प्रन कीन्ह ।

ऐसी स्थिति में इसका अंगी रस है धर्मवीर या वीर और कार्य है रावण-विजय। रावण पर राम की विजय अधर्म पर धर्म की विजय है : स्थायी भाव है उत्साह–दया, दान, युद्ध के उत्साह से परितुष्ट धर्माचरण का उत्साह। आचार्य शुक्ल ने इसी के आधार पर लोकधर्म की प्रतिष्ठा को मानस का प्रतिपाद्य माना है। वाल्मीकि रामायण में वस्तुतः राम के इसी रूप की प्रतिष्ठा है––लेकिन कथा के उत्तरार्ध में सीता-वनवास, सीता की भूमि-समाधि, राम की जल-समाधि आदि का समावेश हो जाने से रामायण का अंगी रस करुण हो गया है। मानस में तुलसीदास ने इन प्रसंगों का अपवर्जन किया है, अतः वहाँ वीर रस की ही आदि से अंत तक व्याप्ति रहती है। अंगी रस के सभी लक्षण उस पर घटित हो जाते हैं।

किंतु रामचरितमानस को उस अर्थ में महाकाव्य मानना कठिन है, जिस अर्थ में हम रामायण को मानते हैं। मानस भक्त कवि की रचना है, ऐसे भक्त कवि की, जो अपने को भक्त पहले और कवि बाद में मानता है।

भनिति विचित्र सुकविकृत जोऊ । राम नाम बिनु सोह न सोऊ ।
सब गुन रहित कुकविकृत बानी । राम नाम जस अंकित जानी ।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही । मधुकर सरिस संत गुन ग्राही ।।

उसकी स्पष्ट धारणा है :

रामभगति भूषित जिय जानी । सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी ।
(बालकाण्ड––भूमिका)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भनिति मोर सब गुन-रहित बिस्व-विदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्हकें बिमल विवेक।।

(बालकाण्ड—दोहा–९)

और वह गुण है :

एहि महं रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति-सारा।

(बालकाण्ड—भूमिका)

मानस को भक्तिकाव्य मानने पर स्थिति बदल जाती है। मूल प्रतिपाद्य राम का उदात्त चरित्र न रहकर रामनाम हो जाता है। राम का उदात्त चरित्र, जिसकी वाल्मीकि को लोक-जीवन के आदर्श की प्रतिष्ठा करने के लिए तलाश थी, तुलसी को भी अभीष्ट है, किंतु उसका लक्ष्य बदल गया है। तुलसी को उसकी अपेक्षा इसलिए नहीं है कि वह लोक-जीवन की प्रतिष्ठा करता है, वरन् इसलिए है कि वह लोक-जीवन से मुक्ति प्रदान करता है :

एहि महं रामचरित भव-मोचन।

अतः यहाँ राम का नायक या आश्रय रूप गौण और आलम्बन रूप प्रमुख हो जाता है। आश्रय यहाँ स्वयं कवि है और उसके माध्यम से भक्त है जो श्री राम के पावन चरित्र का गान लोक-जीवन के संस्कार के लिए नहीं, वरन् उससे मुक्त होने के लिए करता है। स्वभावतः कवि की मूल चेतना या प्रेरक चित्तवृत्ति यहाँ भक्ति है, और वही अंगी रस की निर्णायक है जो भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। अंगी रस के अन्य सभी लक्षण—बहुव्याप्ति, प्रतिपाद्य की रागात्मक अनुभूति, सारभूत प्रभाव आदि भक्तिरस पर स्पष्टतया घटित हो जाते हैं। कवि मंगल छंद से लेकर अंत तक निरंतर भक्ति का संधान करता है; प्रतिपाद्य के विषय में वह बारबार घोषणा करता है कि रामभक्ति की प्राप्ति ही उसके काव्य का चरम लक्ष्य है, और ग्रंथ का पर्यवसान भी पूरे समारोह के साथ भक्ति में ही होता है।

ऐसी स्थिति में अंगी रस का निर्णय कैसे हो? राम के चरित्र के आधार पर या तुलसीदास की भावना के आधार पर? शास्त्र का उत्तर स्पष्ट है—कवि की भावना के आधार पर, जो निश्चय ही भक्ति है। अतः मानस का अंगी रस भक्ति है, इसका प्रतिवाद करना कठिन है।

यह मान लेने पर कई शंकाएँ उठती हैं। क्या राम के महान चरित्र और उनके उदात्त आचरण का मानस की काव्य-चेतना में कोई विशेष स्थान नहीं है—पाठक या श्रोता केवल भक्तिरस का आस्वाद करके ही तृप्त हो जाता है? इससे तो समस्या और भी उलझ सकती है और कम-से-कम आधुनिक युग में मानस की सार्थकता के विषय में संदेह हो सकता है, क्योंकि निश्चय ही आज का अधिकांश सहृदय-समुदाय भक्ति के आस्वादन के लिए उसका अध्ययन-मनन नहीं करता और न उससे आत्म-संतोष का अनुभव कर सकता है? इसका उत्तर तुलसीदास ने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही दिया है—भक्ति के आलम्बन में जीवन के उत्तम आदर्शों और सर्वश्रेष्ठ मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करके। तुलसी की भक्ति ऐसे इष्ट के प्रति निवेदित है जो दिव्य विभूतियों से युक्त होने के साथ-साथ आदर्श मानव-गुणों का—शील, शक्ति और सौन्दर्य का प्रतीक है। इस प्रकार, तुलसीदास ने भक्ति को एक व्यापक नैतिक आधार पर प्रतिष्ठित कर उसे महत्तर जीवन के साथ सम्बद्ध कर दिया है। एक ओर उन्होंने काव्य को प्राकृत-जन जीवन के क्षुद्र मूल्यों से मुक्त किया और दूसरी ओर भक्ति को आदर्श जीवन के महत्तर मूल्यों से सम्बद्ध कर भक्ति और काव्य दोनों के क्षेत्र में, क्रांति का प्रवर्तन किया :—**बरनौं रघुवर बिमल-जस जो दायक फल चार !** तुलसी की भक्ति केवल भावना की प्रतीक न होकर भाव, कर्म और ज्ञान का समन्वय है।

भक्ति के इसी व्यापक रूप की प्रतिष्ठा के द्वारा तुलसीदास ने मानस में महा-काव्य के लोकधर्मी और भक्तिकाव्य के आत्मधर्मी लक्षणों के बीच अपूर्व समन्वय स्थापित किया है। उन्होंने जिस आवेग के साथ सर्वत्र भक्ति का आग्रह किया है, उससे इस विषय में तो कोई विकल्प ही नहीं रह जाता कि मानस का अंगीरस या स्थायीभाव भक्ति है, किंतु यह भक्ति मूलतः जीवन या धर्म के प्रति सात्विक उत्साह की भावना से प्रेरित है—यह भी उतना ही निर्विवाद है। शास्त्रीय शब्दावली में यदि मानस के रस-विधान का विवेचन करें, तो भक्तिरस का आश्रय है कवि, आलंबन हैं मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम और उनका संपूर्ण उदात्त चरित्र, आलं-बन का गुण होने के कारण, उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आता है। जिस प्रकार शृंगार के प्रसंग में आलंबन का शील और सौन्दर्य रति स्थायीभाव को और वीर रस में प्रेरक उद्देश्य का गौरव उत्साह को उद्दीप्त करता है, इसी प्रकार भक्ति रस में आलंबन के शील, शक्ति, सौन्दर्य आदि गुण तथा आदर्श कर्म भक्ति-भाव को उद्दीप्त कर रस-परिपाक में योगदान करते हैं।

राम के जीवन के सभी प्रसंग मधुर बाल-क्रीड़ाएँ, मर्यादित शृंगार, माता-पिता तथा गुरुजन के प्रति अतर्क्य सम्मान की भावना, प्रियजन-परिजन के प्रति निश्छल स्नेह-सौजन्य, शौर्य और शक्ति के विविध प्रसंग, लोकसेवा की भावना, शरणागत-वत्सलता, शत्रु के प्रति उदार व्यवहार आदि कवि की भक्ति-भावना के सहज उद्दीपन बन जाते हैं। ये प्रसंग भक्ति को उद्दीप्त ही नहीं करते वरन् उसके स्वरूप के निर्माण में भी सहायता करते हैं। आलम्बन के गुण तज्जन्य भावना के स्वरूप को भी प्रभावित करते हैं। तुलसी भगवान के वीर रूप के—लोकरक्षक विभूति संपन्न रूप के उपासक हैं, अतः उनके काव्य में व्याप्त भक्तिरस लोकधर्म पर आधृत है—जीवन के पोषक मानव-मूल्यों से संवलित है। वाल्मीकि की कवि-चेतना जहाँ राम के जीवन के मधुर-उदात्त प्रसंगों में गुजरती हुई अंत में उनके जीवन की विराट करुणा के साथ तन्मय हो जाती है, वहाँ तुलसी की कवि-चेतना

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राम के शील, शक्ति, सौन्दर्य के प्रसंगों के साथ तादात्म्य करती हुई अंत में उनके विराट रूप में आत्म-विलयन करती है। वाल्मीकि का पाठक नायक के महच्चरित्र के साथ तादात्म्य करता हुआ रसानुभूति करता है, किंतु तुलसी का पाठक नायक के साथ तादात्म्य करता हुआ अंत में पूर्ण-समर्पण के माध्यम से रसानुभव करता है। एक में औदात्य की अनुभूति है। राम की करुणा भी उदात्त ही है, दूसरे में इस औदात्य-भावना के समर्पण की अनुभूति है। यही ऋषि और भक्त की रस-दृष्टि का भेद है।

मानस में वास्तव में रसानुभूति के दो स्तर हैं। एक कथानक का और दूसरा कवि की भावना का। कथागत रसानुभूति के माध्यम हैं राम, जिनकी प्रमुख मनोवृत्ति के आधार पर अंगी रस का परिपाक होता है। राम के चरित्र की मूलवृत्ति है धर्म अर्थात् जीवन को धारण करने वाले मूल्यों की प्रतिष्ठा के प्रति उत्साह, जिसके आधार पर कथा के स्तर पर अंगी रस के रूप में (धर्म–) वीर रस का परिपाक होता है। राम के चरित्र की अन्य स्थिर-वृत्तियाँ हैं–प्रेम, करुणा और शम, जिनकी परिणति शृंगार, करुण तथा शांत में होती है। इन तीनों का वीर के साथ पोष्य-पोषक सम्बन्ध है, अर्थात् ये कथा के आधारभूत रस-वीर-का पोषण करते हैं। कथा के स्तर पर इन सभी मूल और पोषक भावों, के आश्रय राम हैं और सामाजिक की चेतना राम की मनोवृत्ति के साथ सहयात्रा करती हुई रसानुभव करती है। किंतु, कवि की भावना के स्तर पर राम आलम्बन और राम की कथा उद्दीपन बन जाती है। कथा के अंतर्गत शृंगार, करुण और शांत के द्वारा अंगी रस के रूप में जिस धर्मवीर रस का पोषण हुआ था, वह कवि की भावना के स्तर पर भक्ति रस का उद्दीपन बन जाता है। इस प्रकार, मानस में रस का वृत्त कथा में व्याप्त लोकधर्म—अथवा जीवन-मूल्यों के प्रति उत्साह से आरंभ होकर भगवान के प्रति आत्म-समर्पण की भावना में पूर्ण होता है। यहाँ फिर प्रश्न उठता है कि क्या सामान्य सहृदय, या कहें कि आधुनिक युग का सहृदय इस सम्पूर्ण रसवृत्त का अनुभव करता है ? इसका उत्तर हमारे पास यह है कि ऐसा सहृदय, तो जिसकी चेतना में आस्तिक संस्कार विद्यमान है, इस पूर्ण रसवृत्त का अनुभव करता है, किंतु आस्तिक संस्कारों से रहित सहृदय का रसवृत्त कथानक के स्तर पर ही पूरा हो जाता है—अर्थात् उसकी रसानुभूति का वृत्त जीवनमूल्यों के प्रति सात्विक उत्साह के निर्वैयक्तिक अनुभव के साथ ही पूर्ण हो जाता है। भक्ति-काव्य के संदर्भ रसानुभूति का यह द्वैत प्रायः विद्यमान रहता है, इसीलिए संस्कृत के आचार्यों को, जिन्होंने अद्वैत भाव के रूप में रस कल्पना की है, भक्तिरस को मान्यता प्रदान करने में कठिनाई रही है। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधुनिक युग-संदर्भ और रामचरितमानस

प्रो० विजयेन्द्र स्नातक

तुलसी की उदार दृष्टि

गोस्वामी तुलसीदास की अमरकृति रामचरितमानस मध्ययुगीन सामन्ती काल की रचना है, किन्तु काल की सीमित परिधि में मानस के काव्य, वर्ण्य विषय या संदेश को बांधा नहीं जा सकता। सामन्ती युग की किसी भी मान्यता ने अपने काव्य के नायक राम को परिवेष्टित नहीं किया। सामन्ती युग प्राकृतजन के, गुण-गान के लिए प्रतिश्रुत था और कवि की प्रतिबद्धता उस भावबोध के साथ थी, जो आश्रयदाता को सकलगुणनिधान ही नहीं, सर्वशक्तिमान भी स्वीकार करता था। तुलसी ने इस भावबोध को गिरा के लिए अभिशाप माना और राम को सामन्ती परिवेश से दूर रखकर उस भूमि पर अवस्थित किया, जो मर्यादा और आदर्श की भूमि है। आचार और काव्य का समवेत रूप मानस में जिस तरह प्रतिफलित हुआ है, वह न तो परम्परागत है और न तत्कालीन संकीर्णता से आबद्ध है। नैतिकता को यदि मूल्य के रूप में स्वीकार किया जाय और उसकी मर्यादा शास्त्र तथा व्यवहार से अनुप्रेरित हो, तो कहना न होगा रामचरितमानस इस कसौटी पर सर्वाधिक खरा उतरने वाला श्रेष्ठतम् महाकाव्य है। रामचरितमानस की रचना करते समय गोस्वामी तुलसीदास के मन में धर्म, दर्शन, भक्ति, राजनीति, समाज, आदि अनेकानेक विषय विद्यमान थे। इन सब विषयों पर लेखनी उठाते समय गोस्वामी जी की दृष्टि अतीत, वर्तमान और अनागत के साथ जिस विवेक के साथ जुड़ी रही है, वह दृष्टि ही उन्हें आधुनिक युग के साथ संयुक्त करती है। लोकनायक साहित्यकार की दृष्टि का फैलाव किस प्रकार अतीत को अनागत से जोड़ता है, यह देखना हो तो रामचरितमानस के बालकांड और उत्तरकाण्ड में देखा जा सकता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसमें कोई संदेह नहीं कि रामायण की पूरी कथा को उपजीव्य बनाकर ही तुलसी ने मानस की रचना की थी। वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण तथा रामकथा के अन्य काव्यों का तुलसी ने पूरी तरह पारायण किया था। राम-कथा लिखने के लिए नानापुराण और निगम-आगम से भी सामग्री ग्रहण की थी; किन्तु जिस सतर्कता के साथ वे परम्परानुमोदित कथा से बचते रहे, वह मानस के विविध प्रसंगों में द्रष्टव्य है। अपने देश, काल और समाज की स्वीकृत मान्यताओं को उन्होंने भलीभाँति समझा था, किन्तु उनकी सीमाओं में वे बंधे नहीं। अपने दिव्य तेज की दीप्ति से वे तत्कालीन वातावरण को तो आलोकित करते ही रहे वरन् उसके बाद भी देश-काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर उनकी मर्यादा वाणी आज भी सर्वत्र व्याप्त है।

तुलसीदास जब राम-कथा लिखने में प्रवृत्त हुए, तब उनके समक्ष राम के स्वरूप-निर्धारण की समस्या अवश्य उपस्थित हुई होगी। निर्गुणवादी परम्परा में ब्रह्म का जो रूप स्वीकृत है, वह राम को न तो अवतारी बनाने में समर्थ था और न राम की सगुण रूप की कोई कल्पना सहज संभव थी। लोक-सुलभ राम की अवतारणा के प्रयास में तुलसी को पूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विसर्जन करना पड़ा है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि राम के स्वरूप-निर्धारण में तुलसी को अपने व्यक्तित्व को निमज्जित करना पड़ा है। जन-मानस में प्रतिष्ठित राम को उसके पूर्ण वैभव के साथ रूप, सौन्दर्य, गुण और शील के साथ परमब्रह्म के रूप में सर्वव्यापक बनाने की दिशा में तुलसी को अद्भुत सफलता मिली है।

राम का स्वरूप

रामचरितमानस में **सियाराममय सब जग जानी** कह कर राम को जो पद दिया गया है वह शुष्क-ज्ञान का संबल न होकर, भक्ति और प्रेम का संबल है। मानस का राम मनुष्य की समस्त आशा-आकांक्षाओं का सर्वोत्तम रूप है, वह हमारे दैनिक जीवन के क्रिया-कलाप और अनुभवों के भीतर से उजागर हुआ है। वह हमें वैराग्य का नहीं, जीवन-संग्राम में जूझने का सन्देश देने वाला भी है। वह सभी वर्गों और सभी कोटि के मनुष्यों को कृतार्थ करने के लिए अवतरित हुआ है। यदि आधुनिक युग-संदर्भ में हम मानस के राम की परीक्षा करना चाहें, तो देखेंगे कि उसका शील, उसका सौन्दर्य, उसकी मर्यादा और उसकी प्रेरणा आज के युग में भी हमें नैराश्य और कुंठा से निकालकर संघर्ष के लिए बल प्रदान करती है। मैं राम को एक सद्गृहस्थ मर्यादा-पुरुषोत्तम के रूप में देखने का आग्रह रखता हूँ, इसीलिए मेरी दृष्टि में राम और सीता का प्रेम संसार के समस्त काव्यों में सबसे अधिक समर्पित और मर्यादित है। राम और सीता के प्रेम में स्वच्छन्द प्रेम की स्वीकृति न होकर गार्हस्थ्य धर्म के भीतर पनपने वाले प्रेम की स्वीकृति है। राम

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को मानवीय बनाने और उनके प्रेम को अनुकरणीय बनाने के लिए तुलसी ने उन मार्मिक स्थलों का चयन मानस में किया है, जिनके द्वारा स्वच्छन्द और उन्मुक्त प्रेम पर तो अकुंश लगे और संयम तथा शील का वातावरण बने। राम आधुनिक युग में अपने कर्तव्य-बोध के लिए अधिक उपादेय हैं, अधिक मंगलकारी हैं। आधुनिक युग में संयुक्त परिवार में विघटन प्रारम्भ हो गया है, उन मर्यादाओं को स्वीकार नहीं किया जाता, जिनके द्वारा पातिव्रत धर्म की स्थापना होती है। किन्तु आज के विश्रृंखलित समाज में मानस के राम और मानस की आचार-मर्यादा की आवश्यकता नहीं है ऐसा कहना उन मूल्यों की अवहेलना करना है, जो समाज को संयम और शील का मार्ग दिखाते हैं।

रामकथा लिखते समय तुलसी के समाने नानाप्रकार के संशय और भ्रम विद्यमान थे, उन्हें दूर करने और समाज को प्रशस्त पथ पर लाने का ही उपक्रम रामचरितमानस की रचना है—**राम कथा सुन्दर करतारी। संशय विहग उड़ावन हारी।। रामकथा कलि बिटप-कुठारी। सादर सुनि गिरिराज कुमारी।।** जिन संशय और भ्रमों की ओर तुलसी का इंगित है, वे उस युग के ब्रह्म-विषयक चिन्तन से उत्पन्न हुए थे। इस भ्रमोच्छेद के लिए तुलसी ने मानस की रचना द्वारा जो प्रयास किया, वह आज भी सर्वतः सार्थक है। तुलसी का मानस संघर्ष और द्वन्द्व समाज के द्वन्द्व को सुलझाने में प्रवृत्त हुआ, फलतः मानस जैसे श्रेष्ठ काव्य की सृष्टि हुई। यह ठीक है कि इस प्रयास में तुलसी का अपना व्यक्ति-रूप भी कहीं-कहीं व्यक्त हुआ है और उस अभिव्यक्ति में साहित्य और समाज के प्रति उदार और व्यापक दृष्टिकोण रखने वाले विचारकों को संकीर्णता की गंध आई है, किन्तु ऐसे प्रसंग नगण्य हैं और वे मानस के मूल कथ्य या संदेश नहीं हैं।

युगबोध की व्यापक दृष्टि

रामचरितमानस को मैं युग-बोध से प्रेरित रचना मानता हूँ। युग-बोध से प्रेरित रचना का तात्पर्य काल-सीमा और समसामयिकता का संकीर्ण बोध न होकर, युगीन संवेदना को आत्मसात कर काव्य रचना से है। युग का जितना प्रत्यक्ष और प्रखर बोध रामचरितमानस में है, उतना भक्तिकाल की किसी अन्य रचना में नहीं है। राम और रावण के युद्ध में युगजीवन की झांकी प्रस्तुत करने का श्रेय तुलसी को दिया जाना स्वाभाविक है। रावण के अन्याय और अत्याचार की कहानी तुलसी के लिए कोरी पुरा-कथा न हो कर, तात्कालिक परिवेश में भोगी और सही हुई जनता की कष्टकथा थी। राम-काव्य को लोकवादी भूमिका में प्रस्तुत करना इस बात का प्रमाण है कि तुलसी केवल भक्तिजन्य शान्ति और सन्तोष में ही जीवन की इतिश्री नहीं समझते थे, वरन् वे संघर्ष और द्वन्द्व के बीच लड़खड़ाती जाति को प्रवृत्ति-परायण बनाकर, आत्मविश्वास के साथ सार्थक जीवन

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का मार्ग सुझाना चाहते थे। निराश, कुंठित और भग्न-मनोरथ जीवन की सार्थकता केवल भक्ति, प्रेम और शृंगार के करुण-मोहक गीत गाने में नहीं है प्रत्युत निराशा और कुंठा के मूल पर कुठाराघात करने में है ; आततायी के साथ यथाशक्ति संघर्ष करने में है। रावण केवल दानव ही नहीं राक्षसीवृत्ति का प्रतीक भी है, अत. इस राक्षसी-वृत्ति के साथ पूरी जीवन-शक्ति के साथ लड़ने का सामर्थ्य संचय करने का संदेश रामचरितमानस में है। आधुनिक युग में—अर्थात् बीसवीं शती के विविध आन्दोलनों में रामचरितमानस की कथा ने इस दिशा में सत्याग्रही व्यक्ति का पथ-प्रदर्शन किया है। विपत्तियों की विशाल पर्वत-श्रेणियों पर विजय पाने के लिए आज भी मानस के पात्रों तथा घटना-प्रसंगों से प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है।

युग की प्रेरणा और पात्र

बाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, भट्टी, स्वयंभू आदि अनेक कवियों ने अपने-अपने विवेक के द्वारा राम-कथा का वर्णन किया है। आदि कवि बाल्मीकि ने राम को तथा रामकथा के अन्य पात्रों को जो रूप दिया, परवर्ती कवियों ने उसे यथावत् स्वीकार न कर उसमें मनोनुकूल परिवर्तन किया। गोस्वामी जी ने भी रामकथा को उपजीव्य बनाकर उसे नव्यचेतना के संस्पर्श से पल्लवित कर उसकी आत्मा को ही बदल दिया है। तुलसी की रामकथा आस्था, विश्वास और विमल-विवेक पर आश्रित है। उसमें कवि के आत्म-साक्षात्कार का प्रयास आद्यन्त लक्षित होता है। आत्मोपलब्ध सत्य को वाणी देने का प्रयास ही मानस है। उन्होंने इसकी रचना का रहस्य इस प्रकार व्यक्त किया है—

कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी । नहिं आचरजु करहिं अस जानी ।।
रामकथा के मिति जग नाहीं । असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं ।।
नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ।।
करिय न संसय अस उर आनी । सुनिहु कथा सादर रति मानी ।।

इस आध्यात्मिक रहस्यवाद से भी ऊपर मैंने रामकथा में लोक-व्यवहार की सामान्य मनोभूमि को देखा-परखा है। जीवन संग्राम में जूझने की सामर्थ्य को मैं लौकिक व्यवहार की क्षमता समझता हूँ। एक उदाहरण से यह तथ्य उद्घाटित हो सकता है। लंका के रण क्षेत्र में महावीर बलवान रावण चार घोड़ों के विशाल रथ में बैठकर युद्ध करने आया है। रावण के इस अजेय रथ को देखकर विभीषण सहम उठता है सोचता है कि राम के पास न तो चार घोड़ों का रथ है और न कवच। तन-पदत्राण-विहीन राम की स्थिति साधनहीन अकिंचन की है। शास्त्रास्त्र विहीन राम बलवान शत्रु को किस प्रकार जीतेंगे, यह संशय, भय और द्विविधा विभीषण को उद्वेलित कर देती है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नाथ न रथ नहिं तन-पद त्राना, केहि बिधि जितहिं वीर बलवाना।

राम के समक्ष विभीषण का शंकाकुल संशय-जनित भय जिस रूप में आया वह राम को विचलित करने वाला हो सकता था। विभीषण का यह संशय युग-संशय के रूप में राम के सामने खड़ा था। किन्तु राम न तो विचलित हुए और न हतप्रभ ही। बड़े शान्त भाव से उन्होंने विभीषण को जो उत्तर दिया वह उत्तर आधुनिक युग-संदर्भ में ब्रिटिश शासन के विरोध में सत्य और अहिंसा का अस्त्र लेकर संघर्ष करने वाले साधनहीन व्यक्ति मोहनदास करमचन्द गांधी का ही उत्तर था। राम ने कहा—

सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जय होइ सो स्यन्दन आना॥
सौरज, धीरज तेहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल, विवेक दम परिहित धोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजन, सारथी सुजाना। विरति चर्म, संतोष कृपाना॥
दान परसु, बुधि सक्ति प्रचंडा। वर विज्ञान कठिन कोदंडा॥
कवच अभेद, विप्रगुरु पूजा। एहि सम विजय, उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताके॥

तुलसी ने राम के जिस धर्म चक्र को रथ-रूप में वर्णित किया है, वह अपने युग-संदर्भ से आधुनिक युग-संदर्भ तक अपरिच्छिन्न रूप से व्याप्त है। मुगल-साम्राज्य के दुर्द्धर्ष प्रभाव को निरस्त करने के लिएं तुलसी के पास शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, विवेक, संयम परोपकार, क्षमा, कृपा, ईश्वर, भक्ति, वैराग्य, संतोष, दान के सिवा और हो भी क्या सकता था। तुलसी का विश्वास था कि मुगल साम्राज्य के दमनचक्र के समक्ष धर्मचक्र से ही विजय संभव थी। आचार नीति के तत्वों से निर्मित रथ ही शत्रु को जीतने की शक्ति रखता है। मुगलों के शासन और शोषण से संत्रस्त जनता को ऐसे ही धर्मरथ की आवश्यकता थी। आधुनिक युग में महात्मा गांधी ने अंग्रेजों के शोषण और दमन के लिए ऐसे ही रथ को स्वीकार किया था।

जाति में नव जीवन संचार

तुलसी ने रामचरितमानस के द्वारा पराजित जाति के जीवन में ऐसी चेतना का संचार करना चाहा था, जो अपने भीतर छिपी दैवी शक्ति को नितान्त विस्मृत कर चुकी थी। हताश और पददलित जातियाँ जब बाह्य उद्बोधन से जागृत नहीं होतीं, तब उन्हें अन्तः उद्बोधन से जगाया जाता है। तुलसी ने यही अन्तः-उद्बोधन का संदेश मानस द्वारा उत्तर भारत की जनता को दिया था। उन्होंने अपने काव्य के नायक को जनमानस के निकट लाने के लिए जीवन की यातनाओं के मध्य से गुजरता हुआ दिखाया है। वह किसी भी संकट में विवेक भ्रष्ट नहीं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुआ और समस्त कष्टों के बीच भी हर्षोल्लास से परिपूर्ण रहा है। उसे न तो राज्याभिषेक का हर्ष है और न बनवास का विषाद। राम का मुखमंडल जीवन-आशा के सारे फूल बिखर जाने के बाद भी मुस्कराहट से भरा है, मलीनता की क्षीण रेखा भी उसके पास नहीं आई। यही मानव की तितिक्षा की परीक्षा है, जिसमें राम शत-प्रतिशत खरे उतरे हैं। कैकेयी द्वारा बनवास की बात भी उनके लिए रोष उत्पन्न करने वाली नहीं है, कैकेयी के प्रति राम की उक्ति सभी दृष्टियों से स्तुत्य है—

बोले बचन बिगत सब दूषण। मृदु मंजुल जनु बाग-बिभूषन।।
सुनि जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनि हारा। दुरलभ जननि, सकल संसारा।।

राम के इस उदार चरित्र-चित्रण में मानसकार ने जिस उदात्त आदर्श की स्थापना की है, वह आधुनिक युग-संदर्भ में संभवतः आचरणीय न हो सके। विमाता के आग्रह पर राज्य-त्याग का आदर्श असाधारण है, किन्तु उसके पालन से जो विशुद्ध चरित्र उभरता है, वह किसे काम्य न होगा। राम की आज्ञाकारिता को कौन मूर्खता की कोटि में रखना चाहेगा। हमारे सोचने-विचारने की चाहे जो भी दिशा हो, और हम चाहे जितने वैभव एवं सत्ता के लोभी क्यों न हों, राम के त्याग को छोटा साबित नहीं कर सकते। राम का आज्ञापालन और गृहत्याग लोकादर्श और लोकरुचि के परिष्कार के संदर्भ में ही समझने योग्य है। यह कार्य कठिन होते हुए भी काम्य है। लेकिन इसमें तुलसी का क्या योगदान है, यह तो रामकथा का मेरुदंड है, जिसे तुलसी ने यथावत् स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि तुलसी ने चरित्र-चित्रण में घटना को समाविष्ट किया है। घटना सर्वविदित है, किन्तु उसकी स्वीकृति की भाषा और आचरण की आस्था तुलसी की अपनी है।

रामराज्य की कल्पना

आधुनिक युग-संदर्भ-विमर्श में मैं रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड पर विचार करना आवश्यक समझता हूँ। तुलसी राजनीतिवेत्ता थे या नहीं, यह मैं नहीं जानता, किन्तु वे लोकनायक थे, यह सर्व-स्वीकृत मत है। लोकनायक को राज्य के विधिविधान के लिए व्यवस्था निर्माण करना चाहिए। उत्तरकाण्ड के प्रारम्भ में रामराज्य की जैसी विपद-व्यापक कल्पना हमें मानस में मिलती है, वह किसी भी युग के, किसी भी देश के शासक और शासन का आधार बन सकती है। समता, मित्रता, निर्वैरता, साधुता आदि गुणों के साथ प्रजा का सब प्रकार संतुष्ट रहना सुशासन की पहली शर्त है। **जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी।** मानने वाला शासनतंत्र ही सबसे अधिक सफल हो सकता है, क्योंकि इसमें प्रजा-सुख पर ध्यान देना अनिवार्य ठहराया गया है। अपराधशून्य शासन

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की कल्पना कल्पनातीत है। राजा का पक्षपातपूर्ण होना प्रजा के लिए न्याय प्राप्ति का मार्ग अवरुद्ध होना है। तुलसी के इन राजनीतिपरक विचारों को जब हम आज की कसौटी पर कसते हैं, तो पाते हैं, इनके आदर्शपक्ष पर ही बल है। व्यवहार की दृष्टि से तुलसी ने इन्हें कभी परखा नहीं था। वस्तुतः तुलसी न तो राजनीति सिद्धान्त रचयिता थे और न व्यावहारिक राज्यविद्। उनकी बौद्धिक चेतना नीतिपरक थी और वे आदर्शपूर्ण जीवन के पक्षधर थे। मनु और वशिष्ट राजनीतिक सिद्धान्त रचयिता थे। कौटिल्य ने व्यावहारिक राजवेत्ता के रूप में शास्त्र-प्रणयन किया था। उनके समक्ष यथार्थ की जटिलताएँ थीं और उनका समाधान भी उन्होंने खोजा है, जो तुलसी नहीं कर सके। लेकिन यह तो स्वीकार करना ही होगा कि रामराज्य की कल्पना तुलसी की सर्वोत्तम आदर्श राज्य व्यवस्था की मौलिक कल्पना है, जिसमें हम आधुनिक गणतंत्र का रूप देख सकते हैं। आधुनिक संदर्भ में गांधी जी ने इसी रामराज्य को समाजवादी गणतंत्र का आदर्श माना था।

कलियुग वर्णन में वर्तमान का चित्र

उत्तरकाण्ड का दूसरा एक पक्ष कलियुग वर्णन से सम्बन्ध रखता है। तुलसी ने कलियुग वर्णन के लिए पुराण-परम्परा का अनुगमन नहीं किया, वरन् उन्हें अपने युग में भ्रष्टाचार का जो स्वरूप दिखाई दिया, उसे कलियुग नाम से व्यवहृत किया। आधुनिक युग में व्याप्त भ्रष्टाचार के विविध क्षेत्रों पर दृष्टिपात करें तो निश्चय ही हम तुलसी के कलियुग वर्णन में उन सब भ्रष्टाचारों को देख सकेंगे--

विप्र निरक्षर, लोलुप, कामी। निराचार सठ, वृषली स्वामी।।
मिथ्यारम्भ दंभ रत जोई। ताकहँ संत कहै सब कोई।।
सोइ सयान जो पर धन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।।
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना।।
कलि वारहिं वार दुकाल परै। विनु अन्न दुखी सब लोग मरै।।

वस्तुतः कलियुग वर्णन-प्रसंग आधुनिक युग का ही एक सटीक वर्णन है, जिसमें तुलसी की दूरदर्शिता पूरी तरह लक्षित होती है। वास्तव में कलियुग-वर्णन तुलसी की खिन्न मानसिक स्थिति का ही चित्र है, जिसमें क्षोभ-संकुल मनःस्थितियों को उजागर किया गया है। अपने युग की परिस्थितियों से दुःखी तुलसी ने इसका उत्तरदायित्व व्यवस्था पर न डालकर व्यक्ति पर डाला है, जब कि आधुनिक युग में इस प्रकार की परिस्थितियों के लिए सदैव व्यवस्था को उत्तरदायी ठहराया जाता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्णाश्रम की मर्यादा और तुलसी का मानवतावाद :

रामचरितमानसकार को कुछ समीक्षक आधुनिक युग-संदर्भ में सामन्तवादी, स्मार्त, वैष्णव पंथी, प्रतिक्रियावादी, और इंसानी तसव्बुर का कवि ठहराते हैं इसमें कोई संदेह नहीं कि तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म को मानस का आधार बनाया है, जिस काल में मानस की रचना हुई, उसमें वर्णाश्रम की रक्षा का विशेष कारण था—मुगलों से भारतीय या हिन्दू संस्कृति को बचाना। वर्णाश्रम की स्वीकृति से तुलसी को रूढ़िवादी या प्रतिक्रिया वादी ठहराना कहाँ तक समीचीन है। वस्तुत: इस समस्त संदर्भ को हम इस रूप में समझ सकते हैं कि तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दू समाज को पुन: संगठित करने और उनके धार्मिक विश्वासों को अडिग बनाने के लिए पारस्परिक वर्ण-व्यवस्था में तुलसी ने दृढ़ आस्था व्यक्त करना आवश्यक समझा। वर्णव्यवस्था के व्यतिक्रम को आज के समाजवादी ढाँचे में जो रूप प्राप्त हुआ है, वह मानवधर्म को व्यापक स्तर पर प्रतिष्ठित करने वाला है। अर्थात् मानव समाज जन्म के आधार पर ऊँच-नीच न होकर, कर्मानुसार अपना स्थान बनाता है। तुलसी इस मान्यता को निस्सन्देह अपने युग में ग्रहण नहीं कर सके थे। हाँ, भक्ति के क्षेत्र में तुलसी ने उदार दृष्टि का परिचय दिया है और शबरी, निषाद, कोल, किरात, भील, बानर, रीछ आदि के प्रति राम का प्रेम उच्च स्तर का ही दिखाया है। उनका दर्जा बराबरी का है और राम उन्हें मानवीय स्तर पर सहानुभूति भी देते हैं। अत: मैं इस संदर्भ में ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ कि वर्ण व्यवस्था का आग्रह होने पर भी मानस का सारतत्व मानव-प्रेम है, जो किसी भी देश और काल में तथा किसी भी जाति में समाजनीति का मूल लक्ष्य होना चाहिए।

लोककल्याण : दरिद्रता का अभिशाप : अहिंसा परमधर्म : परनिन्दा महापाप:

मानस के पात्रों की एक और विशेषता यह है कि उनका हृदय लोककल्याण अथवा जन-संवेदना से ओतप्रोत है। किसी भी व्यक्ति को पीड़ित देखकर उनका कोमल हृदय करुणा से विगलित हो उठता है। वे किसी को कष्ट सहते हुए नहीं देख सकते। लेकिन वे पात्र जब कहीं अत्याचार और अन्याय देखते हैं, उनका हृदय वज्र के समान कठोर हो जाता है और वे आततायी-अत्याचारी के विनाश का बीड़ा उठा लेते हैं। पराई पीर को जानने वाले ही नहीं, उसका पूरा प्रतिकार करने वाले पात्र ही मानस के साधु पात्र हैं। उनके संघर्ष को कुछ आलोचक दैवी और आसुरी वृत्ति का शाश्वत संघर्ष ठहराते हैं और रामकथा को प्रतीक मानते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दरिद्रता का अभिशाप

रामचरितमानस में कुछ ऐसे संदर्भ है, जिन्हें हम आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में परखें तो देखेंगे कि तुलसी की मान्यता और आज की मान्यता में विलक्षण समानता है। मानसकार के मत में संसार में सबसे बड़ा कष्ट और अभिशाप दरिद्रता-गरीबी है—**नहिं दरिद्र सम दुःख जग माही** इस दरिद्रता से बचने के उपाय में ही जीवन व्यतीत हो जाय, तो वह जीवन की कौन सी सार्थकता होगी। गरीबी हटाये नहीं हटती, क्योंकि यह विधाता का विषम अभिशाप है। परमधर्म के रूप में तुलसी ने अहिंसा परमोधर्म का ही समर्थन किया है। अहिंसा को जिस व्यापक अर्थ में तुलसी ने स्वीकार किया, क्या वह राम-रावण युद्ध के संघर्ष में कसौटी पर खरी उतरती है? इस प्रश्न का समाधान रामचरितमानस की अहिंसा है। सबसे बड़ा दुष्कर्म तुलसी के मत में परनिंदा है। निंदा वस्तुत: दोष दर्शन की प्रवृत्ति का परिणाम है। इसके मूल में ईर्ष्या और असुदा भी कार्य करते हैं। यह एक प्रकार की दुष्प्रवृत्ति है, जिसका जन्म अपनी दुर्बलता से होता है। सत्संगति और विवेक से इस प्रकार की दुर्बलताओं का क्षय होता है। नैतिक एवं सामाजिक नियमों का ऐसा रूप, जो आज भी हमें स्वीकार्य हो सके, मानस के विविध प्रसंगों में उपलब्ध होता है। किन्तु मेरे अनेक मित्र उस नैतिक विधान को युटोपिया मानते हैं—अव्यवहार्य मानते हैं, लेकिन मैं उनसे निवेदन करना चाहता हूँ कि रामचरितमानस एक साधारण ग्रंथ मात्र नहीं है, वह जड़ता को तोड़ने वाला और चैतन्य का प्रकाश विकीर्ण करने वाला एक विराट अन्दोलन है। यह ग्रंथ उन लोगों के भीतर आत्मबल भरता रहेगा जो विपन्न हैं, पीड़ित हैं, गरीब हैं। आज से चार सौ वर्ष पहले जिस प्रकार इस महाकाव्य ने नैराश्य और कुंठा से भरी जाति को जीवित रखा था, उसी प्रकार आज भी मानवमात्र को यह बल प्रदान करता रहेगा कि विपन्नता और दरिद्रता राम की शरण में जाने से स्वयं ही लुप्त हो जायगी। यह एक आस्था और निष्ठा का मानस है। आधुनिक युग-संदर्भ में मानस के अन्तस्तल में छिपे सारतत्व को ही ग्रहण करना उचित है। छिलकों को निकाल दीजिए—तत्व को स्वीकार कीजिए तभी इस मानस संवेदना के चैतन्यपूर्ण महाकाव्य का आस्वाद संभव होगा। ●

B–3

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रामचरितमानस में रूपक | डॉ० वचनदेव कुमार

रूपक सादृश्य-मूलक अभेदप्रधान आरोपधर्मी अलंकार है। इसे भी भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित[1] करने का प्रयत्न किया गया है तथा अभेद प्रतीति[2] और ताद्रूप्य प्रतीति को लेकर पूरा शास्त्रार्थ किया गया है। इन विवादों एवं शास्त्रार्थों में न उलझकर इतना कथन ही पर्याप्त होगा कि उपमा जहाँ दो भिन्न-धरातलीय पदार्थों में सादृश्य प्रदर्शन करती है, वहाँ रूपक के द्वारा दो भिन्न-धारातलीय पदार्थों में अभिन्नता अथवा तद्रूपता उपस्थित की जाती है। इसलिए दंडी का कथन ठीक ही मालूम पड़ता है कि उपमेय और उपमान में भेद मिटा देने पर उपमा ही रूपक कही जाती है।[3]

१–(क) तद्रूपकमभेदोऽय उपमानोपमेययोः। मम्मट का० प्र० १०।१३०
(ख) अभेदप्राधान्ये आरोपे आरापविषयानपह्नवे रूपकम्। रूप्यक, अलंकार-सर्वस्व, सू० १५
(ग) यत्र गुणानां साम्ये सत्युपममानोपमेययोरमिदा।
अविवक्षित सामान्या कल्प्यत इति रूपकं प्रथमम्। रुद्रट, काव्यालंकार ८।३८
(घ) रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, १०।२७ के बाद।

२–(क) अभेदप्रतीतिवाला तत्त्व मम्मट की उपरिकथित परिभाषा में निहित है।
(ख) रूपक में अभेद प्रतीति नहीं होती है–इसका निर्देश हेमचन्द्र की परिभाषा सादृश्ये भेदनारोपोरूपकमेकानेक विषयम्। काव्यानुशासन ६।५ में इस प्रकार है—
(ग) अप्पय दीक्षित ने रूपक में ताद्रूप्य प्रतीति का खण्डन किया तथा पुनः रूपक की परिभाषा में 'उपरंजकता' शब्द का उल्लेख कर उसका अर्थ ताद्रूप्य बतलाया है। यह स्वतोव्याघात है।—देखें, चित्रमीमांसा पृ० ५२ से ५६ पृष्ठ तक

३–उपमेव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते।—काव्यादर्श २।६६

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रूपक के स्वरूप के विषय में ही मतभेद हो ऐसी बात नहीं, वरन् इसके भेदोपभेद को लेकर भी अलंकारिकों में पर्याप्त मतभेद है। भामह ने समस्त वस्तु-विषय तथा एक देश-विवर्ति-दो भेद माने हैं।[४] दंडी ने रूपक के बीस भेदों का उल्लेख किया है।[५] भामह के समस्त वस्तु-विषय को उन्होंने सकल रूपक कहा है।[६] उद्‌भट् भी भामह के दोनों भेदों को स्वीकारते हैं, किन्तु वे समस्त वस्तु-विषय का नाम मालारूपक देते हैं।[७] रुद्रट ने रूपक के तीन भेद माने हैं—सावयव, निरवयव और संकीर्ण।[८] मम्मट अपने वर्गीकरण का आधार रुद्रट से ही ग्रहण करते हैं और संकीर्ण को ही परंपरित कहते हैं। सावयव तथा निरवयव को ही क्रमशः सांग तथा निरंग रूपक कहा जाता है। रूपक के मुख्यतः निरंग, सांग और परंपरित-—ये ही तीन भेद हैं और भेदों का निरूपण मम्मट, रूय्यक, विश्वनाथ और जगन्नाथ आदि काव्य-शास्त्रियों ने किया है। अतएव, रूपक के प्रमुख ये ही भेद विचारणीय हैं-—

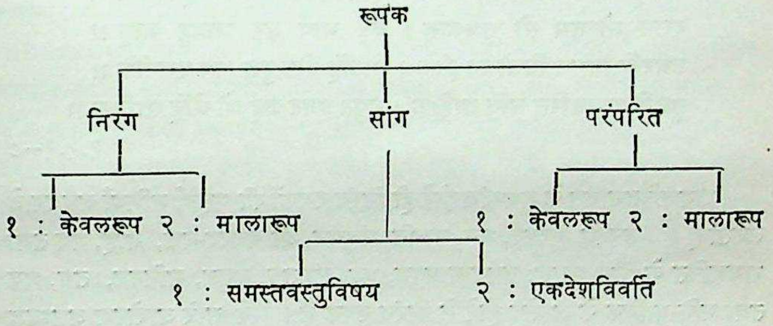

गोस्वामी तुलसीदास जी अलंकारों की कार्यक्षमता से पूर्णतः परिचित थे। उपमा किसी वस्तु को दूर से दिखाकर विरत हो जाती है, वह स्वयं रूप-धारण नहीं करती। रूपक तो मानसचक्षु के समक्ष भाव की मूर्ति ही उपस्थित कर देता है। मानस के पग-पग पर हम रूपक की मूर्त्ति-विधायिनी शक्ति का चमत्कार

४—समस्तवस्तुविषयमेकदेशविवर्ति च।
द्विधा रूपकमुद्दिष्टमेतत्तच्चोच्यते यथा।—भामह, काव्यालंकार २।२२

५—काव्यादर्श २।६६-२९५

६—ताम्रांगुलिदलश्रेणि नखदीधितिकेसरम्।
ध्रियते मूर्ध्नि भूपालैर्भवच्चरणापकंजम्॥
अंगुल्यादौ दलादित्वं पारे चारोप्य पद्यताम्।
तद्योग्यस्थानविन्यासादेतत् सकलरूपकम्॥—काव्यादर्श, २।६९।७०

७—समस्तवस्तुविषयं मालारूपकमुच्यते।—उद्भट १,२५

८—सावयवं निरवयवं संकीर्णं चेति भिद्यते भूयः। काव्यालंकार ८।४१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाते हैं। वैसे तो भाषा ही विवर्णरूपकों की पुस्तक है। इसकी विवृत्ति यदि दूसरे प्रकार से करें, तो कह सकते हैं कि समृद्ध भाषा का अभिज्ञान ही इन म्लान रूपकों के द्वारा होता है। जैसे--

विधु बदनी सब भांति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी।। १.१०.४
सो दससीस स्वान की नाई। इत उत चितइ चला भड़िहाई।। ३.२८.९

यहाँ 'सँवारी' तथा भड़िहाई' में रूपकत्व की छटा देख सकते हैं। मानस में रूपक के प्रमुख छहों भेदों के एक-से-एक सुन्दर उदाहरण प्राप्त हैं—

बंदौ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।।
अमिय मूरिमय चूरनु चारू। समन सकल भवरुज परिवारू।।
सुकृत संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। कियें तिलकु गुनगन बस करनी।।
श्री गुरुपद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।
दलन मोहतम सो सुप्रकासू। बड़ँ भाग उर आवहु जासू।।
उघरहिं बिमल बिलोचन हीके। मिटहिं दोष दुख भव रजनीके।।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहिं खानिक।।
१.१.१–८

रामचरितमानस के शुभारंभ होते ही निरंग रूपकों की महार्घ मणियाँ जगमगाने लगती हैं। उपयेय, गुरुपद, भव, सुकृति, मंजुमन, श्री गरुपद-नख, मोह, भव तथा रामचरित के लिए क्रमशः उपमान पदुम, रुज, संभुतन, मुकुर, मनिगन, तम, भव तथा मनि-मानिक के आरोप होने से निरंग रूपक है। ये सारे आरोपण असम्बद्ध होते हुए भी अर्थ-संबद्धता के अभिनव गवाक्ष खोलते हैं। इस केवल निरंग रूपक के साथ मालारुप निरंग रूपक का संयोजन तो तुलसी की अपनी विशेषता है। गुरु-पद-पदुम का पराग, स्वाद, सुगंध, रस और अनुराग से परिपूर्ण है। अन्य पराग में भले ही सुरुचि, रस और अनुराग न हो, किन्तु गुरु-पद-पदुम पराग का तो यही वैशिष्टय है। यह पराग क्या है? संजीवनी बूटी का सुन्दर चूर्ण है, जिसके प्राप्त होते ही एक नहीं, वरन् सम्पूर्ण सांसारिक रोगों के परिवार नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, यह धूलि पुण्यवान् पुरुषरूपी शंकर के तन पर विराजमान निर्मल विभूति है। यह पदरज मंजुल-मंगल आनन्द की जननी है। यह मानवों के मनरूपी निर्मल दर्पण पर पड़ी मैल को दूर करने वाली है। यदि मस्तक पर इस पदरज का ही तिलक किया जाय, तो मनुष्य अनंत गुणों को वश में कर सकता है। इस तरह केवलरूप एवं मालारूप निरंग रूपक के समाहार द्वारा गोस्वामी जी गुरुपद पद्म-पराग के माहात्म्य का दिग्दर्शन कर रामचरितमानस के पाठकों के चित्त का परिष्कार एवं रोग-विमुक्त करना चाहते हैं। वे जानते हैं कि जब तक मनुष्य

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूर्णरूपेण आधि-व्याधि से मुक्त नहीं होगा, तब तक वह किसी प्रकार का पुरुषार्थ नहीं कर सकता। अतः, गुरु-पद-पद्म-पराग से मन-मुकुर को निर्मल कर तथा अपने अंतःकरण में सद्गुणों को विकसित कर गुरु के नखों के मणिगणों से विच्छुरित ज्योति को तो समक्ष रखने पर प्रकाश मिलता है, किन्तु गुरु पद-नखों से विकसित प्रभा के स्मरण मात्र से दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। गीता में भगवान् अर्जुन को दिव्य दृष्टि देते हैं (दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्ये योगमेश्वरं)––यहाँ गुरु-पद-नख का स्मरण ही दिव्य-दृष्टि प्रदान करती है। गोविन्द से गुरु बड़ा है––ऐसा निर्गुणिया संतों ने कहा था––गोस्वामी जी भी आगे बढ़कर कहते हैं कि गुरु की और बातों को छोड़ो। उसके पद-नखों के प्रकाश में ही ऐसी शक्ति है कि आत्मा में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। इस संसार में माया जीवों को अनेकानेक कष्टों में उलझाए रहती है। मनुष्य मायाकृत अंधकार के कारण सद्-असद् विवेक खो बैठता है। उसे अपना गंतव्य दीख ही नहीं पड़ता है। यह ज्योति अज्ञानरूपी अंधकार का नाश करती है तथा हृदय के बंद नेत्र खुल पड़ते ही संसाररूपी रात्रि के सारे दुःख दूर हो जाते हैं। संसाररूपी रात्रि के दुःख का क्या कहना? कामाशक्ति परदोष-कथन, अज्ञान, स्वरूप विस्मृति, वासना, मोह, द्वेष, काम-क्रोध-मद-लोभ और मद-मान आदि निशाचरों का भय, सुतबित, पुत्र-कलत्र, धन-धाम के मिथ्या संबंधों को सत्य मानना आदि। इतने सारे स्वार्थों वाली संसार-रजनी के दोषों को दूर करनेवाली गुरु-नख-प्रभा है और हृदय में प्रकाश का पुंज फूटा तो फिर राम-चरितरूपी मणि-माणिक्य को ढूंढ़ निकालना क्या कठिन कार्य होगा? कदापि नहीं। अतः, रामचरितरूपी मणि-माणिक्य के लिए सबसे सुगम उपाय है––गुरु-पद-नख-ज्योति का स्मरण। इन लघु-लघु निरंग रूपकों में इतना सार अर्थ भर दिया गया है कि वस्तुतः तुलसी के लघु निरंग रूपक ऐसे वटयोनि हैं, जो अपनी चुल्लुओं में अर्थ के असीम सागर भर लेते हैं।

सूचीकटाहन्याय से एकदेशविवर्ति सांग रूपक का सौंदर्यावलोकन करें––

नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट॥[१]

श्रीराम ने जब हनुमान से पूछा कि सीता किस प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करती हैं, तो इसी के उत्तर में उन्होंने कहा है कि आपके वियोग में तो सीता के प्राण कब के भाग गये होते। किन्तु, भागें तो कैसे? हर क्षण आपके नाम का स्मरण ही पहरेदार है, अपका ध्यान करना ही किवाड़ है तथा अपने पावों की ओर नेत्र झुकाये रखना ताला लगा देना है। बंदी प्राण शरीर की कोठरी में रख दिये हैं––

९–५-३०।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिसमें मजबूत किवाड़ लगे हैं और उस पर भी ताला बंद हैं। इतना ही नहीं, कहीं बंदी किवाड़ तोड़ न डाले, इसलिए सजग पहरेदार भी हर घड़ी तैनात है। बंदी जीवन को ध्यान में रखकर गोस्वामी जी ने सीता की विरहावस्था तथा राम के प्रति मनसा-वाचा कर्मणा समर्पण का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है। सीता-जैसी साध्वी नारी को जहाँ ले जाएँ—स्वर्णपुरी हो, कुबेरपुरी हो, या इन्द्रपुरी हो, अपने पातिव्रत्य के मार्ग से कभी कहीं विचलित हो ही नहीं सकतीं।

मानस में समस्त वस्तु विषय सांग रूपक अनेक हैं, कुछ बड़े लम्बे हैं तथा कुछ छोटे। प्रलम्ब समस्त वस्तु विषय में उल्लेख्य ये हैं—

१. रामचरितमानस सर[१०]
२. रघुवर-बाल-पतंग[११]
३. संकर-चाप जहाज[१२]
४. रोष-तरंगिनी-कैकेयी[१३]
५. तीर्थराज प्रयाग[१४]
६. अरण्य-रामराज्य[१५]
७. आश्रम-सागर[१६]
८. जनक-भूपमन-प्रयाग[१७]
९. भरत-हिय-विमल आकाश[१८]
१०. काम-कटक[१९]
११. भरत-उर-व्योम[२०]
१२. मोह-विपिन[२१]
१३. विश्व रूप रघुवंश मणि[२२]

१०—१.३६-४३
११—१.२५४-१-२५५
१२—१.२६०-१.२६१
१३—१.२८२
१४—२.१०४-२.१०५
१५—२.२३५-२.२६६
१६—२.२७५-२.२७६
१७—२.२८८.५-२.२८६
१८—२.३२५
१९—३.६८
२०—३.४२ क
२१—३.४३
२२—६.१४-६.१५

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१४. धर्मरथ[२३]
१५. शोणित-सरिता[२४]
१६. संसार-विटप[२५]
१७. राम-प्रताप-रवि[२६]
१८. ज्ञानदीप[२७]
१९. भक्ति-चिंतामणि[२८]
२०. मानस-रोग[२९]

वस्तुतः ये ही वे रूपक हैं, जिनके कारण महाकवि अपने महाकाव्यात्मक सौदात्य एवं माहात्म्य का पटहनाद करते हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी में शायद ही कोई कवि मिले, जो दीर्घ-प्रसारी समस्त वस्तु विषय सांग रूपक का कुशलतापूर्वक निर्वाह करता हो। मानस के आदि में मानससर तथा अंत में ज्ञानदीप रूपक है। जो सबसे विशाल है। वस्तुतः ये मानस-प्राकार के प्रवेश-द्वार और निर्गम-द्वार के सुदृढ़ हीरक कपाट हैं। मानससर में केवल कामी काक बलाक की ही कठिनाई नहीं है, वरन् पंडितम्मन्य व्यक्ति भी मानससर-विस्तार को दूर से ही देखकर क्लिन्न-खिन्न हो जाते हैं। ज्ञानदीप तो गोस्वामी जी के गंभीर दार्शनिक चिंतन के घृत से ही ज्योतिर्मान् है। मानससर में अवगाहन के लिए प्रभु कृपा सर्वाधिक स्पृहणीय है। किन्तु, यह प्रभु कृपा ज्ञानदीपक से प्रकाशित मन-मंदिर में प्राप्त नहीं होती, वरन् इसके लिए भक्ति-चिन्तामणि की परम आवश्यकता है। जिसे भक्ति-चिन्तामणि मिल गई, उसे और कुछ न चाहिए, बस सारे मानस-रोग क्षण में दूर हो जायेंगे। बीच में पड़ने वाले अन्य रूपक तो इस मानस-प्राकार के मध्यवर्त्ती भवन, तड़ाग, उपवन, मंदिर-कलश आदि की तरह सुशोभित हैं।

गोस्वामी तुलसीदास की रूपक-योजना पर आलोचकों के तरह-तरह के विचार हैं—कोई उनको रूपक का बादशाह[३०] मानते हैं, तो कोई रूपक को उनकी अलंकार योजना का प्राण मानते हैं।[३१] आचार्य पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कथन

२३—६.८०
२४—६.८७-६.८८
२५—७.१३.५ छंद
२६—७.३१
२७—७.११७-७.११८
२८—७.१२०
२९—७.१२१ (क)
३०—कवितावली की प्रस्तावना, लाल भगवान दीन, पृ० ३१
३१—तुलसी की अलंकार-योजना, : नरेन्द्र कुमार, पृ० ८०
तुलसी, डॉ० उदयभानु सिंह द्वारा सम्पादित पुस्तक से।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है—अप्रस्तुतविधान में तुलसी इतने सिद्धहस्त हैं कि वे बिना किसी रोक-टोक के बड़े लम्बे रूपक बाँध जाया करते हैं। मानस-रूपक बड़ा लंबा है, पर कहीं भी बेमेल नहीं है और न कहीं शृंखला ही टूटने पाई है। इसी प्रकार उन्होंने अपने सभी ग्रंथों में बड़े-बड़े रूपक बांधे हैं। इसमें संदेह नहीं कि तुलसी के समान रूपक का बंधान बांधनेवाला हिन्दी में कोई कवि नहीं हुआ है।[३२]

"उन्होंने अपने लम्बे-लम्बे सांग रूपकों में भी मजाल नहीं है कि सादृश्य और साधर्म का आद्योपान्त निर्वाह न किया हो, साथ ही उनकी पूर्ण प्रभविष्णुता न दिखाई हो। उन्होंने ऐसे रूपकों की योजना सामान्यतया गंभीर विषयों को सरस एवं सरल रीति से हृदयंगम कराने के लिए की है और उसमें पूर्णतः सफल हुए हैं।[३३] डॉ० राजपति दीक्षित का कहना है—"गोस्वामी जी ने रूपक अलंकार पर अनुपमेय अधिकार दिखाते हुए इसका प्रयोग अपनी सभी कृतियों में पग-पग पर किया"।[३४] डॉ० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है—"तुलसी के सांग रूपक इस प्रकार के साहित्यिक खिलवाड़ मात्र नहीं हैं, परन्तु उनमें उपदेशतत्व ही प्रधान है, काव्यतत्व नहीं"।[३५] पुनः वे लिखते हैं—बड़े-बड़े सांग रूपकों में इस प्रकार की खींचातानी और दुरान्वय दोष तो भरे पड़े हैं, छोटे-छोटे रूपकों में भी काव्य-सौंदर्य का प्रायः अभाव है।[३६] एक लेखक के वाक्य है—"गोस्वामी तुलसी रूपकालंकार के अप्रतिम आचार्य हैं।— उनके रूपकों में केवल कल्पना की चमत्कृति नहीं, किन्तु सरसत, सरलता और दिव्यता की त्रिवेणी सर्वत्र बहती हुई मिलती है।" गोस्वामी जी की रूपक-सृष्टि पर इतनी परस्पर विरोधिनी मान्यताएँ हैं कि सहसा कोई निष्कर्ष देना निरापद नहीं है।

इन लम्बे सांग रूपकों के दो प्रकार स्पष्ट परिलक्षित होते हैं—एक में सूक्ष्म भावों के लिए आरोपण है तथा दूसरे में स्थूल वस्तु के लिए आरोपण।

रामचरितमानस सर विश्वरूप-रघुवंश-मणि, संसार-बिटप, ज्ञानदीप तथा मानस-रोग में मानसिक अगोचर सूक्ष्म भावों के लिए जागतिक गोचर स्थूल पदार्थ प्रस्तुत किये गये हैं, अतः ऐसे स्थलों में तार्किक बुद्धि को निराशा होती है। ये रूप सामान्य-जन-दृष्टि नहीं है, वरन् कविदृष्ट। जब पंडित सुमित्रानन्दन पंत 'नील झंकार' की बात कहते हैं, तो वहाँ झंकार' के वर्णको लेकर मतवैभिन्य हो सकता है; क्योंकि झंकार का रंग श्रेष्ठ कवि के विरल सृजनात्मक क्षणों में देखा गया है। यदि सामान्य-जन ऐसे विशिष्ट क्षणों में अपने को स्थानान्तरित नहीं

३२—कविताली, अंतर्दर्शन, पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ३१
३३—कवितावली, अंतर्दर्शन, पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ३१
३४—तुलसीदास और उनका युग, डॉ० राजपति दीक्षित, पृ० ४३९।
३५—मानस-दर्शन, डॉ० श्रीकृष्णलाल, पृ० १६०
३६—मानस-दर्शन, डॉ० श्रीकृष्णलाल, पृ० १६४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करता, तो उसे उसका बोध होगा नहीं और निर्बोध तो निरानन्द रहेगा ही। श्री अरविन्द की सावित्री में ऐसे अनेक स्थल हैं, जहाँ योग-भाषा का प्रयोग हुआ है और उसका आनन्द योगी ले सकता है या योगी बनकर ही लिया जा सकता है।

सर्वप्रथम मानस-रूपक को ही देखें। सुमति भूमि है, तो हृदय गहरा स्थल कैसे हुआ? राम सुयश श्रेष्ठ जल कैसे है? सगुण लीला को सुयश जल की स्वच्छता और प्रेमा भक्ति की मधुरता और सुशीलता मानने का क्या कारण है? सत्कर्म को ही धान क्यों कहें या फिर धान छोड़कर कोई अन्य अन्न का उल्लेख क्या संभव नहीं था? उपमा को बीचिविलास, चौपाई को सघन पुरइन, सुन्दर उक्तियों को मणिसीप, छंद, सोरठा तथा दोहे को बहुरंग कमल कुल, अनुपम अर्थ को पराग, सुन्दर भाव को मकरंद और सुन्दर भाषा को सुगंध क्यों कहा गया? भाषा के आवरण में ही सुन्दर भाव रहता है। क्या सुगंध में ही मकरंद और पराग रहते हैं? सुकृत पुंज को मंजुल मणिमाला, ज्ञान-विराग के विचार को मराल, ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण और जाति को मनोहर मीन, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, ज्ञान-विज्ञान-विचार, नवरस, जप-तप-योग-विराग को जलचर कहने का क्या तात्पर्य है? अभी ही ग्यान-विराग विचार को उन्होंने मराल कहा था, फिर ज्ञान-विराग विचार को जलचर कहा, आखिर इसकी आवृत्ति का प्रयोजन क्या है? पुण्यात्मा, साधु और श्रीराम-नाम के गुणगान को जल-विहग क्यों कहा? संत सभा सरोवर के चारों ओर रहने वाली अमराई मानी गई। श्रद्धा वसंत ऋतु है, नानाविध भक्ति-निरूपण, क्षमा, दया तथा द्रुम-लता मंडप हैं, शम, यम, नियम, फूल, ज्ञान, फल, प्रभु-चरणों में प्रेम ही फल का रस है। कथा सुनकर रोमांच होना, वाटिका, वाग और वन है, कथा से प्राप्त सुख सुन्दर-पक्षियों का विहार है, निर्मल मन माली है जो प्रेमरूपी जल से सुन्दर नेत्रों के पात्र से इन्हें सींचता रहता है।

'संसार-विटप' वाला एक दूसरा रूपक देखें[37]। इस विटप का मूल अव्यक्त है, इसकी चार त्वचाएँ, छह तनें, पचीस शाखाएँ, अनेक पत्ते और बहुत से फूल हैं। इसमें कड़वे और मीठे–दो प्रकार के फल लगे हैं। इस विटप पर सदा फूलने-फलने वाली एक ही लता छायी रहती है। इस रूपक को लेकर अब मानस-व्यायाम करते रहिए। विटप का मूल अव्यक्त कैसे हो सकता है? वृक्षों में क्या त्वचाओं की संख्या निश्चित होती है? ये चार त्वचाएँ, छह तने, पचीस शाखाएँ, अनेक पत्ते और बहुत से फल क्या है? आखिर यह कैसा विचित्र वृक्ष है कि इसमें कड़वे और मीठे—दोनों प्रकार के फल लगे हैं? ये कड़वे और मीठे फल क्या हैं? इस वृक्ष पर आश्रित रहने वाली तथा सदा फूलने-फलने वाली कौन-सी बेल है?

३७–साहित्य-सम्राट् तुलसीदास, गंगाधर मिश्र, पृष्ठ २६०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐसे रूपक में साधारण पाठकों की बात तो छोड़िए, पंडितों की बुद्धि भी चकराने लगती है तथा उनके लिए भी किसी निर्णय पर पहुँचना नहीं हो पाता है।

ज्ञान-दीपक रूपक का एक अंश देखिए। अज्ञानांधकार से आवृत्त जीव 'मैं और मोर' की ग्रन्थि से मुक्ति कैसे पावे ? इसके लिए गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि भगवान की कृपा से सात्विक श्रद्धारूपी गाय हृदयरूपी घर में निवास करे, वेदोक्त जप, तप, व्रत, नियम, शुभ-धर्म और आचार की हरी घास चरे, भावरूपी बछड़े से पिन्हावे, निवृत्ति की नोई लगाकर निर्मल मनरूपी ग्वाला जब विश्वासरूपी पात्र में धर्ममय दूध दुहे, उस दूध को निष्काम भावरूपी अग्नि पर अच्छी तरह औंटे, औंटने के बाद संतोष और क्षमारूपी हवा में ठंढा करे, धैर्य का जामन देकर जमावे, दूध जब जमकर दही बन जाय तो सुचितारूपी पात्र में विचाररूपी मथानी से इन्द्रिय-दमनरूपी खम्भे में सत्य और सुन्दर वाणीरूपी रस्सी से बांधकर मथे, मथा जब हो जाय तो विमल विरागरूपी मक्खन निकाले, मक्खन निकाल लेने के बाद योगरूपी अग्नि प्रकट कर शुभाशुभ कर्मरूपी ईन्धन लगा दे। वैराग्यरूपी मक्खन का जब ममतारूपी मल जल जाय, तो ज्ञानरूपी घी को बुद्धिरूपी पंखे से ठंढा करे। जब विज्ञानरूपी घी को पाये, तो उसे चित्तरूपी दीपक में भर दे और समतारूपी दीवट पर दृढ़ कर रखे। तीन अवस्थाओं तथा तीन गुणों रूपी कपास से तुरीयावस्थारूपी सूत्र निकालकर सुन्दर मजबूत बाती बनावे। जब चित्तरूपी दीपक-स्थित ज्ञान-घृत में तुरीयावस्था रूपी कपास से बनी बाती रखी जाय, उस तेजराशि विज्ञानमय दीप को जब जलाया जाय तो उसके समक्ष मदादि पतंग शीघ्र जल जायेंगे। 'सोऽहमस्मि' यह अखंड वृत्ति उस दीपक की प्रचंड लौ है, आत्मानुभव ही इस दीपक का सुखमय प्रकाश है और इस सुखमय प्रकाश में संसार के मूल रूप भेदरूपी भ्रम का नाश हो जाता है।

इसी तरह मानस रोग की आरोपण-शृंखला देखें। काम वात, लोभ कफ है, क्रोध छाती जार पित्त हैं। ममता दाद है, ईर्ष्या खुजली है, हर्ष-विषाद गलगंड है, दूसरे का सुख देखकर जलना क्षय रोग है, दुष्टता और मन-कुटिलता कुष्ट रोग है, दंभ, कपट, मद, मान नेहरुआ, तृष्णा जलोदर तथा त्रिविधा ईषणा तीन दिनों पर आनेवाला तिजारी ज्वर है। किन्तु, जहाँ-जहाँ स्थूल वस्तुओं के लिए आरोपण-शृंखला चली है, वहाँ मानस गोचरता एवं सुबोधता का अभाव नहीं है।

गोस्वामीजी के रूपक ऐसे सेनाध्यक्ष हैं, जिनके मैदान में आते ही अन्य अलंकारों की सेना सद्यः समुपस्थित हो जाती है। उदाहरणार्थ मानस-सर-रूपक-राज के कौशेय उत्तरीय में टंके इन अनेक अलंकार-तार की जगमगाहट देखें——

संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी।। –मुद्रा
सुठि सुन्दर संवाद वर––पुनरुक्तवदाभास
राम सीय जस सलिल सुधासम। –उपमा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।। –यथासंख्य
ते बिचित्र जल बिहग समाना। –उपमा
श्रद्धा रितु वसंत सम गाई––उपमा
संबुक भेक सेवार समाना––उपमा
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक––काव्यलिंग
जे गावहिं यह रचित सेवारे। एहि ताल चतुर रखवारे।। –निदर्शना
आवत एहि सर अति कठिनाई। राम कृपा बिन आई न जाई।। –विनोक्ति
जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गएउँ न मज्जन पाव अभागा।। –काव्यलिंग
सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहि जेहीं।। –विभावना
महाधीर त्रयताप न जरई। –विशेषोक्ति
अस मानस मानस चष चाही। –यमक
मानस मूल मिली सुरसरहीं। सुनत सुजन मन पावन करहीं।।
–अक्रमातिशयोक्ति

बिच बिच कथा बिचित्र विभागा। जनु सरि तीर तीर तन बागा।। –उत्प्रेक्षा
राम तिलक हित मंगल साजा। परम योग जनु जुरे समाजा।। –उत्प्रेक्षा

गोस्वामी जी के प्रलंब सांग रूपकों में महासागर की विस्तृति, अतलता एवं अकल्पनीय समृद्धि दीख पड़ती है, तो उनके लघु सांग रूपकों में कश्मीर के नयनाभिराम नीलवर्ण झीलों की मोहकता। लघु सांग रूपकों में कौशल्या-प्राची[३८] समरयज्ञ, रोषतरंगिनि कैकेई[३९] कैकेई-कुमत बढई[४०] चित्रकूट-अहेरी[४१] राम वियोग पयोधि[४२] और शशिकेसरी[४३] बड़े ही सुन्दर रूपक हैं। इन छोटे-छोटे रूपकों में प्रकृति-पर्यवेक्षण एवं लोकानुभव का ऐसा सुन्दर समंजन हुआ है कि उनकी रूपक-योजना पर प्रशंसा-मूक बन जाना पड़ता है। एक-दो सुन्दर रूपकों की बानगी लीजिए–

नव गयंदु[४४] रघुवीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान।।[४५]

३८–१.१६
३९–१.२८२
४०–१.३४ १-४
४१–कैकेई कुमति बढ़ई–२.२१४ ३-४
४२–२.१३३ ३-४
४३–१.५४५-७
४४–६.१२ क १-३
४५–२.५१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा

संपति चकई भरतु चक, मुनि आयसु खेलवार ।
तेहि निसि आश्रम पिंजरा, राखे भा मिनुसार ।।[४६]

इन दोनों रूपकों में नये पकड़े हाथी और चकवा-चकई के रूपक द्वारा राम तथा भरत की राज्य एवं सम्पत्ति की निस्पृहा के द्वारा चारित्रिक औदात्य का बड़ा ही भव्य चित्र खींचा गया है। यही कारण है कि काल की धूल चाहे जितनी उड़े, परिस्थितियों के थपेड़े चाहे जितने पड़े, किन्तु भारतीय जन-मानस के समक्ष राम और भरत की भव्य मूर्त्ति कभी भी विवर्ण नहीं हो पाती।

एक दूसरे प्रकार का रूपक देखें—

सोक कनक लोचन मति छोनी । हरी बिमल गुनगन जग जोनी ।।
भरत बिबेक बराह बिसाला । अनायास उधरी तेहिं काला ।।

शोकरूपी हिरण्याक्ष ने सभासदों की बुद्धिरूपी ऐसी पृथ्वी को हर लिया जो विमल गुणों को उत्पन्न करनेवाली थी। भरत—विवेकरूपी वराह भगवान् ने अवतरित होकर—उस शोकरूपी हिरण्याक्ष का वध कर अनायास ही बुद्धिरूपी पृथ्वी का उद्धार कर दिया। वाराह पुराण की पूरी कथा को केवल एक चौपाई में समेट कर ऐसा रूपक खड़ा किया गया है कि उस पर भरत-विवेक की विजय-पताका फहराने लगती है। पौराणिक कथा का सुन्दर उपयोग कोई सीखना चाहे तो कविकुल गुरु तुलसीदास से सीखे। मानस में ऐसे अनेक पौराणिक स्थल मिलेंगे, जिनका उपयोग गोस्वामीजीने स्वर्णमुद्रिका में हीरक-नग-जैसा किया है।

मानस में परंपरित रूपक के भी अनेकों उदाहरण मिलते हैं। जहाँ दूसरा आरोप पहले आरोप पर अवलंवित हो, वहाँ परंपरित रूपक होता है।[४७] केवल परंपरित रूपक के एक - दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

राम कथा सुन्दर करतारी । संसय बिहग उड़ावनि हारी ।। १.११४.१
प्रणवों पवन कुमार, खल वनपावक ज्ञानघन । १.१७
रामचरित चिंतामनि चारू । संत सुमति तिअ सुभग सिंगारू ।।
१.३२.१
जासु नाम भ्रम-तिमिर पतंगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ।।
१.११६.४

परंपरित रूपक अश्लिष्ट और श्लिष्ट दोनों प्रकार का हो सकता है। अश्लिष्ट परंपरित रूपक के अनेक उदाहरण दिये गये। श्लिष्ट परंपरित रूपक का एक उदाहरण अलम् होगा—

४६—२.२१५
४७—यत्र कस्यचिदारोपः परारोपकारणम् तत्र परम्परितम्। साहित्यदर्पण।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी।।
९.९२.७

मालारूप परंपरित रूपक—जहाँ ऐसे आरोपों की शृंखला दिखलाई पड़े—
मोह महा घनपटल प्रभंजन। संसय-बिपिन-अनल सुर रंजन।।
६.११५.२

कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाह सुहावन।।
राम रूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी।।
१.२६२.२-३

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू।।
१.२८५.१

हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू।।
पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू।।
जनरंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू।।
२.३२५ ६-८

गोस्वामी जी के रूपक-विधान का अध्ययन अन्य आलंकारिकों के रूपक-भेद के आधार पर किया जा सकता है। यह विवेचन अत्यंत विस्तृत हो जायगा, फिर भी गोस्वामी जी की रूपक-महिमा की हल्की झांकी दिखाने का लोभ संवरण न कर केवल दंडी और अप्पयदीक्षित कृत रूपक-भेदों के कुछ उदाहरण देकर संतोष कर रहे हैं।

दंडी के रूपक-भेद के आधार पर मानस से उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(१) समस्त रूपक—

बंदौं गुरुपद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
१.५ के बाद सोरठा

(२) असमस्त रूपक—

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू।।
राम भगति जहँ सुरसरि धारा। . . . . ।।
१.२.७-८ (पू)

(३) समस्त-व्यस्त रूपक—

महामोह तम पुंज, जासु बचन रबिकर निकर।
१.५

(४) सकल रूपक—

राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु।।
१.३१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(६) युक्त रूपक—

जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन ग्रहहिं पय, परिहरि बारि बिचार ।। १.६

(७) अयुक्त रूपक—

प्रगटेउ जहं रघुपति ससि चारु । बिस्व सुखद खल कमल तुसारु ।।
१.१६.५

(८) विशेषण रूपक—

बंदौं गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।
१.१.१

(९) विरुद्ध रूपक—

चाप स्रवा सर आहुति जानू । १.२८३.२

(१०) श्लिष्ट रूपक—

रावन सिर सरोज बन चारी । चलि रघुवीर सिलीमुख धारी ।।
६.९२.७

(११) उपमा रूपक—

राम नाम नर केसरी कनक कसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रह्लाद जिमि पालहिं दलि सुरसाल ।।
१.२७

(१२) व्यतिरेक रूपक—

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा । रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ।।
२.२०९.१

(१३) आक्षेप रूपक—

सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंकु ।
१.२३७

अप्पयदीक्षित ने रूपक के सर्वप्रथम अभेद और तादूप्य नाम से भेद किये । फिर इनमें प्रत्येक के तीन-तीन भेद किये[४८]-आधिक्य रूप, न्यूनत्व रूप तथा अनुभय रूप अर्थात् सम रूप । इन छहों रूपकों के एक-एक उदाहरण मानस से दिये जा रहे हैं—

(१) आधिक्य रूप अभेद रूपक—

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा । रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ।।
२.२०९.१

४८—विष्ययबभेदताद्रुप्यरंजनं विषयस्य यत्
रूपकं तन्त्रिधाधाक्यिन्यूनत्वानुभयोक्तिभिः । —कुवलयानन्द १७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(२) न्यूनत्व रूप अभेद रूपक—

कोक सोक प्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही।।
बैदेही मुख पटतर दीन्हें। होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हें।।

१.२३८ २-३

(३) अनुभय रूप अभेद रूपक—

प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपा सिंधु रघुबीर।।

२.२३७

(४) आधिक्य रूप तद्रूप रूपक—

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट वेष मुख पंच पुरारी।।
अपर देउ अस कोउ न आही। यह कबि सखी पटतरिय जाही।।
बय किसोर सुषमा सुदन स्याम गौर सुख धाम।।
अंग अंग वर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम।।

१.२२०.७-१०

(५) न्यूनत्व रूप रूपक—

जनमु सिंधु पुनि बंधु विषु, दिन मलीन सकलंकु।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंकु।।

१.२३७

(६) अनुभय रूप तद्रूप रूपक—

उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग।।

१.२५४

इस तरह अनेक काव्यशास्त्रियों के विभाजन के आधार पर केवल गोस्वामी जी द्वारा प्रयुक्त रूपकों का वर्गीकरण, विश्लेषण एवं सौंदर्य-निरूपण किया जाय, तो एक स्वतंत्र महाग्रंथ की आवश्यकता होगी। रामचरितमानस पूरा रूपक, इसके आरंभ में रूपक, मध्य में रूपक, अंत में रूपक, मानस में जिधर दृष्टि जाती है, उधर रूपकों की छटा दिखाई पड़ती है। ऐसे रूपक कम हैं, जहाँ गोस्वामी जी का केवल बुद्धि-विलास मालूम पड़े, अधिकांश रूपक तो उनकी कल्पनाशीलता, अनुभूति प्रवणता एवं कलात्मकता का त्रिवेणी-संगम बनकर पुनः-पुनः दर्शनीय एवं अवगाहनीय बन गये हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मानस के सरस प्रसंग | डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर

[मलयालम के भाषारामायण चंपू से तुलना सहित]

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भगवान रामचन्द्र की गाथा के क्षीरसागर का मंथन कर हमें रामचरितमानस का नवनीत दिया है। निःसन्देह भक्तिभावना इसका हीर है। मानसकार का मानस विरागपूर्ण जीवनकाल में भी अपना सहज विनोद और सहृदयता छोड़ नहीं सका था। ऐसा व्यक्तित्व उनके काल में भी अनिवार्यतः प्रतिबिम्बित हुआ है। कालेतर भूमिका में तुलसीदास का जो व्यक्तित्व था, वह कुछ रेखाओं में ही रचित हो सका है, रंग नहीं भर पाया है। फिर भी वह व्यक्तित्व उनकी विनोदक्षमता और संरसता का प्रतीक है। चार चना खाते हुए जीने और अध्ययन कर महान कवि बनने की साधना तुलसीदास के अनन्य पुरुषार्थ का प्रमाण है। इसके मूल में उनके हृदय की सरसता है, हर आफत व दुःख का सामना हँसते-हँसते करने की क्षमता है। जिस रत्नावली प्रसंग को लेकर तुलसी के उन्मद कामभाव की चर्चा होती है, उसके दूसरे पहलू पर विचार करने से उनकी अद्वितीय सरसता ही खुलती है। प्रेयसी रत्नावली के प्रति ऐसी ममता रखना कि उसे आँखों की ओट भी न होने दें, उनकी सरसता ही प्रमाणित करती है। उत्तम वेद, काव्यादि के अध्ययन से सुयोग्य युवक रामबोला को रत्नावली के पिता ने अपना दामाद वरण किया था। दामाद अगर हठी या स्वाभिमानी निकला कि पत्नी को उसने पीहर भी नहीं जाने दिया, तो उसमें जन्मजात दृढ़ आत्मसम्मान की भावना थी, पत्नी के प्रति अनन्य ममता भी। 'मानस' के सती-शंभु-संवाद के प्रसंग पर तुलसी ने अपने इस व्यवहार की सफाई शायद दी है।

मानसकार की सहृदयता एवं सरसता पहचानने से ही यशस्वी उपन्यासकार अमृतलाल नागर 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में तुलसी का बड़ा रोचक चित्र प्रस्तुत कर सके हैं। भक्तितत्व के पक्षपातियों की भौंहें चाहे टेढ़ी हो जाएँ, फिर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी नागरजी की कल्पना रमणीक है, हृदयहारी है। यह सहज मान्यता नागरजी जैसे विद्वान का ग्रंथ पढ़ने के बाद और भी दृढ़ होती है कि तुलसीदास कोरे नामजपी बाबा नहीं थे ; उनका हृदय सरस अमृत का स्रोत था। यों मानस के विविध पहलुओं पर जब कभी दृष्टि जाती है, तब कुवलयानन्द का प्रसिद्ध छन्द स्मरण हो आता है—**गजत्रातेति वृद्धाभिः। श्रीकांत इति यौवतैः। यथास्थितश्च बालभिः। दृष्टः शौरिः सकौतुकम्।** वृद्धाओं की नजर में मोक्षदायक भगवान शौरी युवतियों की दृष्टि में श्रीपति ठहरे। सरल बालाओं के लिए तो वे वही थे, जो दिखाई पड़ते थे। यों भक्तिप्रेमी मानसकार को परम भक्त बता सकते हैं, दार्शनिकगण परम दार्शनिक। साहित्यिक उन्हें श्रेष्ठ कवि भले ही कहें। परन्तु, वे सरस सहृदय भी हैं, जिनका मन पाठकों को मानवत्व से देवत्व तक उठाना चाहता है।

अब 'सरस' शब्द की व्याख्या अपेक्षित है। सरस का सामान्य अर्थ 'आनंद लेनेवाला' हो सकता है। सरसता में सौन्दर्यचेतना भी निहित है। छोटे-बड़े आनंददायक प्रसंगों से आनंद पाना एवं दूसरों के निर्दोष विनोद-व्यंग्य में भाग लेना, स्वच्छ एवं सरस हृदय के लिए ही संभव है। प्रसंग की सरसता पाठक-चित्त को प्रभावित करने में निहित है, जिसकी सीमा रेखाएँ खींचना कठिन है। वैसे रामचरितमानस के विषय में कहा जा सकता है कि दर्शन के जटिल तत्व तथा सूखे इतिवृत्त कथन जहाँ नहीं आते, मन को मोद देने वाले वचन जहाँ आते हैं, और वक्ता का हृदय हलका बनाते हैं, वहीं प्रसंग सरसता के हैं। सहृदयों की दृष्टि में तुलसी ने संपूर्ण मानस का विवेचन सरस ढंग से किया है। वे पाठकों को निर्गुण की जटिल ग्रन्थियों में उलझकर माथापच्ची करने पर मजबूर नहीं बनाते। साथ ही यह सरसता मर्यादित ही रहती है। वह रीतिकालीन कवियों की भाँति उद्दाम श्रृंगार के क्षेत्र में नहीं पहुंचती। वे सूरदास की तरह विरह की बारीकियों में भी नहीं जाते।

सीमित विस्तार के इस लेख में इस विषय की झलक ही मिल सकती है और उसी का प्रयत्न किया जा रहा है। मानस महाकाव्य-सदृश है। इसके प्रारम्भ में देव-वन्दनादि के पश्चात् तुलसीदासजी महाकाव्य-रूढ़ि के अनुसार संत-प्रशंसा एवं असंत-निन्दा पर आते हैं। असंत की व्यंग्य प्रशंसा में कवि की सरसता उमड़ आती है—

तेज कृसानु शेष महिषेसा। अध अवगुन धन धनी धनेसा।
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी।
उदय केतु सम हित सब ही के। कुंभकरन सम सोवत नीके।
परहित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरे हरस विषाद बसेरे।
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।

B—4

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परदोष को देखने में सहस्राक्षता एवं परहितघृत को नष्ट करने में मक्षिकात्व की कल्पना कितनी व्यंग्य मधुर है। व्यावहारिक जीवन में बुरे एवं कपटी लोगों के लिए ये अत्यंत उचित विशेषण देते हैं।

कथावस्तु के प्रारम्भिक खण्ड में उमाशंभु संवाद का प्रसंग मिलता है। यह प्रसंग पूर्णतः देवकथा से संबद्ध है और तुलसी भक्त हैं। तथापि कवि हृदय पात्रों से एकाकार बनकर हर प्रसंग पर मधुर व्यंग्य भी करते हैं। सीतावेष-धारिणी सती वनवासी विरही राम के सामने परीक्षार्थ जाती हैं, तो प्रभु उन्हें पहचान लेते हैं। वे प्रश्न करते हैं कि प्रभु महादेव कहाँ हैं और आप अकेली क्यों इस तरह वन में घूम रही हैं--

बोले विहसि रामु मृदु बानी
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह जिन्ह नामू।
केहउ बहोरि कहाँ वृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहि केहि हेतू ।।

राम के प्रश्न में उनका दिव्यत्व झलकता जरूर है, साथ ही उसमें निश्छल हास की भावना भी है।

रामावतार की पूर्वकथाओं में अन्यतम नारद-मोह-प्रसंग तुलसी की सरसता का ठोस प्रमाण है। यहाँ नारद की मानसिक चंचलता और उसके फलस्वरूप विष्णु से वरयाचना में व्यंग्य-सरसता प्रकट होती है। विरागी एवं ब्रह्मचारी नारदजी अत्यंत रूपवती कन्या को देख कर मोहित होते हैं--

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी । जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी।
जप तप कछु न होइ तेहि काला । हे विधि मिलइ कवन निधि बाला ।।

नारदजी अपनी दीनकथा विष्णु से कहते हैं—

अति आरति कहि कथा सुनाई । करहु कृपा करि होउ सहाई।
आपन रूप देहु प्रभु मोही । आन भाँति नहिं पावौं ओही ।।

प्रभु का उत्तर है :—

जेहि विधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, वचन न मृषा हमार ।।

तुलसी नारद की कामविवशता और दीनता देख कर हँस पड़ते हैं। भगवान के शब्दों में व्यंग्य है। रत्नावली पर मुग्ध तुलसी नारद के मन की दशा का अनुमान खूब कर सकते थे। विप्रवेशधारी रुद्रगणों के द्वारा नारद के वानरमुख के उपहास के प्रसंग पर भी तुलसी की सरसता झलकती है। किन्तु, नारद की प्रार्थना और भगवान के वरदान में जो चुटीला व्यंग्य है, वह इसमें नहीं है।

बालक राम अपने विराट रूप की झांकी मां को दिखाने के लिए जहाँ दो रूप धारण करते हैं, वह प्रसंग तुलसी की अपार भक्ति का प्रमाण तो अवश्य है, फिर भी इस भक्ति की अंतर्धारा में कवि की सरसता झांकती है। प्रभु की अलौकिकता

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के विषय में शक नहीं है। इससे बढ़कर प्यारी मां को चिढ़ाने, असंमजस में डालने और उसका दुगुना दुलार पाने की इच्छा नन्हें राम की मोहकता को बढ़ाती है। हमारे सामने प्यारे नन्हे राम को गोद में बिठाकर दुलारनेवाले सम्राट दशरथ और राजरानी कौशल्या प्रसन्न होते हैं। इस पर हम भी कवितावली के तुलसीदास की तरह मन ही मन प्रार्थना करते हैं :—

अवधेस के बालक चार सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरै।

आगे सीता-विवाह-प्रसंग आता है। यदि दरबारी विनोद-व्यंग्य तुलसी को प्रिय होता, तो वे कालिदास का अनुकरणकर प्रत्येक स्वयंवरार्थी राजा के इंगित, चेष्टा आदि की हंसी उड़ा सकते थे। लेकिन वे प्रभु-जानकी के मंगल-मिलन के लिए विशेष उत्सुक हैं। इसीलिए वे फुलवारी के राम-सीता-मिलन में पुरातन प्रीति का उभार दिखाते हैं। इस प्रसंग के सरस वचन हैं—

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्ही पलक कपाट सयानी।।

राम को सीता द्वारा आँख भर देखने का वर्णन इस ढंग से कहा गया है कि चतुर सीता ने राम को आँखों के जरिये हृदय में लाकर पलक-कपाट बन्द कर लिया; ताकि वे बाहर न चलें जायें। इसी प्रसंग के दूसरे वचन हैं—**पुनि आउब इहि बिरियाँ काली।** दशरथनन्दन पर मुग्ध सीता को ले चलने के लिए सखी उसे यह आश्वासन देती है कि कल फिर यहाँ आएंगी। कल भी गौरीपूजा होगी और इन राजकुमारों से तब भेंट करना। यहाँ व्यंग्य है कि सीता, हम तुम्हारा मर्म समझ गईं, मगर अब मां के पास चलो। काफी विलम्ब हो गया।

सीता-विवाह खण्ड में प्रसिद्ध परशुराम-लक्ष्मण संवाद भी आता है। तुलसीदास खूब मजा लेते हैं और लक्ष्मण के शब्दों में भृगुराम को आड़े हाथ लेते हैं :—

जौं पै कृपा जरिहि मुनि गाता। क्रोध भए तनु राख विधाता।।
नहि संतोष त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुःख सहहू।।

ये वचन जहाँ सामान्य कोटि के पाठकों को हंसा सकते हैं, वहाँ गंभीर पाठकों तथा भक्तों को कुछ हलके ही लग सकते हैं।

मानस के हृदय अयोध्याकाण्ड में अपेक्षाकृत गंभीर बातें ही अधिक हैं। आदर्श पारिवारिक संबन्धों एवं मानव-मन के द्वन्द्वों का चित्रण इस काण्ड में विशेष सफलता से हुआ है। अतः सरस विनोद के प्रसंग इसमें कम हैं। फिर भी मन्थरा-कैकेयी-संवाद में तुलसी मन्थरा के जरिये जिस स्वार्थमय चतुर ढंग से कैकेयी का मन कलुषित कराते हैं, वह उनकी सरसता का प्रमाण है। इसे चाहे लोक-व्यवहार-कुशलता कहा जाये, पर इसमें जो अचूक सरसता है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मन्थरा के प्रारंभिक कपट वचन सुनकर कैकेयी हँसी उड़ाती है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कानें खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि ।।

यों मन्थरा का वचन भी व्यंग्यपूर्ण है—

एकहिं बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ।।
फोरै जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रउरेहिं लागा ।।

सरसता का और एक बढ़िया उदाहरण राम की वनयात्रा के सिलसिले में केवट-बानी के प्रसंग पर मिलता है। प्रभु का नाव मांगना और उनके चरण धोने के लिए गुहराज का हठ करना—ये बातें अनेक रामकाव्यों में हैं। उन्हीं से तुलसी ने यह लिया है। तथापि इस विशेष प्रसंग पर तुलसी की सरसता तो निश्चित है। निषाद कहता है—

छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई।
तरनिउ मुनि धरनी होइ जाई । बार परइ मोरि नाव उड़ाई ।।

तुलसीदास हमारे सामने उस बेचारे मल्लाह का कल्पनाचित्र प्रस्तुत करते हैं, जो एक पत्नी को चार-पाँच सिक्कों से खिलाने-पिलाने में स्वयं असमर्थ है, तिसपर एक नयी पत्नी को घर ले जाकर नई विकट परिस्थिति का सामना करता है। पारिवारिक कलह का विनोदपक्ष यहाँ व्यंजित है।

आगे वनयात्रा के प्रसंग पर भोली ग्रामवासिनी स्त्रियों के साथ सीता का संवाद आत्मीयतापूर्ण और सरस है—

कोटि मनोज लजावनि हारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।
× × × ×
सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लखन, लघु देवर मोरे।
बहुरि बदनु बिधु आँचल ढांकी । पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि।
भई मुदित सब ग्राम बधूटी । रंकन्ह राम रासि जनु लूटीं ।।

ग्रामवासी स्त्रियों की मनोवैज्ञानिक कुतूहलवृत्ति पर तुलसी का विनोदपूर्ण व्यंग्य बिलकुल स्वच्छ व सहज है। लगता है, तुलसी भी उस वन में ग्रामवासी बने हुए सीताराम की अनुपम छवि का आनंद लूट रहे हैं। इस दृश्य में सीता के आदिशवितत्व की जगह कोमल रमणीतत्व झांकता है। यद्यपि यह प्रसंग अन्य रामकाव्यों में भी है, फिर भी तुलसी की कलम की खूबी इससे जरा भी कम नहीं होती।

अरण्यकाण्ड का सूर्पणखा-प्रसंग सभी रामकवियों को सरस विनोद का मौका दे सका है। तुलसीदास ने लौकिक व्यवहार पर अधिक ध्यान देते हुए शूर्पणखा को परम सुन्दरी बना दिया है। वह वाल्मीकि की शूर्पणखा के समान विकृत एवं भीषण वेष में अपनी झांकी नहीं देती। तुलसी की रुचिराकारा शूर्पणखा राम को कैसा प्रलोभन देती है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई । बोली बचन बहुत मुसुकाई ।
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ।।

अपने सौन्दर्य की प्रशंसा स्वयं करती शूर्पणखा का चित्रण तुलसी की सरसता का प्रमाण है। अगर वे सिर्फ वैराग्यधनी भक्त होते तो इतना सरस चित्रण क्यों करते ?

सरस होते हुए भी तुलसीदास की मर्यादावृत्ति अतिशय शृंगारिकता से उन्हें दूर रखती है। वरना सीता से कामी रावण की प्रार्थना का प्रसंग शृंगार की अभिव्यंजना का अनुपम प्रसंग है। इसे कवि ने अत्यंत संक्षिप्त कर दिया। किन्तु, शृंगारेतर कोटि की सरसता रावण के प्रति हनुमान के शब्दों में उभर आती है। हनुमान क्रोधी रावण से सरल, पर सरस ढंग से कहते हैं :—

खायउँ फल प्रभु लागी भूखा । कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा ।
सबकें देह परम प्रिय स्वामी । मारहिं मोहि कुमारग गामी ।
जिन्ह मोहि मारा तो मैं मारे ।

सुन्दरकाण्ड का लंकादहन ऐसा प्रसंग है जो सरसता एवं शब्द-सौठव का भंडार हो सकता है। किन्तु, मानस में यह प्रसंग अत्यंत संक्षिप्त रखा गया है। इसकी कमी तुलसीदास की कवितावली ने दूर की है।

उत्तरकाण्ड के कलियुग वर्णन में वर्णाश्रम-अंश के चित्रण में तुलसी की व्यंग्यप्रियता कुछ कुछ झलकती है। यहाँ लोक-व्यवहार का कथन ही है। फिर भी उक्त कथन में काफी सरसता है—

बहु दाम सँवारहिं धाम जती,
विषया हरि लीन्ह न रही विरती।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही।
कलि कौतुक तात न जात कही।
ससुरारि पिआरि लगीं जब तें।
रिपुरूप कुटुंब भए तब तें।

क्या यहाँ तुलसीदास रत्नावली पर अपनी आसक्ति की कटु आलोचना स्वयं नहीं कर रहे हैं ?

मानस का काकभुशुंडी-गरुड़-संवाद इसे अन्य रामायणों से भिन्न बनाता है। साथ ही कवि की सरसता इसमें प्रकट होती है।

मलयालम-साहित्य के रामकाव्यों से मानस की तुलना इस विशेष दृष्टि से अर्थात् सरस प्रसंगों की दृष्टि से करना निश्चय ही उपादेय है। मलयालम का सर्वप्रमुख रामकाव्य एषुत्तच्छनकृत अध्यात्मरामयणम् भक्ति एवं दर्शन का आगार है। चूँकि वह मुख्यतः संस्कृत के अध्यात्मरामायण का अनुवाद है, इसलिए

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसमें सरस प्रसंगों की विशेष योजना का प्रयास नहीं मिलता। अन्य जितने भी मलयालम रामकाव्य हैं, वे प्राय: वाल्मीकि रामायण के सारभूत हैं। इनके सरस प्रसंगों का अवतरण एवं विश्लेषण अवश्य हो सकते हैं। मगर छोटे लेख में यह संभव नहीं लगता। यहाँ मलयालम के प्रसिद्ध भाषारामायण चंपू के कुछ सरस प्रसंगों पर विचार करेंगे, जो कि हर दृष्टि से केरलीय प्रतिभा का विशेष प्रतीक है। यह ठीक है कि इसमें मौलिक अंश कम है और संस्कृत रामकाव्यों के अनुकरण या उद्धरण भरे पड़े हैं। फिर भी सरसता की योजना में कवि की चतुरता इससे बाधित नहीं होती।

मलयालम के रामकाव्यों की चर्चा का अर्थ मध्यकालीन मलयालम वाङ्मय की चर्चा है। प्रस्तुत युग का मलयालम वाङ्मय मणिप्रवाल भाषा का था। अर्थात् संस्कृत-प्रभाव से अतिशय प्रभावित भाषा थी। मणिप्रवाल कवियों में अधिकतर केरलीय ब्राह्मण थे, जिन्हें मलयालम में नंपूतिरी कहते हैं। वेदाध्ययन, शास्त्रों का पठन-पाठन, मंदिरों की पूजा, वैदिक क्रियाकलाप आदि इनके कार्यक्षेत्र थे। छन्दरचना, विशेषकर शृंगार-छंद की रचना-समस्यापूर्ति आदि इनके मनोरंजन थे। उनका जीवनक्रम इस छोटे से क्षेत्र में सीमित रहने के कारण इनके व्यवहार में वेद, पूजा, याग, दान-दक्षिणा, सूतक आदि से संबन्धित चर्चा की बहुतायत थी। ये शब्द काव्यों में भी खूब आते थे। केरलीयता इनमें घुलमिल गई थी, जिसके कारण ये अपने सभी काव्यों में केरलीय विनोद, केरलीय कथाजाल आदि अवश्य लाते थे। कथा चाहे पांडवों के हस्तिनापुर की हो, चाहे देवेन्द्र के स्वर्ग की, ये केरलीय कवि वहाँ कुछ केरलीय पात्रों को भी प्रस्तुत करते थे। यह विशेष तथ्य नंपियार के तुक्कल काव्यों में दृष्टिगत होता है और तुक्कलकाल मलयालम हास्य साहित्य के प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं। इस अतिशय केरलीयता के कारण काव्य की गंभीरता अवश्य कम हो गई है। फिर भी सरसता इससे जरूर बढ़ती है।

मलयालम के भाषारामायण चंपू और रामचरितमानस के सरस प्रसंगों की तुलना की भूमिका में और एक बात का भी उल्लेख जरूरी है। रामकथा में कुछ सामान्य प्रसंग ऐसे होते हैं, जिनमें सरसता प्रमुख है। इनका विस्तार अलग-अलग कवि अपने-अपने ढंग से करते हैं, यही फर्क है। दूसरे भिन्न-भिन्न कवि अपनी-अपनी पसंद के प्रसंगों पर सरसता की सर्जना कर लेते हैं। यह व्यक्तिगत रुचि एवं प्रतिभा की बात है।

भाषारामायणचंपू के रचयिता की तुलना मानसकार से एक हद तक ही हो सकती है। कारण यह कि जहाँ तुलसीदासजी मूलत: और पूर्णत: भक्तिमय हैं, वहाँ रामायणचंपूकार विशुद्ध कवि हैं। कलापक्ष की दृष्टि से रमणीय काव्य का सृजन ही उनका ध्येय रहा है। इसलिए सरसता की अभिव्यंजना में उन्हें पूरी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आजादी मिल सकी। मानसकार तो भक्ति के प्रभाव और दबाव के कारण बड़ी सावधानी से ही कदम आगे बढ़ाते हैं।

रामायणचंपूकार की दो खास प्रवृत्तियाँ उल्लेखनीय हैं—एक तो यह है कि जन्म-धर्म से वे केरलीय ब्राह्मण (नंपूतिरी) थे और नंपूतिरियों की सहज-सरस भावना उनमें भी भरी रही। दूसरी बात यह कि कवि की हैसियत से उन्हें तत्सम-प्रधान शब्दों से भरी मणिप्रवाल काव्यशैली विशेष प्रिय थी। उस पर उनका गजब का अधिकार था। इस मणिप्रवाल शैली में सानुप्रासता पद-पद पर होती है।

रामचंपूकाल में सबसे सरस प्रसंग सीता-विवाह का है। कवि सीता-विवाह का कौतुक देखने के लिए हर तरह के लोगों को मिथिला ले चलते हैं। भिन्न-भिन्न देशों के राजाओं को वहाँ पहुँचाकर वे उनका परिचय देते हैं। इस प्रसंग पर श्रीहर्षकृत नैषध काव्य का अनुकरण मिलता है। कवि केरल के वैदिकों, तान्त्रिकों और मांत्रिकों को भी मिथिला ले चलते हैं। कहाँ केरलीय कवि के समसामयिक नंपूतिरि गण और कहाँ सीता-विवाह का प्रकरण? कवि ने इस प्रसंग पर विनोद-व्यंग्य के लिए अनेक प्रकार के लोगों को मिथिला में पहुँचाया है। जैसे :—

"कोई दल दंभ भरा पालथी मारता प्रतिद्वन्द्वियों को चुनौती देता चल रहा है। कुछ दुबले-पतले कमजोरी के कारण लाठी टेके कदम-कदम बढ़ते हैं, तो रास्ते में जहाँ-तहाँ खाँसी के मारे सुस्ताते हैं। कुछ लोगों के मुँह एकदम पोपले हैं, पर वे मिष्ठान्न के लोभ से रास्ते में जरा-सी देर भी किये बिना भागे-भागे जाते हैं। कोई दान-दक्षिणा के लोभ से चले हैं, तो कोई दल सरस युवतीदल का आश्लेष सुख पाने की इच्छा से चल पड़ा है।" कवि अपने समानधर्मा एवं मित्र नंपूतिरियों का परस्पर विनोदी संवाद सुनाते हैं—

रास्ते पर मिलते ब्राह्मण आपस में प्रश्नोत्तर करते हैं—"हे शंकर! आप कब दक्खिन से आये? हे ब्रह्मदत्त! आप हमारे घर श्राद्ध पर क्यों नहीं पधारे?" उत्तर मिलता है—'अरे यह तो वासु है! पूरे दस साल के बाद तुम से भेंट हो रही है! मैं अनर्थ पर अनर्थ के मारे मर गया। चाचाजी का देहान्त हो चला! घर की दोनों कन्याओं का व्याह करा दिया तो परिवार बढ़ता ही गया! निर्वाह का चारा कोई नहीं रहा! ...."आदि॥

सीता-विवाह में शामिल होने के लिए केरल के मांत्रिक-दुर्मान्त्रिक भी जाते हैं। कवि इनकी हंसी खूब उड़ाते हैं कि ये कई तरह के झूठे मंत्र-कवचों के नाम बताते हुए दावा करते हैं कि इन मंत्र-तंत्रों से इष्ट-कल्याण की सिद्धि होगी। ये ढपोर-शंख समाज को धोखा देते फिरते हैं। इनके प्रचारित मंत्र हैं—

प्रतिभटविघटिनि विमतोच्चाटिनि

विश्ववशंकरि शत्रुभयंकरि

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वनितामोहिनि कनकावाहिनि
मन्मथ संग्रहंअनुभवबीजं
ज्वालामालिनि लीलाशालिनि
पंचउताक्षरि वंचनअक्षिणि ।"

कवि इनकी वेशभूषा एव अनुयात्री शिष्यगणों की भी परिहासपूर्ण झांकी दिखाते हैं। इन कपट मांत्रिकों की डींग का विस्तार से वर्णन हुआ है। इसी प्रकार वैद्यशास्त्र का ककहरा न जानने पर भी धन्वतरि का-सा दावा करनेवाले मूर्खराज वैद्य भी मिथिला की तरफ जाते हैं। ये अपने पास हर रोग को दवा रखने की डींग मारते हैं। केरल युग-युग से आयुर्वेद विद्या के लिए प्रसिद्ध रहा। अत: यह वर्णन सहज और व्यंगमधुर निकलता है। कवि की शब्दावली बड़ी सरस है :—

वातद्वेषिणि

पित्तविरोधिनि	कफविध्वंसिनि
कल्याणघृतं	धान्वन्तरघृतं
मायुष्यघृतं	मेदस्करघृत
मारोग्यघृतं	कारस्करघृत
मजरातैलं	दृष्टिरसायन
मर्शोनाशनं	आन्त्रकषायं

कालिदास के रघुवंश तथा श्रीहर्ष के नैषधचरित का अनुकरण कर भाषा-रामायण चंपूकार ने सीता का हाथ मांगनेवाले विविध देशों के नरपतियों को मिथिला में एकत्र किया। यही नहीं, एक "दंडक" में प्रत्येक देश के राजा का धनुर्धारण प्रयत्न और असफलता व्यंग्य-सरस ढंग से चित्रित भी है। कवि के व्यंग्य में सानुप्रासता का विशेष योग है। अत: इस प्रसंग की व्यंग्यमयता अनुवाद में नष्ट हो जाती है। तथापि प्रस्तुत दंडक के थोड़े से अंश अनूदित रूप में प्रस्तुत करूँ :—

"अब विपुलदोश्चंडिभा पांडयधात्रीश्वर प्रौढ़ गर्व से माणिक्यपीठ से उठे। चाप को देखा, लोकत्रयस्वामी मन्मथारि के उदग्र प्रभाव के बारे में निरूपण किया। इसके बाद पीछे मुड़े और धीरे से अपनी जगह पर बैठ गये। इसके बाद मंगल्या-धामा कलिंग ने स्वयं चंडदोर्दंड शक्ति से पुराराति का कोदंड किसी प्रकार उठाकर लज्जाविनम्र आनन से धीरे वन्दन करते-करते नीचे रखा। कार्मुकस्पर्शमात्र से कर्णाटराज मूर्च्छित हो मुँह के बल गिर पड़े। भय से मद्राधिराज द्रवण (पला-यन) किया। कश्मीरनाथ कश्मल दशा को प्राप्त हुए. . . .आदि।"

स्पष्ट है कि इस प्रसंग का विनोद कवि की सूक्ष्म और सानुप्रास शब्दयोजना पर ही निर्भर है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आगे धनुर्भंग या परशुराम-संवाद के प्रसंग पर भी कवि ने खास व्यंग्य वर्णन प्रस्तुत किया है। परशुराम-राम-संवाद में विचार-संघर्ष भी जरूर है। अन्य रामायणों की तरह इसमें भी परशुराम के हाथों से वैष्णव धनुष लेकर रामचन्द्र उसका संधान करते हैं। परशुराम हार मानकर विदा लेकर चले जाते हैं।

अयोध्याकाण्ड के रामाभिषेक प्रस्ताव के प्रसंग पर भी रामायण चंपूकार अपने चिरपरिचित केरलीय जनों के राजतिलक के पुण्य-पर्व में भाग लेते दिखाते हैं। चूंकि यह पर्व एक महत्वपूर्ण समारोह है, इसलिए सभी लोग इसमें सम्मिलित होना चाहते हैं। शास्त्रार्थ के विकटक्षरों का उच्चारण करते चलनेवाले न्याय-शास्त्रकार आते हैं—

"....जातिव्यक्ति स्तंभं कुंभं घटवटलूता——
तंतुघुणाक्षर गोशब्दङ्कु
इतविय डित्थ डवित्थ कूट्टवुम्
इत्तरं उच्चैर उद्घोषिच्चुम....

मानना पड़ता है, कि इस प्रसंग का विस्तार करते-करते कवि गंभीरता से हाथ धो बैठते हैं——कहीं-कहीं श्रृंगारातिरेक की नौबत तक आती है।

अरण्यकाण्ड के दण्डकवन प्रसंग पर शूर्पणखागमन रामकाव्य का आदर्श सरस प्रसंग है। इस आगमन की भूमिका के रूप में दंडकवन का वर्णन किया जाता है। मानसकार ने अत्यंत विनय एवं श्रद्धा से ही इस प्रसंग का वर्णन किया है। चंपूकार के दंडकवन में एक जगह अग्निहोत्री मुनि शिष्यों को याग-साधन लाने का आदेश देते हैं। दूसरी जगह शिकारी लोग तीर-भाला-कुल्हाड़ी वगैरह लिये शिकार की तलाश में घूमते हैं। अन्यत्र प्रकृति का चित्र हृदय को हर लेता है। इस भूमिका में शूर्पणखा का प्रवेश होता है। वह ललितारूप विलास विशेष लिये प्रवेश करती है। जहाँ अन्य कवियों ने शूर्पणखा के माया-सौन्दर्य का उल्लेख भर किया वहाँ चंपूकार ने उसकी रूपच्छटा का सांगोपांग वर्णन अनुपम ढंग से किया है——मानो वह रंभा को भी अपनी चरणदासी बना ले सकती थी।

सुन्दरकाण्ड में सीता के प्रति रावण की प्रणय-प्रार्थना कविता को श्रृंगार-प्रधानता के कारण यदि माधुरी देती है, तो लंकादहन में रावणानुचरों की हास्यास्पद दुर्दशा का वर्णन पढ़कर पाठकों को सहज हंसी आती है। रामायण-चंपूकार ने रावण-सीता-संवाद के प्रसंग पर रावण के मुंह से राम की निर्धनता, विवशता और मामूली काम पर शेखी पर फटकार सुनाया है——

राज्याच्च्युतमसिद्धार्थं रामं परिमितायुषं
कैर्गुणैरनुरक्तासि मूढे पंडितमानिनम् ।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"राम एक कपटी मुनि की गठरी ढोते हुए साथ चला और उनसे छलप्रपंच सीख गया था। उसी धूर्त ने पथ पर विधवा कृशा तारका का वध किया। बद-नाम स्त्री (अहल्या) को यश दिया। आगे चिरपुराण और जीर्णशीर्ण धनुष को तोड़कर तुम्हें उसने पाया।" यह संवाद अतिशय दीर्घ है; शृंगार रस प्रधान भी। इस प्रसंग पर पहले कई पद्य हैं। पद्यों के बाद गद्यमय खण्ड आता है। उसमें वर्णन की सरसता पद्य प्रसंग से भी अधिक निखरी हुई है। सालं-कारता और आनुप्रासता देखते ही बनती है।

लंकादहन में लंकानिवासियों की व्याकुलता, स्वर्ण-नगरी का तरल द्रवरूप में परिवर्तन, नगर का क्रन्दन-कोलाहल, रावण का दुःख आदि वर्ण्य विषय हैं, जो प्रत्येक रामकाव्य में विस्तार से वर्णन किये जाते हैं। मानसकार ने संक्षेप में ही इसका चित्र प्रस्तुत किया। बाद में अपने कवितावली रामायण में उन्होंने इसकी कमी को दूर किया। रामायणचंपूकार शब्दाडंबर-प्रधान वर्णन में बड़े निपुण ठहरे। अतएव लंका-निवासियों की व्याकुलता आदि का चित्रण उन्होंने अत्यंत सरसता से किया है। रसानुगुण शब्दरचना का उदाहरण देने के लिए एक प्रसंग उद्धृत किया जा सकता है--

तां पिटिपेट्टु धरित्रि कुलुंङि --
प्पांजु तिरिंजु करंजीहुं चिलर
करिकुलनिनदं कुहचनभागे
मषुकिन तुरगनिनादं कुहचन
भयपरा शिशुजना रोदं कुहचन
करयुं केलिमृगौथं कुहचना
तीयिल मरिञ्चु किउक्कुन्नू चिलर
नदिकलिल ओडिञ्चाडुन्नू चिलर
पत्तु दिगंने पायुन्नू चिलर
पात्रं केट्टियेडुक्कुन्नू चिलर
पोन्नुम पणवुं ओलिक्कुन्नू चिलर।

अग्निकांड के कारण धरती डोल उठी। भागते-दौड़ते रोने विलाप करने-वाले हाथियों का झुंड एक तरफ है। दूसरी तरफ हिनहिनाते घोड़ों की आवाज है। एक तरफ भयभीत शिशुजन का रोदन है, तो दूसरी ओर रोते क्रीड़ारत मृगजाल का रुदन है। कुछ लोग आग में पड़े झुलस गये हैं। दूसरे नदियों के जल में कूदकर जान बचाने की कोशिश में हैं। कुछ लोग बेतहाशा दसों दिशाओं में भाग रहे हैं। कोई इस व्याकुलता की घड़ी में भी बरतन-भांड़े की चिंता में हैं, तो अन्य लोगों को धन-दौलत छिपा लेने की धुन है। अग्निकांड में भी नीच स्वार्थता का दृश्य कवि दिखाते हैं। यहाँ सरसता के साथ ही साथ व्यंग्य भी छिपा है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लंकाकांड में सरसता का प्रसंग रावणवध से आनन्दित वानरों ; राक्षसों के चित्रण में मिल सकता है। राम और सीता को अयोध्या ले आने की व्यग्रता के कारण तुलसी ने वानरों तथा राक्षसों के आनंद का विशेष विस्तृत वर्णन नहीं किया है। रामायणचंपूकार की इच्छा हो रही है कि दुष्ट रावण से मुक्ति पाने का आनन्द अवश्य चित्रित करूँ। इसलिए वे इस प्रसंग का भी चित्रण करते हैं — "बहुत दिनों के बाद पवन अब बहने लगा। इन्द्र ने हरित छाया का वितान ताना। पावक ने ऋचासहित याग का आनंद पाया। बृहस्पति ने सभा में ग्रंथ फलक सामने रखकर अध्ययन-वाचन किया। राक्षसों द्वारा मलिन न होने के कारण स्वच्छ बहती मंदाकिनी मन्दपवन की हिलोरों से तरंगित हो चली।" ······यह प्रकरण भी विशेष दीर्घ है।

सहजात सरसता, व्यंग्यप्रियता, शृंगार रस की उन्मुखता आदि अनेक गुणों से युक्त रामायणचंपू में हम केरल की विशेष छवि को अंकित पाते हैं। इतनी केरलीयता आगे या पीछे के अन्य किसी केरलीय रामकाव्य में नहीं मिलती। सरसता एवं व्यंग्यमधुरता दोनों विशेषताएँ श्लाघनीय अवश्य हैं। सामान्य सरस पाठक को यह प्रिय भी लगती हैं। किन्तु मानसकार जैसे परम भागवत की दृष्टि में अतिशय लौकिक सरसता भागवत्कथा की गंभीरता में बाधक है। प्रभु की कथा में खिलवाड़ का स्थान नहीं हो सकता। यही कारण है कि रामचरितमानस में धन्य-तुलसीदासजी अतिशय गंभीर रहे। इस गंभीरता ने उनकी रचना को विश्वोत्तर कोटि पर पहुँचाया है। भाषा रामायणचंपू तो साहित्य के रसिक पाठकों की चीज भर रह गई है। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रीति पुरातन लखै न कोई | प्रो० कल्याणमल लोढ़ा

श्रीराम-कथा के विकास से संबंधित प्रसंगों में राम और सीता का धनुर्भंग और स्वयंवर-पूर्व पूर्व-राग वर्णन जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही विविध भी। श्रीरामचरितमानस के अन्यतम प्रसंगों में पुष्पवाटिका प्रकरण की गणना की जाती है। इसके अनेक कारण हैं। जहाँ एक ओर इसमें तुलसी की रचनात्मक संचेतना और परिपक्वता का प्रमाण मिलता है, वहाँ दूसरी ओर राम-कथा के परम्परागत अनुक्रम और विकास में उनकी मौलिक दृष्टि का भी। रामभक्ति परम्परा में रसिक समाज के अन्तर्गत इसे शृंगार-युद्ध रहस्य[1] गिना जाता है तो रस-विधान की दृष्टि से प्रत्यक्षानुराग का उत्कृष्ट और मर्यादित निरूपण। भक्ति रस की दिव्य रति की तीव्रतम स्थिति का इसमें चित्रण हुआ है—अनुराग की निर्विषयक स्थिति और द्रवीभूत अवस्था का यह श्रेष्ठ उदाहरण है। इन सबसे परे तुलसीदास ने पुष्पवाटिका प्रकरण में राम और सीता के अतीन्द्रिय सौन्दर्य का निरूपण करते हुए, उसे आध्यात्मिक अर्थ और भूमिका दी है, जो पूर्ववर्ती राम कथा साहित्य में अनुपलब्ध है। इन दृष्टियों से हमें तुलसी की चयन और परिष्करण शक्ति का प्रमाण मिलता है, मौलिक सूझ-बूझ का और निगमागम होते हुए भी, कथा प्रबंध की विचित्रता का। श्रीरामचरित मानस के अतिरिक्त गीतावली के दो पदों में भी तुलसीदास ने पुष्प वाटिका प्रसंग का वर्णन किया है, पर यह अत्यन्त संक्षेप में है[2]। वाल्मीकीय रामायण में स्वयंवर-पूर्व मिलन का कोई वर्णन नहीं है। वाल्मीकि की कथा-संघटना में इसका औचित्य भी नहीं था। वाल्मीकि ने सीता को 'वीर्य शुल्का'[3] कहा है। अयोनिजा सीता के लिए जनक की प्रतिज्ञा थी :

वीर्य शुल्केतिमे कन्या स्थापितेमयोनिजा।
भूतलादुत्थियां तां वर्धमानां ममात्मजाम॥

× × ×

वीर्य शुल्केति भगवन्न ददामि सुतामहम :

वा० रा० १-६६ १४-१५-१७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाल्मीकि ने बार-बार सीता को 'वीर्य-शुल्का' कहा है। जनक को इस प्रतिज्ञा के लिए उन्हें कष्ट भी उठाने पड़े। आक्रामक राजाओं से युद्ध हुआ, पर वे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे। इस प्रसंग में सीतोचित मर्यादा के निर्वहण में पूर्वराग का वर्णन या राम का प्रत्यक्ष दर्शन और प्रेम-नीति-सम्मत होता और न विवेक पूर्ण ही। वाल्मीकि की दृष्टि इसी से केवल धनुर्भंग पर ही केन्द्रित रही। कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुंतल' में दुष्यन्त और शकुंतला के पूर्वराग का अनुपम वर्णन किया है, पर 'रघुवंश' में राम और जानकी के प्रसंग में इसे टाल जाते हैं। 'रघुवंश' में जनक अपनी प्रतिज्ञा पर पश्चाताप करते हुए विश्वामित्र से कहते हैं, **स्वविचिनत्य च धनुर्दुरानमं पीडितो दुहितृशुल्क संस्थया** (रघुवंश-११-३८) यहाँ न स्वयंवर का वर्णन है और न पूर्वराग का। अध्यात्मरामायण, अद्भुतरामायण, आनन्दरामायण आदि किसी ग्रन्थ में राम और सीता के पूर्वराग का कोई वर्णन नहीं है। यही नहीं महाभारत एवं जैनरामायणों में भी नहीं। संस्कृत के लिखित साहित्य में राम और सीता के पूर्वराग का वर्णन मिलता है। डा० क़ामिल बुल्के के अनुसार 'आठवीं शताब्दी ई० से लेकर विवाह के पूर्व राम तथा सीता के पारस्परिक आकर्षण और प्रेम का उल्लेख किया गया है, जिनमें भवभूति कृत 'महावीर चरित', कुमारदास कृत 'जानकी हरण', अद्वैत कवि कृत 'राघवोल्लास', हस्तिमल्ल कृत 'मैथिली कल्याण' और जयदेव का 'प्रसन्न राघव' मुख्य है।[४] भवभूति ने 'महावीर चरित' में (प्रथम अंक:) विश्वामित्र के आश्रम में राम-सीता और लक्ष्मण-उर्मिला के प्रत्यक्ष मिलन और पूर्वानुराग का वर्णन किया है, पर यह पूर्व राग कथा-प्रसंग में आरोपित और अस्वाभाविक लगता है। कुमारदास कृत 'जानकी हरण' में राम-सीता के प्रणय का वर्णन उपलब्ध होता है, पर धनुर्यज्ञ के पश्चात् होने से उसे पूर्व राग की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

चक्रीयकार कर्णान्तावतंसितनावद्युतिः।
तद्दाशरथिरादाय सीता क्रयधनं धनुः॥
ततस्त्रासकरो नादस्याप भंग समुद्भवः।
दिशः ससर्प रामाज्य यशोघोषेणडिण्डिमः॥

जा० ह० ६-४७-४८:

विवाहोपरान्त किया गया प्रणय या राग-वर्णन पूर्वराग से भिन्न है। हस्तिमल्ल का 'मैथिली परिणय', श्रृंगारात्मक नाटक है। पूर्वराग की दृष्टि से यह एक प्रमुख रचना है। पहली बार राम और सीता कामदेव के मंदिर में मिलते हैं और एक दूसरे के प्रेम में विभोर हो जाते हैं। परवर्ती अंक में पुनः वे 'माधवी वन' में मिलते हैं। इसके अनन्तर सीता का अभिसारिका के रूप में चित्रण हुआ है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस नाटक में राम और सीता का पूर्वराग-वर्णन लौकिक श्रृंगार की दृष्टि से किया गया है, जिसमें चारित्रिक औदात्य का नितान्त अभाव है। 'राघवोल्लास' में राम-सीता के पूर्वानुराग का वर्णन अवश्य मिलता है, पर उसमें भी गंभीरता और औचित्य का प्राय: अभाव है। संस्कृत नाटकों में जयदेव कृत 'प्रसन्न राघव' में वस्तु संघटना की दृष्टि से 'वाटिका प्रसंग' की उद्‌भावना है। डा० रमाशंकर त्रिपाठी ने जयदेव का समय तेरहवीं शताब्दी के लगभग माना है। : (प्रसन्न राघव: प्राक्कथन)। 'प्रसन्न राघव' के दूसरे अंक में विष्कंभक के पश्चात् राम सीता के वाटिका-मिलन में पूर्व राग का वर्णन है। राम प्रारम्भ से लक्ष्मण से 'वत्स लक्ष्मण'। 'पश्य पश्यारामरमणीयकम्' कहकर परम रम्य वाटिका की ओर संकेत करते हैं। इसी वाटिका में चंडिकायतन में पूजा के हेतु सीता आती हैं और राम परस्त्री शंकाऽपि संकोचाय रघूणाम् कहकर अपनी मर्यादा और शील का परिचय देते हैं। सीता के रूप-वर्णन के अनन्तर सखि के 'अनवद्यङ्गि' 'निष्कलंक अंगोंवाली' कहने पर राम 'सर्वानवधांगीति' : 'सम्पूर्ण निष्कलंक ! अंगों वाली' कहते हैं। जयदेव ने सीता की वय: संधि का वर्णन किया है। लक्ष्मण को पहले देखकर उसे उर्मिला का स्मरण होता है और उसी प्रकार लक्ष्मण को सीता-दर्शन पर सुमित्रा का। सीता राम को देखने के लिए आम्रवृक्ष का बहाना करके लौटती हैं। राम भी उसके पुन: लौटने पर प्रसन्न होते हैं। सीता के रूप-वर्णन में जयदेव की श्रृंगार-भावना ही प्रमुख है। राम और सीता लौकिक नायक और नायिका हैं। नाटकीय भूमिका पर श्रृंगार रस के शास्त्रीय अनुमोदन के लिए ही पूर्व राग की अवतारणा नाटककार ने की है। सीता राम को नयनाञ्चलेन देखती है और उसके कटाक्ष पर राम कहते हैं—

'सर्वस्वं नव यौवनस्य भवनं भोगस्य भाग्यं दृशां
सौभाग्यं मदविभ्रमस्य जगतः सारं फलं जन्मनः
साकूतं कुसुमायुधस्य हृदयं रामस्य तत्वं रतेः
श्रृंगारस्य रहस्यमुत्पल दृशस्तत्किंचिदालोकितम् ।।

प्र० रा० २२६

इस प्रकार हम देखते हैं कि राम और सीता के पूर्वराग का प्रसंग संस्कृत के नाटक साहित्य में ही प्राय: प्राप्त होता है, उसके धार्मिक साहित्य में नहीं। 'प्रसन्न राघव' में इसका वर्णन विशद रूप से किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रीरामचरितमानस के पुष्पवाटिका प्रकरण पर 'प्रसन्न राघव' का प्रभाव, या अनुसरण, स्वीकार किया है, पर, जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे यह केवल बाह्य प्रसंग-साम्य है, प्रभाव या अनुसरण नहीं। दोनों का वर्णन मूलत: एक दूसरे के निकट होने की अपेक्षा बहुत दूर है और असमान।

हिन्दीतर राम-साहित्य में तमिष की कंबरामायण के अतिरिक्त यह प्रसंग

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुपलब्ध है। कृतिवास में इसका कोई वर्णन नहीं है। मलयालम के रामचरितम् और एषुतच्छन कृत अध्यात्म रामायण में भी यह प्रसंग नहीं है। तेलगु की रंगनाथ और भास्कर रामायण में भी इसका कोई उल्लेख नहीं है। गुजराती, मराठी, असमिया, उड़िया में भी इसका अभाव है। बौद्ध जातकों और जैन रामकथा परम्परा में भी पूर्व राग का कोई वर्णन नहीं। स्याम देश के रामकियेन में, (१६ वीं० ई०) राम और सीता के पूर्वराग का उल्लेख डा० कामिल बुल्के ने किया है, जिसमें राम मिथिला पहुंचकर सीता को महल के झरोखे से देखते हैं और फलस्वरूप दोनों में प्रेम उत्पन्न हो जाता है। तमिष की कंब रामायण में पूर्वराग का विशद वर्णन मिलता है। श्री पी० आर० शर्मा ने श्री बी० वी० एम० अय्यर और टी० चिदम्बरनाथ मुद्दलयार के आधार पर कंबन का समय नवीं और दसवीं शताब्दी के बीच माना है।[1] भारत सरकार द्वारा प्रसारित डाकटिकट में भी यही समय दिया गया है। कुछ आलोचक कंब का समय १२ वीं शताब्दी के लगभग मानते हैं। तमिष साहित्य में कंबन को 'कवि चक्रवर्ती' कहा जाता है। कंबन राम और सीता को विष्णु और लक्ष्मी का अवतार गिनते थे। कंबरामायण २-१०-३९: बालकाँड के दसवें सर्ग 'मिथिलापुरिष्पटलम्' में कंबन ने राम और सीता के पूर्व राम का वर्णन किया है। मिथिला में राम और लक्ष्मण कन्या-महल पर खड़ी सीता को देखते हैं और कहते हैं कि दिव्य सौन्दर्य वाली यह कन्या अवश्य ही अयोनिजा होगी। देखते ही दोनों में प्रेमाकर्षण होता है——

'नायक ने निर्निमेष निहारा।
उसने भी निमि बिना निहारा।।

कं० रा० १-१-३५

सीता राम के 'सगुण रूप' को आंशिक रूप से ही देख सकी——इसी प्रकार राम भी सीता के लावण्य को पूर्णतः नहीं देख पाये। सीता राम से उसी क्षण मिलना चाहती हैं, पर मिल नहीं पाती। इसके बाद काम-व्यथा से पीड़ित और चंचल सीता का वर्णन कवि ने किया है। रात्रि में प्रलाप करती हुई सीता विरह में राम का स्मरण करती हैं। इधर विश्वामित्र के साथ आश्रम लौटने पर राम भी सीता के सौन्दर्य और स्मरण में डूब जाते हैं। उन्हें सीता की तुलना में चन्द्रमा श्रीहीन लगता है। आठ छन्दों में वर्णित यह सौन्दर्य-चित्रण तमिष साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है। राम भी रातभर काम से व्यथित रहते हैं। प्रातःकाल राम के (लक्ष्मण एवं विश्वामित्र के साथ यज्ञशाला में) धनुष तोड़ने पर स्वयंवर का वर्णन नहीं है, विरह में डूबी सीता को उसकी सखि इसकी सूचना देती है और सीता आनन्द-विभोर हो जाती है।

कंब द्वारा वर्णित यह पूर्वराग प्रसंग अनेक दृष्टियों से मौलिक और महत्वपूर्ण है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में यह प्रसंग पहली बार विशद रूप से इसमें

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उल्लिखित हुआ है। कवि ने राम-सीता के पारस्परिक आकर्षण, सौन्दर्य और विरह का निःसंकोच वर्णन किया है। राम और सीता के अवतार में विश्वास रखते हुए भी कंब ने दोनों के विरह वर्णन में पूर्ण स्वतन्त्रता बरती है। कुछ विद्वानों का विचार है कि तुलसीदास के पुष्पवाटिका प्रकरण पर 'प्रसन्न-राघव' से अधिक कंब का प्रभाव है। अपनी दक्षिण यात्रा के समय वे सम्भवतः कंब रामायण से परिचित हुए होंगे। ऐसी किंवदन्ती है कि दक्षिण के भक्त कवि तथा उत्तर में कंब रामायण के प्रचारक श्री कुमारगुरु स्वामिकल काशी में इस रामायण का प्रवचन हिन्दी में करते थे। तुलसी वहीं उनके सम्पर्क में आये। डा० उ० वे० स्वामीनाथ एय्यर, श्री श्रीनिवासाचार्य और डा० वी० राघवन भी तुलसी पर कंब का प्रभाव स्वीकार करते हैं।[६]

कंब रामायण पर तमिष संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव था। तोल्लकापियर ने अपने ग्रन्थ 'तालकाप्पियम्' में 'गुप्त प्रेम' और 'पवित्र प्रेम' का वर्णन किया है। पूर्वराग का ही दूसरा नाम गुप्त प्रेम है। तमिष रीति के अनुसार वैवाहिक प्रेम का बीजारोपण नायक-नायिका में 'गुप्त प्रेम' से होना धर्मसम्मत है। संयोगवशात् एक दूसरे को देखकर वे प्रेम में लीन हो जाते हैं। तमिष वेद 'तिरुक्कुरल' में भी काम के दो भागों में 'गुप्त प्रेम' और 'पवित्र प्रेम' का वर्णन मिलता है। वहाँ भी गुप्त प्रेम ही पूर्वानुराग है, जिसका सूक्ष्म वर्णन तिरुवल्लुवर ने किया है। यह गुप्त प्रेम ही विवाह का आधार है। तमिष संस्कृति की इस परम्परा से प्रभावित होकर ही कंब ने अपनी रामायण में राम और सीता के गुप्त प्रेम का वर्णन किया था।

इस प्रकार श्रीरामचरितमानस के पूर्व ग्रन्थों में 'कंब रामायण' और 'प्रसन्न राघव' ही ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें राम-सीता के पूर्वराग का विशद वर्णन उपलब्ध होता है। यदि हम तुलसीदास के पुष्प-वाटिका-प्रकरण पर गंभीरता से विचार करें तो यह सप्रमाण स्पष्ट हो जायेगा कि उनका यह प्रकरण अपने अंतरंग विधान में पूर्णतः स्वतंत्र और मौलिक है। तुलसी की सर्वाधिक विशेषता उनकी चयन और परिष्करण शक्ति है। परम्परा से प्राप्त राम कथा के कई प्रसंगों में उन्होंने मूलभूत परिवर्तन किए और उन्हें मनोनुकूल एवं प्रयोजन-सिद्ध किया। पुष्प वाटिका प्रकरण भी इनमें एक है। इसकी विशेषताएं हैं—औचित्यपूर्ण कथा-संघटना, संश्लिष्टता, संयतता और सूक्ष्मता। 'वीर्य शुल्का' सीता के पूर्वराग का औचित्य उन्होंने नारद वचन के स्मरण से और प्रीति पुरातन लखै न कोई के भाव से कर दिया। राम भी सीता को देखकर आश्वस्त हो कहते हैं—

रघुबंसिन को सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरे न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु पर नारी न हेरी॥

उनके दक्षिण अंग फड़क कर शुभ सूचना दे रहे है। जहाँ सीता का पूर्वराग सखी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वारा वर्णित राम के सौन्दर्य के 'श्रवण' से प्रारम्भ होता है, वहाँ राम का सीता के प्रत्यक्ष संदर्शन से। दोनों मन में उपजी 'पुरातन और पुनीत प्रीत' का अनुभव करते हैं (द्रष्टव्य : मनु: शतरूपा प्रसंग:) इस प्रकार तुलसी ने बालमीकि की 'वीर्य शुल्का' सीता के पूर्वराग का औचित्य सिद्ध कर उसका निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त पुष्प-वाटिका प्रकरण से पूर्व राम की अतुलनीय शोभा से मिथिला का समस्त जन-समाज अभिभूत होकर कहने लगा था—

जेहि विरंचि रचि सीय संवारी। तेहि स्यामल बर रचेउ बिचारी।।

इसी से 'तो जानकिहि मिलिहि वर एहू' 'का उन्हें विश्वास था। पुरवासियों के इस विश्वास की भूमिका में प्रतिफलित राम और सीता का पूर्वराग अधिक उचित और सार्थक हो जाता है, जिसकी अंतिम संपुष्टि जगदम्बा द्वारा 'खसी माल मूरति मुसकानी' में होता है।

कंब और जयदेव के पूर्वराग वर्णन से तुलसी का पुष्पवाटिका प्रसंग भिन्न है। जहाँ कंब में विवाह के पूर्व केवल एक बार राम और सीता का प्रत्यक्ष संदर्शन होता है, वहाँ तुलसीदास में दो बार, पुष्पवाटिका और स्वयंवर में। कंब में न तो स्वयंवर का वर्णन है और न गिरजा पूजन का प्रसंग ही। कंब में राम और लक्ष्मण का सीता के संबंध में किसी प्रकार का कोई वार्तालाप नहीं है। 'प्रसन्न राघव' की भांति तुलसी ने लौकिक श्रृंगार का न तो चित्रण किया है और न राम के मुख से वाटिका में ही सीता को 'कथं नयन पथमति क्रान्तैव कांता' कहलाया है। 'प्रसन्न राघव' में सीता की परिचारिका (सखी नहीं) उसकी श्रृंगार भावना में सहायक होती है। तुलसी ने सखी के द्वारा केवल राम के सौन्दर्य का वर्णन और सीता पर उसके प्रभाव की नाटकीय प्रस्तुति की है। जयदेव ने गिरिजापूजन और वर प्राप्ति का भी कोई उल्लेख नहीं किया। वहाँ तो सारा चित्रण श्रृंगार रस के विभिन्न उपादनों को दृष्टि में रखकर नाटकीय उपयुक्तता के संदर्भ में किया गया है। इस दृष्टि से तुलसीदास का यह पूर्वराग प्रसंग न किसी का अनुकरण है और न अपहरण।

अब हम तुलसी के पूर्वराग के विकास के धरातल देखें।

पूर्वार्द्ध :

१—'समय जानि' पूजा प्रसून लेने राम और लक्ष्मण का भूप-बाग की ओर जाना और 'परमरम्य आरामु' भूप-बाग का वर्णन-वसन्त ऋतु और उसका सौन्दर्य।

२—गिरिजागृह में सखियों सहित सीता का आगमन, गिरिजापूजन और 'निज अनुरूप सुभग वर' माँगना।

३—एक सखि का राम-लक्ष्मण को देखकर 'प्रेम बिवस' होना और उनका सौन्दर्य वर्णन।

B–5

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्याम गौर किमि कहंऊ बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ।।

४—सीता के हृदय में 'श्रवण' से 'अति उत्कंठा' का होना और सखी का कहना ।

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी, कीन्हें स्वबस नगर नर नारी ।

इस पर 'दर्शन' के लिए सीता के अकुलाते लोचन' और नारद वचन के स्मरण से 'पुनीत प्रीति' का प्रादुर्भाव ।

उत्तरार्द्ध :

१—राम द्वारा काम की दुन्दुभिः (कंकन, किंकिनि और नूपुर) का लक्ष्मण को संकेत—और 'मनसा विस्व विजय कहं कीन्हीं' का उल्लेख ।

२—राम का सीता को देखना और 'सिय मुख ससि भे नयन चकोरा' होना । सीता का सौन्दर्य-वर्णन 'सुन्दरता कहं सुन्दर करई' । 'छबि गृह दीप सिखा जनु बरई ।' इस 'अलौकिक शोभा से' उनका कहना 'सहज पुनीत मोर मन छोभा' और उसका औचित्य-बोध ।

३—लता ओट में सीता का राम को देखना और 'थके नयन रघुपति छवि देखें' । पुनः 'लोचन मग रामहिं उर आनी' । दीन्हें पलक कपाट सयानी' ।।

४—राम का सौन्दर्य-वर्णन ।

५—नाटकीय प्रभविष्णुता से पूर्वराग का निदर्शन, पारस्परिक आकर्षण का चित्रण एवं सीता का गिरिजागृह प्रस्थान और प्रार्थना ।

६—राम और सीता दोनों की मनोकामनाएँ पूर्ण होने के वर सीता को भगवती से और राम को विश्वामित्र से ।

७—रात्रि में राम द्वारा सीता स्मरण और चन्द्रमा के व्याज से सौन्दर्य चित्रण ।

उपर्युक्त क्रमानुसार निरूपण से यह सिद्ध है कि तुलसी का राम और सीता के पूर्वराग का चित्रण संक्षिप्त होते हुए भी सांगोपांग, संयत, संश्लिष्ट और समयोचित है । इसमें न तो 'वीर्य शुल्का' सीता की मर्यादा नष्ट हुई है और न कंब रामायण और 'प्रसन्न राघव' की भाँति लौकिक काम और विरह वर्णन का चित्रण ही हुआ है । राम और सीता दोनों का सौन्दर्य अतुलनीय है । सीता छबिगृह की दीप शिखा है जो सुन्दरता को भी सुन्दर करती है, राम उसे निर्निमेष भाव से देखते हैं और सीता के सौन्दर्य को मन ही मन सराहते हैं—मुख से वचन नहीं निकलता है । यह केवल आंगिक रूप वर्णन नहीं है, पर है उस निरपेक्ष सौन्दर्य का चित्रण, जिसमें सनातन आकर्षण और पूर्णता विद्यमान रहती है । सौन्दर्य का यही आध्यात्मिक और आत्मिक धरातल है, जो उसे रचनात्मक कर्तृत्व और गतिशीलता देता है । हीगेल ने इसे ही 'पूर्ण प्रत्यय' की संज्ञा देते हुए 'प्रयोजनहीन प्रयोजन' कहा है ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh'

रात्रि के समय आश्रम में राम पुनः विधु व्याज से सीता के सौन्दर्य का वर्णन करत हैं, उनमें भी न कहीं अंग-विन्यास है और न वासनात्मक उद्दीपन विभाव-वर्णन। अनेक प्रकार से सोच-विचार कर वे यही कहते हैं :

जनम सिंधु पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चन्द्र बापुरो रंक।।
इसलिये **बैदेही मुख पटतर दीन्हें। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हें।।**

राम का सौन्दर्य तो प्रारम्भ से ही 'आनन्द सिंधु' है, जिसे सखि 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' कहती है—'या पश्यति न साब्रूते सा ब्रूते यान 'पश्यति'।। (वाराह-पुराण) सीता राम की नख-शिख शोभा देखकर उन्हें देखती ही रहती हैं। वह उसके लिये दुर्निवार आकर्षण का केन्द्र बन जाती है। राम का यह सौन्दर्य, कृष्ण के त्रिभंगी रूप के समानान्तर बहू काम को लजाने वाला है—'सुषमा और शील का निधान' है। तुलसी ने पहले राम के द्वारा सीता के सौन्दर्य का वर्णन किया है और फिर सीता के द्वारा राम का। वस्तुतः सीता-राम के अद्वितीय सौन्दर्य को देखती रहती है, उसका वर्णन नहीं करती 'कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी'—यही मर्यादा और नीति का औचित्य है। सौन्दर्य वर्णन में औचित्य का होना, इसी दृष्टि से, अनिवार्य है। जहाँ राम 'परम प्रेममय मृदु मसि' से अपने चित्त की भित्ति पर सीता का चारु चित्र आंकते हैं वहाँ सीता लोचन—पथ से राम को हृदय में धारण कर अपने पलक कपाट लगा देती है। क्षण भर के लिये उन्हें न देखकर उसे चिंता होती है, वह चकित होकर चारों ओर देखती रहती है। तुलसी का यह सौन्दर्य वर्णन कंब और जयदेव से बहुत उत्कृष्ट और पुष्ट है। सीता पहले नारद-वचन का स्मरण कर पहले प्रीति' और फिर आकर्षण' से अभिभूत होती है।

पूर्वराग का शास्त्रीय पक्ष :

श्रृंगार रस में पूर्वराग को आचार्यों ने विप्रलंभ श्रृंगार के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। मम्मट ने काव्य-प्रकाश में उसके पाँच भेद बताएँ हैं—अभिलाषा, विरह, ईर्ष्या प्रवास और शाप। साहित्यदर्पणकार ने उसके चार भेदों का निरूपण किया है श्रवणदर्शनाद्वापि मिथः संरूढ़रागयो। दशा विशेषोचोड प्राप्तौ पूर्वरागः सउच्यते।।[७] इसके उपरांत उसने पूर्वराग की काम दशाओं का उल्लेख किया है, अभिलाषा, चिन्ता स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि और जड़ता। कुछ आचार्यों ने इन काम-दशाओं के अतिरिक्त कुछ और दशाएँ निर्दिष्ट की है—नयन-प्रीति, चिन्ताशक्ति, संकल्प, निद्राच्छेद, तनुता, विषय-निवृत्ति, त्रपानाश, उन्माद, मूर्च्छा और मरण। (भावप्रकाशकार मरण को निषिद्ध मानते हैं) यह पूर्वराग तीन प्रकार का होता है।—नीली-राग, कुसुम्भराग

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और मंजिष्ठा राग। नीलीराग वह है जो बाहर तो दिखाई न पड़े पर हृदय में कूट-कूट कर भरा हो, कुसुम्भराग केवल बाह्य आडम्बर रखता है। मंजिष्ठा राग बाहर और भीतर दोनों ओर समान भाव से अवस्थिति रहता है—(भाव प्रकाश : चतुर्थ अधिकार :) भक्ति-दर्शन में यह त्रैविध्य राग के अन्तर्गत उसके भेदों में परिगणित किया गया है। कुछ आचार्यों ने संयोग और विप्रयोग के अतिरिक्त शृंगार का एक तीसरा भेद अयोग शृंगार' (धनंजय) भी माना है जो संयोग और विप्रयोग के बीच अवस्थित है। अयोग मिलन की पूर्व दशा है और विप्रयोग बाद की। यह वह स्थिति है, जहाँ नायक नायिका में अनुराग तो होता है, पर मिलन नहीं। इसकी भी दश दशाएँ मानी गयी है।

भोज ने 'शृंगार प्रकाश' में पूर्वानुराग का वर्णन करते हुए उसके विभिन्न रूपों का धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष शृंगार के संदर्भ में वर्णन किया है। अनुराग स्थापन के प्रसंग में अनुराग की चार अवस्थाएँ इस प्रकार गिनाई गयी हैं—भाव, भाव-जन्म, भावानुबंध और भाव-प्रकर्ष। प्रत्यक्षानुराग : (तत्र अक्षमक्षं प्रतिगत विज्ञानं प्रत्यक्षम्) में साक्षात् प्रतिबिम्ब, प्रतिभान, स्मृति और स्वप्न में 'साक्षात्' को सर्वश्रेष्ठ गिना है। भाव-स्कंध में इसके दो भेद दर्शन और श्रवण गिनाए हैं।[८] 'शृंगार मंजरी' में प्रेम के अंकुरित होने के चार मार्ग श्रवण, दर्शन, चित्र और स्वप्न निर्धारित किए हुए हैं।[९] हरिभक्ति रसामृत 'सिंधु में विप्रलंभ के भेद मान, प्रवास के साथ पूर्वराग भी स्वीकार किया गया है—प्राग संगेतोशोभवि: पूर्वरागो-भवेद द्वयोः। (पश्चिम विभाग : मूलहरी) 'उज्ज्वल नीलमणि' में पूर्वराग के तीन भेद—प्रौढ़, समंजस और साधारण निर्धारित किये गये हैं। 'भक्ति रसायन' में प्रसिद्ध आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने प्रेम की द्रवीभाव और सांसारिक अवस्थाएँ गिनाई हैं। द्रवीभूत राग में चित्त अग्नि से द्रवीभूत लाक्षा की तरह होता है, पर सांसारिक में वह सूर्य से प्राप्त लाक्षा की शिथिलतावत् ही। किंच राग सविषयक प्रीति और अनुराग निर्विषयक होता है। आचार्य मधुसूदन पूर्वानुराग राग में तीव्रतम निर्विषयक रति स्वीकार करते हैं। भक्तिरस के अनुसार यह पूर्वानुराग भगवान के प्रति अलंबन विभाव के अन्तर्गत आता है। शास्त्रीय विश्लेषण के इस परिपेक्ष्य में यदि हम तुलसी के राम और सीता के पूर्वराग पर विचार करें तो उसका सौन्दर्य और नूतनत्व अधिक उजागर होगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पुष्पवाटिका के प्रकरण को 'प्रेमाख्यानी रंग'[१०] का प्रभाव कहा है। प्रेमाख्यानक काव्य में पूर्वराग के अन्तर्गत जो कामदशाएँ गिनाई हैं, उनका कोई रूप तुलसी के पूर्वराग में नहीं है। राम को न देखकर सीता की चिन्ता भी भिन्न स्तर की है। न तो यहाँ शृंगार का खुला वर्णन है और न कामोद्दीपक तीव्रता ही। अतएव आचार्य शुक्ल का यह कथन न तर्क सम्मत है और न प्रमाणपुष्ट। तुलसीदास ने दोनों की 'पुरातन प्रीति' को प्रत्यभिज्ञ करके उस सनातन और आत्मिक आकर्षण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का निरूपण किया है, जिसमें न तो बाल्मीकि की भाँति कोई विकल्प या ऊहापोह है और न कंब या जयदेव का कामातिशाय वर्णन ही। तुलसी ने कामदशाओं का निरूपण तो दूर, उल्लेख तक नहीं किया है। राम और सीता का यह पूर्वराग नीली राग के अन्तर्गत आता है, जिसमें केवल हृदय का आकर्षण है, बाहरी चमक दमक रंचमात्र नहीं। नीली राग की यही श्रेष्ठतम स्थिति है। पूर्वराग का ऐसा संयत, मर्यादित और सुष्ठु पर प्रभावोत्पादक, उचित और विवेक संगति से परिष्कृत चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। श्री रामचरितमानस का यह एक अभूतपूर्व और अन्यतम स्थल है और तुलसी की सर्जनात्मक चेतना और कौशल का प्रमाण। स्वयंवर में, जब दूसरी बार राम और सीता पुनः एक दूसरे को देखते हैं तो वहाँ भी सीता की मानसिक स्थिति का ही चित्रण कवि ने किया है। उसे 'प्रीतिमय' एवं 'विकल बिसेखि' देखकर राम क्षण भर में धनुष तोड़ देते हैं। यहाँ पर भी कवि ने सीता का सौन्दर्य 'जगदंबिका रूप गुन खानी' कहकर किया है—राम के माध्यम से नहीं। सीता की 'अतुलित छवि' का यह निदर्शन भी लौकिक या शृंगारी भाव से न करके उपमाहीन, अनन्वय अलंकार द्वारा किया है। विवाह के पहले पूर्वराग का यह दूसरा स्थान भी कम रोचक और मनोवैज्ञानिक नहीं। राम सीता की ओर देख, उसे आकुल-व्याकुल जानकर और उसकी सहमति का प्रमाण पा, धनुष तोड़ देते हैं। इस प्रकार दोनों के आभ्यन्तरिक जगत का यह पूर्वराग और प्रेम उच्च मानवीय संवेदनाओं के निरूपण के साथ मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित होकर तुलसी की प्रबंधात्मक संघटना, कलात्मक संरचना और काव्यात्मक सौन्दर्य का अद्वितीय प्रमाण है। ●

१—मानस पीयूष : बालकांड—तीसरा भाग
२—गीतावली : सीताराम चतुर्वेदी : पद—७१-७२
३—स्वयंवर के चार भेदों में एक भेद
४—रामकथा : उद्भव और विकास—पृ० २९३
५—'दि रामायण इन तेलुगु एण्ड तमिल'—श्री सी० आर० शर्मा
६—कंबन और तुलसी—डा० शंकर राजुनायडू, पृ० १०८
७—साहित्य-दर्पण : तृतीय परिच्छेद : सं० डा० सत्यव्रत सिंह, पृ० २३२
८—शृंगार प्रकाश : सं० डा० वी० राघवन, पृ० १३३
९—शृंगार मंजरी—सं० डा० वी० राघवन, पृ० ५३
१०—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ८३।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी के हनुमान | डॉ० रामबाबू शर्मा

रामकथा अत्यंत प्राचीन है। पुराणों और काव्यग्रन्थों में उसे बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान मिला है। महाभारत, बाल्मीकि रामायण तथा परवर्ती राम-कथाओं में पात्रों के चरित्र के सम्बन्ध में दिए गए तथ्यों में एकरूपता दिखाई नहीं देती और उनमें तालमेल बिठाना कठिन हो जाता है। रामकथा के एक प्रमुख पात्र हनुमान का, जिसका अनेक घटनाओं से सम्बन्ध है, चरित्र-चित्रण कम ही हुआ है। यहाँ हनुमान के चरित्र को सांस्कृतिक दृष्टि से परखने का प्रयत्न किया गया है और तुलसी ने जिस रूप में हनुमान को चित्रित किया है, उसे प्रस्तुत अध्ययन का आधार बनाया गया है।

जन्म और जाति

तुलसी ने हनुमान की जन्मकथा का कहीं भी वर्णन नहीं किया है। कारण यही बताया जा सकता है कि उन्हें वैसा करना अभीष्ट नहीं था—कथाक्रम या घटना-क्रम की दृष्टि से इसकी आवश्यकता भी नहीं थी। तुलसी ने उन्हें पवन तनय[१] पवनसुत[२], मारुतसुत[३] आदि नामों से सम्बोधित करके उन्हें वायुपुत्र बताया है। कवितावली[४] और विनय पत्रिका[५] में उन्हें केसरी और अंजना का पुत्र भी बताया गया है। वाल्मीकि रामायण में हनुमान को वायुपुत्र ही बताया गया है। उनके लिए प्रयुक्त शब्दों में मारुति, वायुसुत, वातात्मज, वायुसंभव आदि प्रमुख हैं। वहाँ हनुमान की जो जन्मकथा दी गई है उसके अनुसार वे केसरी और अंजना के

१—पवन तनय बल पवन समाना। मानस, ४।३०।४

२—देखि पवनसुत पति अनुकूला। वही, ४।४।१

३—ताहि मारि मारुतसुत बीरा। वही, ५।३।५

४—अति अचरज कियौ केसरी कुमार है। कवितावली, सुन्दरकांड, छंद २०

५—केसरी चारु लोचन चकोरक सुखद....
अंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत-बिधु.... } विनय पत्रिका, पद २५

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पुत्र थे। लेकिन जन्मकथा के बाहर केवल एक ही स्थल ऐसा है, जहाँ केसरी का हनुमान के पिता के रूप में उल्लेख हुआ है—"पिता हनुमतः श्रीमान्केसरी"[६]। महाभारत की रामकथा में केसरी का कहीं नाम भी नहीं है, यही स्थिति अंजना के नाम की भी है। इससे यह अनुमान किया गया है कि प्रारंभ में हनुमान के माता-पिता रूप में अंजना और केसरी का नाम नहीं था, इसीलिए उन्हें कहीं भी अंजनापुत्र या केसरी पुत्र नहीं कहा गया। वे वायुपुत्र ही विख्यात थे। केसरी और अंजना के नाम हनुमान के साथ बाद में जुड़े। आदि काव्य में केसरी का एक स्थान पर उल्लेख तथा हनुमान की जन्मकथा का समावेश प्रक्षिप्त अंश हो सकते हैं।

हनुमान के 'वायुपुत्र' नाम की उत्पत्ति भी विचारणीय है। रामायण के रचनाकाल के पूर्व 'वायुपुत्र' शब्द विद्याधर या ऐन्द्रजालिक के लिए प्रयुक्त होता था—वायुपुत्र जो असाधारण कार्य कर सके। 'सुभगा' जातक में एक 'वायुस्स-सुत्त' अर्थात् विद्याधर की कथा मिलती है।[७] वह विद्याधर ऐन्द्रजालिक है। और 'वायुस्स सुत' का अर्थ विद्याधर अथवा जादूगर होता भी है। महाभारत में आया हुआ 'वातिक'[८] इससे मिलता-जुलता अर्थ रखता है। अतः इस बात की पूरी-पूरी संभावना है कि असाधारण कार्य करनेवाले हनुमान को इसी आधार पर वायुपुत्र (जिसका अर्थ विद्याधर था) नाम मिला हो[९] और परवर्ती काल में उन्हें यथार्थ में वायुपुत्र मानकर उनकी जन्मकथा का विकास हुआ हो। 'विनय-पत्रिका' में तुलसीदास ने हनुमान के विद्याधर रूप की ओर संकेत किया है—

काव्य कौतुक कला कोटि सिंधो।। पद २८

वाल्मीकि रामायण में दी हुई हनुमान की जन्मकथा के अनुसार एक शापभ्रष्ट अप्सरा के गर्भ से वायु के संसर्ग से हनुमान को जन्म मिला था। अप्सरा का नाम पुंजिकस्थला था, जो वानर योनि में उत्पन्न होकर केसरी की पत्नी बनी थी। कामरूपिणी होने के कारण उसने एक दिन रूप-यौवन सम्पन्न मानव शरीर धारण किया और तब मारुत ने उसका आलिंगन करके उसे एक वीर्यवान, बुद्धि सम्पन्न पुत्र उत्पन्न करने का वरदान दिया, साथ ही यह भी कहा कि गति में वह मेरे समान होगा—

मनसाऽस्मि गतो यत्त्वां परिष्वज्य यशस्विनि।
वीर्यवान् बुद्धि सम्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति।।१८।।

६–देखिए—वाल्मीकि रामायण—४।३९।१८
७–रामकथा—डॉ० कामिल बुल्के, पृष्ठ ६५६।
८–महाभारत, ३।२४३।२
९–जर्मन ओरियंटल जर्नल भाग ९२, पृष्ठ ८९, रामकथा—कामिल बुल्के से उद्धृत।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महासत्त्वो महातेजा महाबलपराक्रमः।
लंघने प्लवने चैव भविष्यति मया समः।।१९।।

बा० रामायण, किष्किंधा कांड, सर्ग ६६।

इस वरदान के फलस्वरूप अंजना ने एक पुत्र को जन्म दिया। वह बालक सूर्य के पकड़ने पर इन्द्र द्वारा वज्र से मारने तथा पर्वत शिखर पर गिरकर 'हनु' फूटने के कारण 'हनुमान' नाम से विख्यात हुआ।[10] तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में हनुमान द्वारा बाललीला करते हुए सूर्य को निगलने तथा इन्द्र के वज्र के मर्दन करनेवाला बताया है—

जयति जय बालकपि केलि कौतुक चंडकर मंडल ग्रास कर्त्ता।
राहु रवि सक्रपवि गर्व खर्वकिरन सरन भय हरन जयभुवन भर्त्ता।।२।।

विनयपत्रिका—पद २५

इससे स्पष्ट है कि हनुमान के जन्म तथा बचपन के सम्बन्ध में जिन अलौकिकताओं का उद्घाटन तुलसी से पूर्व हो चुका था, उन्होंने प्रायः सभी को स्वीकार कर लिया है। 'कवितावली' एवं 'विनय पत्रिका' के एक-दो उल्लेखों, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है तथा जहाँ उन्हें अंजना और केसरी का पुत्र बताया गया है, को छोड़कर शेष स्थानों पर उन्हें वायुपुत्र ही बताया गया है। कारण यह है कि 'वायुपुत्र' में वे सब संभावनाएँ निहित हैं, जिनकी 'रामकाज' के सन्दर्भ में हनुमान से अपेक्षा है। तुलसी ने **रामकाज लगि तब अवतारा**[11] कहकर उनके जन्म की विशिष्ट पृष्ठभूमि की ओर संकेत किया है। 'अवतारा' शब्द का प्रयोग भी साभिप्राय है। उनका जन्म सामान्य परिस्थितियों में न होकर विशिष्ट परिस्थितियों में तथा विशिष्ट कार्यसम्पादन के लिए हुआ है। इसीलिए हनुमान में वे सब विशेषताएँ हैं, जो इस कार्य के सम्पादन के लिए अवश्यक समझी जा सकती हैं—

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिवेक बिग्यान निधाना।।
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जों नहिं होत तात तुम्ह पाहीं।।[12]

इससे स्पष्ट है कि तुलसी उनके जन्म तथा जन्म के कारणों के सम्बन्ध में सावधान हैं और उस पृष्ठभूमि की ओर संकेत करते हैं, जो हनुमान के जन्म के कारणों के सम्बन्ध में पूर्ववर्ती रामकथाओं में उपस्थित की गई है। इससे एक ओर जन्म की विशिष्ट पृष्ठभूमि तथा दूसरी ओर जन्म के हेतु का संकेत हो जाता

१०—वाल्मीकि रामायण—४।६६।२४
११—मानस—४।३०।६
१२—वही—४।३०।४-५

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। हनुमान के जन्म की पूर्ण कथा न देने पर भी उसमें निहित अलौकिकता उभर कर सामने आ जाती है।

तुलसी ने हनुमान को वानर, बन्दर, कपि, मर्कट, शाखामृग आदि शब्दों से व्यक्त किया है। तुलसी के अनुसार ये सब देवता थे, जो ब्रह्मा की आज्ञानुसार राम के अवतार लेने के पूर्व ही वनचर देह धारण करके वनमार्ग में राम की प्रतीक्षा में रत थे[१३]। इस प्रकार बानरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अलौकिकता स्पष्ट है।

जिस पीठिका पर तुलसी ने हनुमान आदि बानरों के जन्म और जाति को स्थापित किया है, उसके परिचय के लिए 'नारद-शाप-प्रसंग' पर ध्यान देना आवश्यक है। नारद ने विष्णु को शाप देते समय बानरों द्वारा सहायता किए जाने की बात कही थी। अतः राम की सहायता हेतु देवताओं का वही रूप धारण करना आवश्यक था। वानर रूप में वे देवता अतुलित बल, प्रताप से युक्त और राम का कार्य करने में समर्थ थे। हनुमान उनमें विशिष्ट स्थान रखते थे। उनका जन्म महत्वपूर्ण कार्य-संपादन में सहायक होने के लिए पूर्व निश्चित था। फिर भी तुलसी ने हनुमान के मुख से अपने बारे में जो कहलाया है, उससे वे वानर ही सिद्ध होते हैं—

खायऊँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा।[१४]

× × ×

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई।[१५]

लेकिन तुलसी ने उन्हें आवश्यकतानुसार मनुष्य के विविध रूप बनाते तथा मनुष्य की बोली में बातचीत करते हुए चित्रित किया है। सुग्रीव की सलाह से वे विप्रवेश में राम के पास गए थे और उनका परिचय पूछा था—

विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ।।[१६]

राम भी उनके सही रूप को नहीं समझ पाये। उन्होंने उन्हें ब्राह्मण ही समझा तथा अपनी कथा कहने के बाद उनका परिचय पूछा[१७]। इससे स्पष्ट

१३–निज लोकहिं विरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तन धरि-धरि महि हरिपद सेवहु जाइ।।१८७।।

× × ×

बनचर देह धरी छिति मांहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं।।
गिरितरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा।।
मानस—१।१८८।३-४

१४–मानस—५।२२।३
१५–वही–५।३३।७
१६–वही–४।१।६
१७–वही–४।२।४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है कि तुलसी ने उन्हें चार पैर वाला बन्दर नहीं, बल्कि जंगलों में रहनेवाली बानर जाति के मनुष्य रूप में चित्रित किया है। तुलसी ने उन्हें बल के क्षेत्र में तो श्रेष्ठ बताया ही है, ज्ञान के क्षेत्र में भी 'वेद वेदान्त विद' बताया है।[१८]

आदि रामायण में उन्हें पराक्रमी योद्धा के साथ-साथ सुग्रीव के बुद्धिमान मंत्री तथा संस्कृत तथा प्राकृत के ज्ञाता बताया गया है। रावण सीता से संस्कृत में बात करता था। अतः वे अशोकवन में सीता से संस्कृत नहीं बोलते, उन्हें भय है कि कहीं सीता उन्हें रावण समझकर भयभीत न हो जाय—

वाचं चोदाहरष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।१७।
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।१८।।[१९]

वहाँ भी वे सामान्य वानर से भिन्न कोटि के जीव हैं, और तुलसी ने भी उन्हें सामान्य वानर से भिन्न ही चित्रित किया है।

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अनेक वानर सम्बन्धी विशेषताओं के होते हुए भी वाल्मीकि रामायण में हनुमान आदि को मनुष्य रूप में ही चित्रित किया गया है। यथार्थ में ये वानर गोत्रीय आदिवासी थे। वानर इनका टाटेम था[२०]। इस जाति के लोग वानर की वेशभूषा बनाये रहते थे। एक कृत्रिम पूँछ भी पीछे लटकाते थे[२१]। हनुमान की ऐसी ही पूँछ में रावण ने आग लगवाई थी। रीछ और जटायु भी वैसी ही टाटेम जातियाँ थीं। 'महाभारत' के 'शल्य पर्व' के ४५ वें अध्याय में सेनापति स्कंद के पार्षदों में प्रायः सभी पशु-पक्षियों के मुख वाले गणों के आने की बात कही गई है। वे सब इन्हीं टाटेम जातियों (मास्क-जातियों) के लोग थे। पशु या पक्षी के नाम पर ही जाति का नाम पड़ता था। आधुनिक भारत के आदिवासियों में ऐसे टाटेम या गोत्र विद्यमान हैं, जिनका 'वाल्मीकि रामायण' में उल्लेख हुआ है। श्री आर० वी० रेसल के अनुसार बन्दर और रीछ तेरह सर्वाधिक प्रचलित टाटेमों में सम्मिलित हैं[२२]। रामायण के बानर मनुष्य की तरह बुद्धि सम्पन्न थे, मानवों की भाषा बोलते थे। वस्त्र पहनते थे और आवश्यकतानुसार मनुष्य का रूप धारण करते थे—

१८—विनयपत्रिका—पद २६।
१९—सुन्दर कांड, सर्ग ३०।
२०—जी. रामदास—एबौरिजनल ट्राइब इन दी रामायण, मैन इन इंडिया, भाग ५. पृष्ठ २८-५५
२१—डॉ० रांगेयराघव—भारतीय परम्परा और इतिहास, पृष्ठ १९२।
२२—दी ट्राइब्स एण्ड कास्टस ऑफ सेन्ट्रल प्राविन्सेज, भाग १, पृष्ठ ९०।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः।
कुशलं पर्यपृच्छंस्ते प्रहृष्टा भरतं तदा।।[23]

विद्वानों ने वानर जाति को पुलस्त्य संतान मानने के कारण देव कुलीन माना है। इनमें कुछ ऐसे कबीले भी थे, जो जंगली थे और पत्थर, पेड़ आदि से लड़ते थे। इनमें भी स्त्री-पुरुष सम्बन्ध धर्म थे, अधर्म के विचार थे[24]। उनके यहाँ राजा होता था, जिसकी आज्ञापालन की जाती थी। इन सब तथ्यों से उनकी संस्कृति एवं सामाजिक अवस्था का ज्ञान होता है, जो यह स्पष्ट करता है कि यह एक मानव जन जाति थे।

गुण :

तुलसी के हनुमान में मुख्य रूप से जो-जो गुण दिखाई देते हैं, वे शौर्य, बुद्धिमत्ता, रामभक्ति, ब्रह्मचर्यत्व तथा अमरत्व हैं। यहाँ इन पर एक-एक करके विचार किया जा रहा है।

१–शौर्य––तुलसी के हनुमान अपार बलशाली हैं। लेकिन शापवश अपने बल और शक्ति को भूले रहते हैं। राम जानते हैं कि सीता की खोज में जानेवाले वानरों में अकेले हनुमान ही ऐसे हैं जो यह कार्य कर सकते हैं। लेकिन हनुमान को इसका कोई ज्ञान नहीं है। इसीलिए विदा लेते समय वे क्रम में सबसे पीछे हैं। लेकिन राम ने उन्हें पास बुलाकर सहदानी दी और सीता के लिए सन्देश भी दिया—

पाछे पवन तनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बुलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी।।
बहुप्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल विरह बेगि तुम्ह आएहु।।
४।२३।९-११

हनुमान धन्य हो गए। उनके शौर्य पर विश्वास करके उन्हें कार्य सौंपा गया था। समुद्र के तट पर जब सब हिम्मत हार बैठे और जामवन्त ने बल का स्मरण कराया तो हनुमान को अपने जन्म का उद्देश्य स्मरण हो आया। उत्साह से फूल कर उन्होंने उस असंभव प्रतीत होने वाले कार्य को संभव बनाने का संकल्प किया—

सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा।।
सहित सहाय रावनहिं मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी।।
मानस—४।३०।८-९

रामकथा में हनुमान के शौर्य का सूचक प्रथम कार्य समुद्र संतरण है। इस कार्य के बीच घटनेवाली तीन घटनाएँ—मैनाक का विश्राम करने का आग्रह तथा

२३–युद्ध कांड, सर्ग १२७, छंद ३९।
२४–भारतीय परम्परा और इतिहास, पृष्ठ १९३।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हनुमान द्वारा उसे स्वीकार करना ; सुरसा की परीक्षा तथा समुद्र में रहने वाले राक्षस का छल—उनकी शक्ति, सहनशीलता, चतुराई तथा कार्यतत्परता को व्यक्त करती हैं। वाल्मीकि रामायण में महेन्द्र पर्वत से कूदकर चलने पर हनुमान की मैनाक, सुरसा तथा सिंहिका से हुई भेंट का वर्णन है। तुलसी ने वाल्मीकि का अनुकरण करते हुए सिंहिका के स्थान पर 'निसिचर एक सिंधु महँ रहही" कहकर अपना काम चला लिया है। इस समानता से यह स्पष्ट हो जाता है कि समुद्र लंघन में तुलसी ने वाल्मीकि का आदर्श ही रखा है। तुलसी के हनुमान तैरकर समुद्र पार नहीं करते, नभ मार्ग से जाते हैं—

निसिचर एक सिंधु महुँ रहई। करिमाया नभ के खग गहई।।
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परछाईं।।
गहइ छांह सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगन चर खाई।।
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा।।

मानस—५।३।१-४

इस सम्बन्ध में सी० पी० वैद्य का अनुमान है कि हनुमान के समुद्र लंघन की कथा संभवतः किसी आश्चर्यजनक लंघन के आधार पर उत्पन्न हुई है[२५]।

हनुमान ने 'मसक' समान रूप धारण करके लंका में प्रवेश किया। लंकिनी को मुठिका से पराजित करके, विभीषण की सहायता से अशोक वन पहुँचे। वहाँ सीता को राम के दूत होने का विश्वास दिलाकर, राम का विरह सुनाकर उनकी दूसरी आज्ञा के पालन में संलग्न हुए। बिदा करते समय राम ने कहा था— 'कहि बल विरह बेगि तुम्ह आयेहु" विरह तो कह दिया, बल और बताना था, जिससे सीता को अपने उद्धार का विश्वास हो जाय। अतः लंकादहन की भूमिका बन गई। अन्यथा बिना राम की आज्ञा के वे ऐसा कैसे कर सकते थे ? बल दिखाने की आज्ञा राम की थी ही, हनुमान ने परिस्थितियों के अनुकूल उसका स्वरूप अपनी बुद्धि से स्थिर कर लिया। उन्होंने हजारों राक्षसों के साथ रावण के पुत्र को मार डाला तथा लंका को जला दिया। 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार राक्षसों की बलपरीक्षा करने तथा रावण का मन जानने के उद्देश्य से हनुमान ने अशोक वन को नष्ट किया। वहाँ भी मानस के समान विभीषण का घर लंकादहन में सुरक्षित रहा। सीता की चूड़ामणि एवं संदेश लेकर तथा रावण को राम के क्षुद्र सेवक के बल का परिचय देकर हनुमान समुद्र के पार आ गए।

उनकी शौर्यसूचक दूसरी घटना हिमालय यात्रा है। लक्ष्मण के शक्ति

२५—उन्होंने इस प्रकार के लंघन का एक उदाहरण भी दिया है, जो स्पेन के सिपाही अलवाराडो का है, जो एक अत्यन्त चौड़ा नाला लांघ गया था।
देखिए—इं. हि. क्वा. भाग १, पृष्ठ १६०, रामकथा—कामिल बुल्के से उद्धृत।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लगने पर पहले उन्हें सुषेण वैद्य को और बाद में हिमालय पर जाकर औषधि लाने का कार्य सौंपा जाता है। कार्य की कठिनता का अनुमान इस तथ्य से हो जाता है कि इतनी लम्बी यात्रा करके औषधि लाना, जबकि मार्ग में अवरोधों की आशंका थी, और यह सब सूर्योदय से पूर्व ही करना था—

जियै कुंवर निसि मिलै मूलिका कीन्हीं विनय सुषेन[२६] ।।३।।

इस प्रसंग में हनुमान के बल, पराक्रम एवं बुद्धिमत्ता की परीक्षा की योजना 'कालनेमि-प्रसंग' द्वारा की गई है। कालनेमि को मारकर वे औषधि के पर्वत को उठाये अयोध्या के ऊपर से लौटे। भरत के वाण से घायल होकर वे गिर पड़े, भरत को सब समाचार देकर प्रातःकाल से पूर्व ही लंका पहुँच गए। अपने बल एवं पराक्रम के प्रति विश्वास के कारण ही उन्होंने भरत के वाण पर बैठने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया—

तब प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।
असकहि आयसु पाइ पद बंदि चले हनुमंत।।[२७]

वाल्मीकि रामायण में हनुमान की तीन हिमालय यात्राओं का उल्लेख है। हिमालय में गन्धर्वों की चुनौती तथा हनुमान द्वारा उनका वध तथा औषधि पर्वत को वापिस ले जाते समय राक्षसों का आक्रमण तथा उनकी पराजय का वर्णन वाल्मीकि ने किया है, जबकि 'मानस' में इनका कोई वर्णन नहीं है। हाँ, उनकी अन्य रचनाओं में हिमालय के रक्षकों को मारने[२८] तथा पर्वत को वापिस ले जाने[२९] के उल्लेख हुए हैं।

पराक्रम एवं महत्व की दृष्टि से हनुमान की हिमालय यात्रा समुद्रलंघन से अधिक श्रेष्ठ है। दोनों ही यात्राओं द्वारा हनुमान की उड़ने की शक्ति या बिना रुके तीव्र चाल से जाने की क्षमता का पता चलता है। रावण के समक्ष अंगद ने हनुमान के विषय में जो कहा है, उसमें उनके अधिक चलने के गुण पर ही प्रकाश पड़ता है—

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन।।
चलहिं बहुत सो वीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई।।

मानस—६।२३।९-१०

२६–गीतावली—लंकाकांड, पद ९।

२७–मानस—७।७० तक

२८–सहसा उखारो है पहारु बहु जोजन को, रखवारे मारे मारे भरि भट दलि कै।
कवितावली—लंकाकांड, छंद ५५।

२९–बहुरि ठौर ही राखि महीधर आयो पवनकुमार।।७।।
गीतावली, लंकाकांड, पद ९।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राम-रावण-युद्ध में तुलसी ने हनुमान की शक्ति, पराक्रम और आकाश में उड़ने की क्षमता[30] आदि का वर्णन किया है। युद्ध के समस्त कौशल भी वे जानते हैं। उन्होंने एकाधिकबार मेघनाद और रावण को अपने प्रहारों से घायल तथा बेसुध किया—

मुठिका एक ताहि कपि मारा । परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ।।
मुरछा गै बहोरि सो जागा । कपिबल बिपुल सराहन लागा ।।

६।८४।२-३

उनके पराक्रम एवं युद्ध कौशल पर देवता भी जयजयकार करते हैं—

संभारि श्री रघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो ।।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जय-जय भन्यो ।।

मानस—६।९५।छंद, पंक्ति १-२

हनुमान के पराक्रम की कुछ अन्य घटनाओं का अनेक प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख हुआ है। महाभारत में हनुमान एवं भीम का सम्वाद वर्णित है[31]। उस प्रसंग में उनके शौर्य-पराक्रम पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अर्जुन और हनुमान के सम्बन्ध की कथा भी पर्याप्त प्राचीन है। हनुमान के पराक्रम-प्रदर्शन के लिए तुलसी ने इन प्रसंगों का उल्लेख किया है। 'विनयपत्रिका' में उन्हें भीम, अर्जुन और गरुड़ के गर्व को खर्व करने वाले, अर्जुन के रथ की पताका पर बैठकर उसकी रक्षा करनेवाले तथा भीष्म और द्रोण से रक्षित कालदृष्टि के समान दुर्योधन की सेना को परास्त करने के मुख्य कारणरूप बताया गया है।

जयति भीमार्जुन व्यालसूदन गर्वहरन धनंजय रथ त्राण केतू ।
भीष्म द्रोण करणादि पालित कालदृक सुजोधन चमू निधन हेतू ।।

विनयपत्रिका—पद २८

भीम और अर्जुन के गर्वहरण की कथा की ओर तुलसी ने संकेत नहीं किया[32]। हाँ, गरुड़ के गर्वहरण के क्षेत्र-बल, वीर्य और वेग की ओर संकेत कर दिया है—

जयति विहगेस बलबुद्धि वेगाति मद मथन।

विनयपत्रिका—पद २९

२—**बुद्धिमत्ता**—हनुमान सुग्रीव के विश्वस्त अनुचर हैं। सुग्रीव को उनकी बुद्धि पर विश्वास है, इसीलिए उन्हें राम का भेद लेने भेजा। हनुमान ने सब बातें तो जान ही लीं, उन्हें अपने स्वामी के अनुकूल बनाकर दोनों में मित्रता

३०—मानस—६।९५।४-७
३१—आरण्यक पर्व, अध्याय १४७-१५०
३२—इन कथाओं के लिए, देखिए रामकथा—डॉ० कामिल बुल्के, पृष्ठ ६७०-७२

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी करा दी[३३]। सुग्रीव को रामकार्य की ओर प्रेरित करने तथा लक्ष्मण को विनय से शान्त करते समय भी उनकी चतुरता और बुद्धिमत्ता देखी जा सकती है[३४]। सीता की खोज में जाते समय मार्ग के संकटों से अपने साथियों की रक्षा करते हुए समुद्र तीर पर पहुँचे और समुद्र-लंघन के समय सुरसा को अपनी बुद्धि का परिचय दिया। उन्होंने सीता को अपनी प्रतीति कराने, संदेशा देने तथा रावण को अपने स्वामी के बल का परिचय देने में जिस कौशल का परिचय दिया, उससे उनकी बुद्धिमत्ता का पता भलीभाँति लग जाता है, लक्ष्मण के लिए औषधि लाते समय जानकारी के अभाव में पूरे पर्वत को ही उखाड़कर ले आना बुद्धिमत्ता का ही सूचक है। अवसरोचित कार्य एवं कथन की क्षमता उनमें सर्वत्र देखी जा सकती है। राम द्वारा चन्द्रमा के मध्य के काले भाग के सम्बन्ध में पूछे जाने पर हनुमान द्वारा दिया गया उत्तर तुलसी के हनुमान के यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट करता है--

कह हनुमन्त सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तब मूरति बिधु उर बसत सोइ स्यामता अभास॥

मानस--६।१२ (क)

वाल्मीकि ने हनुमान को सुग्रीव के बुद्धिमान मंत्री के रूप में चित्रित किया है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वहाँ उन्हें संस्कृत एवं प्राकृत का जानकार बताया गया है। तुलसी ने उन्हें भरतादि के साथ दार्शनिक विषयों के प्रति जिज्ञासा प्रकट करते हुए चित्रित किया है--

पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुत सुत पाहीं॥

× × ×

जोरि पानि तब कह हनुमंता। सुनहु दीन दयाल भगवन्ता॥
नाथ भरत कछु पूछन चहहीं। प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं॥[३५]

और भरत ने जो प्रश्न पूछा उसका उत्तर सुनना हनुमान को भी अभीष्ट था--

संतन कै महिमा रघुराई। बहु बिधि बेद-पुरानन्ह गाई॥

× × ×

सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन। कृपा सिन्धु गुन ग्यान बिचच्छन॥[३६]

३३--तब हनुमंत उभय दिसि कहि सब कथा बुझाइ।
पावक साखी देहिकरि जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥ मानस--४।४

३४--तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना॥
करि बिनती मन्दिर लै आए। चरन पखारि पलंग बैठाए॥ वही--४।२०।४

३५--मानस--७।३६।२ तथा ५-६

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भरत और शत्रुघ्न की तो दिनचर्या ही हनुमान से 'रामगुन गाथा' सुनने की थी[३७]।

हनुमान ने रावण को अपना परिचय देते हुए स्वामी राम के स्वरूप का जो वर्णन किया है, उससे उनके दार्शनिक ज्ञान के सम्बन्ध में तुलसी के मत का उद्घाटन होता है—

सुनु रावण ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु बल विरचित माया ।।
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ।।

× × ×

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि ।
तासु दूत मैं जाकरि हरि आनेहु प्रिय नारि ।।[३८]

'रामचरितमानस' में हनुमान की बुद्धिमत्ता सूचक शब्दावली में 'बुधि विवेक विग्यान निधाना'[३९], 'बल बुद्धि निधान'[४०], 'बुद्धि बल निपुन'[४१], 'सदगुण सिन्धो'[४२], 'ज्ञाननामाग्रगण्यम्'[४३], 'सकल गुण निधान'[४४] आदि प्रमुख हैं। 'विनय-पत्रिका' में उन्हें 'वेदान्तविद', 'विविध विद्या विसद', 'वेद वेदांग विद' तथा 'ज्ञान विज्ञान भाजन' कहा गया है—

जयति वेदान्त विद विविध विद्या विसद वेद वेदांग विद ब्रह्मवादी ।
ग्यान विग्यान वैराग्य भाजन विभो विमलगुन गनति सुक नारदादी ।।[४५]

हनुमान को संगीतज्ञ के रूप में भी प्रतिष्ठा दी गई है। उन्हें 'गान गुनगरब गन्धर्व जेता'[४६], 'सामगायक'[४७] तथा 'सामगतागुनी'[४८] बताया गया है। उन्हें 'वेद, शास्त्र और व्याकरण को लिपिबद्ध करनेवाले', उन पर 'भाष्य रचने वाले' और 'काव्य के दशांगों एवं चौंसठ कलाओं के समुद्र' भी कहा गया है—

३६—मानस—७।३७।३ तथा ५
३७—वही—७।२६।४-५
३८—वही—५।२१।४-५ तथा दोहा।
३९—वही—४।३०।४
४०—वही—५।२
४१—वही—५।१७
४२—वही—७।२ छंद
४३—वही—५। प्रारम्भ के श्लोक सं० ३
४४—वही
४५—विनयपत्रिका—पद २६
४६—वही—पद २९
४७—वही—पद २८
४८—वही—पद २७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जयति निगमागम व्याकरन करनलिपि काव्य कौतुक कला कोटि सिन्धो।
साम गायक भक्त कामदायक वामदेव श्रीरामप्रिय प्रेम बन्धो।।[४९]

'वाल्मीकि-रामायण' के बाद की संस्कृत की कतिपय रामकथाओं में (यथा 'उत्तरकांड' नामक ग्रंथ में) इस बात का उल्लेख हुआ है कि हनुमान ने सूर्य से व्याकरण का अध्ययन किया था और दक्षिणास्वरूप सूर्य पुत्र सुग्रीव की रक्षा करने का वचन दिया था। तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में--'सुग्रीव-सिच्छादि रच्छन निपुन"[५०] कहकर इसकी ओर संकेत किया है। परवर्ती काल में हनुमान को 'महानाटक' का कर्ता भी माना गया। कहते हैं हनुमान ने एक बड़ा भारी नाटक रचकर श्रीरामचरित वर्णन किया था, लेकिन बाद में वाल्मीकि के अनुरोध पर उसे समुद्र में फेंक दिया। उसके बचे हुए अंश से ही दामोदर मिश्र ने वर्तमान 'हनुमन्नाटक' का निर्माण किया। तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में उनके नाटक रचना करने की ओर संकेत किया है--

महानाटक निपुन कोटि कविकुलतिलक गान गुन गरब गंधर्व जेता।।
पद--२९

३--रामभक्ति--तुलसी के हनुमान की सबसे बड़ी विशेषता यह मानी जा सकती है कि राम के परमभक्त हैं। 'रामकाज लगि अवतार' लेने के कारण राम की सेवा-भक्ति ही हनुमन के जीवन का आदर्श है। किष्किन्धा काण्ड के प्रारम्भ में हुई राम से अपनी पहली भेंट में ही उन्होंने उन्हें अपना स्वामी स्वीकार किया और अपने को पूर्णत: उन्हें अर्पित कर दिया--

सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।।
मानस--४।३।४

और राम ने भी उन्हें आश्वासन देकर अपने भक्त एवं सेवक के रूप में अपना लिया--

सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं ममप्रिय लछिमन तें दूना।।
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ।।
मानस--४।३।७-८

हनुमान ने राम को स्वामी और पिता मानकर पूर्ण भक्तिभाव से उनकी सेवा की। उनकी भक्ति एवं सेवा से प्रसन्न होकर राम को कहना पड़ा--

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचारि मनमाहीं।।
मानस--५।३२।५-७

४९--वही--पद २८
५०--विनयपत्रिका--पद २५

B-6

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और भी—

कपि सेवा बस भये कनौड़े कह्यो पवनसुत आउ।
देने को न कछु रिनियाँ हौं धनिक तु पत्र लिखाउ ।।

विनयपत्रिका—पद १००

वह भक्ति और सेवा धन्य है, जिसकी मिसाल न हो और जिसके लिए ढूँढ़ने पर भी राम जैसे स्वामी को भी प्रत्युपकार न मिले। वह सेवक भी धन्य है, जो स्वामी के इस प्रकार के कथन को सुनकर त्राहि-त्राहि कहने लगे—

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत ।।

मानस—५-३२

हनुमान ऐसे भक्त हैं, जिनसे भेंटने को स्वयं भगवान भी उत्सुक रहते हैं[५१]। राम के इस अनन्य भक्त एवं सेवक की भक्ति एवं सेवा से प्रसन्न होकर सीता उसे आशीर्वाद देती हैं और सुग्रीवादि उनके भाग्य की सराहना करते हैं।[५२]

तुलसी ने हनुमान की भक्ति के तत्व को बड़ी कुशलता से उरेहा है। उनकी भक्ति निष्काम है। उन्होंने स्वामी से उनके चरणों की भक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं मांगा।[५३] सीता ने जो आशीर्वाद दिए वे माँ के वात्सल्य-भाव से भरे स्वाभाविक उद्गार हैं। दास्य भाव की भक्ति के कारण हनुमान ने अपनी दीनता एवं स्वामी की श्रेष्ठता का वर्णन किया है।[५४] वाल्मीकि रामायण में भी हनुमान की रामभक्ति का उल्लेख है[५५]। वहाँ हनुमान ने सीता से तीन वरदान माँगे हैं। लेकिन यह समझा जाता है कि उस काल तक हनुमान के साथ रामभक्ति का सम्बन्ध अच्छी तरह जुड़ नहीं पाया था। इसीलिए वरप्राप्ति की कथा के प्रारम्भिक रूप में रामभक्ति का उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार राम-राज्याभिषेक के बाद राम द्वारा सीता को दी जानेवाली माला को हनुमान को दिए जाने की घटना को आधार बनाकर परवर्ती रामकाव्यों में रामभक्ति सम्बन्धी कुछ और कथाएँ जोड़ी गई। लेकिन तुलसी ने अपने काव्यों में उनका समावेश नहीं किया है।

५१—हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना।।
मानस—६।६२।१

५२—पुन्य पुंज तुम पवन कुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा।।
मानस—७।१९।९

५३—मानस—५।३४।१

५४—वही—५।७।७-८ तथा दोहा

५५—वाल्मीकि रामायण, उत्तरकांड, सर्ग ४०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी ने हनुमान के अमानवीय तथा अलौकिक कार्यों की सिद्धि का श्रेय रामभक्ति को ही दिया है। राम को हनुमान पर विश्वास था कि वे समुद्र लांघकर सीता का समाचार ला सकेंगे। इसी से उसे बुलाकर मुद्रिका एवं सन्देश दिया। हनुमान को ही देने का कारण यह है कि तुलसी की दृष्टि में और किसी की भक्ति उस कोटि की नहीं है, जिसपर विश्वास किया जा सके। 'रामकाज कीन्हे बिना जिसे विश्राम न हो'—ऐसा सेवक ही विश्वास-भाजन हो सकता है। उस कार्य के संपादन में प्राण जाने का भय उनको नहीं है। हाँ, यह अभिलाषा अवश्य है कि कार्य समाप्त होने पर प्राण निकलें[५६]। समुद्र लंघन का असाध्य कार्य भी राम की कृपा से ही सम्पन्न हुआ—

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥[५७]

लंकिनी का कथन है कि जिस पर राम की कृपा है, उसके लिए असंभव कुछ नहीं है—

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥

मानस—५।५।३

तुलसी ने भक्त के कार्यों की सफलता का श्रेय प्रभु के प्रताप को ही दिया है। हनुमान पर्वत लेकर समय रहते राम के पास पहुँचने के लिए भरत के प्रताप को ही कारण बताते हैं और उस प्रताप की मूलशक्ति भरत की 'प्रभुपद में अपार प्रीति' में निहित है—

तब प्रताप उर राखि प्रभु जैहौं नाथ तुरंत।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत॥
भरत बाहुबल सीलगुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महु जात सराहत पुनि पुनि पवन कुमार॥

मानस—६।६०

इससे यह स्पष्ट है कि तुलसी ने हनुमान के कार्यों की सम्पूर्ण अलौकिकता को रामभक्ति की पृष्ठभूमि पर ही आधारित किया है।

४–ब्रह्मचर्यत्व––अनेक प्राचीन रामकथाओं में हनुमान को ब्रह्मचारी बताया गया है। हनुमान के ब्रह्मचर्यत्व का प्राचीनतम उल्लेख 'स्कंद पुराण' में है। 'पद्मपुराण' में रामाश्वमेध वर्णन प्रसंग में शत्रुघ्न को पुनर्जीवित करने के लिए हनुमान अपने ब्रह्मचर्य का ही आश्रय लेते हैं।[५८] कुछ ग्रंथों में हनुमान

५६–मानस—५।२।४-५
५७–वही––५।३।९
५८–यद्यहं ब्रह्मचर्यं च जन्मपर्यन्त मुद्यतः।
पालियामि तदा वीरः शत्रुघ्नोजीवतु क्षणात्॥३१॥ पाताल खंड, अध्याय ४५

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के पुत्र का भी उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण में हनुमान के लिए महात्मा, महामना आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो हनुमान के ब्रह्मचर्यत्व की ओर संकेत हो सकता है। तुलसी ने 'मानस' में इस ओर कोई संकेत नहीं किया। हाँ, 'विनयपत्रिका' में यह संकेत अवश्य मिलता है। उन्हें 'मनमथ-मथन ऊर्ध्व रेता'[५९] तथा 'कामजेताग्रनी'[६०] कहा गया है। इससे तुलसी का इस सम्बन्ध में मत स्पष्ट हो जाता है।

५——अमरत्व——हनुमान की अमरता का तुलसी ने सीता के आशीर्वाद में ही उल्लेख किया है—

अजर अमर गुननिधि सुत होहू ॥

मानस—५।१७।३

हनुमान राम के अनन्य भक्त और सेवक हैं, अतः उनका अजर-अमर होना स्वतः सिद्ध है। यही कारण है कि तुलसी ने इस विषय में स्पष्ट रूप से नहीं लिखा है, मात्र संकेत किया है। बालकांड में वानरों के जन्म के हेतु का उल्लेख करते समय उन्हें देवताओं का अवतार बताया गया है। देवता भी अजर-अमर माने जाते हैं, इस कारण देवता के अवतार होने के कारण वे भी अजर-अमर हो ही जाते हैं। व्यक्ति के अपनी कीर्ति द्वारा भी जीवित रहने की बात प्राचीन ग्रंथों में कही गई है—'जीवित यशोयस्य कीर्तिर्यस्य सजीवति' हनुमान की कीर्ति रामकथा से सम्बद्ध होने के कारण राम की कीर्ति के साथ ही साथ अमर है।

महाभारत के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि हनुमान ने राम से यह वरदान मांगा था कि मैं तब तक जीवित रह सकूँ, जब तक पृथ्वी पर रामकथा प्रचलित रहे—

यावद्राम कथा वीर भवेल्लोकेषु शत्रुहन्।
तावज्जीवेयमित्येवं तथा स्त्विति च सोऽब्रवीत ॥

३।१४७।३७

इससे भी ऊपर की बात की संगति बिठाई जा सकती है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में स्वर्गारोहण के समय राम हनुमान को चिरंजीव रहने का वर प्रदान करते हैं—

मत्कथा प्रचरिष्यंति यावल्लोके हरीश्वर।
तावद्रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयम् ॥३०॥

उत्तरकांड, सर्ग १०८

इससे भी हनुमान का चिरंजीवत्व रामकथा के प्रचलित रहने पर ही निर्भर करता है। तुलसी ने भी सम्भवतः इसी अर्थ में इसे स्वीकार करके सीता द्वारा

५९–विनयपत्रिका—पद २९
६०–वही–पद २७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आशीर्वाद रूप में इसकी अभिव्यक्ति करा दी। इसके स्पष्ट उल्लेख को वे बचा गए हैं। फिर भी 'कवितावली', 'विनयपत्रिका' तथा 'दोहावली' आदि में उन्हें रुद्रावतार[६१] बताकर भीम और अर्जुन के गर्व को खंजन करनेवाला कहकर[६२] (भीम और अर्जुन द्वापर के अंत में हुए) उनकी अमरता की मान्यता के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है।

उदात्तीकरण-- तुलसी ने हनुमान के चरित्र का पूर्ण उदात्तीकरण किया है। वन में जंगली अवस्था में भटकने वाली जाति का असभ्य प्राणी, जिसके स्वामी को उसके शत्रु ने स्त्री और राज्य से विरत कर दिया था, वह राम जैसे स्वामी का सेवक बनकर सभ्य एवं गुण सम्पन्न ही नहीं बना, अपितु परम बुद्धिमान, असंभव को संभव करने वाला, ज्ञानी, नीतिवान, साहित्यिक, संगीतज्ञ और साथ ही पराक्रमी योद्धा, राजनीतिपटु, आदर्श सेवक तथा श्रेष्ठ भक्त भी बना। उनके सभी गुण अनुकरणीय हैं। रामकथा का शायद ही कोई ऐसा पात्र हो, जिसे उन्होंने किसी न किसी क्षेत्र में प्रभावित न किया हो। तुलसी ने उनके जन्म को अवतार कहा है। इससे उन्होंने मानव विकास की उस उच्चतम भूमि की ओर संकेत किया है, जहाँ वह मानवत्व से देवत्व की कोटि में पहुँचता है। हनुमान बाहुक में तुलसी ने देवता रूप में उनकी स्तुति की है[६३] और उनसे अपने रोगशमन की प्रार्थना की है। वहाँ उन्हें 'संकट से मुक्ति दिलाने वाले देवता' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है[६४]। विनयपत्रिका में उन्हें 'संकट सोच बिमोचनी मूरती[६५]' बताया गया है।

ईसा की आठवीं शताब्दी से ही हनुमान को रुद्रावतार माना जाने लगा था और हनुमान-भक्ति का प्रसार होने लगा था[६६]। तुलसी ने हनुमान को रुद्रा-वतार बताया है। उन्हें 'रुद्र अवतार संसार पाता'[६७] कपाली[६८] तथा विग्रह पुरारी[६९] कहा है। हनुमान के रुद्रावतार माने जाने के सम्बन्ध में जो कथा प्रचलित है, उसके अनुसार एक बार शिव ने राम से कहा कि मैं आपकी दास्यभाव से सेवा करना चाहता हूँ। राम ने उन्हें वैसा करने का वरदान दे दिया। काला-

---

६१—विनयपत्रिका—पद २५
६२—वही—पद २८
६३—देखिए—छंद ८, २१, २९, ३४ आदि।
६४—वही—छंद १७, १९ तथा २३।
६५—विनयपत्रिका—पद ३०
६६—रामकथा—कामिल बुल्के, पृष्ठ ६८५
६७—विनयपत्रिका—पद २५
६८—वही—पद २६
६९—वही—पद २७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्तर में हनुमान रूप में शिव ने राम की दास्यभक्ति प्राप्त की और हनुमान एकादशरुद्र माने गए। संकट मोचन के साथ-साथ उन्हें भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र से रक्षा करने वाले के रूप में भी देखा जाने लगा। 'विनयपत्रिका' में उनके इस रूप की ओर भी संकेत किया गया है[७०]। हनुमान के देवत्व की प्रतिष्ठा 'विनयपत्रिका' तथा 'हनुमान बाहुक' में हुई है। 'मानस' के बालकांड के प्रारम्भ की वंदना तथा सुन्दरकांड के प्रारम्भ का श्लोक भी उनके देवत्व को स्पष्ट करते हैं। देवत्व की इस स्थापना के होते हुए भी तुलसी के हनुमान में हमें सेवक के आदर्श ही अधिक दिखाई देते हैं। उनके सम्पूर्ण कार्यों द्वारा तुलसी ने उनके उसी रूप का उद्घाटन कराया है। स्वामी के कार्य के लिए वे सब समय सब कुछ करने को तत्पर रहते हैं। उन्हें अपने मानापमान की चिन्ता नहीं है, केवल स्वामी के कार्य-संपादन की ही अभिलाषा है—

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।।

'मानस'—५।२२।६

आदर्श सेवक से तुलसी इसी प्रकार के भाव की अपेक्षा करते हैं। उन्हें विश्वास है कि प्रभु अपने सेवक पर सदैव ही प्रीति करते हैं—

सुनहु बिभीषन प्रभु कइ रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।

'मानस'—५।७।६

भगवान के इस प्रकार के स्वभाव के कारण ही उनके सेवक को ऊँचा स्थान मिला और वह स्वामी से भी अधिक श्रेष्ठ और पूज्य बन गया—

मोरे मन प्रभु अस विश्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा।।

७०—विनयपत्रिका, पद २६

[राम कथा सम्बन्धी प्राचीन ग्रंथों के विवरण के लिए डॉ० कामिल बुल्के कृत 'रामकथा' का आश्रय लिया गया है। लेखक उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है।

'रामचरितमानस' के पाठ तथा सन्दर्भों के लिए मानस के 'काशिराज संस्करण', संपादक आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा अन्य ग्रंथों के पाठ तथा सन्दर्भों के लिए 'तुलसी ग्रंथावली', प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को आधार बनाया गया है।]

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी की कविता : अर्थ-संरचना और भाषा-दृष्टि

डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव

गोस्वामी तुलसीदास कालजयी महाकवियों की पहली पंक्ति में हैं। भक्ति, लोकधर्म, समाजोपयोगिता, नैतिक दृष्टि, लोकप्रियता, जनकल्याण आदि अनेक दृष्टियों से तुलसी की कविता का मूल्यांकन हिन्दी आलोचना के इतिहास में सुरक्षित है। उसकी तुलना में काव्यदृष्टि या काव्यविवेक, अर्थ की एक विशिष्ट संरचना, भाषिक संगठन, उपयुक्त भाषाई संयोजन के प्रति एक सजग दृष्टि के आधार पर की गयी आलोचना—तुलसी के मूल्यांकन का एक छोटा-सा हिस्सा है। और तो और, तुलसी की प्रासंगिकता पर बहसें इधर होती ही रही हैं और इस पक्ष की उपेक्षा कर दी गयी है कि तुलसी की प्रासंगिकता का असली रहस्य भक्ति नहीं, कविता है। बहुत सारे भक्त कवि प्रसंगातीत हो चले हैं, तुलसी नहीं—इसलिए कि उनके पास भक्ति के अनुभव को लोकजीवन की पूर्णता के अनुभव में रचनान्तरित करने वाली सार्थक कवि दृष्टि भी थी। हिन्दी की पारम्परिक आलोचना में अक्सर यह भ्रम बना रहा है कि जो भक्त हैं, उनकी कविता भक्ति के लिए साधन है, अतः कविता के रूप में उसे महत्व देकर जाँचना जरूरी नहीं है। इसे भ्रम कहने की आवश्यकता इसलिए पड़ रही है कि कविता साधन ही सही, एक जरूरी साधन है और भक्तों में जो महत्त्वपूर्ण कवि हैं, उन्होंने अपनी कवि-प्रतिभा की एक-एक बूंद अपने आराध्य के महत्त्वगान के लिए निचोड़ ली है और यदि तुलसी के संदर्भ में इस बात की जाँच करनी हो तो तुलसी ने आराध्य राम की कथा के साथ अपना निजी सम्बन्ध बनाने के लिए राम के जीवन के साथ पूरे समाज की जीवनपूर्णता से अपना काव्यात्मक संवाद रचने की जो कोशिश की है, उसमें काव्यविवेक की सघनता और काव्यदृष्टि की पूर्णता अनिवार्य रूप से शामिल है। तुलसी जितने बड़े भक्त हैं उतने ही बड़े कवि भी हैं। आज कविता ही उनकी भक्ति और लोकदृष्टि का प्रमाण है। इस कविता की कविता के रूप में जाँच तुलसी के अनुभवज्ञान, व्यक्तित्व, स्वभाव, मनोवैज्ञानिक समझ को जाँचने के लिए जरूरी है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कविकर्म की विशिष्टता भाषा के माध्यम से ही व्यक्त होती है। इसलिए बड़े कवि प्रायः भाषा के बारे में अपनी दृष्टि साफ रखने की कोशिश करते हैं—वे कविता की परिभाषा करते हुए प्रायः भाषा के मर्म की ही परिभाषा करते हुए देखे जाते हैं। कुछ आश्चर्य नहीं, गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपनी भाषा दृष्टि को इस प्रकार विकसित करने की चेष्टा की है कि वह उनकी कवि-दृष्टि का पर्याय बन सके। एक ओर 'भनिति भदेसू' को लेकर उनमें असमंजस का भाव है :

राम सुकीरति भनिति भदेसू, असमंजस अस मोहि अंदेसू।

दूसरी ओर लोकभाषा को शास्त्रभाषा के समकक्ष गौरव देने की इच्छा भी उनके यहाँ लगातार सक्रिय है—'का भाषा, का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच'—लोकभाषा ही तो वह मुख्य स्रोत है, जिससे तुलसी की काव्यभाषा को सरलता, व्यंजकता, अर्थध्वनि की अचूक संवेदना प्राप्त होती है। सरलता को तुलसीदास काव्यगुण बताते हैं—

सरल कवित्त कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।

कभी-कभी सरल का पक्ष वह इस तर्क के सहारे भी लेते हैं कि मेरे पास वह गूढ़ कवित्व तो है ही नहीं, जिससे कविता में चमत्कार की सृष्टि संभव होती है। और यह तर्क कभी-कभी एक भक्त स्वभाव की बुनियादी नम्रता का अंग होता है—'कवित विवेक एक नहीं मोरें' / 'सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें'/—'कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीनू / सकल कला सब विद्याहीनू'/—अर्थात् राम के चरित्र की असीमता को कहने के लिए मेरे पास पूँजी ही कितनी है। इस विनम्रता के अपने अर्थ हैं। यह विनम्रता प्रकारान्तर से कवि को उक्ति के प्रति सजग बनाने वाली है।

भाषा-पूर्णता के प्रति तुलसी की सजगता उनकी कितनी ही पंक्तियों में प्रत्यक्ष है—रामचरितमानस का आरंभ जिस मंगल वाक्य से है, उसी में शब्दार्थ संगठन की चेतना निहित है :

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ बन्दे वाणीविनायकौ॥

वाक्शक्ति के प्रति यह सजगता अपने आप में एक पूरा काव्यशास्त्र बनती है। कवि की भाषा-दृष्टि की पहचान के लिए कुछ और पंक्तियों पर विचार करना चाहिए :

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥

× × ×

तैसेहिं सुकवि कवित्त बुध कहहीं, उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं।

× × ×

धुनि अवरेब कबित्त गुन जाती, मीन मनोहर तें बहुभाँती।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कबिहिं अरथ आखर बल साँचा, अनुहरिताल गतिहिं नटुनाचा।

× × ×

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबन्ध अनेक विधाना।।
भावभेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।।

शब्द और अर्थ की विविधता, अर्थ संकेत की महत्ता, ध्वन्यात्मकता के सम्बन्ध में तुलसी की कुल सजगता भाषा-दृष्टि के साथ काव्यदृष्टि के लिए प्रमाण है। कविता के बारे में तुलसीदास उदासीन नहीं हैं। 'भनिति विचित्र' के प्रति वह उत्सुक हैं, पर इस मर्म की बात को हृदय में धारण किए हुए—कि उनकी कविता राम की स्मृति से जुड़कर ही सार्थक है। तुलसी की कविता में जो सरलता है, वह अर्थ-सघनता को मिटाती नहीं, बल्कि उसमें गुणात्मक वृद्धि उपस्थित करती है। यह वह सरलता है, जो बड़ी साधना से आती है। केवल चमत्कारप्रेरित कूट काव्य लिखना आसान है, पर किसी परिस्थिति से तदाकार परिणति प्राप्त करने वाली उक्ति की अर्थसमृद्ध सरलता बड़ी चीज है।

ध्यान देने की चीज़ यह है कि तुलसी का भाषा पर अचूक नियंत्रण है। भाषा की गति उनके अनुभव की अनिवार्यता से निर्धारित हुई है चाहे अनुभव चरित्र का हो—अपने बाहर की दुनिया या परिस्थिति को ही सम्बोधित हो। अर्थ संरचना को हम भाषा के ही अनुभव के रूप में जाँच पाते हैं, अत: इन दोनों पक्षों को केन्द्र में रखते हुए तुलसी की कविता के कुछ मार्मिक स्थलों के काव्यवैशिष्ट्य या काव्य-मूल की पहचान की जा सकती है।

दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं
यातें सबै सुधि भूलि गयी कर टेकि रही पल टारत नाहीं।

विवाह का प्रसंग है। पहली पंक्ति वर-वधू के रूप में राम और सीता के सौन्दर्य या शृंगार पर केन्द्रित है। इस नाट्यप्रसंग के नायक-नायिका वही हैं। शब्द एक वातावरण की मूर्त्तता के अंग हैं, दूसरी ओर उसके कारक भी हैं। दूसरी पंक्ति वातावरण या परिस्थिति की स्वाभाविकता पर केन्द्रित है। तीसरी पंक्ति में अचानक कुछ नया घटने लगता है—यहीं मार्मिक कविता का क्षण है। असीमित रूप किस विशेष क्षण में कंकन के नग में अपनी छाया डालने लगा है, इसे केवल सीता जानती हैं। इस रागात्मक क्षण को पूर्णत: जो जी लेना चाहती हैं, अंतिम पंक्ति उनकी इसी चेष्टा का परिणाम है। छाया वहीं केन्द्रित रहे, यह चेतना तो बनी हुई है, पर इसके बाद निश्चेतन विभोरता-शिथिलता ही सीता का अनुभव है। शृंगार के आश्रय आलम्बन-उद्दीपन-संचारी-सात्त्विक की पूरी पहचान करने वाले भी इस अर्थ-संरचना के भाषाई आधार की व्याख्या कम करते

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं। जब कि कविता के मूल्यांकन के लिए उसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए। रागात्मक अनुभव की पूर्णता का यह मर्मस्पर्शी काव्यविधान इस भाषा के बाहर संभव नहीं था। ऐसी भाषा के मर्म की जाँच सिर्फ हाशिए पर होती रहे, यह कहाँ तक उचित है।

तुलसी की भाषादृष्टि उनके जीवनानुभव से प्रभावित है। जो कल्पनाएं भाषा में आश्चर्य बसाती हैं, वे सीधे जीवन से ले ली गयी हैं—

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी।।
राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई।।
थके नारि नर प्रेम पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से।।

वनगमन का अत्यन्त परिचित प्रसंग है। राम सीता की सुन्दरता को देखकर गाँव के स्त्री-पुरुष ऐसी निस्तब्धता का अनुभव करते हैं, जैसा अनुभव दीपक को देखकर हिरनी और हिरन करते होंगे। भावमर्म की इस गहरी व्यंजना की ओर कम पाठकों का ध्यान जाता है। राम और सीता के रूप-चित्रण की विशिष्टता व्याख्या योग्य जान पड़ती है, पर दीपक के औचक सामने पड़ने पर हिरनी और हिरन की विकल निस्तब्धता की पकड़ अक्सर नहीं हो पाती। तुलसी की अर्थ-संरचना में एक क्रमिक पूर्णता लक्ष्य करने योग्य है। सौन्दर्य का अनुभव कैसे प्रगाढ़ता प्राप्त करता है, यह देखने के लिए अर्थध्वनि के क्रमशः प्रस्फुटित सौन्दर्य पर आँख टिकनी चाहिए।

उपर्युक्त क्रम को लक्ष्य करने के लिए निम्नलिखित पंक्तियों पर विचार कर सकते हैं—

(क) आगे रामु लखन बने पाछें। तापस वेष बिराजत काछें।।
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।।

(ख) बहुरि कहउँ छबि जस मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई।।
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही।।

राम लक्ष्मण के बीच सीता की उपस्थिति की पहली कल्पना (क) तो वैसी ही है, जैसी शास्त्रज्ञ, तत्त्ववेत्ता दार्शनिक, भक्त कर सकते हैं— है एक विराट कल्पना, पर प्रायः परिभाषित कल्पना है। दूसरी कल्पना (ख) में तुलसी की अपनी दृष्टि सक्रिय है, जो मुख्यतः कवि-दृष्टि है। यहाँ भी एक पंक्ति की तुलना में तुलसी की दूसरी पंक्ति का अर्थोत्कर्ष—जो नक्षत्र जगत् के सुदूर अनुभवों को मानवीय उपस्थिति के दायरे में खींच लेने का परिणाम है लक्ष्य करने योग्य है। यहाँ अर्थसंरचना के बीच कल्पनाओं का जो क्रमिक संगठन है, वही महत्त्वपूर्ण है और कहने की आवश्यकता नहीं कि इस अनुभव-क्रम को भाषा में ही उपलब्ध किया जा सकता था, भाषा में ही उसे पहचाना भी जा सकता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी शब्द का मर्म ही नहीं जानते—शब्दातीत का मर्म भी जानते हैं। भरत राम से मिलने के लिए आते हैं, वन के आश्रम में। जहाँ से चले थे, मन में कितनी ग्लानि भरी थी, कितना क्षोभ, कितनी शंकाएँ। आश्रम में राम-लक्ष्मण सीता को पाकर एक नया जीवन मिला। विकलता दोनों ओर थी। चंचलता की मूर्त्ति लक्ष्मण का यह द्वन्द्व एक शब्दातीत स्थिति है—

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकवि लखन मन की गति भनई।।
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी पतंग जनु खैंच खेलारू।।

यहाँ तो तनाव के क्षण को शब्दातीत स्थिति के रूप में देखा गया है। इससे आगे जब सारा बोझ हल्का हो गया है, स्नेह की शीतल छाया का आभास सर्वत्र व्याप्त है, मनकी कैसी अकथनीय दशा है।

सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं।।
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता।।
कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा।।

दुख के खालीपन की व्यंजना आधुनिक साहित्य का अत्यन्त परिचित अनुभव है पर एक सुख का भी खालीपन (छूँछा) होता है, इसे तुलसी की कवि-दृष्टि पहचान सकी है और एक पूरे अनुभव-व्यापार में उसे रच सकी है। अब कोई किसी से कुछ कहता नहीं है, कुछ पूछता नहीं है, बस एक सहज तृप्ति वातावरण पर छा गयी है।

एक भिन्न प्रकार का उदाहरण लें, जहाँ भाषा की त्वरा या गति लक्ष्य करने की चीज़ है। हनुमान के लंका जलाने का प्रसंग है। वह जिस तेजी से इस अग्नि-कांड में लगे हैं कि गली, बाजार, घर, अटारी, द्वार, दीवार पर सर्वत्र वानर ही वानर की उपस्थिति गति आश्चर्य जान पड़ती है—

बीथिका-बाजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पवरि - पगार प्रति बानरू बिलोकिए।
अधऊर्ध बानर, बिदिसि - दिसि बानरू है
मानो रह्यो है भरि बानरू तिलोकिए।।
मूँदे आँखि हिय में, उधारें आँखि आगें ठाढ़ो
धाइ जाइ जहाँ-तहाँ और कोऊ कोकिए।
लेहु, अब लेहु, तब कोउ न सिखाबत मानो
सोई सतराइ जाइ, जाहि - जाहि रोकिए।।

शब्दों में भी वही लपट पैदा की गयी है जो वातावरण में फैलती जा रही है। कविता के शब्दों के बारे में इसीलिए कहा जाता है कि वे एक संसार के समानान्तर दूसरा संसार रचने में अपनी सार्थकता प्रमाणित कर पाते हैं। भक्त कवि की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बुनियादी नम्रता कल्पना और भाषा में जिस सहज रूप में व्यक्त हो सकी है, इसे एक उदाहरण में देखें—

कोऊ कहै, करत कुसाज, दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै, राम को गुलामु खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महाखल,
बानी झूठी-साँची कोटि उठति हबूब है।।
चहत न काहू सों न कहत काहू की कछु,
सबकी सहत, उर अंतर ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के
राम की भगति-भूमि मेरी मति दूब है।।

अंतिम विनम्र कथन के पहले सांसारिक निर्णयों का जो शब्दाडम्बर है, उसके विपरीत इस अल्प कथन की नमनीयता ध्यान आकृष्ट करती है। शब्दों की ध्वनि कैसे अचानक बदलती है (पर मनोवैज्ञानिक आधार की अवहेलना करके नहीं—) इसकी पहचान होनी चाहिए। अपनी बुद्धि के लिए 'दूब' की कल्पना जितनी सहज है, उतनी ही अर्थसघन। तुलसी का सृजनशील मन 'दूब' को अपने निकट पाता है, इसके पीछे आगे और पीछे की स्मृतियाँ हैं।

प्रत्यक्ष है कि तुलसी की कविता में भाषा-प्रयोग एक ही तरह का नहीं है। सीधे शब्द भी यहाँ अर्थ दे रहे हैं और सुदूर अर्थों वाले दुर्लभ शब्द भी काव्यविवेक का प्रमाण दे रहे हैं। तत्सम शब्दावली लोक शब्दावली में रची बसी है, तो अरबी फारसी के ढेरों शब्द भी बोलचाल की अचूक भंगिमा के साथ इस भाषा-संरचना में मौजूद हैं। जैसा पहले कहा गया, गोस्वामी तुलसीदास ने कवि-कर्म को साधना-स्थिति में भी सजगता पूर्वक विकसित करने की चेष्टा की है। वह बार-बार कवि के महत्त्वपूर्ण दायित्व को, कविता की संभावना को रेखांकित करते हैं—जैसे बार-बार अपनी पूँजी को टटोलते हैं। तुलसी की भाषा की सहजता साधारणता का पर्याय नहीं है—साधारण के वर्णन में भी उसकी रचनात्मक क्षमता अपने ढंग से कार्यरत है। "गिरा ग्राम्य" की सार्थकता या सटीकपन के बारे में वह आश्वस्त हैं, इसलिए नम्रता की मानसिकता का निर्वाह करते हुए वह उसके बहुविध काव्यात्मक प्रयोग की क्षमता का प्रमाण देते रहते हैं। 'रामलला नहछू' में अवधी का ग्राम्य लालित्य एक सर्वथा भिन्न प्रकार की संवेदना से परिचित कराता है, जिसमें मर्यादा के अभिजात दबाव ढीले पड़ गये हैं—

अहिरिन हाथ दहेड़ि सगुग लेइ आवइ हो,
उनरत जोबन देखि नृपति मग भाविइ हो।।

कहने का तात्पर्य यह कि तुलसी की भाषा-संरचना की विविधता अर्थ योजना के अनुरूप अपना संगठन बनाती है। इस भाषिक अनुभव के संसार में स्थिरता नहीं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, सजग संवेदनात्मक गति है। कविता की भाषा दृश्य को जिस क्षमता से पकड़ती है, दृश्य के पीछे की मूक गतियों को भी उतनी ही रचनात्मक समझ से उजागर करती है। तुलसी की भाषा और कविता में भक्त की लापरवाही नहीं है, सृजनशील चेतन स्वभाव की सार्थक अभिव्यक्ति है। कहा जाय कि वह कवि के अपने आदर्शों की ही रचनात्मक परिणति है––

हृदय सिन्धु मति सीप समाना, स्वाति सारदा कहहिं सुजाना,
जौं बरषइ बर बारि बिचारू, होहिं कबित मुकुतामनि चारू।

भाषा और कविता में विचारों की भूमिका कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, पर सभी स्वीकार करेंगे कि तुलसी के यहाँ भी कविता की कविता के रूप में क्षमता वहीं अधिक प्रकट है, जहाँ मार्मिक अनुभव-प्रसंग सामने हैं, विचार नहीं। कविता की सृजनशीलता के पक्ष में यह निर्णय यों ही नहीं है—इसके पीछे गहरी दृष्टि है : 'कविता शब्दों से बनती है, विचारों से नहीं।' ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लोकगीत और रामलला नहछू—प्रतिपाद्य और विश्लेषण

डॉ० इन्द्रावती सिंह

मनुष्य जीवन की उपलब्धियों में गीत का महत्वपूर्ण स्थान है। कदाचित आदिम मानव के हृदयगत भावों की वाणी के रूप में प्रथम अभिव्यक्ति गीत के माध्यम से ही हुई थी। प्राणी भावुक तत्वों से युक्त होता है, भावना से आवेग का जन्म होता है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए कण्ठस्वर फूटता है। "यह आवेग लययुक्त होता है।" ताल उसके लय को हृदय और प्राण से मिलाता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि मानव का परिचय पहले लय और तालयुक्त स्वर से हुआ। स्वर का जन्म पहले हुआ। बाद में शब्द का प्रवेश हुआ। आज के लोकगीत में स्वर और शब्द परस्पर गुंथे हैं। यह दूसरी बात है कि कहीं स्वर की प्रधानता है और कहीं शब्दों की।

लोकगीत की परिभाषा संक्षेप में यह की जा सकती है—"वह गीत, जो लोक-मानस की अभिव्यक्ति हो, अथवा जिसमें लोक-मानसाभास भी हो, लोक-गीत के अन्तर्गत आयेगा। लोक-गीत के शब्द समस्त लोक के होते हैं, उसमें कर्त्ता की प्रधानता नहीं होती। लोक-गीत का ज्ञानकोश जैसे समस्त लोक का अपना ज्ञानकोश होता है। लोक-गीत लोक-समूह द्वारा ही निर्मित होता है। गीत की रचना तो व्यक्ति द्वारा ही की जाती है, किन्तु उस व्यक्ति का लोक से ऐसा तादात्म्य स्थापित हो जाता है कि न रचना के क्षणों में और न उसके प्रसार के समय ऐसा प्रतीत होता है कि कोई उसकी रचना कर रहा है।

लोक-गीत ग्राम्य-संस्कृति के जागरूक प्रहरी कहे जा सकते हैं। इस दृष्टि से अनेक विद्वानों ने लोक-गीत की परिभाषा की है। रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार ग्राम्य गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। उनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं, केवल लय है। नरोत्तम स्वामी का कथन है "आदिम मनुष्य-हृदय के गानों का नाम लोक-गीत है।" गुलाब राय लोक-गीतों को "लोक-भावना की अभि-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व्यक्ति" मानते हैं। देवेन्द्र सत्यार्थी ने लिखा है कि लोक-गीत किसी संस्कृति के मुंह बोलते चित्र हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्राम-गीतों को आर्येतर वेद मानते हैं। जार्ज हरजोग का कथन है कि "जिस मानव-समूह के गीतों को लोक गीत कहा जा सकता है, वह मुख्यतः ग्रामीण हैं। लोक-गीत, लोक संस्कृति के ही एक अंश होते हैं।"

इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि लोक-गीत मानव-हृदय की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं। भावों को स्पष्ट करने के लिये वाणी को लय दी जाती है। लोक-गीत का क्षेत्र न तो गांव ही हैं, न जंगल-पहाड़ ही हैं। न गंवार, न कोल-किरात ही। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो लोक-मानस सर्वत्र विद्यमान है और लोक-गीतों में लोक-मानस के रंजन की भावना निहित है।

कुछ गीत विशेष कवियों के नाम से भी प्रचलित होते हैं। जैसे भक्तिकाल के कबीर, तुलसी, सूर और मीरा के भजन। इन गीतों में व्यक्ति विशेष की छाप है, किन्तु व्यक्तित्व की छाप होने पर भी इन कवियों का विषय, उनका स्वर, लय तथा वर्ण विन्यास सभी कुछ लोक-साहित्य के अनुरूप है। इन कवियों की भावनाएँ लोक-मानस की भावनाएँ हैं और वे भावनाएँ लोक-मानस के साथ ऐसा तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं कि उनका काव्य अथवा उनकी भावना व्यक्तिगत न होकर लोक-जगत की हो जाती है। ऐसे कवि मानव की उन शाश्वत अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं, जो लोक-गीतों का आधार कही गई हैं।

लोक-गीतों में समाहित है—लोक-विषय। उनमें लोक-जीवन की झाँकियाँ रहती हैं। जन-साधारण के भाव विभिन्न प्रसंगों व परिस्थितियों में निहित होते हैं। इस प्रकार जीवन के विविध आयामों एवं पक्षों का स्वरूप गीतों में प्रतिबिम्बित होता है।

अवधी लोक-गीतों की जन-जीवन में अधिक व्यापकता है, जीवन का कोई भी भाव-व्यापार या पक्ष इन गीतों से विलग नहीं है। कोमल-कठोर, स्थूल-सूक्ष्म, लौकिक-पारलौकिक, सभी भावों को गीतों की माला में पिरोया गया है। अवधी गीतों की व्यापकता को देखते हुए उनका विभाजन निम्न लिखित रूप से किया गया है—

(१) संस्कारों की दृष्टि से।
(२) धार्मिक अनुष्ठान, पूजा-पाठ आदि।
(३) ऋतुओं के क्रम से।
(४) उद्योग तथा श्रम के आधार पर।
(५) जातियों के अनुसार।
(६) विविध।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अवधी लोक-गीतों को उनके उद्देश्यों के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

(१) अनुष्ठान—आचार सम्बंधी।

(२) पर्व—सामाजिक उत्सव सम्बंधी।

अनुष्ठान सम्बंधी गीत—यह संस्कार प्रधान गीत है। इनके अन्तर्गत जन्म, विवाह, मृत्यु आदि के गीत आते हैं। 'नाखर' इन्हीं संस्कारों के अन्तर्गत आता है। नाखर का अर्थ नाखून से है। इसे नहछू भी कहते हैं। 'नाखुर' में महावर लगाने के पहले पैर के नाखून काटे जाते हैं—विवाह में मातृ-पूजन के दिन वर का नाखुर होता है, तब महावर लगाया जाता है। इस अवसर पर 'नाखुर' के गीत गाये जाते हैं। तुलसीदास जी ने 'रामलला नहछू' लिख कर इसी विधान की ओर संकेत किया है।

'रामलला नहछू' तुलसीदास जी का सोहर छन्द में लिखा अवधी का सुन्दर काव्य है। सोहर के अन्तर्गत केवल जन्म से सम्बन्धित भाव ही नहीं—अन्य भाव भी आ सकते हैं—इन गीतों में मानव जीवन के विभिन्न प्रसंगों की अवतारणा हुई है। "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर यह गीत अन्तर्द्वन्द्वों और उनके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले भावों का सुन्दर परिचय देते हैं।"

सोहिलो या सोहर-शैली की रचनाएँ मंगल कहलाती हैं। मंगल शब्द विवाह के लिये प्रयुक्त होता है। 'रामलला नहछू' में पैर के नखों के काटे जाने के संस्कार का उल्लेख है। राम का विवाह जनकपुर में हुआ था, पर नहछू अयोध्या में हुआ है। इसलिये कुछ लोग इसे यज्ञोपवीत के समय का मानते हैं। 'जानकी मंगल' में "उपवीत ब्याह उछाह जे सिय रामचरित जु गावहीं" में उपवीत का संकेत 'रामलला नहछू' की ओर है। नये अनुसंधाता इस नहछू में 'वर', 'कंगन' और 'मौर' आदि के उल्लेख के कारण उसे केवल विवाह का नहछू मानने के पक्ष में हैं—"कनक रतनमनि मौर लिहे मुसुकातहि हो" अथवा 'कर कंकन', कटि किंकिन नूपुर बाजइ हो।"

"उपवीत' और 'ब्याह' इन दोनों के पहले नहछू की रीति सम्पन्न की जाती है। बैसवाड़े का प्रत्येक कनौजिया इस संस्कार से परिचित है। कनौजिया ब्राह्मणों के यहाँ यज्ञोपवीत के समय वे सभी पूर्वांग सम्पन्न होते हैं, जो विवाह के समय हुआ करते हैं। केवल विवाह के समय बारात की निकासी होती है, जो यज्ञोपवीत के समय नहीं होती। वस्तुतः "यह व्रतबंध तीन संस्कारों से संवलित है—उपनयन, वेदारम्भ और समावर्तन। मौर आदि समावर्तन के अंग हैं।" (विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)। अब भी व्रतबंध के अवसर के नहछू और विवाह के अवसर के नहछू के गीत एक से हैं।

यह संभव हो सकता है कि मुसलमानों के शासनकाल में बाल-विवाह का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रचलन होने के कारण कई संस्कार आपस में मिल गये हों। जब विवाह का संस्कार पृथक् करने का समय आया, तब उपवीत के साथ विवाह की पूर्वांगभूत सभी रीतियाँ कहीं-कहीं लगी रह गईं और उपवीत संस्कार अलग न करके विवाह के साथ ही करने की प्रथा चल पड़ी। परिणाम यह हुआ कि ऐसे अवसरों पर गीत एक से ही गाये जाने लगे। विवाह के समय के गीत उपवीत के समय भी गाये जाने लगे। उपवीत के कुछ गीत तो उसके अपने हैं, पर विवाह की जो रीतियाँ 'जनेऊ' में होती है, उनके गीत एक ही हैं। पर जो जनेऊ की अपनी रीतियाँ हैं उनके गीत पृथक् हैं। 'बरुआ' जब अन्य लड़कों के साथ जनेऊ होने के पहले खीर-भात खाता है, उस समय के गीत स्वतंत्र हैं। पर नहछू आदि रीतियों के गीत एक ही हैं।

लोक-व्यवहार के अनुसार 'रामलला नहछू' को उपवीत के समय का गीत माना जा सकता है। जैसा पहले लिखा जा चुका है, अयोध्या में दशरथ के घर उत्सव हो रहा है। जनक के भवन में नहीं। विवाह के अवसर का नहछू तो मिथिला में हुआ होगा। अयोध्या में होने वाला नहछू उपवीत के अवसर का ही हो सकता है। पं० रामगुलाम द्विवेदी ने इसे उपवीत के समय का माना है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार भी यह नहछू उपवीत के समय का ही है। पर जनसाधारण में उपवीत तथा विवाह दोनों अवसरों पर नहछू गाने का प्रचलन है।

समाज में राम का प्रवेश सर्वत्र हो, इसी भावना से तुलसीदास जी ने नहछू का प्रणयन किया। उसमें सामाजिक व्यवहार की कुछ बातों का समावेश इसलिये किया गया है कि लोग अपनी रुचि के अनुकूल उसे प्राप्त करें और राम के प्रति आकृष्ट हों। वह उनकी फलश्रुति ही है—"रिद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावँइ हो।"

तुलसीदास जी के समय में समाज में सबसे बड़ी आवश्यकता शील-स्थापन की थी। यह शील तुलसीदास जी को परम विकसित रूप राम के उस चरित्र में मिला, जिसकी कथा लड़कपन में उन्होंने गुरु मुख से 'शूकर क्षेत्र' में सुनी थी। पर उसका रहस्य उस समय उन्होंने नहीं समझा था। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के कथनानुसार "सचेत होने पर उनमें जैसी समझ आई और जिस समझ की बदौलत उन्होंने 'रामचरित' कहना आरम्भ किया, वह लोकदृष्टि की ही समझ थी। लोकाराधन के व्रती उपास्य का उपासक लोकदृष्टि का त्याग कैसे कर सकता है? समाज में 'बुध' भी थे और 'अबुध' भी। कवि को दोनों का सामीप्य प्राप्त करना था। दोनों के निकट राम को पहुँचाना था। दोनों के हृदयों में उनके लोकाराधन रूप की प्रतिष्ठा करनी थी।" इसके लिये तुलसीदासजी ने जितना परिश्रम किया, जितनी तपस्या की, जितनी बुद्धि लगाई, जितना हृदय निकाल कर अपनी रचनावली में रखा, उन सबसे उनकी अलौकिक लोकदृष्टि का ही पता चलता है। वे स्वार्थ और परमार्थ दोनों की साधना एक साथ दिखा देना

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चाहते हैं। "वे ऐहिक और आमुष्मिक सुख की संप्राप्ति एक ही लक्ष्य की सिद्धि द्वारा करा देना चाहते थे। वे जानते थे कि यदि 'बुध' मेरे प्रबन्ध का आदर नहीं करते, तो मेरा सारा श्रम बाल प्रयत्न मात्र होगा। मानस की रचना करके उन्होंने 'बुधों' को भलीभाँति प्रसन्न किया। ग्रंथ के आद्यांत का बँधान ऐसा बाँधा जिसके लिये पूर्ण शास्त्रीय ज्ञान अपेक्षित था। बीच में रामकथा इस ढंग से कही कि बुध, अबुध सबके हृदय आकृष्ट हो जायें।" किसी वस्तु का ग्रहण व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार करता है। इसलिये साधारण जन के संतोष के लिये ऐसी रचना भी अपेक्षित थी, जो उनके अभ्यास अथवा समझने की समर्थता के अनुरूप हो। इस भावना से प्रेरित होकर ही तुलसीदास जी ने 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल', 'रामलला नहछू' ऐसी रचनाओं का प्रणयन किया, जो लोकगीतों के ढर्रों पर है। अनेकानेक शोधकर्त्ता 'नहछू' में दशरथ के विलासी रूप की अभिव्यक्ति और कौशल्या के सम्बंध में कहीं इन पक्तियों को तुलसीदासजी की मर्यादा के अनुकूल नहीं पाते हैं।

काहे राम जिव साँवर लखिमन गोर हो।
की दहुँ रानि कौसिलहि, परिगा भोर हो।।
राम अहहिं दसरथ कै लछिमन आनक हो।
भरत सत्रुहन भाई तौ श्री रघुनाथ क हो।।

वस्तुतः अपढ़ भावुक जनमानस का हृदय इस प्रकार के गीतों को सुन कर आह्लाद से भर उठता था, अथवा यों कहिये कि इन्हीं गीतों द्वारा उसका हृदय राम को पहचानता था। नहछू के उत्सव के समय हास-परिहास की सृष्टि करके उन्होंने रस का परिपाक किया है। जो विवाह-नहछू आदि मंगल अवसरों पर गारी देने की रीति के अन्तर्गत आता है, अतएव इस प्रकार की रचना करके मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। मर्यादा बाँधने के लिये ही इस साधन से भी काम लिया। यह साधन ही था—साध्य नहीं। शुष्क मरूभूमि में वर्षा की फुहार कितनी आनन्द-दायक होती है, यह भोक्ता ही समझ सकता है। भक्ति में विभोर नर-नारी बीच-बीच में हास-परिहास का सृजन कर हृदय में जिस अपार आनन्द की लहरें उत्पन्न करने में सहायक होते हैं, वही रस का मूलमंत्र है। रसयुक्त रचना समाज में अधिक सुगमता से स्थान पाती है। कदाचित् इसीलिए रामलला नहछू के गीत जन जीवन में समा गये हैं।

रामलला नहछू में जीवन का सहज उल्लास है। लोकमानस का मन मयूर ढोलक की थाप पर नाच उठता है। तुलसी के राम सहज मानव के रूप में नाखुर करवाते हैं और 'नारी कंठ-स्वर' मंगल गान से मुखरित हो उठता है।

किसी भी शुभ संस्कार का प्रारम्भ मंगलगान से होता है। रामलला नहछू में भी सर्वप्रथम सरस्वती, गणेश तथा पार्वती की वन्दना की जाती है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो।
राम लला कर नहछु गाइ सुनाइय हो।।

इस रचना में विषय-वर्णन के साथ ही श्रद्धा एवं भक्ति का भी समन्वय किया गया है। इस 'नहछू' को गाने से प्राणिमात्र को सिद्धि प्राप्त होती है और कोटि जन्म के पाप धुल जाते हैं--

जेहि गाये सिधि होय परम निधि पाइय हो।
कोटि जनम कर पातक दूरि सो जाइय हो।।

यह है तुलसी की साहित्य-साधना-पद्धति, जिसके द्वारा वे राम को जनसाधारण के मध्य सरलता से पहुँचा देते हैं।

और उसके पश्चात् अति स्वाभाविक रूप से तुलसी उस अयोध्या के गृह का वर्णन करते हैं, जहाँ राम का नाखुर होनेवाला है। दशरथ के गृह में बाजे बज रहे हैं। नगर की शोभा अवर्णनीय है। माता कौशल्या के हृदय में प्रसन्नता की लहरें उठ रही हैं।

सुन्दर बाँस का मंडप—चारों ओर झालरें। युवतियाँ गंगाजल से राम को स्नान करा रही हैं और साथ ही साथ मंगलगान हो रहा है। मुक्ता-मणियों से चौक पूर कर राम को बिठाया गया है। विधि-विधान हो रहे हैं—

बिहसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो।
अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो।।

सलोने रूप वाली तंबोलिनि पान का बीड़ा लेकर खड़ी है। गौरवर्णी दरजिन राम को 'जोड़ा' पहनाने के लिये उत्सुक है, रूपवती मालिन रत्नों से जटित स्वर्ण मुकुट लिये अपनी मधुर मुस्कान बिखेर रही है। सभी प्रसन्न हृदय से रानियों को 'गारी' दे रही हैं।

कौशल्या राम को गोद में लिये बैठी हैं और नहछू करा रही हैं। नहछू के समय का मनोहर दृश्य दर्शनीय है। सोलह-शृंगार से युक्त नाउन हाथ में स्वर्ण जटित नहरनी लेकर आई है। कानों में कर्णफूल, नाक में बेसर, गले में मोतियों की माला, हाथों में गंगन, कमर में करधनी और पैरों में नूपुर—रानी द्वारा दी हुई साड़ी उसके शरीर पर शोभित हो रही है।

अवध में आनन्द छाया हुआ है। राम का नहछू जो हो रहा है। बड़े भाग्यवाली है वह नाउन, जो राम के नखों का स्पर्श कर रही है। जिन पगों की धूलि को सिद्ध-मुनि नहीं प्राप्त कर पाते, उन्हीं पगों को नाउन धो रही है और राम धुला रहे हैं।

न्योछावर एक सामाजिक परम्परा है। सभी इस अवसर पर न्योछावर कर रहे हैं। राजा ने हाथी दिये, रानियों ने हार दिये और इस प्रकार हजारों सूप रत्न पदार्थों से भर गये—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजन दीन्हें हाथी रानिन्ह हार हो।
भरिगे रतन पदारथ सूप हजार हो।।
भरि गाड़ी नवछावरि नाऊ लावइ हो।
परिजन करहि निहाल असीसत आवइ हो ।।

मेघ-वर्षा के समान दान हो रहा है और उछाह भरे गीत गाये जा रहे हैं। रनिवास में सभी प्रेम-पूर्वक 'गारी' गा रही हैं और राम माता को देख कर संकुचित हो रहे हैं। आनन्द मंगल का मेला-सा लग गया है अयोध्या में।

राम केवल तुलसी के ही न रहकर जनजीवन की भावनाओं में गीत के रूप में अमर हो जाते हैं—यह है तुलसी की भावना, जो राम को अलौकिक स्तर से उतार कर शुद्ध मानवीय लौकिक धरातल पर ले आती है। तुलसी के राम मानव के रूप में युगों से चली आती परम्पराओं तथा संस्कारों को प्रतिपादित करते हैं। राम का यह मानवीय रूप केवल तुलसी ही अंकित करने में सफल हो सके हैं।

तुलसी ने बार-बार जनसाधारण के हृदय में नहछू गीत के प्रति प्रबल श्रद्धा-विश्वास जागृत किया है—उनकी यह पंक्तियाँ मानव मन का सम्बल बन जाती हैं—

जे यह नहछु गावैं गाइ सुनावई हो।
ऋद्धि-सिद्धि कल्याण मुक्ति नर पावई हो ।।

और कदाचित इसीलिये 'रामलला नहछू' जन-जन का प्रिय गीत बनकर अमर हो गया है। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भक्ति-आन्दोलन के तीन सोपान | डॉ० जनार्दन राव चेलेर

भक्ति-आंदोलन की सांस्कृतिक पीठिका

भारत के हाल के इतिहास में दो आंदोलन विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहे हैं : एक मध्यकालीन भक्ति आंदोलन और दूसरा आधुनिक कालीन स्वातंत्र्य आंदोलन। इन दोनों ही आंदोलनों की प्रकृति और व्यापकता में कई बातों में साम्य है। दोनों आंदोलन संपूर्ण जनसमुदाय के क्रांतिकारी जागरण स्वरूप रहे हैं और दोनों के समय में देश के संपूर्ण भौगोलिक विस्तार में शताधिक संतों और महापुरुषों की एक साथ मानों बाढ़ आ गई थी। जनक्रान्ति के ऐसे उदाहरण इतिहास में अभूतपूर्व हैं।[1]

आधुनिकालीन स्वातंत्र्य आंदोलन की तरह मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। जिस शीघ्रता के साथ यह आन्दोलन देश के संपूर्ण भौगोलिक विस्तार में देखते-देखते फैल गया था, इसी से पता चलता है कि राष्ट्र का मानस इसके लिए कितना ग्रहणशील हो गया था। इस आन्दोलन का कार्यक्षेत्र देशव्यापी था, और इसके सूत्रधार भी देश के समस्त भागों में उद्भूत होनेवाले विभिन्न सन्त एवं महापुरुष थे। इसकी कालावधि कई शतकों में परिव्याप्त है। मोटे तौर पर इसके समय को उत्तर मध्यकाल में निश्चित किया

१–इस प्रसंग में जैन और बौद्ध धर्म के उदय की ओर ध्यान जा सकता है। जैन और बौद्ध धर्मों का उदय और विकास प्रायः समानान्तर रहा है। संभवतः इन धर्मों का उदय भी विशालतर जन-जागरण की पृष्ठभूमि में हुआ था। महावीर एवं गौतम ने इस जन-जागरण को नेतृत्व प्रदान किया था। परन्तु ये नेता जनजागृतिजन्य सांस्कृतिक आन्दोलन को जिस दिशा में ले गये, उनमें से आगे चलकर यह भारत की सनातन संस्कृति की मुख्य धारा से एक तो दूर पड़ने लगा था, और दूसरा एकदम विपरीत दिशा में जाने लगकर प्रतिक्रियावादी बनने लगा था। परिणामतः जैन धर्म तो भारतीय संस्कृति की सनातन धारा से जुड़ा रहकर बचा रहा, परन्तु बौद्ध धर्म का पूर्ण उच्छेद हो गया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जा सकता है, जबकि पूर्व मध्यकाल में इसके लिए उपयुक्त मनोभूमि तैयार होने लगी थी।

इस आन्दोलन की एक और विशेषता है, जिसकी ओर विशेषरूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। यह आन्दोलन प्रारंभ तो समाज के निम्न वर्गों में होता है, परन्तु आन्दोलन के दूसरे चरण में इसका नेतृत्व ब्राह्मण वर्ग द्वारा हथिया लिया जाता है। समाज के तथारूप अछूतप्राय वर्गों में उत्पन्न हुए जागरण के विद्रोह और क्रान्ति के स्तर तक पहुँचने पर, ब्राह्मण वर्ग द्वारा उस जनजागरणकारी आन्दोलन का नेतृत्व छीन लिया जाता है, और वे इस आन्दोलन को दूसरी दिशा में मोड़ देते हैं। प्रारंभ में इस आन्दोलन का स्वरूप निम्न वर्गियों द्वारा उच्च वर्गियों के विरुद्ध उठा दीखता है, पीछे से ब्राह्मणों द्वारा उसका नेतृत्व लिये जाने पर आन्दोलन की दिशा उच्च वर्गों की ओर से मुड़कर परोक्ष की ओर घूम जाती है।

आधुनिककालीन स्वातंत्र्य आन्दोलन की भाँति मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन भी राष्ट्रीय जागरण की कोटि का था। दोनों ही आन्दोलन मूलतः सांस्कृतिक पुनरुत्थान की मनोभूमि से उद्भूत हुए थे।[२] दोनों में अन्तर यह है कि सामयिक परिस्थितियों के आग्रह से यह सांस्कृतिक पुनरुत्थान का भाव मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन के रूप में फूट पड़ा था और आधुनिक काल में स्वातंत्र्य आन्दोलन के रूप में। दुर्भाग्य से दोनों आन्दोलनों की परिणति भी समान रूप में हुई। दोनों समय के आन्दोलनों के कोलाहल के बीच सांस्कृतिक पुनरुत्थान का स्वर दब गया था, आन्दोलन का जो तात्कालिक लक्ष्य था, उसकी सिद्धि के उपरान्त दोनों के भाव विकृत हो गये थे। भक्ति-आन्दोलन के फलस्वरूप राष्ट्र मानस ने अपना खोया हुआ विश्वास फिर से प्राप्त किया था, और उसका विघटनशील व्यक्तित्व फिर से संघटित होकर अपनी पृथक् इकाई (Identity) को पुनः प्राप्त कर सका था। भक्ति आन्दोलन की राष्ट्र के जीवन के लिए यह सबसे बड़ी उपलब्धि थी। एक बार इसको उपलब्ध कर चुकने के बाद भक्ति की वह प्रवृत्ति, उसकी आधारभूत परिस्थितियों के न रह जाने पर, विकासोन्मुख विकृत हो गई थी।

उसी प्रकार स्वातंत्र्य आन्दोलन के उग्र क्षणों में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का भाव दब गया था, और राजनीतिक स्वाधीनता ही प्रमुख लक्ष्य बन गयी थी। स्वाभावतः आन्दोलन का स्वरूप राजनीतिक हो गया था। स्वाधीनता के लक्ष्य की सिद्धि के उपरान्त राजनीतिक प्रवृत्ति के उभार की आवश्यकता समाप्त हो गई थी। परन्तु दुर्भाग्य से फिर वही हुआ जो पिछले आन्दोलन की समाप्ति पर हुआ

२—दोनों समय के आन्दोलनों की वैचारिक पृष्ठभूमि के निर्माण में 'गीता' की भूमिका ध्यान देने योग्य है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था। सांस्कृतिक पुनरुत्थान का भाव, जो आन्दोलन के कोलाहल के बीच दब गया था, फिर कभी उभर नहीं सका और राजनीतिक प्रवृत्ति ही स्वार्थ से बल पकड़ती जाकर राष्ट्र के जीवन को बुरी तरह से भ्रष्ट एवं विकृत करती गई थी।

ऊपर हमने भक्ति-आन्दोलन को मूलतः सांस्कृतिक पुनरुत्थान की मनोभूमि से उद्भूत बतलाया है। यह तथ्य महत्वपूर्ण है, कारण इससे आन्दोलन का स्वरूप, उसके विकास की दिशा तथा आन्दोलन की परिणति तीनों परस्पर अनुस्यूत होकर एक विशिष्ट रूपरेखा को उभारते हैं। इसके पहले उस सांस्कृतिक मनोभूमि का विश्लेषण आवश्यक है भक्ति-आन्दोलन को, जिसकी सामयिक परिणति बतलायी गयी है।

भक्ति-आन्दोलन को कुछ लोगों ने धार्मिक आन्दोलन भी बतलाया है।[3] कदाचित उनका अभिप्राय मुसलमानी धर्म के विरुद्ध हिन्दू धर्म की पुनःप्रतिष्ठा के लिए उठे आन्दोलन से है। परन्तु यह दृष्टि तथ्य को केवल उसकी सतह पर छूकर रह जाती है। वस्तुतः उसके मूल में एक प्रकार की सांस्कृतिक छटपटाहट दिखाई देती है। लगता है, उस युग का मानस किसी सांस्कृतिक प्रेरणा से छटपटा रहा है। मानो अपनी खोयी इयत्ता को पुनः प्राप्त करने के लिए उसमें आकुलता है। मानो उसे इस बात का एहसास है कि उसने अपना पूर्व रूप खो दिया है, उसको पुनः प्राप्त करना चाहता है। रामराज्य की कल्पना उसकी इसी आकांक्षा का परिणाम है। तुलसी में वर्ण-आश्रम-अवतार व्यवस्था का आग्रह है, और आध्यात्मिक दृष्टि का भी आग्रह है। परन्तु ऐहिक शक्तिमत्ता, ऐश्वर्य और अभ्युदय का स्वर उसमें नहीं मिलता। बतलाया गया कि यह जातीय पराभव के के कारण है। वस्तुतः अपनी सांस्कृतिक इयत्ता को प्राप्त करने की आकुलता तुलसी से बहुत पहले से गोचर होती है। आचार्य द्विवेदी जी ने सत्ययुग और कलियुग की धारणाओं के विवेचन में इसकी ओर संकेत किया है।[4] इसके लिए हमें अपनी दृष्टि को किंचित् और पीछे की ओर ले जाने की आवश्यकता है।

मूलतः भारत का सांस्कृतिक व्यक्तित्व कैसा है? उसे केवल परलोकोन्मुख अध्यात्मवादी बतलाना उतना ही गलत है, जितना उसे केवल ऐतिहासिकोन्मुख भौतिकवादी कहना। उसके सांस्कृतिक व्यक्तित्व का कुछ हद तक सही चित्रण कालिदास के रघुवंश में मिलता है—

आसमुद्रक्षितीशानाम आनाकरथवर्त्मनाम्
यथाऽपराधदण्डानाम् त्यागाय संभृतार्थानाम्।
यशसे विजिगीषणाम् प्रजायै गृहमेधिनाम्

३—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त कृत हिन्दी-साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० १५७
४—द्रष्टव्य—मध्यकालीन बोध का स्वरूप।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शैशवे अभ्यस्तविद्यानाम् यौवने विषयैषिणाम्
वार्धके मुनिवृत्तीनाम् योगेनान्ते तनूत्याजाम् ।।

रघुकुल के राजाओं का व्यक्तित्व भारत की मूल सांस्कृतिक चेतना से काफी हद तक अनुप्राणित है।

किसी जाति की संस्कृति[५] को जानने के मूल आधार दो हैं : जीवन दृष्टि तथा जीवन प्रणाली। अर्थात् जीवन जगत के प्रति उसका दृष्टिकोण क्या है, तथा उसके आधार पर विकसित होने वाली उसकी जीवन प्रणाली किस रूप की है। भारत की जीवन के प्रति विराट् एवं समग्र (Integrated) दृष्टि रही है। **"नेह नानास्ति किंचन, एकम् सत् विप्रा बहुधा वदन्ति, मृत्योः स मृत्युमाप्नोति यो इह नानात्वं पश्यति"।** आकीट ब्रह्माण्ड पर्यन्त एक ही सूत्र अनुस्यूत है। अतः मनुष्य और उसके जीवन को निखिल विश्व एवं ब्रह्माण्ड के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। स्वभावतः जीवन की कोई उपयुक्त प्रणाली इसी एकत्व की दृष्टि से उद्भूत हो सकती है। भारत की जीवन प्रणाली अनिवार्यतः इसी जीवनदृष्टि से विकसित हुई है। चूंकि सत्य एक और विराट् है, तथा दृश्यमान नानात्व केवल उसका आभास है, अतः सत्य का ग्रहण नानात्व के समन्वय से ही हो सकता है। इसीसे समन्वय भारतीय जीवन प्रणाली का मूल आधार बना है। विविध जातियों का समन्वय करने के लिए वर्ण-व्यवस्था, जातियों के विविध उपास्य देवताओं के समन्वय के लिए—प्रकारान्तर से भी जातीय समन्वय साधने के लिए—अवतार व्यवस्था, व्यक्ति और समाज के इस छोर पर तथा सामयिक और शाश्वत मूल्यों के समन्वय के लिए आश्रम व्यवस्था आदि की कल्पना द्वारा समय-समय पर उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियों के आग्रह के अनुकूल भारत की जीवन प्रणाली बराबर समन्वय साधना करती रही है।

इस प्रकार उस एकत्व मूलक विराट् एवं समग्र जीवनदृष्टि से अनुप्राणित होकर भारतीय समाज में जब तक यह समन्वय साधना होती रही है, तब तक और इसी कारण उसका सांस्कृतिक व्यक्तित्व संघटित एवं समग्रित रहा है। ऐसे वातावरण में भारतीय समाज का भौतिक एवं आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में बहुमुखी

५—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्रजी ने 'संस्कृति' के संबंध में इस प्रकार की धारणा व्यक्त की है—"संस्कृति शब्द आधुनिक है। इसका समानार्थक शब्द भारतीय वाङमय में नहीं है। संस्कार शब्द इससे मिलता हुआ होने पर भी इसका अर्थ नहीं देता। यह व्यक्तिगत परिष्कार से जितना संबद्ध है उतना लोकगत परिष्कार से नहीं। संस्कृति सामाजिक परिष्कार है। इसके अंतर्गत किसी स्थान के आचार-विचार का स्वरूप गृहीत होता है। आचार व्यवहार पक्ष है और विचार सिद्धान्त पक्ष।"
—'हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका' के निवेशन में।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विकास हुआ है। ऊपर उद्धृत रघुकुल के राजाओं के व्यक्तित्व का चित्र मात्र एक कवि की आदर्श भावना नहीं है, अपितु इतिहास सिद्ध तथ्य है। परन्तु पीछे से लगता है, भारतीय समाज में उत्तरोत्तर संकीर्णता आती गई; उसकी जीवन दृष्टि संकुचित एवं संकीर्ण होती गई, और जीवन की प्रणाली में सांप्रदायिक पूर्वाग्रह बढ़ने लगा। परिणामतः सामाजिक जीवन में विसंवाद बढ़ने लगा। जैसा कि इतिहास बतलाता है, सातवीं-आठवीं शताब्दी तक भारतीय समाज कूपमण्डूक बन गया था। नाना प्रकार के विधि निषेधों, रूढ़ियों एवं अन्ध-विश्वासों और जादू टोनों में ग्रस्त होकर समाज काफी जर्जरित हो गया था। उत्तर में बौद्धों, शाक्तों और सिद्ध-नाथ-योगियों के कारण हिन्दुत्व किंवा सनातन धर्म उखड़कर धीरे-धीरे दक्षिण की ओर खिसकता गया था। दिनकरजी के अनुसार खाँटी हिन्दुत्व तो दक्षिण में ही अवशिष्ट था। इसीसे सनातन धर्म के पुनरुत्थान का श्रीगणेश दक्षिण में हुआ, और उसने आचार्य शंकर के रूप में उठकर सिंहनाद किया। भौतिक और आध्यात्मिक——संस्कृति के इन दो मोर्चों में से शंकर ने केवल आध्यात्मिक मोर्चे पर संस्कृति का परिष्कार किया। उन परवर्ती आचार्यों ने भी सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर जातीय संगठन को न साध कर भक्ति के स्तर पर ही इस कार्य को प्रोत्साहन दिया। कादचित् इसका कारण यह है कि भौतिक स्तर पर संगठन के लिए जिस आत्मविश्वास, आत्माभिमान और स्वनिष्ठता की आवश्यकता होती है, वह उस समय की जाति में नहीं था। इसीसे उस मुमूर्षु जाति के लिए सबसे पहले भक्ति की संजीवनी आवश्यक थी। भक्ति की बाढ़ के नीचे सांस्कृतिक चेतना की धारा अन्तःसलिला की भांति बराबर गोचर होती है। भक्ति आन्दोलन के पहले से दूसरे चरण में उतरने पर मनः प्रवृत्ति निर्गुण से सगुण की ओर उन्मुख होती है, परन्तु तीसरे चरण में भौतिक शारीरिक शक्तिमत्तसु पर दृष्टि केन्द्रित होती है। शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह साक्षात् अवतार दीखते हैं। राष्ट्र का अभिमान हुंकारने लगता है, और वह मुगल साम्राज्य का सामना कर उसका पराभव करता है। तात्पर्य यह है कि राष्ट्र की चेतना परलोक में खो नहीं जाती, केवल राम-राम रटकर रह नहीं जाती, बल्कि राम के आश्रय से आतमबल पाकर स्नायुबल को भी बढ़ाने की ओर अग्रसर होती है। लोहे का जवाब लोहे से देने पर उतर आती है। इसलिए भक्ति-आन्दोलन को केवल धार्मिक आन्दोलन के रूप में देखना उसको संकीर्ण कर देना है। तीसरे चरण में भक्ति की बाढ़ उतर जाती है और सांस्कृतिक अभिमान फन मारने लगता है। तीसरे चरण के बाद? फिर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक अभिमान की चेतना मंद पड़ने लगती है और राष्ट्र फिर मधुर भक्ति की मोह सरिता में ऊभ-चूभ करने लगता है। १९ वीं शती में एक बार फिर यह सांस्कृतिक चेतना जग जाती है, और पीछे से राजनीतिक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भँवर में फँस कर फिर खो जाती है। यह राष्ट्र आज तक भी अपना सांस्कृतिक व्यक्तित्व नहीं प्राप्त कर सका है।

आन्दोलन के तीन सोपान :

यों यह आवश्यक है कि आर्थिक आधार सामाजिक चेतना को प्रभावित एवं नियंत्रित करता है, और इसी न्याय से आर्थिक विषमता मानसिकस्तर भेद का भी कारण बनती है। परन्तु एक जीवन दर्शन के रूप में जातीय विचारधारा जो उभरती है, वह इन विषमताओं से मुक्त होकर स्थापित होती है। मध्यकालीन समाज का दैन्य और उसकी भक्तिमूलक विचारधारा इसी आधार पर स्तर-मुक्त थी। इसलिए यह देखना चाहिए कि समाज का कोई जीवन दर्शन किन सामाजिक विषमताओं के घात-प्रतिघातों से उभर कर आया है। इसी दृष्टि से भक्ति-आन्दोलन के विकास को देखना चाहिए।

समाज के मानस पर पड़े प्रभाव की दृष्टि से इस आन्दोलन के तीन सोपान स्पष्टतया गोचर होते हैं। जनजागरण का यह आन्दोलन प्रथम सोपान पर कबीरदास प्रभृति तथाकथित निर्गुणिया सन्तों के रूप में प्रगट होता है; द्वितीय सोपान पर तुलसीदास प्रभृति सगुण भक्तों के रूप में; तथा तृतीय सोपान पर महाराष्ट्र के संत रामदास और पंजाब के सिक्ख गुरु गोविन्द सिंह प्रभृति सन्तों के रूप में प्रगट होता है।

प्रथम सोपान :

मध्यकालीन जनजागरण मूलक आन्दोलन[६] के संबंध में विद्वानों का यह कथन बहुत कुछ सच है कि यह भारतीय समाज की अपनी आन्तरिक परिस्थितियों का परिणाम था न कि मुसलमानी आक्रमण का।[७] अगर मुसमानों का आक्रमण न होता, तब भी जागरण मूलक यह आन्दोलन अवश्य होता। मुसलमानों के आक्रमण ने इस आन्दोलन को प्रभावित अवश्य किया है, परन्तु इसकी कारक परिस्थितियाँ समाज की परम्परा में अन्दरूनी तौर पर पैदा हो गई थीं।[८]

६–मध्ययुग में सब जन आन्दोलन धार्मिक आन्दोलन के रूप में उठे थे। डा० धर्मवीर भारती ने अपने 'सिद्ध साहित्य' में एंजिल्स का एक मत उद्धृत किया है, जिसके अनुसार मध्ययुग में समाजशास्त्र, दर्शन, न्याय सभी कुछ धर्मसाधना के अंग बन चुके थे। अतः प्रत्येक सामाजिक और राजनीतिक जनआन्दोलन उस समय धर्म साधना का रूप लेकर आता था।—पृ० ७६

७–संस्कृति के चार अध्याय, पृ० २१३

८–डा० रामनरेश वर्मा के अनुसार मुसलमानों के प्रभुत्व के पहले ही भारतीय जनता अधिकाधिक कर्म-विमुख, आत्मविश्वासहीन, ईश्वरोन्मुख और परलोक-प्रवण हो गई थी।—हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ४३

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारतीय इतिहास के मध्यकाल को विद्वान लोग पूर्व और उत्तर ऐसे दो रूपों में विभक्त करके देखते हैं। यह विभाजन समाज की मानसिकता की दृष्टि से विशेष अर्थपूर्ण है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, पूर्व मध्यकाल में देश में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ बनीं, जिनके परिणामस्वरूप समाज की मानसिकता उत्तरोत्तर कुण्ठित और प्रायः कुन्द होती गई थी। फिर भी समाज परंपरागत संस्कार मानों उसके अवचेतन में छिपकर कहीं जीवित थे और वे ही कालान्तर में अवसर पाकर निम्न वर्गों की चेतना में फट पड़े थे। परंपरागत ज्ञान का जो वर्ग वाहक था, और इस कारण जो वर्ग सामाजिक धर्म का विधायक था, उस वर्ग के परंपरागत ज्ञान और सामाजिक धर्म के विधायक दायित्व से च्युत हो जाने पर उस समाज-धर्म के निम्न वर्गों में अवशिष्ट संस्कार ही कालान्तर में बल पकड़कर उन वर्गों में उत्पन्न हुए संतों के रूप में प्रगट हुए थे। कबीर का वह समय था, जब समाज के उच्च वर्गों के पाखण्ड और अर्थशून्य बाह्याचारों के विरुद्ध सामाजिक असंतोष इन निम्न वर्गीय संतों के द्वारा व्यक्त हो रहा था। उच्च वर्गों द्वारा समाज का नेतृत्व छोड़ दिये जाने पर निम्न वर्गों में उत्पन्न होनेवाले इन संतों ने ही उस नेतृत्व की डोर संभाली थी। हम देखते हैं कि संपूर्ण उत्तरापथ से लेकर दक्षिण देश के विभिन्न भागों में ये निर्गुणिया संत एक साथ उभर कर उठते हैं और ब्राह्मणों के अर्थशून्य बाह्याचारों का एक स्वर से विरोध करने लगते हैं। समाज के निम्न वर्गों से उठे हुए ये संत शूद्र और अछूत कही जाने वाली जातियों के थे। निम्न वर्ग की विभिन्न संकरित जातियाँ उच्च वर्गों द्वारा अछूत करार दी गई थीं। पुरोहितों के पाखण्ड और सामन्तों की विलासप्रियता के कारण उनसे निराश होकर जनता सिद्धों, नाथों और योगियों के फूहड़ चमत्कारों से बहक कर उनकी ओर ढुलकती जा रही थी। ऐसे ही समय में मुसलमानों के आगमन ने एक भिन्न परिस्थिति उत्पन्न कर दी। मुसलमानों में हिन्दू समाज से दो बातें विशेष रूप से ध्यानाकर्षक थीं। एक तो उनमें बहुदेवोपासना नहीं थी, उनका अल्लाह एक था, और वह निराकार था। मुसलमानों में मूर्तिपूजा नहीं थी। दूसरे उनमें जातिभेद नहीं था। इसीलिए जातिप्रथा की कट्टरता के कारण उच्च वर्गों द्वारा परित्यक्त, अर्थशून्य बनी बहुदेवोपासना और मूर्त्तिपूजा से निराश, तथा दूसरी ओर सिद्धों-नाथों के यौगिक चमत्कारों से हताश जनता के लिए मुसलमानी धर्म में विशेष आकर्षण दिखने लगा था, जो स्वाभाविक था। ऐसे समय में कबीर प्रभृति संतों ने उठकर मानों हिन्दू समाज के परिशोधन का ही कार्य शुरू किया था। कबीर की जातीय स्थिति तो विशिष्ट प्रकार की थी। वे हिन्दू मां और मुसलमान पिता की संतान थे। उन समय के अन्य संत हिन्दू समाज के ही निम्न वर्ग के थे।[१]

१–रैदास चमार, सेना नाई, धन्ना जाट, पीपा ठाकुर, उधर महाराष्ट्र में [illegible]रा कुम्हार, सावन्ता माली, नरहरि सुनार, विसोबा खेचर, बंका धेड़ आदि।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ये सभी संत मिलकर समाज के मानस में पाखण्ड का जो घुन लग गया था, मानों उसकी शल्यचिकित्सा ही करने लगे थे। इस दृष्टि से संतों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। इनके पहले दक्षिण के एक आचार्य राघवानन्द ने अपनी उत्तर की यात्रा में वहाँ की परिस्थितियों का जो हाल देखा था, कहा जाता है कि उससे वे बहुत अधिक चिंतित हो उठे थे। उस समय उत्तर की परिस्थितियाँ दक्षिण से एकदम भिन्न हो गई थीं। दक्षिण में जातिप्रथा के लिए और ब्राह्मण वर्ग के आधिपत्य के लिए वैसा संकट नहीं था जैसा कि उत्तर में उत्पन्न हो गया था। उत्तर में मुसलमान विधर्मियों द्वारा उपस्थित संकट का सामना करने के लिए हिन्दुओं को अपनी जातीय दीवारों को तोड़ने के अलावा और कोई चारा नहीं था। विधर्मी संकट के सामने हिन्दुओं की जातिप्रथा अपने आप टूटने की स्थिति में आ गई थी। हिन्दू समाज को इस स्थिति तक लाने में सिद्धों और और नाथों की तरह निर्गुण सन्तों का भी बहुत बड़ा योगदान था। जैसा कि पीछे बतलाया गया है ये निर्गुण संत सिद्धों-नाथों की तरह (अधिकतर) समाज के निम्न वर्गों से आये थे। उनकी फटकारपूर्ण बानियों ने समाज के चित्त को काफी हद तक झकझोर दिया था। निर्गुण संतों का यह विद्रोह लगता है एक प्रकार से समाज के निम्न वर्गों का उच्च वर्गों के स्वार्थ और पाखण्ड के विरुद्ध विद्रोह था। निर्गुण संतों के इस विद्रोह की दो दिशाएँ थीं—एक उच्च वर्गों के दंभ और पाखण्ड के खण्डन पूर्वक सहज सदाचार का आग्रह; और दूसरे, आत्मरूपतत्व के प्रति भक्तिभाव का पोषण। इन संतों के द्वारा जगाई हुई भक्ति की भावना ने जो एक व्यापक जनआन्दोलन का रूप धारण किया, वह तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में विशेष महत्वपूर्ण है।

मध्यकाल के इतिहास में यह तथ्य विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य है कि उत्तर और दक्षिण की परिस्थितियों में निर्णायक अन्तर उपस्थित हो गया था। उत्तर की तुलना में दक्षिण का वातावरण अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित था। दक्षिण भारत में हिन्दू धर्म को मुसलमानी विधर्म का संकट नहीं था। वह अधिकतर अपने ही समाज के अंदर विरुद्धाश्रयी वर्गों में विभक्त था। दक्षिण में ब्राह्मण धर्म को मुख्यतः बौद्धों, जैनों और शैवों का सामना करना पड़ा था। शंकराचार्य ने इन ब्राह्मण विरोधी धर्मों का बहुत कुछ दमन किया था। परंतु व्यावहारिक स्तर पर उनका संन्यास का मार्ग सनातन परंपरा के प्रतिकूल पड़ता था। तथापि शंकर का आक्रमण दार्शनिक और सैद्धान्तिक स्तर पर निर्णायक था। उनके पूर्व नायनमारों के रूप में शैव भक्त तथा आलवारों के रूप में वैष्णव भक्त दक्षिण भारत में उत्पन्न हो चुके थे। इन नायनमारों और आलवार भक्तों में अधिकांश लोग समाज के निम्न वर्गों के और शूद्र कही जाने वाली

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जातियों के थे।[१०] इन भक्तों ने ज्ञान, कर्म और योग की साधनाओं का अतिक्रमण कर विशुद्ध भावना के आवेश में परात्पर भगवान की भक्ति का गान किया था। परवर्ती काल में नवीं शताब्दी में आचार्य नाथमुनि ने इन भक्तों की भावना के महत्व को स्वीकार करके उनके समस्त पदों का 'नालायिर दिव्य प्रबंधम्' के रूप में संग्रह किया। पीछे से शांकर-द्वैत के संन्यास के प्रत्युत्तर में एक सर्वजनोपयोगी धर्म के रूप में भक्ति एवं उपासना पद्धति का साधना परक विधान करने के उद्देश्य से रामानुजाचार्य ने 'दिव्य प्रबंधम्' के रूप में आलवार भक्तों के भक्ति रूप को वेद-तुल्य महत्व प्रदान किया, और उन्होंने समस्त पूजा प्रसंगों में वेद मंत्रों के पारायण के साथ-साथ प्रबंधम् के तमिल पदों के भी गायन का विधान किया। रामानुजाचार्य के आदेश पर उनके श्री-वैष्णव संप्रदाय में प्रबंधम् को अधिकाधिक महत्व प्राप्त हो गया। रामानुज की भाँति दक्षिण के अन्य आचार्य भी भक्ति को सहज भावना के स्तर से उठाकर उसे साधना परक रूप प्रदान करने लगे। परन्तु भक्ति का साधना परक रूप विकसित करने के लिए आचार्य वल्लभ ने श्रीमद्भागवत का आश्रय लेकर उसको चतुर्थ प्रस्थान का महत्व प्रदान किया। उसी प्रकार निम्बार्क और मध्वाचार्य ने भी अलग से भक्ति का उपासना-परक व साधना-परक रूप विकसित किया। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि भक्ति की जो भावना नायनमारों और आलवारों के रूप में समाज के अधिकतर निम्न वर्गों में उद्भूत हुई थी, उसी को आचार्यों ने साधना परक रूप प्रदान कर तथा सैद्धांतिक दार्शनिक महत्व प्रतिपादित कर उसके आधार पर समाज के नेतृत्व का अधिकार पुनः प्राप्त कर लिया।

इस सबके बावजूद भक्ति के भाव ने दक्षिण में आन्दोलन का रूप धारण नहीं किया। यह तो पीछे से उत्तर भारत में उत्पन्न हुआ। भक्ति-आन्दोलन का सही क्षेत्र वास्तव में उत्तर भारत ही था। स्वामी राघवानन्द के शिष्य स्वामी रामानन्द ने उत्तर की यात्रा की, और एक प्रकार से उन्होंने इस आन्दोलन का शंखनाद किया। भक्ति भाव की आन्दोलनात्मक परिणति तत्कालीन जन मानस के संकट की गुरुता प्रगट करती है। जगह-जगह इस आन्दोलन के सूत्रधार बने समाज के निम्न वर्ग स्तरों से उठे हुए संत। गुजरात और महाराष्ट्र से लेकर

१०—दक्षिण में भक्ति के उत्थान की समीक्षा करते हुए पं० करुणापति त्रिपाठी ने 'हिन्दी निर्गुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका' के प्राक्कथन में लिखा है—"जाति-भेद की कठोरता और सामाजिक वर्ग भेद की संकीर्णता के फलस्वरूप भक्ति की उस प्रबल प्रतिक्रिया ने वर्णाश्रम के द्विज समाज के प्रति एक प्रकार का विद्रोह किया और कठोर वैदिक स्मार्त जाति विधान के विपरीत वहाँ भक्ति के क्षेत्र में सभी को दर्शन- पूजन- भजन का अधिकार घोषित किया।" —पृ० २१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उड़ीसा, बंगाल, बिहार, उत्तर और मध्य प्रदेश, पंजाब और राजस्थान सभी क्षेत्र एक साथ इस आन्दोलन की चपेट में आ गये। इस आन्दोलन के निषेधात्मक और विधेयात्मक दो पहलू थे। निषेधात्मक पहलू था अर्थशून्य बाह्याचारों का और कर्मकाण्ड का खण्डन और विधेयात्मक रूप में महज सदाचार की प्रतिष्ठा और उससे भी अधिक निर्गुण परात्पर ब्रह्म की भक्ति। अर्थशून्य बाह्याचार का खण्डनात्मक प्रभाव तो समाज पर अवश्य पड़ा, और कर्मकाण्डजाल में फंसे हुए जन चित्त को उससे एक प्रकार से मानो मुक्ति मिल गयी। परन्तु दूसरी ओर निर्गुण ब्रह्म अथवा शून्य के रूप में उसे कोई ठोस अवलंब नहीं मिल सका। इन निर्गुण संतों का भक्ति का आह्वान तो आकर्षक था, किंतु उनका ध्येय शून्य होने के कारण लोक चित्त का आलंबन नहीं बन सकता था। मूलत: दक्षिण में भक्ति जिस स्रोत से उठी थी, उन नायनमारों और आलवारों में वह सगुण रूपाश्रित थी। परंतु उत्तर में पहुँच कर वह अचानक निर्गुणाश्रित कैसे हो गई? इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इस संबंध में जैसा कि विद्वानों ने बतलाया है, कबीर प्रभृति संतों पर एक ओर नाथ-सिद्ध-योगियों का प्रभाव था, और दूसरी ओर मुसलमानों के एकेश्वरवाद का। मुसलमानों का अल्लाह, वेदान्त का ब्रह्म, बौद्धों का शून्य और वैष्णवों का राम—इन सबने मिलकर कबीर के राम को जन्म दिया था। कबीर ने राम का नाम तो वैष्णवों से लिया, परंतु उसकी रूप कल्पना बौद्धों और वेदांतियों के आधार पर शून्य निर्गुण ब्रह्म के रूप में की। ये निर्गुण संत अपने राम की मूर्त कल्पना नहीं कर सकते थे। क्योंकि उन्होंने मंदिरों में देवमूर्त्तियों को टूटते देखा था। इसीलिए उपास्य देवता के परात्पर निर्गुण रूप का आह्वान जनचित्त को आकर्षित तो अवश्य करता था। परंतु फिर भी लोक चित्त उस पर केन्द्रित नहीं हो सकता था। उसको अवलंबन के लिए मूर्त आधार की आवश्यकता थी। यह काम आगे चलकर भक्तों ने किया।

कुल मिलाकर इन निर्गुण संतों के कर्तृत्व को समाज चित्त के मोह की शल्यक्रिया की संज्ञा दी जा सकती है। इसके द्वारा समाज के चित्त में जो नाना प्रकार के अंधविश्वास, बाह्याधार, प्रदर्शन प्रियता, पाखण्ड और दम्भ आदि व्याप्त थे, उन सबकी मानों संतों ने शल्य चिकित्सा की थी। इस प्रकार उन्होंने समाज चित्त के परिष्करण का कार्य संपन्न किया था। अब इस परिष्कृत चित्त में किसी विधेयात्मक रूप की प्रतिष्ठा की आवश्यकता थी जो समाज की आस्था के लिए आधार बन सके। भक्ति आन्दोलन के द्वितीय सोपान पर सगुण भक्तों द्वारा यही कार्य संपादित किया गया।

द्वितीय सोपान :

यह एक विलक्षण बात है कि निम्न वर्गीय निर्गुणोपासक कबीर और ब्राह्मण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्ग के सगुणोपासक तुलसी दोनों ही रामानन्द की शिष्य परंपरा में थे। इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि रामानन्द का प्रमुख लक्ष्य मुसलमानी विधर्म के विरुद्ध हिन्दू धर्म को संगठित करना था। इसके लिए उन्होंने मुख्य रूप से उस समय के विभिन्न धार्मिक संप्रदायों का——सगुण-निर्गुण, योगमार्गी-उपासनामार्गी——सबका समन्वय भक्ति के मंच पर प्रस्तुत किया, जहाँ विभिन्न संप्रदायों और मतों के तथा समाज के विभिन्न वर्गस्तरों के लोग एकत्र हो सकते थे। रामानन्द से भक्ति की प्रेरणा पाकर ये विभिन्न संत और भक्त अपने-अपने क्षेत्रों में अपने-अपने ढंग से प्रवृत्त हुए थे। जब निम्न वर्गीय निर्गुण संतों की बानियों से झकझोर दिये जाने पर भी उनके शून्य लोकचित्त के लिए कोई आधार नहीं मिल सका, तब ब्राह्मण वर्ग को उनसे समाज का नेतृत्व छीनने के लिए सगुणोपासना के रूप में एक आधार मिल गया, और उसका उन्होंने भरपूर उपयोग किया। सगुणोपासना की प्रतिष्ठा द्वारा एक प्रकार से समाज पर ब्राह्मणवाद का फिर से प्रभुत्व स्थापित हो गया। निर्गुण पर सगुण की विजय इस दृष्टि से निम्न वर्णों पर उच्च वर्ण की विजय का सूचक है। निर्गुण सगुण का द्वन्द्व जो हिन्दी भाषी क्षेत्र में सर्वाधिक प्रमुख था, और जो देश के अन्य भागों में कहीं नहीं दिखायी देता, कहीं न कहीं वर्ण एवं संघर्ष से जुड़ा हुआ अवश्य दिखायी देता है।

पूजोपचार के रूप में भक्ति के लिए भगवान के सगुण-साकार रूप के अवलंब के आधार पर ब्राह्मण वर्ग ने समाज पर अपना अधिकार मानों फिर से प्राप्त कर लिया। यहाँ यह विचारणीय है कि भगवान के इस सगुण रूप का आधार क्या था? क्या मंदिर की वह देवमूर्ति किंवा पाषाण-प्रतिमा सगुण रूप का आधार हो सकती थी, जिस प्रतिमा को मुसलमानों द्वारा आये दिन तोड़ते हुए जनता देख रही थी, और वह देवमूर्त्ति जनता की तो क्या अपनी और अपने पुजारियों की भी रक्षा नहीं कर पा रही थी। दूसरी ओर अपने ही समाज के निम्नवर्गीय निर्गुण संतों के द्वारा मूर्त्ति पूजा का विरोध भी बराबर किया जा रहा था। उधर मूर्ति-केन्द्रित मंदिर ब्राह्मण वर्ग के गढ़ बने थे। सगुणोपासना के द्वारा मंदिरों की रक्षा के लिए सहायता अवश्य मिलती थी। परन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि जनचित्त को सगुणोपासना के लिए पाषाण मूर्त्ति आलंबन क्यों कर बन सकती थी। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात है कि सगुणोपासना के सर्वश्रेष्ठ प्रचारक तुलसीदास ने कदाचित मूर्तिपूजा का आग्रह किंवा प्रचार नहीं किया था।[११] उन्होंने शायद न तो राम

११—दे० रामचरितमानस में मुनि वाल्मीकि द्वारा निर्दिष्ट राम के निवास योग्य स्थान (२।१२७—१३०), तथा शबरी के लिए उपदिष्ट नवधा भक्ति का स्वरूप (३।३५)

स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह के बसहु सीय सहित दोउ भ्रात।।—२।१२९

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का कोई मंदिर बनवाया था, न किसी राम के मंदिर में पूजा की थी। हाँ, उन्होंने हनुमान के मंदिर अवश्य बनवाये थे और हनुमान के मंदिरों का प्रचार अवश्य किया था। ध्यान देने की बात है कि राम और कृष्ण के मंदिरों की तुलना में हनुमान के मंदिरों की दशा कितनी हीन होती थी। वे मंदिर भी क्या थे और हनुमान की मूर्ति भी क्या होती थी? उस मंदिर और मूर्ति का प्रतीकात्मक महत्व ही अधिक होता था। उसके साथ कोई संपत्ति जुड़ी हुई नहीं होती थी। यह तथ्य आज भी द्रष्टव्य है कि हनुमान के मंदिर गांव के बाहर अनाथ धर्मशालाओं की तरह पड़े रहते हैं। हनुमान मूर्ति के जनशक्ति के प्रतीक परक अर्थ पर फिर कभी विचार किया जायेगा। संप्रति इतना ही कहना है कि तुलसी ने हनुमान मंदिरों की प्रेरणा अवश्य दी, परंतु वे देवमूर्तियों के पूजाडंबर के शायद ही समर्थक थे। दूसरी ओर तुलसी ने जिन रामलीलाओं का प्रचार किया था, उनमें रामलीला का अभिनय समाज के व्यक्ति ही करते थे। वह बहुत कुछ प्रतीकात्मक ही था। इससे पता चलता है कि कम से कम तुलसी ने मूर्तिपूजा का प्रचार अवश्य नहीं किया था। यह बात नहीं कि तुलसी के समय में राम मंदिर नहीं थे, किंवा नये नहीं थे। उधर कृष्णोपासकों का तीर्थ तो गोवर्धन पर्वत और पीछे से नाथ द्वारा बराबर था। इस प्रकार उत्तर भारत में मंदिरों की देवमूर्तियों के रूप में सगुणोपासना के लिए आधार बराबर बना हुआ था। इसको देखते हुए सचमुच आश्चर्य होता है कि एक ओर मुसलमानों की विध्वंस लीला और दूसरी ओर निर्गुणोपासकों के प्रहारों के बावजूद मूर्तिपूजा बराबर चल पड़ी और मंदिरों का महत्व बराबर बना रहा।[१२] इस का कारण हिन्दू मानस के प्रगाढ़ संस्कार और ब्राह्मण पुरोहितों के द्वारा उन संस्कारों का पोषण ही दिखाई देता है।

पीछे कहा गया है कि निर्गुण संतों के विद्रोह की दो दिशाएँ थीं—एक उच्च वर्गों के दंभ और पाखण्ड के खण्डन पूर्वक सहज सदाचार का आग्रह, और दूसरे आत्मस्थ निर्गुण तत्त्व की भक्ति। सगुण भक्तों ने एक ओर निर्गुण संतों के सहज सदाचार को परंपरा से जोड़कर उसे सनातन धर्म का रूप दिया, और दूसरी ओर उनके द्वारा जगाई हुई भक्ति की भावना को बाह्यस्थ (मूर्तिस्थ) सगुण ईश्वर की ओर मोड़ दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि निम्न वर्ग की जातियों में जो जागृति उत्पन्न हुई थी और जिसके कारण उन्होंने उच्च वर्गों के विरुद्ध जो आन्दोलन शुरू

→ बचन कर्म मन मोरि गति भजन करहिं निष्काम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करौं सदा विश्राम ॥—३। १६

१२—चाहे हिन्दू मूर्तिपूजा का खण्डन सुन लेते थे और प्रतिमा तथा मंदिरों का ध्वंस भी अपनी छाती पर पत्थर रखकर असहाय अवस्था में देखते रहते थे, परन्तु उनकी श्रद्धा में शिथिलता नहीं आती थी, बल्कि उनका विश्वास और अधिक दृढ़ हो जाता था।—भारतीय संस्कृति का इतिहास, मथुरालाल शर्मा, पृ ३४६

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया था, वह उन ब्राह्मण-प्रधान सगुणोपासकों के हाथों पुनः परलोकोन्मुख हो गई। जाति विधान के प्रति विद्रोह के रूप में प्रथमतः जो आन्दोलन उठा था, स्पष्ट है कि पीछे से वह भक्ति के ज्वार में बुझ गया था। तथापि इस सगुणाश्रित भक्ति का समाज के चित्त पर बहुत ही स्वस्थ प्रभाव पड़ा, इसमें कोई संदेह नहीं। सगुणोपासना का जो सबसे बड़ा एवं महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, वह था लोकचित्त में आस्था का उदय। यह आस्था समाज के लिए जीने का बहुत बड़ा एवं सबलतम आधार बनी।

यह भी एक सुखद संयोग है कि सगुणोपासना के प्रचार एवं प्रतिष्ठापन का काल उदारमना अकबर का शासनकाल था। अकबर की प्रकृति अपेक्षाकृत अधिक सौम्य, उदार एवं समन्वयशील थी। अकबर के काल में हिन्दू मानस में आस्था का पुनर्भाव तो हो रहा था, परंतु एक तो वह अधिकतर परलोकाश्रित थी, और दूसरे अकबर के शासन की अपेक्षाकृत सौम्य नीति के कारण विधर्मी शासन के प्रतिकार का कदाचित् अभी समय नहीं आया था। वह समय अकबर के परवर्ती कालों में उपस्थित हुआ।

तृतीय सोपान :

अकबर के परवर्ती कालों में मुगल बादशाहों का शासन अधिक क्रूर होता गया था और हिन्दुओं पर अत्याचार भी निरंतर बढ़ते गये थे। यह वास्तव में विचार करने की बात है कि जहाँ मुस्लिम आततायियों के अत्याचार दिन-दिन बढ़ते जा रहे थे, वहाँ देवमूर्ति किंवा राम-नाम के सहारे हिन्दू जनता क्योंकर इनका सामना कर पाती? अथवा केवल भाग्य के सहारे कब तक अपनी दुर्दशा होने देती? इतना निश्चय है कि सगुण भक्ति के प्रचार के कारण हिन्दू मानस में जो नई आस्था एवं स्फूर्ति उत्पन्न हुई थी, उससे उसका व्यक्तित्व दिन व दिन सबल बनता गया था। और उसमें अपनी जातीय संस्कृति एवं परंपरा के प्रति एक नया अभिमान बढ़ता गया था। औरंगजेब के काल तक हिन्दू आस्था इस हद तक सबल हो गई जान पड़ती है कि उसमें औरंगजेब की सत्ता को चुनौती देने का साहस उत्पन्न हो गया था। हिन्दू मानस में पुनर्गठित इस आस्था का सहारा लेकर १७ वीं शती के लोकनायक संत औरंगजेब की सत्ता का सशस्त्र प्रतिकार करने की योजना बनाते हैं।[१३] तभी तो सुदूर महाराष्ट्र में समर्थ रामदास स्वामी के उद्बोधन पर शिवाजी के

१३–इस संबंध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि इस युग के संतों की एक विशेषता उनके द्वारा तत्कालीन शासन के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाने की प्रवृत्ति में भी लक्षित हुई।—दे० उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ५८७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नेतृत्व में मराठा शक्ति संगठित होती है, तो दूसरी ओर गुरु गोविंद सिंह के नेतृत्व में सिक्ख शक्ति सशस्त्र प्रतिकार के लिए सन्नद्ध होती है। डा० सहस्रबुद्धे ने "हिन्दू संगठन और विघटन" नामक ग्रन्थ में समर्थ रामदास स्वामी के संभाजी को लिखे पत्र का कुछ अंश उद्धृत किया है[१४] जिसका तात्पर्य यह है कि बिखरी हुई लोक शक्ति को संगठित करके उसके बलपर शत्रुओं को खदेड़ देना चाहिए, और इस प्रकार महाराष्ट्र राज्य का विस्तार करना चाहिए। इस पत्र में रामदास स्वामी का सारा दर्शन समाविष्ट है। इसी के आधार पर शिवाजी के नेतृत्व में महाराष्ट्र शक्ति जागृत हुई थी। सिक्ख गोविंद सिंह के कर्तृत्व के बारे में डा० महीप सिंह ने लिखा है—"गुरु गोविंद सिंह के जीवन पर दृष्टि जाते ही हमें उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य एक पीड़ित-दलित और आत्मविस्मृत जाति को एक अदम्य आत्मविश्वास से पूरित शक्ति में परिवर्तित कर देने का लगता है।" उस समाज के शताब्दियों से सर्वथा उपेक्षित वर्ग को अपना सहयोगी बनाकर गुरु गोविंद सिंह ने उसमें असीम शक्ति और आत्मविश्वास का संचय करा दिया।[१५] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने खालसा संगठन तथा सतनामी विद्रोहियों के बारे में लिखा है कि गुरु नानक देव के शांति तथा सद्भाव का प्रचार करने वाले नानक ने मुगल शासन के विरुद्ध जिस प्रकार लोहा लेने वाले युद्ध निपुण खालसा सिपाहियों का संगठन किया, कदाचित् उसी प्रकार इस काल में और लगभग वैसी ही परिस्थितियों में विवश होकर सतनामी विद्रोहियों का एक पृथक वर्ग भी संगठित हो गया।[१६] उधर जाटों के रूप में एक तीसरी शक्ति खड़ी हो गई थी।[१७] दूसरी तरफ बुंदेलखण्ड के महाराज छत्रसाल के गुरु संत प्राणनाथ ने उन्हें अपनी जनता में राष्ट्रीयता का भाव भरने के लिए कहा था। इस के प्रमाण में आचार्य जी ने महाराज छत्रसाल बुंदेला का एक छन्द भी उद्धृत किया है।[१८] इस प्रकार

१४—"सकल लोक एक करावे, गनीम निवटूनि काढ़ावे, ऐसे करिता कीर्ति धावे दिगंतरी। बहुत लोक मेकवावे, एक विचारे भारावे, कष्टे करूनि घसरावे म्लेच्छावरी। आहे तितुके जतन करावें, पुढे आणिक मेकवावे, महाराष्ट्र राज्य करावे, जिकड़े तिकड़े।"—पृ० १५० पर उद्धृत।

१५—गुरु गोविंद सिंह : जीवन और दर्शन, संपा० नारायण भक्त

१६—उत्तरी भारत की संत परपरा, पृ० ५८७

१७—दे० मुगल साम्राज्य का अंत, सर यदुनंदन सरकार, पृ० २६६

१८—जागोने जोधारे उठ खड़े रहो। नींद निगोडी रे छोड़ो।।
टूटत हेरे खग छत्रियों से। धर्म जात हिंदुआन।।
सत्त न छांडो रे सत्यवादियो। जोर बढ्यो तुरकान।।
त्रैलोकी में रे उत्तम खड भरत का। तामै उत्तम हिंदू धरम।।
ताके छत्रपतियों के सिर। आय रही इत सरम।।
—उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६०२ पर उद्धृत

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हम देखते हैं कि हिन्दू समाज केवल भाग्य के भरोसे हाथ पर हाथ धरे बैठा न रहकर सशस्त्र प्रतिकार के द्वारा विधर्मी शासन का अंत करके अपने राष्ट्र और संस्कृति की रक्षा करने में समर्थ हो जाता है।

निष्कर्ष :

भक्ति-आन्दोलन की मूल प्रेरणा को पहचानने के लिए भारत की सांस्कृतिक चेतना का सम्यक् विश्लेषण करना आवश्यक है। भारतीय समाज के संस्कार उसकी पिंडयुक्त ब्रह्माण्ड के प्रति विराट एवं संश्लिष्ट जीवन दृष्टि से और परिणामतः समन्वयात्मक गतिविधियों से निष्पन्न है। उसकी संस्कृति भौतिक एवं भौतिकोत्तर उभयात्मक है। यही कारण है कि भारतीय समाज न तो कभी केवल भौतिक होकर रह सकता है और न ही इसकी उपेक्षा करके केवल भौतिकोत्तर होकर। वह एक साथ और एक ही समय में ऐहिक एवं आयुष्मिक, सामयिक एवं शाश्वत जीवन के उभय मूल्यकूलों पर जीता-पनपता है। ये संस्कार उस समय समाज की चेतना में इतने गहरे उत्तर गये हैं कि ये सब समय उसकी गतिविधि को बराबर प्रेरित एवं प्रभावित करते रहते हैं। भौतिकता की गतिविधि में भी भौतिकोत्तर एषणाएँ पायी जा सकती हैं, और इसका प्रतिक्रम भी।

इसी आधार पर हमने मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन को भारतीय समाज की सांस्कृतिक व्याकुलता की सामयिक परिणति बतलाया है। भक्ति-आन्दोलन का अन्वेषण करने पर यह देखा जा सकता है कि प्रथम सोपान पर एक ओर जातिगत भेदभाव एवं पाखण्ड का विरोध करने वाली ललकार सुनायी देती है, तो दूसरी ओर निर्गुणोपासना की गूंज भी। द्वितीय सोपान पर एक सगुणोपासना का स्वर प्रबल हो गया था, तब दूसरी ओर जातीय संगठन का हेतु भी कार्य कर रहा था। तृतीय सोपान पर राजनीतिक कोलाहल के बीच भी समाज की चेतना की एक धारा माधुर्योपासना में तृप्ति पा रही थी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी की जनवादी चेतना | हर्षनाथ

तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे, किन्तु उच्चकोटि के कवि के रूप में भी उनकी महत्ता सर्वमान्य है। तुलसी की समस्त रचनाओं का मूल स्वर भक्ति है। राम के प्रति अपनी अनन्य भक्ति निवेदित करने के लिए ही उन्होंने साहित्य-सर्जना की, कवि रूप में प्रतिष्ठित होना उनका काम्य नहीं था। उन्होंने इसे स्पष्टरूप से उद्‌घोषित किया है—

निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यो।
रघुबीर चरित अपार वारिधि पारु कबि कौने लह्यो।।
उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्वदा सुखु पावहीं।।[1]

अपनी वाणी को पावन करने एवं वैदेही-राम की कृपा-अनुग्रह से अपने जीवन को सार्थक और सुखमय बनाने के उद्देश्य से ही उन्होंने कवि-धर्म को स्वीकार किया। 'रामजस' से उनका अभिप्राय राम के यश वर्णन से ही नहीं है, अपितु राम के जो भक्त थे, उनके जो उपासक थे, राम के प्रति जिन की आस्था थी, उनके प्रति भक्ति-भाव-निवेदन भी तुलसीदास के लिए 'रामजस' ही है। इसीलिए उन्होंने शिव, पार्वती, गणेश, हनुमान, अन्नपूर्णा, गंगा आदि देवी-देवताओं की वंदना और स्तुति की है। देवी-देवताओं ही की नहीं, कार्य-सिद्धि के लिए, माता-पिता, गुरु, चर-अचर सभी की वंदना की है। इन स्तुतियों में कुछ में तो राम के प्रति अचल भक्ति प्रदान करने के लिए निवेदन है, जैसे विनयपत्रिका में—

मांगत तुलसिदास कर जोरे, बसहि राम-सिय मानस मोरे।[2]
तुलसी राम भगति वर माँगे।[3]

१—रामचरितमानस, बालकांड, पद ३६१।
२—विनयपत्रिका, गणेशस्तुति, पद १.४
३—विनयपत्रिका, सूर्यस्तुति २.५

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देहु काम रिपु रामचरन रति, तुलसिदास कहँ कृपा निधान ।[४]
देहि मा मोहि पन प्रेम यह नेम निज राम घनश्याम, तुलसी पपीहा ।[५]
मंगल मूरति मारुत नंदन । सकल अमंगल मूल निकंदन ।
पवन तनय संतन हितकारी । हृदय विराजत अवध बिहारी ।
मातु-पिता-गुरु गनपति सादर । सिवा समेत संभु सुक नारद ।
चरन बंदि विनवौं सब काहू । देहु राम-पद नेह निबाहू ।।[६]

उपर्युक्त उद्धरण सिद्ध करते हैं कि तुलसीदास के जीवन का चरम काम्य राम भक्ति थी। इसी चरम काम्य की उपलब्धि के लिए उन्होंने सभी की वंदना की है। हनुमान और भरत के प्रति तुलसी की आन्तरिक आस्था थी और राम तें अधिक राम कर दासा के अपने मानदंड के अनुसार उनकी वंदना भी ऐकांतिक भाव से की है। हनुमान और भरत राम के आदर्श सेवक हैं। उनका चरम काम्य है—

नाथ भगति अति सुखदायनी । देहु कृपा करि अनपायनी ।[७]
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन ।[८]

उपर्युक्त अर्द्धाली में हनुमान ने राम से याचना की है, और दोहे में भरत ने राम से याचना की है। दोनों अपने चरम काम्य की याचना राम से करते हैं। इन दोनों राम-भक्तों की याचना में तुलसी का याचना का स्वर है; जो उनका चरम काम्य है, उसी की अभिव्यक्ति इनमें हुई है। राम भक्ति की प्राप्ति के लिए उन्होंने सांसारिक उपलब्धियों की ही नहीं, अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष की भी उपेक्षा की है। ये उनके लक्ष्य और प्राप्य नहीं हैं, उनका लक्ष्य है—'रंत राम पद।' वह भी आवागमन के बंधन से छूट कर नहीं, राम के चरणों में चिरंतन अविचल भक्ति प्राप्त करने के लिए 'जनम-जनम' के फेरे को स्वीकार करते हुए।

राम के चरणों में अपनी भक्ति निवेदित करने के लिए उन्होंने काव्य का माध्यम लिया और काव्य-ग्रंथों की रचना की। उनकी सारी रचनाएँ सोद्देश्य हैं। तुलसी का जो 'स्वान्तः सुखाय' है, वह भी सोद्देश्य है—शुद्ध कलाप्रेमियों की तरह बौद्धिक-व्यायाम के लिए नहीं। उनका उद्देश्य है—राम के प्रति अविचल भक्ति। अपनी इस अभिव्यक्ति को रूपायित करने के लिए उन्होंने माध्यम के रूप में काव्य

४–विनयपत्रिका, शिवस्तुति ३।४
५–विनयपत्रिका, देवीस्तुति, १५।५
६–विनयपत्रिका, ३६
७–रामचरितमानस, ५।३४।१
८–रामचरितमानस, २।२०४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को चुना है। किन्तु उनका कवि रूप भी उतना ही प्रखर और अप्रतिम है, जितना भक्त रूप। यदि उनका कवि-रूप दुर्दमनीय और स्वाभाविक नहीं रहा होता तो भक्ति निवेदन के लिए वे कोई अन्य मार्ग चुनते—अन्य संत-महात्माओं की तरह। राम-नाम का मात्र स्मरण कर के राम के अनन्य भक्त बने रहते। तुलसीदास का चेतन मन भक्त था, इसलिए वे अपने प्रत्येक कार्य-व्यवहार को राम-भक्ति-प्राप्ति का माध्यम बनाते हैं, किन्तु उनका अवचेतन कवि है। इसलिए उनके व्यक्ति के भक्त और कवि रूपों में निरंतर संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष में कभी दोनों क्षत-विक्षत हो जाते हैं और भक्ति-प्रतिपादन में अमर्यादित व्यवस्था दे देते हैं—

काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूँदि न त चलिअ पराई।[९]

और उनका कवि भी पराजित हो जाता है—

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर।
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयेऊँ भाई॥[१०]

इसी भाव को जब उनका कवि सजग हुआ है, तब तुलसी ने कहा है—

जाके बल लवलेस ते जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रियनारि॥[११]

तुलसी के अनजाने में उनके भक्त रूप और काव्य रूप में द्वन्द्व चलता रहा है—

चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो।[१२]

कविता रूपी सरिता अनायास कवि-हृदय से निःसृत होकर प्रवाहित हो गई। यद्यपि इस कविता रूपी सरिता में रामजस रूपी जल प्रवाहित हो रहा है, किन्तु कविता ही यहाँ प्रधान है, वही कर्ता और संवाहक है, 'रामजस' रूपी जल इसी कविता के माध्यम से प्रवाहित हुआ है। यहाँ कवि ही मुखर है, भक्त नहीं। —**कवि न होउँ नहिं चतुर प्रबीनू**—में तुलसी का विनय नहीं, उनका सहज कवि-दर्प ही प्रबल है। और स्पष्ट रूप से भी उन्होंने अपने कवि-धर्म को स्वीकार किया है—**संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी।**[१३]

कवि के रूप में तुलसी की दृष्टि अपने चतुर्दिक जाती है। देश-काल की परिस्थितियों का निरीक्षण-परीक्षण और विश्लेषण करती है और अपने युग की व्याप्त-विषमता में जन-सामान्य के दैन्य-दारिद्र्य, निराशा-कुंठा और असहाय सामाजिक

९—रामचरितमानस, १।६४।४
१०—रामचरितमानस, ६।२०।१-२
११—रामचरितमानस, ५।२१
१२—रामचरितमानस, १।३९।११
१३—रामचरितमानस, १।३६।१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अवस्था से क्षुब्ध हो जाती है। उनका यह आक्रोश निष्क्रिय नहीं है, बल्कि जन-सामान्य को शोषकों-शासकों के प्रति नतमस्तक न होकर प्रतिरोध करने के लिए ललकारता है।

द्विज द्रोहिंहि न सराहिय तबहूँ। सुरपति सरिस होय नृप जबहूँ।[१४]

समाजिक व्यवस्था एवं मर्यादा को भंग कर विश्रृंखलता फैलाने वालों के प्रति भी उनका आक्रोश तीव्र है—

जौ नहि दंड करौ खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा।[१५]

जन-सामान्य ही तुलसी के स्नेह-भाजन हैं। तुलसी की रचनाओं में रामचरितमानस, रामलला नहछू और कवितावली में जन-सामान्य के प्रति स्नेह और आस्था की यह दृष्टि व्यापकरूप से मिलती है। रामचरितमानस राम के चरित को लेकर लिखा गया महाकाव्य है। उसमें तुलसी की व्यापक दृष्टि अपने कथा-नायक के साथ-साथ जन-सामान्य से जुड़ी हुई है। साधारण नागरिक, पुरजन, ग्रामवासी, कोल-किरात, वनचारी जातियाँ, केवट, कपि, भालु, गीध आदि के प्रति जो उनकी हमदर्दी है, जो आत्मीयता है, वह सामन्त विभीषण और सुग्रीव के लिए नहीं है। विभीषण और सुग्रीव राजा थे, किन्तु वे राम के भक्त थे। इसलिए उनकी भर्त्सना अन्य राजाओं की तुलना में उन्होंने कुछ मुलायम शब्दों में की है—

जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिर सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।
सोइ करतूति विभीषण केरी। सपनेहु सो न राम हियँ हेरी।[१६]

विभीषण और सुग्रीव की लानत-मलामत करके तुलसी ने छोड़ दिया, किन्तु साधारण राजाओं के प्रति वे निर्मम हैं—

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें
कोढ़ में की खाज सी सनीचरी है मीन की।
वेद धर्म दूरि गएँ, भूमि चोर भूप भये——[१७]

जन-सामान्य का धन अपहरण करने के कारण राजाओं को जिस कवि ने चोर कहा है, उसी कवि ने जन-सामान्य को शंकर-पार्वती, षड़ानन और गणेश के सम-तुल्य माना है—

गौरीनाथ, भोलानाथ, भवन भवानी नाथ,
विस्वनाथपुर फिरी आन कलिकाल की।

१४—रामचरितमानस, ७।१२८।५
१५—रामचरितमानस, ६।१०७।४
१६—रामचरितमानस, १।२९।६-७
१७—कवितावली, उत्तरकांड, पद १७७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संकर-से नर, गिरिजा-सी नारी कासीबासी,
बेद कही, सही ससिसेखर कृपाल की।
छमुख - गनेस तें महेस के पियारे लोग,
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की।
पुरी - सुरबेलि केलि काटत किरात कलि
निठुर निहारिये उघारि डीठि भाल की।।[१८]

तुलसी जैसे मर्यादावादी व्यक्ति को जन-सामान्य की तुलना शंकर-पार्वती से करने में जरा भी हिचक नहीं हुई। यदि सामान्य-जन से कवि का मन जुड़ा नहीं रहता, तो उसकी लेखनी से ऐसे शब्द नहीं निकलता, जब वह पहले ही घोषित कर चुका है—

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लाग पछिताना।[१९]

यह प्राकृत जन प्रभुता-सम्पन्न सामन्तों, राजाओं, नवाब-बादशाहों और श्रीमन्त-साहूकारों के लिए व्यवहृत हुआ है, इन प्रभुता-सम्पन्न व्यक्तियों के अत्याचार से त्रस्त जनता के लिए नहीं। इन सामान्य-जनों के पक्षधर बनकर तो वे अपने परम आराध्य देव राम के सम्मुख खड़े होते हैं और उनके बड़प्पन की कसौटी ही उन्होंने जन-सामान्य के प्रति राम का स्नेह एवं आदरभाव माना है—

रघुपति रावरी इहै बड़ाई।
निदरि गनी, आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई।।
थके देव साधन करि सब, सपनेहु नहिं दिये दिखाई।
केवट कुटिल, भाल कपि-कौनप, किये सकल सँग भाई।।
मिलि मुनि बृंद फिरत दंडक बन, सो चरचौ न चलाई।
बारहि बार गीध-सबरी की बरनत प्रीति सुहाई।।[२०]

और भी—

घर, गुरु गृह, प्रिय सदन सासरे, भइ जब-जब पहुनाई।
तब तब कहि, सबरी के फलनि की रुचि-माधुरी न पाई।।
सहज सरूप कथा मुनि बरनत, रहत सकुचि सिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत, बानर बंधु बड़ाई।।[२१]

सामान्य-जन के प्रति यह आस्था, यह आदर और स्नेह, और उनके सुख-दुख,

---

१८—कवितावली, उत्तरकांड १६९
१९—रामचरितमानस
२०—विनयपत्रिका, १६५
२१—विनयपत्रिका, १६४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मान-सम्मान के प्रति सजग चेतना, उनसे तादात्म्य-भाव निरत लोकधर्मी कवि की वाणी से ही संभव है।

इसी प्रकार रामचरितमानस में भी भक्ति के साथ-साथ सामान्यजन के साथ वे जुड़े हुए हैं। रामलला नहछू में वे जन-सामान्य के अनन्य मित्र बने हुए हैं और नाइन, बारिन, मालिन, तँबोलिन आदि को वे राम के साथ रंगमंच पर उतार देते हैं—

बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसति आव लोहारनि हाथ बरायन हो।।
अहिरिन हाथ दहेड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो।।
रूप-सलोनि तँबोलिन बीरा हाथहि हो।
जाकी ओर बिलोकहिं, मन तेहि साथहि हो।।
मोचिनि बदन-सँकोचिनि हीरा माँगन हो।
पनहि लिहे कर सोभित सुंदर आँगन हो।।
बतिया सुघर मलिनिया सुंदर गातहि हो।
कनक-रतन-मनि मौर लिहे मुसुकातहि हो।।
कटि कै छीन बरिनिया छाता पानिहि हो।
चन्द्र बदन मृग लोचनि सब रस - खानिहि हो।
नैन विसाल नउनिया भौं चमकावइ हो।
देइ गारि रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो।।[२२]

कवितावली तुलसी की जन-सामान्य के प्रति रुझान, उनकी संवेदना और जनवादी चिन्तनधारा का दिग्दर्शक है। कवितावली की रचना किसी एक काल-खंड में नहीं हुई, वह उनके जीवन के समस्त आयाम को समेटे है। कवितावली में जहाँ उन्होंने रामचरित का वर्णन किया है, वहीं देवी-देवताओं की स्वतन्त्र वंदना की है। और वह वंदना विनयपत्रिका की देवी-देवताओं की स्तुति से भिन्न स्तर पर है। यहाँ उन्होंने 'देहु राम पद' का निवेदन नहीं किया है, अपितु देवी-देवताओं को उनकी पूरी गरिमा के साथ स्वीकार कर के उनकी वंदना की है। लेकिन उनसे याचना नहीं की है। महाकाव्य और काव्य के कथा-प्रवाह के बंधन से मुक्त रहने के कारण उनकी व्यापक दृष्टि जन-सामान्य और देश-काल की परिस्थितियों की ओर आकृष्ट हुई है। कवितावली में जिस प्रकार वे रावण के वैभव, राम के ऐश्वर्य, उनकी महिमा और उनके प्रति भक्ति-भाव का विशद वर्णन करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने जन-सामान्य के दुख-दैन्य और विपन्नता, उनकी इच्छा-आकांक्षा

२२–रामलला नहछू, पद ५-८

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और लालसा का भी वर्णन किया है। लोकधर्मी कवि के रूप में वे जन-जीवन से अपने को असम्पृक्त नहीं रख सके, बल्कि उसके सुख-दुख, उसकी इच्छा-आकांक्षा, को रूपायित करने के लिए प्रतिबद्ध रहे और उन्हें सम्मानित स्थिति में ले आने का प्रयास करते हैं।

राम के जन्मोत्सव पर राजमहल में एकत्रित होने में जनसाधारण को कोई हिचक नहीं है। राजा के प्रति भय का भाव नहीं है। साधारणजन अपने अधिकार के रूप में सहज ढंग से वहाँ उपस्थित है—

अवधेश के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।[23]

× × ×

लरिका सँग खेलत डोलत हैं, सरजूतट चौहट-हाट हिएँ।[24]

जनसाधारण राजा दशरथ के राजमहल पर निस्संकोच पहुँच गया और राजकुमार राम को तुलसी ने जन-सामान्य के स्तर पर ला खड़ा किया है। वे जिन बालकों के साथ खेल रहे हैं, वे सामन्तों-श्रीमन्तों के लड़के नहीं हैं। तुलसी यहाँ चाहते तो राम को अपर जन से भिन्न कर के दिखा सकते थे, किन्तु उन्होंने वह वातावरण ला दिया, जहाँ राजकुमार राम साधारण बालकों के साथ आ जुड़े। इसमें राजकुमार राम के प्रति अवमानना तुलसी की कल्पना के बाहर की बात है, जो स्वाभाविक है, वह है तुलसी की जन-सामान्य के प्रति आस्था।

राम गंगा पार जाने के लिए खड़े हैं। वे चाहते तो राजा दशरथ के पुत्र के रूप में केवट को आदेश दे सकते थे। किन्तु तुलसीदास केवट के स्वाभिमान और सम्मान की रक्षा के लिए दूसरा ही वातावरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

एहि घाट ते थोरिक दूर अहै कटि लौं जलु थाह देखाइहौं जू।
परसे पग धूरि तरैं तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिए मोंहि, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥[25]

× × ×

पावन पाय पखारि के नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवट के बरबैन, हँसे प्रभु जानकि ओर हहा है॥

जब जीविका का प्रश्न केवट के सामने आया तो उसने निवेदन नहीं किया, और न तो चक्रवर्ती सम्राट के राजकुमार से दया की भीख माँगी। तुलसी ने केवट से प्रतिरोध कराया है। एक श्रमिक को अपने अधिकार-रक्षा के लिए अडिग रखा है। आज बीसवीं शती के युगधर्म को तुलसी जलालुद्दीन के प्रतापी

२३—कवितावली, बालकांड, पद १
२४—कवितावली, बालकांड-६
२५—कवितावली, अयोध्या कांड, पद ६

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्राट अकबर के युग में प्रस्थापित कर गये हैं। केवट में पलायन-वृत्ति नहीं है। दृढ़ता है। बिना पाँव धोये वह किसी भी हालत में नाव पर नहीं चढ़ा सकता। यहाँ भावना का प्रश्न नहीं है, बल्कि आर्थिक प्रश्न जुड़ा है। इस नौका के सहारे ही केवट के सारे परिवार का पालन-पोषण होता है। इसलिए भावना में या राजकुमार के भय के प्रभाव में आकर वह अपने अधिकार को छोड़ नहीं सकता।

बुभुक्षा के सर्वभक्षी रूप का जैसा दाहक अनुभव तुलसी ने किया है, वह कम कवियों ने किया होगा——

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि
भयो परिताप पापु जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन
जानत हौ चारि फल चारि ही चनक को।।[२६]

गरीबी का ऐसा नग्न-नृत्य है कि माता-पिता पुत्र जन्म पर आनंद मनाने के बजाय दुखी हो गये——अब और एक पेट कैसे भरेगा। पुत्र बचपन से दाने-दाने के लिए तरस गया। वही कवि अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को चने के चार दाने से तुलना कर सकता है, जो जानता हो कि **'आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की।'**[२७]

भूख तुलसी का भोगा हुआ कटु यथार्थ है। इसीलिए वे भूखों-नंगों के हमदर्द बन कर खड़े हो जाते हैं और अपने समय की राज्य-व्यवस्था को दुराज की संज्ञा देते हैं——

दिन दिन दूनो देखि, दारिद दुकाल दुख,
दुरित दुराज सुख-सुकृत सकोच है।[२८]

भूख से पीड़ित व्यक्ति लावारिस कुत्ते की तरह दर-दर डोलता है। भूख की पीड़ा मनुष्य को अपने आसन से गिरा देती है। यह वही कवि कह सकता है, जिसने, **'नहिं दरिद्र सम दुख जगमाहीं'**[२९] की घोषणा की हो।

ताको कहाइ कहै तुलसी तू लजाहि न मांगत कूकुर कौरहिं।[३०]
जनि डोलहि लोलुप कूकुर ज्यों, तुलसी भजु कोसल राजहिरे।[३१]
नीच निरादर भाजन, कादर, कूकुर-टुकन लागि ललाई।[३२]

२६—कवितावली, अयोध्या कांड, पद्यांश ७
२७—कवितावली, उत्तरकांड
२८—कवितावली, उत्तरकांड, १८१
२८—रामचरितमानस, उत्तरकांड
३०—कवितावली, उत्तरकांड, २६
३१—कवितावली, उत्तरकांड, ३०
३२—कवितावली, उत्तरकांड, ५७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जन-सामान्य के दैन्य का जिस सहानुभूति से तुलसी ने वर्णन किया है, और दुराज का कटु-यथार्थ सामने रखा है वह 'सर्वे भवन्तुसुखिनः' का सैद्धान्तिक उपदेश बघारने वाले मर्यादा के नाम पर शोषण को स्वीकार करने वाले से संभव नहीं है। यह तो वह कर सकता है, जो गरीबों, साधारण किसानों, छोटे व्यापारियों, श्रमिकों, नौकरों-चाकरों के हमदर्द के रूप में खड़ा हो—

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी भाट,
चाकर चपल नट, चोर चार चेट की।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन, गन अहन अखेट की।।
ऊँचे - नीचे करम, धरम, अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
तुलसी बुझाई एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की।[33]

उस युग के जन-सामान्य के जीवन का एक और दृश्य उपस्थित है—

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका बिहीन लोग, सीद्यमान सोच बस।
कहैं एक एकन सों, कहाँ जाइँ का करीं।।[34]

× × ×

मानोराज करत अकाज भयो आजुलगि,
चाहै चारू चीर, पै लहै न टुकु टाट को।[35]

सामान्य-जन के प्रति तुलसी की जो आस्था है, वही मुखर होकर कवि की वाणी में सजीव हुई है। तुलसी व्यवस्था को वहीं तक स्वीकार करते हैं, जहाँ तक वह जन-सामान्य के सुख-दुख के साथ हो। ●

३३—कवितावली, उत्तरकांड, ९६
३४—कवितावली, उत्तरकांड ९७
३५—कवितावली, उत्तरकांड ६६

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी-साहित्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन

डॉ० रामरतन भटनागर

कवि और काव्य उस समाज और संस्कृति से अभिन्न रूप से संबंधित होते हैं, जिनमें उनका जन्म होता है। इसीलिए काव्य अथवा साहित्य के द्वारा हम युग-चेतना तथा संस्कृति तक पहुँचने का उपक्रम करते हैं। कोई भी काव्य विशुद्ध काव्य नहीं होता, क्योंकि उसमें लक्षित अथवा अलक्षित रूप से समाज और संस्कृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण संपुटित रहता है। इनका अस्वीकार भी एक दृष्टि-कोण ही कहा जायेगा। इसीलिए पलायन का साहित्य भी समाज-निरपेक्ष वस्तु नहीं है। श्रेष्ठ कवि व्यापक जीवन-भूमिका के कवि होते हैं और वे अपने काव्य में धर्म, दर्शन, नीति, राजनीति अथवा समाज-नीति को आत्मसात करते हुए चलते हैं। वे मानव-चेतना को समग्रता में ग्रहण करते हैं, क्योंकि न मानव-जीवन को खण्डों में बांटा जा सकता है न मानव-चेतना को। तुलसीदास जैसे महाकवियों के लिए यह बात और भी लागू होगी, क्योंकि वे सार्वभौम चेतना और व्यापक मानवता के कवि हैं।

जो वृक्ष आकाश में जितना ऊँचा उठेगा, उसकी जड़ें भी धरती के भीतर उतनी ही गहरी होंगी। अतः राष्ट्रव्यापी चेतना, जीवन-संस्कार अथवा महत् नायक की कथा को लेकर चलने वाला महाकवि निस्सन्देह राष्ट्रीय जीवन की गहराइयों में प्रवेश करेगा। उसमें जाति की संपूर्ण इतिहास-चेतना निबद्ध होगी। परम्परा का बोध उसकी सर्जना को प्रामाणिकता देगा और उसे अदृश्य जातीय सूत्रों से जोड़ेगा।

संस्कृति निरंतर प्रवहमान, सतत विकसित तथा नवनवोन्मेषशालिनी जातीय प्रतिभा है। अपने दीर्घ जीवन में तुलसी ने तत्कालीन संस्कृति के पूर्णोन्मेष का अनुभव किया था। उनका काव्य वर्ग-संस्कृति का प्रतिनिधि न होकर समस्त हिन्दू जाति और हिन्दू संस्कृति का प्रतीक है, परन्तु तात्कालिकता उसका मापदण्ड

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं है। सामयिकता के नाते वे सामन्तों के साथ न होकर प्रजा के साथ हैं और अकाल-महामारी में ग्रस्त निस्सहाय जनता के दुःखों से पूर्णतः परिचित हैं। परन्तु अपने समय के सांस्कृतिक ह्रास की भी उन्हें गहरी अनुभूति है, जो उनके कलियुग-वर्णन का विषय है। विषम स्थिति के निराकरण के लिए ही उन्होंने सनातन भारतीय संस्कृति की दुहाई दी है। निश्चय ही उनका रामचरितमानस भारतीय संस्कृति, धर्म-चेतना तथा जातीय आदर्शों का विश्वकोश है।

सोलहवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशक उत्तर भारत के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थे। जहाँ एक ओर लोदी शासकों के हिन्दू-द्वेष, हत्याकाण्डों तथा युद्धों की बर्बरता के कारण मध्यदेश निरंतर विस्फोट की स्थिति में था और जाटों, किसानों और राजपूतों के विद्रोह व्यापक रूप से चल रहे थे, वहाँ जौनपुर के शरकी शासकों के रूप में शियाखों का उदारचेतस् मुसलिम राज्य अवध क्षेत्र में स्थापित हो चुका था, जिसने सूफियों और मुवाहिदों को आश्रय दिया और शेख तकी तथा कबीर जैसे उदार जन-नेताओं को जन्म दिया। सिकन्दर लोदी के आक्रमण से त्रस्त होकर ही कबीर को मगहर जाना पड़ा था (१५१८ ई०)। राजनीतिक भूमिका पर १५१९ ई० से १५६९ ई० तक का अर्द्ध-शताब्दी का समय हिन्दू सांस्कृतिक चेतना के पुनर्निर्माण, भक्ति-आन्दोलन के तारुण्य तथा राजपूत-शक्तियों के नवोदय का काल है। इन पाँच दशकों में हम पठान शासकों के द्वारा एक सामासिक हिन्दोस्तानी संस्कृति की नींव पड़ते देखते हैं। इस बीच में हमें जहाँ वल्लभाचार्य (१४७८-१५३०) और महाप्रभु चैतन्य (१४८६-१५३५) जैसे भावुक भक्त, धर्म-प्राण लोक-नेता और महापण्डित मिलते हैं और सूरदास, हितहरिवंश, मीरा और हरिदास जैसे साधु कवि, वहाँ दूसरी ओर महाराणा सांगा, शेरशाह और अकबर जैसे राजनीतिज्ञों के भी दर्शन होते हैं। भारतवर्ष की कलात्मक सृजनात्मकता फिर एक बार सिर उठाती है और मध्यदेश एक बार फिर नवजागरण की अंगड़ाई लेकर जाग उठता है। साहित्य और कला ही नहीं, जीवन के सभी क्षेत्रों में हमें नई प्रतिभाओं का जयघोष सुनाई पड़ता है। १५६९ ई० में जब नारायण भट्ट के प्रयत्नों से सिकन्दर लोदी द्वारा ध्वस्त काशी विश्वनाथ के मन्दिर का पुनर्निर्माण होता है, तो हिन्दू चेतना नये आरोहण के लिए तैयार हो चुकी है। तरुण तुलसी ने इस नवजागरण को विस्मय और उल्लास से देखा होगा और इसीलिए उनकी कृतियों में हमें एक नये आत्म-विश्वास, एक अभिनव जीवट, एक व्यापकतम पुनरीक्षण तथा उदात्त जीवन-चिन्तन का आभास स्पष्ट रूप से मिलता है। सच तो यह है कि अकबर-युग का ठीक-ठीक आरम्भ १५६९ ई० से ही होता है और जिसे मध्ययुग का स्वर्ण काल कहा गया है, वह हिन्दू चेतना के नवसंस्कार तथा हिन्दू प्रतिरोध की अंतिम कड़ी है। उसे भक्ति-आन्दोलन की प्रौढ़ता की ओर बढ़ा कदम भी कहा जा सकता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रख कर ही हमें तुलसी-साहित्य का मूल्यांकन करना होगा। वह प्रतिरोधात्मक तथा प्रतिबद्ध मनोवृत्ति का साहित्य है। उसमें हिन्दू समाज, हिन्दू धर्म तथा हिन्दू-दर्शन के भीतर से एक बहुत बड़ा समन्वय हमें मिलेगा, परन्तु इस्लाम की प्रथित दास्यभाव भक्ति को स्वीकार करने के पश्चात् भी इस्लामी राजतंत्र और यवन (मुसलमान) शासकों के प्रजापीड़न के विरुद्ध वह बद्धपरिकर है। तुलसी ने इस्लाम को अदेखा ही कर दिया है, उसी प्रकार जिस प्रकार उन्होंने नारी और प्रकृति के सौन्दर्य को अदेखा कर दिया है, परन्तु इसके लिए उन्हें और उनके काव्य को कम मूल्य भी नहीं चुकाना पड़ा है। उन्होंने इस्लाम धर्म और प्रजापीड़क मुसलमान शासकों से दोहरा मोर्चा लिया है। पहली चुनौती का उत्तर है नया भागवत-धर्म (भक्ति-मार्ग या श्रुतिसम्मत हरि-भक्ति-पथ) और दूसरी चुनौती का उत्तर है रामराज्य। एक में खुला समझौता है, तो दूसरे में अडिग प्रतिकार।

चुनौती और प्रतिक्रिया दोनों को ही तुलसी ने काव्य के उच्चतम आयामों के धरातल पर ही स्वीकार किया है, क्योंकि तुलसी प्रथमतः और अंततः कवि हैं। इसके लिए उन्हें काव्य की एक नई कोटि गढ़नी पड़ी है और वह है "सांस्कृतिक काव्य"। धर्म उसका अभिन्न अंग है, परन्तु यहाँ कवि की दृष्टि और भी व्यापक है और समाज, राजनीति, विचार और दर्शन सभी को छूती है। कवि तुलसी की काव्य के प्रति निष्ठा और उनके कवि-कर्म के लक्ष्य को छोड़ कर हम उनके सांस्कृतिक उद्देश्यों के प्रति अन्याय ही करेंगे। प्रथम श्रेणी की काव्योत्कृष्टता के बिना वे भारतीय संस्कृति के पुरस्कर्ता कवि हो ही नहीं सकते थे।

तुलसी की तेरह कृतियों को हम सांस्कृतिक दृष्टि से तीन भागों में बाँट सकते हैं :

(१) **लोक के स्तर का काव्य :** नहछू, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्न, जानकी-मंगल तथा पार्वती-मंगल।

(२) **व्यक्ति-चेतना के स्तर का काव्य :** वैराग्य-संदीपिनी, राम-गीतावली, कृष्ण-गीतावली तथा बाहुक।

(३) **सांस्कृतिक स्तर का काव्य :** रामचरितमानस, विनयपत्रिका तथा कवितावली।

एक प्रकार से यह क्रम तुलसी के भावात्मक विकास की रूपरेखा का भी निर्माण करता है। वैराग्य संदीपिनी को छोड़ कर शेष सब ग्रन्थों में किसी-न किसी रूप में अल्पाधिक मात्रा में राम-कथा को ही विषय-वस्तु बनाया गया है। रामाज्ञा प्रश्न, 'मंगल'-ग्रंथ और रामचरितमानस को छोड़ कर शेष ग्रंथ एक प्रकार से प्रकीर्णक रचनाएं हैं, जिसमें सांस्कृतिक अभिव्यंजना के साधन अल्प थे। उनमें तुलसी का काव्य अधिकांश प्रयोगात्मक है। व्यक्ति-चेतना के स्तर के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काव्य में वैराग्य-संदीपिनी साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत शिथिल रचना है। कृष्ण-गीतावली तत्कालीन समाज पर कृष्ण-भक्ति के प्रभाव को ही सूचित करती है। तुलसी काशी के वल्लभ-कुल के मन्दिर में रहते थे, अतः अपनी सदाशयता के कारण या वृन्दावन-प्रवास के किसी अवसर पर उन्होंने साठ के लगभग कृष्ण-भक्तिपरक स्फुट पद रच कर अपने भक्ति-भाव की व्यापकता का निदर्शन हमें अवश्य करा दिया है। इससे अधिक इस ग्रंथ का साहित्यिक या सांस्कृतिक महत्व नहीं है। राम-गीतावली में हमें राम-कथा के कोमल पक्ष ही अधिक मिलते हैं और उसमें कवि का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत सीमित है। फिर भी भारतीय पारिवारिक संबंधों तथा भक्ति-विषयक कोमल एवं सूक्ष्म मनोवृत्तियों की झाँकी उसे सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रचना बना देती है। रामचरितमानस और विनय-पत्रिका तुलसी के सांस्कृतिक मनोभाव के दो छोर हैं। पहली कृति में वे आदर्श को लेकर चले हैं और दूसरी कृति में व्यक्तिगत जीवन के यथार्थ तथा भक्त-जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म आलोड़न-विलोड़न को। दोनों में ही दास्य भावना तथा आध्यात्मिक जीवन का बड़ा सांगोपांग विवेचन है। भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक एवं लौकिक दोनों पक्षों पर ये कृतियाँ प्रकाश डालती हैं। उनमें तत्कालीन मध्यदेश की धार्मिक निष्ठाओं का बहुत कुछ सिमट आया है। कवितावली में राम-भक्ति और राममय जीवन की ये संकल्पात्मक अभिव्यक्तियां और भी सशक्त एवं सटीक बन पड़ी हैं।

तुलसी का साहित्य एक साथ शाश्वत जीवन और युग-जीवन से जुड़ा हुआ है। ब्रह्म राम के अवतरण की कथा पर आधारित होने के कारण वह मानवीय चेतना के आध्यात्मिक पक्षों को स्पर्श करता है, तो उसके साथ कलियुग और राम-राज्य की कल्पनाओं में म्लेच्छों और बर्बरों के रूप में लगभग ३०० वर्षों के मुसलमान शासन का भी समीक्षात्मक पूर्वाभास हमें दे देता है। निस्सन्देह उसमें तत्कालीन हिन्दू प्रजा की चेतना प्रतिभासित है, जो उत्पीड़न और अत्याचार से परित्राण चाहती है और उस प्राचीन मिथक का सहारा लेती है, जिसमें पृथ्वी देवताओं के पास पहुंच कर अपनी दुःखगाथा वर्णित करती है और उनसे सहायता चाहती है। फलस्वरूप विष्णु (तुलसी में ब्रह्म) का अवतार होता है। देवता के त्राता रूप में अवतरण का यह सत्य भले ही गीता के द्वितीय अध्याय के कुछ श्लोकों पर आधारित हो, राम-कथा के आरम्भ में रावण के प्रचण्ड प्रताप और अकल्पित अत्याचार की भूमिका बांध कर कवि उसे अपने युग का ही नहीं, तत्कालीन हिन्दू चेतना का सत्य भी बना देता है। निश्चय ही यह अवतरण रामचरितमानस के रूप में तुलसी के मानस में हुआ है, परन्तु कवि ने जिस निस्सहायता का अनुभव किया है, वह अकेले उसकी समस्या नहीं है। इस निस्सहायता और त्राता, पिता अथवा स्वामी के रूप में संरक्षक की खोज की तुलसी की अपनी कहानी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी है, (कवितावली; लंका० ७३, उत्तर० ५७ तथा विनयपत्रिका, २७५); परन्तु आत्मानुभव ने उनकी संत्रास की चेतना को तीव्रता और गहनता ही दी है। युग की पीड़ा को सिमेटे बिना उनका आसुरी प्रवृत्तियों और कृत्यों का चित्रण इतना सटीक और सांगोपांग नहीं हो सकता था। राम-कथा को मिथक और पुराण-कथा से ऊपर उठा कर उसे जातीय जीवन की हताशा और उससे उबरने की अथक चेष्टा बनाने में ही तुलसी की कवि-प्रतिभा प्रखरता प्राप्त कर सकी है।

परन्तु केवल मुसलमानी शासन के उत्पीड़न और अत्याचार ही तुलसी के काव्य की प्रेरणा नहीं बने हैं, हिन्दू-जाति के सांस्कृतिक पतन की गहरी अनुभूति भी उनमें जगी है। इसीलिए उन्होंने एकदम यथार्थ के धरातल पर उतर कर कलियुग (अंधकार-युग) के रूप में अपने युग का चित्र खींचा है (कवितावली उत्तर० ९६-१०५)। यह चित्र उतना ही भयावह है। जितना तुलसी के संवेदनशील हृदय ने उसका अनुभव किया है। इस कटु अनुभूति की पृष्ठभूमि में ही राम के प्रति प्रणति-भाव में तुलसी का मनोभाव चरितार्थता पाता है। (कवितावली, उत्तर० ११०, १११)।

सच यह है कि युग त्राता राम तुलसी की अपनी परिकल्पना है और उनसे सेवक-सेव्य का नाता जोड़ कर दास्य भक्ति की योजना उनके अपने आत्म-परिष्कार तथा अंतस्साधना की पुकार है। राम को ब्रह्म बना कर वे रामकथा को पौराणिकता से मुक्त करना चाहते हैं परन्तु पुराणों की भक्ति तथा भक्तों की कथाएँ उन्हें स्वीकृत हैं, क्योंकि राम को ब्रह्म बना कर वे इस्लाम के एकेश्वरवाद को चुनौती देते हैं और अपने इष्टदेवता की सर्वोपरिता और अनन्यता को भी उद्घोषित करते हैं। ब्रह्म त्राता (अवतार) और इष्टदेव तीनों धरातलों पर एक साथ चलने से तुलसी की रामकथा और राम-संबंधी भावना में वैचित्र्य और कभी-कभी रहस्य भी आ गया है। परन्तु ऐसा होना अनिवार्य था, क्योंकि तुलसी के लिए राम कथा माध्यम मात्र है और उनके राम पुराण-पुरुष या मिथक नहीं, स्वयं उनकी दार्शनिक, धार्मिक और वैयक्तिक चेतना के केन्द्र-बिन्दु हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति का एकीकरण उन्हीं के माध्यम से हुआ है और यह एक-सूत्रता ही कवि की बहुमुखी तथा द्वन्द्वात्मक प्रतिभा को सप्राण बनाती है।

परन्तु केवल ह्रासोन्मुखी चेतना या कलियुग-भावना ही तुलसी की उत्प्रेरक नहीं रही है। वे एक नए सांस्कृतिक अभ्युत्थान के भी साक्षी रहे हैं। उनके आलोचकों को इस विषय में अधिक ज्ञान नहीं रहा है। फलतः वे तुलसी के साहित्यिक और भावनात्मक उत्कर्ष के मूल स्रोतों तक नहीं पहुँच सके हैं। १५५९ ई० में काशी विश्वनाथ के मन्दिर के पुनर्निर्माण ने संपूर्ण हिन्दू-जाति को जो नवोद्दीप्ति प्रदान की थी, वह तुलसी की नवचेतना का वाहक बनी। इसके ठीक सौ वर्ष बाद औरंगजेब ने इस मन्दिर का विध्वंस कर दिया। अतः यह एक शती

B–9

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का काल-विस्तार मध्ययुगीन हिन्दू संस्कृति के नवोत्थान का काल है। तुलसी ने इस नवोत्थान के आरम्भिक ५४ वर्ष जिये। उसके उत्कर्ष में उनका योगदान भी कम नहीं था, परन्तु इससे भी बड़ी बात यह थी कि उन्होंने इस नवोत्थान को भारतीय चरित्र के निर्माण, भक्ति-भावना, राम-राज्य के आदर्श और मर्यादावाद से जोड़ा और आर्ष संस्कृति का समयानुकूल नवसंस्करण तैयार किया। तुलसी का रामचरितमानस ही यह नवसंस्करण है, परन्तु शेष ग्रंथ, विशेष रूप से विनय-पत्रिका, सांस्कृतिक नवोदय की ही सूचना देते हैं। जहाँ एक ओर जनता के दुःख-दर्द सत्य हैं, अकाल, महामारी, बेकारी, दारिद्र, वहाँ दूसरी ओर हिन्दू चेतना का नवोदय, गो-ब्राह्मण-शास्त्र की रक्षा के प्रयत्न तथा देश-जाति के लिए उत्सर्ग की कामना भी सत्य है। पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दियों में काशी जैसे हिन्दू केन्द्रों में संस्कृत के सैकड़ों ग्रंथ लिखे गये और षट्दर्शनों की नई-नई टीकाएँ एवं व्याख्याएँ सामने आईं। काव्य, नाटक, निबंध सभी क्षेत्रों में नवसर्जन का प्रादुर्भाव हिन्दू-चेतना के अदम्य साहस तथा आत्मविश्वास का सूचक है।

तुलसी का जन्म ऐसे युग में हुआ, जब भारतवर्ष में इस्लामी शक्ति का सूर्य मध्याह्न को पहुँच रहा था। वे शेरशाह, हुमायूँ, अकबर और जहाँगीर के समकालीन थे। शेरशाह ने अपने अल्प शासनकाल में कर-व्यवस्था में अनेक सुधार किये, नए राजपथों का निर्माण कराया तथा हिन्दुओं को बड़े-बड़े ओहदे दिये (१५४२-४५)। हुमायूँ (१५४५-५६) के समय के पहली बार ईरानी भोगवादी संस्कृति का प्रवेश भारतवर्ष में हुआ और नई इस्लामी सामन्ती संस्कृति का जन्म हुआ। चित्रकला, संगीत, काव्य, वास्तुकला सभी क्षेत्रों में ईरान का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता जाता है, परन्तु अकबर के राज्यकाल (१५५६-१६०५) में समन्वय के जो प्रयत्न होते हैं, वे भारतीय जीवन, विचारधारा, कला और संस्कृति को भारतीयता की दृढ़ भित्ति प्रदान करते हैं। १५६९ ई० के पश्चात् अकबर के हिन्दू सामन्तों के प्रयास से तथा स्वयं सम्राट की उदार एवं सहिष्णु राजनीति के कारण मंदिरों का जीर्णोद्धार एवं नवनिर्माण होता है और ध्रुपद-धम्मार की गायकी संगीत के क्षेत्र में एक नई क्रांति प्रस्तुत करती है, जो भाषा-काव्यों पर अमिट छाप छोड़ती है। अकबर के समय में इस्लामी राज-दरबार संगीत, कला और साहित्य के केन्द्र बनते हैं और सम्राट् के अनुकरण में सामन्त वर्ग नवसंस्कारों के प्रेमी तथा उन्नायक के रूप में सामने आता हैं। अकबर-युग की उच्चस्तरीय संस्कृति मर्यादावादी और आस्थाप्राण कही जा सकती है और उसमें लौकिक-पारलौकिक तथा भौतिक-आध्यात्मिक द्वन्द्वों का परिहार हो जाता है। यह एकान्विति जहाँगीर (१६०५-१६२७) में टूट जाती है और ईरान की भोगवादी संस्कृति तथा स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों का बोलबाला होने लगता है। यह उत्तर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी का जीवन-काल है, जिसमें उनकी आत्माभिव्यक्तिपरक तथा आत्मवृत्तात्मक रचनाएं हमें प्राप्त होती हैं।

तुलसी ने असुरों के उत्कर्ष के रूप में जिस उत्पीड़न का वर्णन किया है, वह भारतीय इतिहास का अंधकार-युग ही है, जिसकी स्मृतियाँ उनके अवचेतन में बनी हुई हैं। १२०० ई० के बाद हम दिल्ली के शासकों के रूप में जिन राजवंशों को देखते हैं, उन्होंने अपनी विजयों में हत्या, लूटपाट और बलात्कार के द्वारा हिन्दू जनता में आतंक फैला दिया था। आरम्भ में बलात् धर्म-परिवर्त्तन भी कम नहीं हुआ और धार्मिक असहिष्णुता के साथ जजिया और बेदखली का बाजार भी गरम था। फलस्वरूप विजित जनता में एक ओर पराजय की भावना और दूसरी ओर सशस्त्र प्रतिरोध के रूप में अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाओं का जन्म हुआ। मुहम्मद तुगलक (१३२५-५१) के समय में मुसलिम राज्य का विस्तार 'दकन' तक हुआ परन्तु शीघ्र ही प्रतिक्रिया-स्वरूप वहाँ विजयनगर के हिन्दू राज्य (१३३६-१५८५) की स्थापना हुई तथा उदयपुर के शिशोदिया राजपूत वंश की दुर्दमनीय शक्ति का उदय महाराणा हम्मीर के रूप में हुआ। हम्मीर से महाराणा, प्रताप तक हिन्दू प्रतिरोध की परंपरा उत्तर भारत में चलती है और महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल में भी वह समाप्त नहीं होती। केशव ने महाराणा अमरसिंह, वीरसिंह देव और महाराणा मानसिंह को नवोदित हिन्दू चेतना के प्रतीक के रूप में स्मरण किया है। तुलसीदास महाराणा प्रताप के समकालिक थे और उन्होंने शताब्दियों से चले आते शिशोदिया वंश के प्रतिरोध को शिथिल होते देखा था, परन्तु उसके अपार साहस और आत्मविश्वास से वे अवश्य परिचित रहे होंगे। अपनी रामेश्वरम तथा मानसरोवर यात्राओं में उन्हें हिन्दू जनता की अपराजित चेतना का परिचय भी मिला होगा। इसीलिए उन्होंने रामकथा का एक नया संस्करण तैयार किया और आगामी पीढ़ियों के लिए सांस्कृतिक साहस तथा त्याग और तपस्या का मार्ग प्रशस्त किया। वे भारतीय आध्यात्मिकता और मानववाद के आदि स्रोत उपनिषदों की ओर लौटे और राम को ब्रह्म के रूप में स्थापित करने के अतिशयी आग्रह और संकल्प के साथ काव्य-पथ पर बढ़े। उन्होंने उत्कर्ष-प्राण हिन्दू चेतना को नया देवता दिया जो लोक-नायक और आदर्श मानव के समस्त गुणों से विभूषित था तथा चक्रवर्ती सम्राट् और महान योद्धा के रूप में प्रतिष्ठित होने पर भी संतत्व के श्रेष्ठ उपादानों से निर्मित था। भगवान राम और भागवत भरत के रूप में उन्होंने भारतीय जीवन-शिल्प की दो मूर्त्तियाँ तराशीं। उन्होंने स्वयं भरत का जीवन जिया जो उनके आदर्श थे, परन्तु राम उनकी श्रद्धा के अन्यतम पात्र थे। वे उनकी लोकोत्तरता की दुहाई देते नहीं थकते, परन्तु उनके जीवन को मानवीय संस्कारों तथा मानव-मूल्यों के अनुकरणीय उपकरणों से ही संवारते-सजाते हैं। साहित्य के भीतर से राष्ट्रीय, जातीय और सांस्कृतिक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उत्क्रांति का सर्वोपम उदाहरण महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की कृतियाँ ही मानी जायेंगी।

तुलसी-साहित्य में हमें भारतीय संस्कृति का वह विराट् संगम दिखलाई देता है, जिसने भारतवर्ष को सच्चे अर्थों में सांस्कृतिक तीर्थ बना दिया है। आदि कवि वाल्मीकि की अमर कृति में ही हमें निषाद, द्रविड़, आर्य और किरात संस्कृतियों के उपादानों तथा मिथकों का समावेश मिलता है। आर्यों की सत्यनिष्ठा, अतुल पराक्रम, उच्चादर्श तथा गौ-ब्राह्मण-शास्त्र संबंधी मान्यता को द्रविड़ संस्कृति के वैभव, ऐश्वर्य, भोग और विलास के प्रतिपक्ष में खड़ा किया गया है। राम और रावण इन दो संस्कृतियों के प्रतीक पुरुष हैं। वाल्मीकि तमसा के तट पर रहने वाले निषादों से कम परिचित नहीं थे। फलतः उन्होंने निषादों के त्राता देवता की कल्पना को राम में विजड़ित कर दिया है। राम का श्यामवर्ण निषाद कल्पना का ही द्योतक है। कोलों, किरातों, शवरों का उल्लेख रावण की कुबेर विजय और विन्ध्याटवी में निवास करने वाली अन्य जातियों के रूप में हुआ है। विश्वामित्र तथा वशिष्ठ जैसे वैदिक ऋषियों को कथा का सूत्रधार बना कर एवं इक्ष्वाकु वंश के राजा राम के जीवनवृत्त को काव्य का रूप देकर आदि कवि ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष का भी परिहार कर देते हैं। परशुराम का परशु इस संघर्ष का प्रतीक है और राम को अपना धनुष सौंप कर परशुराम का अपने आश्रम में तप करने चले जाना उस क्षत्रिय नेतृत्व की स्वीकृति है, जिसने विन्ध्याटवी के पार दक्षिण भारत तक आर्य विजय का अभियान चलाया।

इस मूल सांस्कृतिक समन्वय ने मध्ययुग तक पहुँचते-पहुँचते कई नए उपकरण संजो लिये थे जो तुलसी के उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुए। वैदिक संस्कृति की ब्रह्म-जिज्ञासा परंपरागत रामकथा में एक नया अध्याय जोड़ती है। पुराणों के विष्णु के अवतार तथा भागवतों के प्रिय राम अध्यात्म रामायण तक पहुंच कर साक्षात् परात्पर ब्रह्म बन जाते हैं, और इस प्रकार वैदिक और पौराणिक चिन्तन में गठबंधन हो जाता है। यही नहीं, बौद्ध संस्कृति के शील, करुणा, मैत्री; जैन-संस्कृति के तप और अहिंसा तथा भागवत संस्कृति की भक्ति का भी विलक्षण योग मिलने के कारण रामकथा एक नये आचार-धर्म से मण्डित हो जाती है।

तुलसी के अपने युग में भारतीय तथा इस्लामी सामन्ती संस्कृतियों में टक्कर हो रही थी। यह नहीं कि भारतीय अर्थात् हिन्दू सामन्ती व्यवस्था में कोई दोष ही नहीं थे, परन्तु उसे मुसलमान आक्रांताओं द्वारा पराभूत होना पड़ा था और इस पराजय की एक कसक हिन्दू मानस में बनी हुई थी। फलतः हिन्दू सामन्ती संस्कृति हिन्दू चेतना में नई आभा से मण्डित हो गई और उसने आदर्श रूप प्राप्त कर लिया। मुसलमानों के अत्याचार, रक्तपात, शोषण तथा दमन की अभि-व्यक्ति उसे आसुरी संस्कृति के रूप में हुई, जिसे रावण-राज्य के रूप में मूर्तिमान

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया गया। रावण-राज्य के समक्ष राम-राज्य का आदर्श प्रस्तुत कर तुलसी हिन्दूमात्र के लिए नवचेतना के वाहक बने।

पुराण संस्कृति के भक्तिवाद और साधु-संस्कृति के संतत्व को मिलाकर तुलसी ने लोक-संस्कृति का एक नया पुट तैयार किया और उसके द्वारा सामान्य जनता को नई आस्था, नये विश्वास तथा नये संस्कार प्रदान किये। जिस भक्ति का तुलसी ने प्रचार किया, वह संतों के यम-नियम संबंधी आदर्शों और अंतःतप, करुणा, मैत्री तथा अहिंसा पर आधारित होने पर भी अत्याचार एवं उत्पीड़न के प्रति खड्‌गहस्त है और सामाजिक जीवन में मर्यादा का पालन करती हुई भौतिक सुख-सुविधा से संपन्न है। वह थोथे वैराग्य को अनुपयोगी तथा अनावश्यक मानती है। **नारि मुई गृह-संपति नासी । मूड़ मुंड़ाइ भए संन्यासी।** कह कर तुलसी ने इस जातीय पलायनवाद की निन्दा की है। धर्म को लोकमंगल से जोड़ कर और उसकी अपराजित आनन्दमयता और प्रचण्ड कर्मशीलता का उद्‌घोष कर तुलसी विराग को राग की ओर मोड़ते हैं और पलायन को प्रतिकार का मंत्र प्रदान करते हैं।

पहली शताब्दी में महाकवि अश्वघोष ने बुद्धचरित, सौन्दरानन्द, महायान-श्रद्धोत्पाद तथा भक्ति-गीतों की रचना कर बौद्ध धर्म के लिए जो कार्य किया था, उसी क्षेत्र अयोध्या में रह कर सोलहवीं शताब्दी में तुलसी ने रामचरितमानस तथा विनयपत्रिका के द्वारा वैष्णव (भक्ति) धर्म के लिए वही कार्य किया। उनके रामचरितमानस को हम सदधर्मपुण्डरीक और श्रीमद्‌भागवत जैसे पुराण-ग्रंथों के साथ ही रख सकते हैं। भारतीय सांस्कृतिक जीवन के ये तीन चरण भक्ति-चेतना के परिष्करण तथा उन्नयन के भी तीन सोपान हैं। सोलहवीं शताब्दी का भारतीय मानस इन रचनाओं में प्रतिबिंबित हो उठा है।

स्पष्ट है कि तुलसी का साहित्य भारतीय संस्कृति, भारतीय धर्म, भारतीय चिन्ता और भारतीय आचार का निचोड़ है। निश्चय ही यह उनकी अपनी जीवन-साधना का अंग बन कर हमारे सामने आता है और उसमें उनके अपने व्यक्तित्व का ही प्रक्षेपण है। परन्तु राष्ट्रीय और जातीय जीवन में ऐसे युग आते हैं, जब कोई एक व्यक्ति समस्त राष्ट्र अथवा जाति की चेतना का प्रकाश स्तूप बन जाता है और उस ज्योति में गाँठ लगा देता है, जो विश्व चेतना के प्रभा-मण्डल का निर्माण करती है।

कार्लाइल ने कवि को वीर नायक के रूप में कल्पित किया है। निस्सन्देह तुलसी में यह वीरत्व भरपूर मिलेगा। उन्होंने कविता का उपयोग ब्रह्मास्त्र के रूप में किया है। उनकी भाषा पराजय, अवसाद और कुण्ठा की भाषा न होकर तेजोद्दीप्त आत्मचैतन्य, राष्ट्रीय गौरव तथा देश एवं संस्कृति के प्रति गम्भीरतम संवेदन की भाषा है। यह भाषा झुकना नहीं जानती। **निशिचरहीन करों महि**

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भुज उठाइ प्रन कीन्ह ही नहीं, **हम क्षत्रिय मृगया बन करहीं । तुमसे खग-मृग खोजत फिरहीं ।।** जैसा वीर दर्प और आश्वस्त कण्ठ समस्त मध्ययुग में अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। इसमें वैष्णव महाकवि की नई 'रजपूती' स्पष्ट ही ध्वनित है। इसका एक आत्मपक्ष भी है जो **अब लौं नसानी, अब न नसैहौं ।** जैसे विनयपदों में उभरता है। यह आध्यात्मिक शौर्य रामचरितमानस में नैतिक पराक्रम का रूप धारण कर और कष्टसहन, उत्सर्ग तथा युद्ध क्षेत्र के वीर कृत्यों में भी पल्लवित होता है। यह आत्मिक और नैतिक शौर्य ही समकालीन हिन्दी समाज को तुलसी की देन है।

तुलसी का काव्य मूलत: आध्यात्मिक काव्य है, परन्तु यह उसकी सर्वोच्च भूमिका ही कही जा सकती है। इससे निचले स्तरों पर उन्होंने बौद्धिक, धार्मिक, नैतिक और लौकिक जीवन के आयामों का भी स्पर्श किया है। उसे उनके युग की सांस्कृतिक चेतना से आंशिक रूप से ही जोड़ा जा सकता है। वह मानव के आत्म-स्वातंत्र्य की मूलभूत अभिव्यक्ति है। सत्य, जिज्ञासा, धर्म के सौन्दर्य और आत्मा के स्वातंत्र्य के भीतर उतना सब कुछ आ जाता है, जो भारतीय संस्कृति में सर्वश्रेष्ठ है। इनकी जितनी निगूढ़ और गम्भीर अभिव्यंजना तुलसी में मिली है, वैसी अन्यत्र अकल्पित है। इसीलिए अकेला रामचरितमानस ब्रह्म जिज्ञासा, धर्म-जिज्ञासा तथा भक्ति शास्त्र का कार्य करता है। इस सब पर विशेषता यह है कि वह श्रेष्ठ काव्य है। सच यह है कि काव्य के मार्ग पर चल कर ही तुलसी राम के ब्रह्मत्व, धर्म-चिन्ता तथा भक्ति तक पहुँचते हैं। इसीलिए उनका चिन्तन अनुभूतिप्रवण है और उनकी धर्म-जिज्ञासा ने रामपरायणता का रूप धारण कर लिया है। कवि की सौन्दर्य दृष्टि को मर्यादित कर तुलसी उसे दर्शन, धर्म, समाज-चिन्तन तथा भक्ति के क्षेत्रों में उन्मुक्त रूप से विचरण करने के लिए छोड़ देते हैं। फलत: उनका काव्य प्रथित ढंग का काव्य न होकर एक विशेष श्रेणी का काव्य हो जाता है। उसमें एक साथ रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा महाकाव्य की भूमिकाओं का निर्वाह हुआ है। वह हमारा नया सांस्कृतिक प्रदेय है। वह काव्य से भिन्न, उससे कुछ अधिक बड़ी चीज है। उसे हम निश्चय ही सांस्कृतिक काव्य की संज्ञा दे सकते हैं।

वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और तुलसी भारतीय संस्कृति के चार विभिन्न आयामों के कवि हैं। निषाद-आर्य-सभ्यता का परस्पर सहयोगी स्वर और भारतवर्ष के गार्हस्थ्य और चारित्र्य की सर्वोच्च अभिव्यक्ति वाल्मीकि की रामायण में हुई है। वह भारतीय संस्कृति के प्रभात का काव्य है और उसमें जटिल रेखाएँ नहीं हैं। इसके विपरीत व्यास का महाभारत भारतीय समाज और संस्कृति के अधिक जटिल और अधिक संश्लिष्ट ताने-बाने से निर्मित है। उसमें मनुष्य की दुर्बलताओं का नग्न नृत्य है, तो उसकी दिव्यता के प्रतीक भीष्म पितामह और

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्रीकृष्ण भी वहाँ हैं। उसमें हमारी संस्कृति वय:संधिक द्वन्द्वों को पार कर पहली बार तारुण्य की दहलीज पर आ कर ठहरती है। कालिदास भारतीय संस्कृति की तारुण्य तथा हास-विलासमयी सामन्ती संस्कृति के कवि हैं। उनमें राष्ट्रीय यौवन का सूर्य तप रहा है। कल्पना, कला, अनुभूति और वाग्विलास के अपार ऐश्वर्य में कालिदास पिछले महाकवियों से कहीं आगे हैं, परन्तु वे बार-बार पीछे की ओर लौटते हैं और अपने पूर्वजों से बहुत कुछ ग्रहण भी करते हैं। न सब नया सुन्दर है, न सब पुरातन नगण्य। यह मर्यादावादी धारणा ही कवि कालिदास की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाये रहती हैं। रहे तुलसीदास। उन्हें हम भारतीय संस्कृति की प्रौढ़ता का कवि कह सकते हैं। उन्होंने भारतीय अध्यात्म का एक समीचीन संस्करण तैयार किया है और ह्रासोन्मुखी चेतना से देश को उबारने के लिए चिरप्रथित रामकथा का अवलंबन लिया है। वैष्णवों के अवतारवाद का वेदांतियों के ब्रह्मवाद से समन्वय कर उन्होंने निर्गुण और सगुण भक्ति के भेद का निराकरण किया है और सगुण ब्रह्म राम की नर-लीला में मानवता के श्रेष्ठतम आदर्शों को चरितार्थ कराया। उनका यह समीकरण एक अभिनव सांस्कृतिक अभियान का प्रस्थान-बिन्दु बन जाता है। जहाँ एक ओर वे एक सांस्कृतिक चक्र के अंत में आते हैं और कलियुग की ह्रासोन्मुखी चेतना से त्रस्त हैं, वहाँ दूसरी ओर उनसे एक नये सांस्कृतिक चक्र का प्रवर्त्तन भी आरम्भ होता है और भारतीय मानव का सच्चा मानवपन उनकी कृतियों में मूर्त्त हो उठता है। विदेशी आक्रांताओं की संस्कृति को अनदेखा करते हुए 'यवन महामहिपाल' की दण्डनीति को अनादृत करने का साहस उन्हें ही हो सकता था। इतना बड़ा अस्वीकार अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा, परन्तु इस अस्वीकार ने प्रच्छन्न रूप से चुनौती और प्रत्युत्तर का रूप धारण कर लिया और हिन्दू चेतना को इन्द्र-कील की तरह सुदृढ़ बना दिया।

तुलसी के समय में काशी में विभिन्न दर्शनों तथा काव्य-संप्रदायों के विषय में व्यापक रूप से चर्चा चल रही थी और संस्कृत साहित्य का नवोत्थान सामने आ रहा था। डा० गोपीनाथ कविराज ने प्राचीन पाण्डुलिपियों की पुष्पिकाओं के तिथियों तथा गुरु-शिष्य-परम्परा विषयक निर्देशों से इस संबंध में पर्याप्त जानकारी दी है। 'अद्वैतसिद्धि' के रचयिता पण्डित मधुसूदन सरस्वती तुलसी के मित्र बताये जाते हैं और तुलसी के विषय में उनका एक श्लोक प्रसिद्ध भी है। उन्होंने उन्हें 'जंगम तुलसी-तरु' कहा है। तुलसी के ही एक सहचर ने कुछ ही वर्षों बाद उनके 'मानस' की टीका भी संस्कृत में प्रस्तुत कर दी थी। इस बातों से यह स्पष्ट है कि तुलसी संस्कृत वैदूष्य से दूर नहीं थे और काशी के विद्वत्समाज का उन्हें पर्याप्त सत्संग प्राप्त था।

धर्म-क्षेत्र में उस समय की सब से बड़ी घटना महाप्रभु चैतन्य का अवतरण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, जिन्होंने भक्ति को तन्मयतामूलक तथा भावोन्मेष प्रधान बना कर एक नये प्रतिमान की स्थापना की। संन्यासियों और वैष्णव भक्तों की पारस्परिक स्पर्द्धा को उन्होंने अपने व्यक्तित्व और साधना के प्रभाव से समाप्त कर दिया और फलस्वरूप इनके बीच की कटुता का स्थान सौहार्दय ने ले लिया। 'चैतन्य चरितामृत' आदि ग्रन्थों में इस आन्दोलन का पूरा व्योरा हमें मिलता है। तुलसी ने रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में ज्ञान और भक्ति के प्रसंग में इसी द्वन्द्व का परिहार करना चाहा है। वे ज्ञानी-भक्त के पक्ष में हैं। अतः भक्त को वे संन्यासी से कम नहीं समझते। विद्वत्समाज और साधुओं में उनकी यही भूमिका रही होगी। संभवतः भरत जैसे व्यक्तित्व की कल्पना गौरांग महाप्रभु के बिना असंभव थी। महाप्रभु चैतन्य की अमिट छाप उनकी कृतियों पर है, यह स्पष्ट है। कहा जा सकता है कि यह प्रभाव अध्यात्म रामायण के माध्यम से आया, जिसकी रचना १५२५-१५५० के बीच में किसी राम शर्मा ने की थी। यह अद्वैतवादी रचना है और रामचरितमानस पर इसका व्यापक प्रभाव है, विशेषतः उत्तर राम कथा (आरण्यकाण्ड से लंकाकाण्ड तक) पर। इस रचना से तुलसी बाल-जीवन में ही परिचित हो गये होंगे, जैसा मानस के आरम्भ में उनके आत्म-परिचय से स्पष्ट है। 'सूकरखेत' में उन्होंने गुरु-मुख से यह कथा सुनी। यह वही कथा है जिसे शिव ने कागभुशुण्डि से सुन कर 'मानस' (मन) में रख लिया था। स्पष्टतः संकेत अध्यात्म रामायण की ही ओर है, जिसमें वक्ता स्वयं शिव है। क्या यह संभव नहीं कि स्वयं रामशर्मा उनके गुरु रहे हों, जैसा गुरु का दिया राम बोला नाम भी संकेत करता है? जिस आस्था, निःसंकोचता तथा विदग्धता से उन्होंने अध्यात्म रामायण का उपयोग किया है, वह इस ग्रंथ के प्रति उनके ममत्व और अधिकार का ही सूचक है। यह सच हो तो महाप्रभु चैतन्य से तुलसी का संबंध आप ही जुड़ जाता है, क्योंकि राम शर्मा महाप्रभु के ही शिष्य बताये गये हैं, यद्यपि बाद में वे रामानंदीय संप्रदाय में दीक्षित हो गये थे।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि तुलसी मध्ययुग के एक बड़े सांस्कृतिक और धार्मिक आन्दोलन की उपज हैं, जिसका प्रसार रामानन्द से चैतन्य महाप्रभु तक है। स्वयं वे इस आन्दोलन के सर्वोच्च शिखर पर स्थित हैं और वहाँ खड़े होकर पीछे के सारे दृश्य प्रसार को आक्षितिज देख सकते हैं। निर्गुणवाद और योग के तीव्र विरोध में उनका सहज कवि-हृदय भी प्रतिध्वनित है। वे रूप के उपासक हैं और सगुण को निर्गुण से अधिक रहस्यमय मानते हैं, क्योंकि जिस प्रेमाभक्ति के कारण निर्गुण ब्रह्म सगुण शरीर धारण करता है वह स्वयं परम रहस्य है। वह साधना ही नहीं, साध्य भी है और इष्टदेव की पुष्टि या अनुकंपा के बिना उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। उनमें उस युग का वह हृदय स्पष्ट बोलता है, जो कृष्ण भक्तों, सूफियों तथा सहजिया वैष्णवों में रूप की उपासना में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सराबोर है, परन्तु उन्होंने कहीं भी विवेक, संतुलन और मर्यादा को हाथ से जाने नहीं दिया है। उनके आराध्य सौन्दर्य, शील और शौर्य के प्रतिमान हैं और इन सभी पक्षों का तुलसी के भक्ति-मार्ग—'श्रुतिसम्मत हरिभक्ति-पथ'—में समावेश है। विरति और विवेक के साथ भक्ति को जोड़ कर तुलसी कतिपय तत्कालीन भक्ति-समाजों की नितांत स्वच्छंद, भावाकुल भक्ति-भावना का परित्याग कर देते हैं और भोगवाद तथा अविवेक से अपना पल्ला छुड़ा लेते हैं। उसे 'श्रुतिसम्मत' कह कर उन्होंने वैदिक अथवा स्मार्त्त परम्परा से अपना संबंध जोड़ा है। परम्परा का नवीनीकरण ही उनका ध्येय है, परन्तु इस ध्येय की प्राप्ति उनकी व्यक्तिगत साधना तथा काव्यानभूति में ही चरितार्थ हो सकी है। वह आन्दोलन का रूप धारण नहीं करती, परन्तु परवर्ती युग में व्यक्ति के जीवन-परिष्कार तथा धर्म बोध के लिए नये मार्ग प्रशस्त करती है। यह कम बड़ी सांस्कृतिक उपलब्धि नहीं है। तुलसी की चेतना में रामचरितमानस का अवतरण स्वयं उनके इष्टदेव भगवान राम के अवतरण से कम दैवीय नहीं है, और उसके द्वारा निश्चय ही भारतीय संस्कृति की लोकमंगल-साधना को एक नया आयाम प्राप्त हुआ है। मध्ययुग में भारतीय चिन्तन और जीवन में शाश्वत मूल्यों की रक्षा का सुसंकल्प तुलसी की कृतियों को सांस्कृतिक गरिमा प्रदान करता है और उनका यह वर्चस्व आज भी निःशेष नहीं हुआ है। हमारे आधुनिक प्रजातंत्रीय बुद्धिवादी मूल्यों में तुलसी के मानव-मूल्य इतने घुलमिल गये हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। देवता की मानवीयता के स्थान पर आज हम मानव की देवोपमता के गीत गाते हैं। अवरोहण की अपेक्षा हम आरोहण के अधिक पक्षपाती हैं। मनुष्य की कर्मण्यता और उसकी विकासोन्मुखता का कोई अंत आज हमें दिखलाई नहीं देता। निस्सन्देह शब्दावलियाँ बदली हैं, परन्तु जाति की सजीवता और सप्राणता के मूल में व्याप्त आध्यात्मिकता और नैतिकता के मानदण्ड नये पर्यायों में भी उतने ही सार्थक तथा समर्थ हैं, जितने तुलसी के समय में थे। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कबीर और तुलसी का आन्तरिक साम्य

विष्णुकान्त शास्त्री

कबीर और तुलसी का विरोध इतना अधिक उछाला गया है कि दोनों दो विरोधी खेमों के नायक प्रतीत होते हैं, एक ही धारा के वैविध्य के उन्नायक नहीं। कुछ क्षेत्रों में कबीर-तुलसी को सराहने-कोसने में जितना उत्साह दिखाया जाता है, उतना यदि उनको समझने में भी दिखाया जाता तो, शायद ऐसा न होता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर-तुलसी की सामाजिक दृष्टियाँ एक दूसरे से कहीं-कहीं टकराती हैं, उनकी साधनिक दृष्टियों में भी थोड़ा अन्तर है, किन्तु यह अपेक्षाकृत रूप से बाह्य वैषम्य उन दोनों के उस आन्तरिक साम्य के समक्ष गौण है, जिसकी समन्वित चर्चा बहुत कम की गयी है।

कबीर के आधुनिक प्रशंसकों की दृष्टि में वे ऐसे क्रान्तिकारी थे, जिन्होंने दलित वर्ग के आक्रोश को व्यक्त करते हुए जाति-पाँति, छुआछूत जैसी सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध जेहाद छेड़ा था, ईश्वर की साकार भावना, मूर्तिपूजा, अवतार-वाद, कर्मकांड जैसी धार्मिक मान्यताओं का खंडन किया था, हिन्दू-मुस्लिम एकता का मार्ग प्रशस्त किया था, रहस्यवादी काव्यधारा का हिन्दी में प्रवर्तन किया था। कबीर की भक्ति-साधना ऐसे लोगों के लिए बहुत कम महत्व रखती है, अत्युत्साही भौतिकवादियों की दृष्टि में तो वह उनका अन्तर्विरोध ही है। इसी तरह के कुछ विचारकों ने (जिनमें कबीर के कुछ प्रशंसक भी हैं) तुलसीदास को प्रतिक्रियावादी करार देते हुए उन पर धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों के अर्थात् ब्राह्मणशाही के समर्थक, स्त्री-शूद्र-विरोधी, भाग्यवाद के प्रचारक सामन्तवादी आदि होने के मनमाने आरोप लगाये हैं। स्पष्टतः इन लोगों के लिए तुलसी की भक्ति का कोई विशेष मूल्य नहीं है। जिन प्रगतिशील विचारों ने तुलसीदास का समर्थन किया है, उनके लिए भी उनकी भक्ति उच्च कोटि का मानवतावाद या लोकवाद ही है। तुलसी की प्रशंसा भी उनके नैतिक बोध, लोकनायकत्व, पारिवारिक आदर्श, सामाजिक मंगल

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विधान, रामराज्य की कल्पना, उत्कृष्ट काव्य गुण आदि के लिए आधुनिक विचारक अधिक करते हैं। कुछ कट्टर सगुण-साकारवादियों की दृष्टि में कबीर की उक्ति **दसरथसुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना** का करारा जबाव देकर सगुण-साकार राम की प्रतिष्ठा करना ही तुलसी का सबसे बड़ा काम है। तुलसी की व्यापक भक्ति दृष्टि 'निर्गुण' को हृदय में स्थान देती थी, लगता है कि यह सत्य इन लोगों के लिए अप्रासंगिक है।

मैं यह तो मानता हूँ कि प्राचीन कवियों और उनकी कृतियों को आधुनिक दृष्टियों की कसौटी पर भी कसना चाहिए, इससे उनके नये पहलू उजागर होते हैं, किन्तु ऐसा करते समय उनकी मूलभूत निष्ठा को विस्मृत कर देना उचित नहीं है। ऐसा हुआ तो हम अन्तरंग की उपेक्षा कर बहिरंग को ही प्राधान्य दे देंगे। आखिर इस पर तो विचार करना ही चाहिए कि कबीर और तुलसी बुनियादी तौर पर क्या थे? क्या उनकी पहली पहचान समाज सुधारक, लोकनायक आदि हो सकती है? सच्चाई यही है कि कबीर और तुलसी दोनों मूलतः और प्रथमतः भक्त थे, दोनों परम तत्त्व से अपना सम्बन्ध निष्काम प्रेम के द्वारा जोड़ना चाहते थे। दोनों की वास्तविक निकटता या दूरी इसी मुद्दे के ऊपर प्रकट किये गये उनके भावों, विचारों से तै की जा सकती है। मेरा नम्र निवेदन है कि इस क्षेत्र में दोनों में अस्सी प्रतिशत से भी अधिक साम्य है। जीवन निर्वाह सम्बन्धी दोनों के विचारों में भी आश्चर्य-जनक रूप से समानता है। इस सच्चाई को बड़े विद्वानों ने चाहे आँखों से ओझल कर दिया हो, सामान्य हिन्दी जनता ने सहज ही स्वीकारा है। इस बात से कौन इनकार कर सकता है कि हिन्दी बोलने-समझनेवाली साधारण जनता के हृदय के सबसे निकट दो ही कवि हैं—कबीर और तुलसी, जो उनकी बोलचाल से लेकर दृष्टिभंगी तक को प्रभावित करते हैं। सोचने की बात है कि दो नितान्त परस्पर विरोधी विचारों-भावों वाले कवियों को एक ही जनता, एक ही साथ, करीब-करीब एक जैसा प्यार कैसे कर सकती है! यह तथ्य ही दोनों की आधारभूत एकता का अखंडनीय प्रमाण है। इसके बावजूद दोनों की सामाजिक-साधनिक दृष्टियों में जो आंशिक टकराव है, उसका कारण यह है कि भक्ति को स्वीकार करने के पूर्व दोनों की सामाजिक स्थिति और साधनिक पृष्ठभूमि भिन्न थीं। कबीर सद्यः-धर्मान्तरित मुस्लिम जुलाहा कुल में पैदा हुए थे और जाति-पांति के हृदयहीन अन्याय के खुद शिकार थे। उनके कुल पर और उन पर भी नाथ सिद्धों की साधना का गहरा प्रभाव था। अतः उन्हें विरासत में ईश्वर के साकार रूप, अवतार, मूर्तिपूजा, वर्ण व्यवस्था, कर्मकांड आदि का उग्र विरोध प्राप्त हुआ था, उनके अक्खड़ स्वभाव और व्यावहारिक अनुभव ने जिसे और पैना, और आक्रामक बना दिया था। तुलसी श्रुति-स्मृति-पुराण की परम्परा को माननेवाले ब्राह्मण कुल में जन्मे थे। अतः भक्ति के अविरोधी पारम्पारिक तत्त्वों के प्रति सहनशील थे। हाँ, उसके

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो तत्व भक्ति-विरोधी थे, उनका समर्थन उन्होंने नहीं किया है, जाति-पांति की बाधा को भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने भी कतई स्वीकार नहीं किया है। स्वभाव से भी शायद कबीर अधिक तेजस्वी और तुलसी अधिक सौम्य थे। जो हो, कबीर-तुलसी के भेदों की चर्चा काफी हो चुकी है, कुछ चर्चा उनमें विद्यमान अभेद की भी होनी चाहिए।

परम तत्त्व के परात्पर निर्गुण निराकार तथा सगुण निराकार विभावन कबीर और तुलसी दोनों को मान्य हैं। पहला विभावन तो तत्वतः अवाङ्‌ मन सगोचर है, अतः उसे प्रेम का ही नहीं, ज्ञान का विषय भी बनाना कठिन है। इसीलिए उसका संकेत नेति-नेति के द्वारा, मौन के द्वारा किया जाता है। वह ज्ञान का विषय न होकर ज्ञानस्वरूप है, अतः उसका ज्ञान जिसको होता है, वह वही हो जाता है। कबीर के शब्दों में वह तत्त्व है :

अलख निरंजन लखै न को। निरमै निराकार है सोई।।
सुनि असथूल रूप नहीं रेखा। द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यो नहीं पेखा।।
बरन अबरन कथ्यो नहीं जाई। सकल अतीत घट रह्यो समाई।।
आदि अंति ताहि नहीं मधे। कथ्यो न जाई आहि अकथे।।[1]

तथा

अबिगत अपरंपार ब्रह्म ग्यान रूप सब ठांय।
बहु बिचार करि देखिया, कबीर, कोइ न सारिख रांम।।[2]

तुलसी भी द्विधाहीन शब्दों में इसका समर्थन करते हैं :

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप गुन धामा।।
व्यापक व्याधि अखंड अनंता। अखिल अमोघ सक्ति भगवंता।।
अगुन, अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी, अनवद्य अजीता।।
निर्मम, निराकार, निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।।
प्रकृतिपार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।[3]

तथा

निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगन कहे।[4]

कबीर को वह तत्त्व ग्यान बिर्बजित ध्यान बिर्बजित,[5] लगता है तो तुलसीदास भी उसे ज्ञान गिरा गोतीत[6] कहते हैं।

१—कबीर ग्रन्थावली (डा. माताप्रसाद गुप्त)—रमैनी ३।३।१-४
२—वही रमैनी—६।१
३—रामचरितमानस (सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र) ७।७२।३-७
४—वही ७।९२।छं०१
५—क० ग्रं० (गुप्त)—पद ३।१८।५
६—मानस १।१९९

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस तत्त्व को प्रेम के आलम्बन के रूप में मानवग्राह्य बनाने के लिए अर्थात् मन, वाणी का विषय बनाने के लिए इस पर गुणों का आरोप करना पड़ता है। ये गुण न प्राकृतिक (अर्थात् सत्व, रज, तम परक) हैं, न लौकिक (अर्थात् सीमित एवं दोषस्पृष्ट)। ये तो दिव्य और असीम प्रेम, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, सामर्थ्य, क्षमा, करुणा, कृपा आदि हैं, जिनके कारण वह तत्त्व श्रेय के साथ-साथ प्रेय बनता है और उससे एक व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। यह जरूरी नहीं है कि इसके लिए उस तत्त्व को सगुण के साथ-साथ साकार भी माना जाय। भारतीय भक्ति साधना साकार के प्रति ही हो सकती है, यह धारणा निराधार है। श्रीमद्भगवद्-गीता के बारहवें अध्याय में और श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध के कपिल-देवहूति-संवाद में अव्यक्त उपासना निराकार के प्रति भक्तिभावना (जिसे व्यवहार में निर्गुण भक्ति कहा गया है।) की स्पष्ट स्वीकृति है। इस स्तर पर भी कबीर और तुलसी सहमत हैं। किन्तु इसके आगे जाकर उस तत्त्व को साकार मानने या उसके अवतार के रूप में प्रकट होने की बात कबीर को अस्वीकार्य और तुलसी को स्वीकार्य है। इस पहलू के औचित्य-अनौचित्व पर विचार किये बिना यह मान लेना काफी है कि कबीर और तुलसी की साधनिक दृष्टियों में यहाँ निश्चित भिन्नता है। कबीरदास के नाथ सिद्ध सूफी इस्लामी संस्कार के लिए साकार रूप की धारणा संभव नहीं थी। उस परम तत्त्व को कभी उन्होंने योगियों के अनुसार ज्योति रूप में, नाद या शब्द के रूप में, कभी बौद्धों के अनुसार शून्य रूप में और कभी सूफियों के अनुसार नूर रूप में भी वर्णित किया है, किन्तु प्रधानतः और पुनः-पुनः वैष्णव संज्ञाओं और विशेषणों से ही उसे सम्बोधित किया है। यह वस्तुगत तथ्य भी उनके वास्तविक विश्वास को उजागर करने में सहायक है।

कबीर और तुलसी दोनों मानते हैं कि प्रभु राम में असंख्य गुण हैं। कबीर यदि कहते हैं कि **गोविन्द के गुण बहुत हैं, लिखे जु हिरदे मांहि**[७] तो तुलसी का कहना है **समुझि-समुझिगुन ग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।**[८] दोनों राम को सर्वोपरि समर्थ मानते हैं। कबीर के अनुसार यदि राम की माया के **पुत्र तिन भयऊ ब्रह्मा विष्णु महेश नाम धरेऊ**[९] तो तुलसी के मत से भी राम **विधि, हरि, संभु नचावनि हारे**[१०] हैं। राम की सर्वोपरिता सिद्ध करने के लिए दोनों ने आश्चर्यजनक रूप से एक शैली का अनुगमन किया है। यदि कबीर का दृढ़ निश्चय है कि :

७—कबीरवाङ्मय—खंड-३ साखी (सं० डा० जयदेव सिंह, डा० वासुदेव सिंह) ५०।७
८—विनयपत्रिका १००।१९
९—क० वा० खंड १, रमैनी १।३
१०—मानस २।१२६।१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जौ जाचों तो केवल राम। आन देव सूं नाहीं काम।
जाके सूरिज कोटि करें परकास। कोटि महादेव गिरि कविलास।।
ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरें। दुर्गा कोटि जाके मरदन करें।
कोटि चंद्रमा गहैं चिराक। सुर तेतीसुं जी मैं पाक।।
नौ ग्रह कोटि ठाड़े दरबार। धरम कोटि पौली प्रतिहार।।
कोटि कुमेर जाके भरे भंडार। लछमी कोटि करे सिंगार।।
कोटि पाप मुनि ब्योहरे। इंद्र कोटि जाकी सेवा करें।।[११]

आदि-आदि।

तो तुलसीदास का भी निष्कर्ष यही है कि :

राम काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन।।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा।।
मरुत कोटि सत बिपुल बल, रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल, समन सकल भव त्रास।।
सारद कोटि अमिट चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।।
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता।।
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना।।[१२]

आदि-आदि।

किन्तु राम के सामर्थ्य-माहात्म्य का बोध मात्र भक्ति नहीं है. वह तो उस बोध के बाद उत्पन्न होनेवाला उनके प्रति अमृत स्वरूप परम प्रेम है।[१३] इसीलिए कबीर और तुलसी राम को केवल परब्रह्म, कर्त्ता, जगदीश आदि ही नहीं समझते, अपना परम प्रियतम भी मानते हैं। मिलन-सुख का अनुभव करते हुए यदि कबीर कह उठते हैं, **बहुत दिनन थे मैं प्रीतम पाये। भाग बड़े घरि बैठे आये।**[१४] तो तुलसी की सुविचारित वाणी है, **राम से प्रीतम की प्रीतिरहित जीव जाय जियत।**[१५] कैसे अपूर्व सुन्दर हैं ये प्रियतम। कबीर और तुलसी दोनों एक सी बात कहते हैं, **कंदर्प कोटि जाके लावन करे**[१६] तथा **कंदर्प-अगणित-अमित-छबि, नवनील नीरज-सुंदरं।**[१७] न केवल वे सुन्दर हैं, बल्कि परम स्नेही भी हैं।

११—क० ग्रं० (गुप्त) पद ८-१५
१२—मानस ७।९१,९२ के अंश
१३—नारदीय भक्ति सूत्र २,३
१४—क० ग्रं० (गुप्त) पद १।२।१-२
१५—वि० प० १३२।१
१६—क० ग्रं० (गुप्त) पद ८।१५।१७
१७—वि० प० ४५।२३

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वे जितना प्यार जीवों को करते हैं, उतना कोई नहीं कर सकता और वह भी तब, जब जीव उनको प्यार नहीं करते, उनको नहीं भजते। कबीर की साखी है, **कबीर हरि सबकों भजे हरि को भजे न कोइ।**[१८] कबीर अपने उस स्नेही से मिलने के लिए बेचैन हैं, **कब देखों मेरे राम सनेही। जा बिन दुख पावे मेरी देही।**[१९] तुलसीदास की भी पक्की धारणा है कि **जानत प्रीति-रीति रघुराई। नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह-सगाई।**[२०] ठीक ही है जो और सब नाते-रिस्तों को दूर कर केवल स्नेह का नाता रखता हो, वास्तव में वही प्रीति की रीति जानता है एवं ऐसा राम के सिवाय और दूसरा कौन है?

फिर कितने कृपालु हैं प्रभु। जो नितान्त असमर्थ हैं, वे भी उनकी कृपा से वंचित नहीं होते। कितने आश्वस्त हैं कबीर कि गर्भगत शिशु की रक्षा करनेवाला कृपालु प्रभु भला अपने भक्तों का प्रतिपालन क्यों नहीं करेगा, **कृसन कृपाल कबीर कहि, हम प्रतिपालन क्यों करे।**[२१] ऐसी ही है तुलसी की मान्यता, हे **तुलसिहिं परतीति एक प्रभु मूरति कृपामई है।**[२२] अतः यह स्वाभाविक ही था कि राम के गुणों पर मुग्ध कबीर और तुलसी दोनों राम को अपना इष्टदेव मान लेते। इष्ट के बल से बलीयान होकर कबीर कह उठे थे, **राम नाम सो दिल मिला, जम सो परा दुराइ। मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाइ।** और तुलसी ने तापस के रूप में अपना ही चित्रण करते हुए इष्टदेव श्री राम के प्रति अपनी प्रेम विह्वलता को इस प्रकार अंकित किया है, **सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेव पहिचानि। परेउ दंड जिमि धरनि तल, दसा न जाइ बखानि।**[२३]

कबीर और तुलसी दोनों ने एक स्वर से घोषित किया है कि राम की भक्ति ही मानव जीवन का चरम साध्य है। कबीर के शब्दों में, **जानरि राम भगति नहीं साधी। सो जनमत काहे न मूवो अपराधी।।**[२४] सुन्दर से सुन्दर, सुरूप से सुरूप व्यक्ति भी कबीर के लिए **राम भगति बिन कुचिल करूप**[२५] था। कबीर के मतानुसार राम के अतिरिक्त कुछ और है ही नहीं, अतःबड़े भाग्य से मिलनेवाले मानव शरीर की परम गति यही है कि राम भक्तों की संगति में रहा जाये, **न कछु रे न कछु राम बिना। सरीर धरे की इहे परम गति साध संगति रहना।**[२६]

१८—क० वा० ३—साखी ४५।४०
१९—क० ग्रं० (गुप्त) पद ३।२२।१-२
२०—वि० प० १६४।१-२
२१—क० व० ३—साखी ३५।१।६
२२—वि० प० १७०।१४
२३—मानस २।११० (का संख्या रहित दोहा)
२४—क० ग्रं० (गुप्त) पद १।१२४।१-२
२५—वही, पद अन्तिम पंक्ति
२६—वही, पद १६।२।१-२

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसी तरह तुलसीदास कहते हैं कि जीवन का परम लाभ राम के चरणों में **पावन प्रेम रामचरन जनम लाहु परम।**[२७] उनका निर्देश है, **दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम, बचन अरु ही ते।**[२८] राम-भक्ति रहित संसार के सारे सुख तुलसी के लिए निस्सार हैं, जो राम का न हुआ वह जीवन जल जाये, **सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछू सपनो दिन द्वै। जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ जिये जगमें तुम्हरो बिनु ह्वै।**[२९]

इन दोनों भक्तों ने भक्ति को किसी विशिष्ट सम्प्रदाय, दर्शन या विधिविधान से नहीं बांधा है। इन दोनों की रचनाओं में ऐसा कथन कहीं नहीं मिलता कि किसी विशेष प्रकार का छापा तिलक लगाकर या किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होकर ही राम को पाया जा सकता है। आश्चर्य की बात है कि दोनों ने अपने गुरुओं के प्रति परम भक्ति निवेदित करते हुए भी **गुरु गोबिन्द तो एक है**[३०] तथा **बंदौ गुर पद कंज कृपा सिंधु नर रूपहरि**[३१] कहते हुए भी उनका नामोल्लेख नहीं किया है। दोनों प्रभु के असंख्य नामों में सर्वप्रमुख राम नाम को ही मानते थे, जो उन्हें अपने गुरु से प्राप्त हुआ था। **राम नाम के पटतरे देबे को कछु नांहि। क्या ले गुरु संतोषिए, होस रही मन मांहि।।**[३२] यदि कबीर की कृतज्ञ स्वीकारोक्ति है, तो तुलसी का कथन है, **गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो।**[३३] यह राम नाम दोनों का परम आधार था। **राम कहे भल होइगा नहिं तर भला न होइ**[३४], **तात तिलक तिहुँ लोक में राम नाम निज सार**[३५] यदि कबीर का विश्वास था तो तुससी की मान्यता थी, **अपनो भलो राम नामहिं ते तुलसिहिं समुझि परो**[३६], **राम नाम सब धरम में जानत तुलसीदास।**[३७] तुलसी तो राम नाम को ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण दोनों स्वरूपों से बड़ा मानते थे।[३८]

भक्ति की आधारभूत विशेषताएँ भी दोनों की दृष्टि में एक सी हैं। **निर**

२७–वि० प० १३१।१
२८–वही, १९८।२
२९–कवितावली ७।४१।३-४
३०–क० वा० खंड २३, साखी १।२६।१
३१–मानस १।०।५-१
३२–क० व० खं ३ साखी-१।४
३३–वि० प० १७३।१०
३४–क० वा० खंड ३,२।१।२
३५–वही, २।३।१
३६–वि० प० २२६।१२
३७–दोहावली २९।२
३८–मानस १।२३।१-२

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बैरी, निहकामता, साईं सेती नेह। विषया सो न्यारा रहे संतनि का अंग एह,[३९] तथा **साईं सेती सांच चलि औरों सौ सुध भाइ। भावे लंबे केस करि भावे घुरडि मुडाइ**[४०] कहकर कबीर ने जिस प्रकार आडम्बरहीन, निर्वैर, विषयविकाररहित राम के प्रति शुद्ध, निश्छल, निष्काम प्रेम को भक्ति माना है, तुलसी ने उसी प्रकार संसार के प्रति समता तथा **सत्य बचन मानस बिमल, कपट रहित करतूति**[४१] के साथ 'रागरिस' को जीत कर नीति पथ पर चलते हुए राम से प्रीति करने को ही संतों के मतानुसार 'भगति की रीति'[४२] कहा है। भक्ति राम के प्रति निष्काम, अहेतुक प्रेम है, लौकिक विषयों की बात तो जाने ही दीजिये, मुक्ति या बैकुंठ की कामना भी भक्ति को मलिन करती है, कबीर-तुलसी दोनों का यही मत है। **जब लगि भगति सकामता, तब लग निष्फल सेव**[४३], **जब लग है बैकुंठ की आसा। तब लग नहीं हरि के चरन निवासा**[४४] यदि कबीर ने कहा है तो तुलसी की वाणी है, **चहौं न सुगति, सुमति, सपति, कछु रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई। हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ौं अनुदिन अधिकाई।**[४५]

यह निष्काम प्रेम उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता जाय, इसके लिए राम से कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक है। कबीर ने राम से दो मुख्य सम्बन्ध जोड़े ये, पहला सेवक-सेव्य का, दूसरा कान्ता-कान्त का **उस संभ्रथ का दास हौं, कदेन होइ अकाज**[४६] तथा **मैं गुलाम मोहि बेचि गुसांई**[४७] जैसी उक्तियों में यदि उनका दास्य भाव झलका है, तो **हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया**[४८] और **बाल्हा आव हमारे ग्रेह रे**[४९] जैसी पंक्तियों में कान्ता भाव। तुलसीदास यह तो मानते थे कि प्रभु से अनेकानेक नाते हो सकते हैं, किन्तु अपने लिए उन्होंने 'सेवक-सेव्य' का नाता ही चुना था। **तुलसी सर नाम गुलाम है राम को**[५०], **सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उर गारि**[५१] जैसी पंक्तियों से यह स्पष्ट है। दोनों इस पर

३९—क० वा० खंड ३,२९।१
४०—वही, २४।११
४१—दोहा ८७,९४
४२—वही ८६
४३—क० वा० खंड ३, ११।१०
४४—क० ग्रं० (गुप्त) पद १।२४।४
४५—वि० प० १०३।३-४
४६—क० वा० खंड ३, ११।१७-१
४७—क० ग्रं० (गुप्त) पद १।११२।१
४८—कबीर बीजक (सं० डा० शुकदेव सिंह) शब्द दा ३५।१
४९—क० ग्रं० (गुप्त) पद ५।८।१
५०—कवितावली ७।१०६।३
५१—मानस ७।११९ क।१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एकमत हैं कि राम से नाता दृढ़ तभी होगा, जब इस शरीर के अन्यान्य नातों की आसक्ति त्याग दी जाये। **प्राणी प्रीति न कीजिए इहि झूठे संसारो रे**[५२] तथा **कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सो, बहु गुणियाले कंत जो हंसि बोलों और सो तो नीलरंगाऊ दंत**[५३], यदि कबीर के उद्गार हैं, तो तुलसी की घोषणा है, **ना तो नेह नाथ सों करि, सब नातो नेह बहैं हों**[५४] तथा **यहि जग में जहं लगि या तनु की प्रीति-प्रतीति-सगाई, ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहु सिमिटि एक ठाई।**[५५]

बड़ा कठिन है शरीर के अहंकार या उसके सम्बन्धों की आसक्ति को तोड़ पाना। मैं-मेरा, तू-तेरा की भावना शरीर को केन्द्रित कर इतनी दृढ़ हो गयी है कि छुड़ाये नहीं छूटती। माया की सूक्ष्म दार्शनिक व्याख्याएँ भले अलग-अलग हों या हार कर उसे अनिर्वचनीय कह दिया जाये, किन्तु व्यवहार में उसका सब से प्रकट रूप इसी 'मैं-मेरा, तू-तेरा' में व्यक्त होता है। अतः कबीर और तुलसी दोनों ने इसी को विनाश का मूल अथवा माया कह दिया है। **जब लग मैं-मैं मेरी करे, तब लग काज एक नहीं सरे**[५६] **मोर तोर में सबे बिगूता मोर, तोर महं जर जग सारा**[५७] तथा **मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास**[५८] यदि कबीर की मान्यता है, तो तुलसी कहते हैं **तुलसिदास मैं मोर गए बिनु जिद सुख कबहुं न पावै**[५९] तथा **मैं अस मोर तोर तै माया, जेंहि बस कीन्हे जीव निकाया।**[६०] कबीर और तुलसी दोनों यह मानते हैं कि माया के कारण ही जीव अपने स्वरूप को भूल कर विषयासक्त हो दुःख पा रहा है। दोनों माया को राम की शक्ति, त्रिगुणात्मिका और सृष्टिकर्त्री मानते हैं। यह जरूर है कि तुलसी माया के विद्या और अविद्या दो भेद कर विद्या (सीता) के सहारे राम से जुड़ पाना संभव मानते हैं, जब कि कबीर ऐसा भेद नहीं करते, सीता की कल्याणमयी भूमिका को स्वीकार नहीं करते। उनके लिए माया एक ही है और उसका सर्वथा परित्याग करना चाहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर जैसे विकारों को दोनों ने माया के प्रमुख अंगों के रूप में स्वीकार किया है और यह भी माना है कि मनुष्य का मन जब तक इन विकारों से कलुषित रहता है, तब तक वह सच्ची भक्ति नहीं कर पाता है। विषय-

---

५२—क० ग्रं० (गुप्त) पद १६।१।५
५३—क० वा० खंड ३, ११।१
५४—वि० प० १०४।७
५५—वही १०३।७-८
५६—क० ग्रं० (गुप्त) पद ८।२४।३
५७—क० वा० १, रमैनी ८४।५-७
५—क० वा० ३, १२।६१
५९—वि० प० १२०।१०
६०—मानस ३।१५।२

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्रस्त मन के अनुसार आचरण करने से मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है, यह कबीर और तुलसी दोनों का मत है। **काया देवल मन धजा, विषय लहरि फहराइ। मन चाले देवल चले ताका सर्वस जाइ।**[६१] कबीर के इस कथन के अनुरूप ही तुलसी की उक्ति है, **विषय-वारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक। तातें सहिय बिपति अति दास न जनमत जोनि अनेक।**[६२] कबीर यदि '**मैमंता मन**' को मार कर ज्ञान के अंकुश से वशीभूत करना चाहते हैं, तो तुलसी भी अपने 'मूढ़ मन' को 'सिखावन' देते रहते हैं कि '**हरि पद विमुख**' को कभी सुख नहीं मिलता। मानो विजय की साधना कबीर और तुलसी दोनों ने की है, किन्तु दोनों का अनुभव यही है कि माया से बँधा हुआ जीव ऐसा प्रायः नहीं कर पाता।

सवाल है जीव को कैसे मुक्ति मिले, इस माया के बन्धन से। समस्या और उसके संभावित समाधानों की ओर संकेत करते हुए कबीर कहते हैं: **बहु बंधन से बांधिया एक बिचारा जीव। की बल छूटे आपने, किया छुड़ावे, पीव**[६३] अपने बल छूटने का अर्थ है कर्म, योग, ज्ञान या भक्ति आदि साधनों में से किसी एक का अवलम्बन कर स्वप्रयास से मुक्त होना। इनमें कर्म को कबीर और तुलसी दोनों गौण सहायक के रूप में ही स्वीकारते हैं। ऊपर दिखाया जा चुका है कि आचरण की पवित्रता तो दोनों के अनुसार '**संतन का अंग**' या '**भगति की रीति**' के अन्तर्गत ही है। कथनी-करनी की एकता पर दोनों ने समानरूप से बल दिया है। कबीर दास ने यदि कहा है कि **जैसी मुखतें नीकसै, तैसी चाले चाल। पारब्रह्म नियरा रहे, पल में करे निहाल**[६४] तुलसी ने भी इसकी पुष्टि की है, **जो कछु कहिय, करिय, भवसागर तरिय बत्स पद जैसे।**[६५] कर्मफल भोग का सिद्धान्त भी दोनों को साधारण रूप से मान्य है, जैसा कि **जो जस करिहै सो तस पइहै राजा राम नियाई**[६६] (कबीर) तथा **काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता**[६७] (तुलसी) से स्पष्ट है। फिर भी दोनों कर्म का भरोसा नहीं करते, क्योंकि व्यावहारिक और सैद्धान्तिक दोनों स्तरों पर उन्हें जीवकृत कर्म अपर्याप्त लगते हैं। व्यवहार की दृष्टि से निरन्तर सत्कर्म (पुण्य) करते रहना बड़ा कठिन है, अनचाहे, अनजाने निष्कर्म (पाप) होते ही रहते हैं। **कहता कहि**

६१—क० वा० १, १३-२८
६२—वि० प० १०२।५-६
६३—बीजक (शु) साखी दा २११
६४—क० वा० ३, १८।२
६५—वि० प० ११८।३
६६—क० ग्रं० (गुप्त) पद २।४६।२
६७—मानस २।९२।४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया, सुनता सुणि गया, करणी कठिन अपार[६८] यदि कबीर का अनुभव है, तो तुलसी भी पाते हैं कि सुकृत (पुण्य) के नाखूनों से पाप के जंगल के वृक्ष समूहों को काटना असंभव है।[६९] सिद्धान्त की दृष्टि से दोनों को लगता है कि करनेवाला तो वास्तव में परमात्मा ही है, जीव क्या कर सकता है। यदि कबीर का विश्वास है, **सोई सो सब होत है, बंदे ते कछु नाहिं**[७०] तो तुलसी की धारणा है कि **मेरी न बने बनाए मेरे कोटि कलप लों, राम रावरे बनाए बने फल पाउ मैं।**[७१]

योग के लिए कबीर के मन में गहरी श्रद्धा है। उनकी आरंभिक साधना में (भक्ति भावना में भी) योग का बहुत बड़ा दान है। कुंडलिनी योग तथा शब्द मूरति योग सम्बन्धी उनकी अनेकानेक उक्तियाँ इसके प्रमाणस्वरूप उद्धृत की जा सकती हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि बाद में वे योग से कहीं अधिक भक्ति पर निर्भर हो गये थे। **कहे कबीर योगि औ जंगम, फीकी उनकी आशा। रामहि राम रटै ज्यों चातक, निश्चय भक्ति निवासा।।**[७२] तथा **हिरदे कपट (हरि) सूनहिं सांचौ, कहा भयो जो अनहद नाच्यो**[७३] जैसी उक्तियों के आधार पर यह संगत अनुमान किया जा सकता है कि भक्ति रहित यौगिक प्रक्रियाओं के प्रति उनकी आस्था नहीं रह गयी थी। **गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग**[७४] का हवाला देकर कुछ विद्वानों ने तुलसी को योग विरोधी बताना चाहा है। वास्तव में तुलसीदास यहाँ उस अतिरेक का विरोध कर रहे हैं, जो भक्ति को नकारता था। राम-भक्ति और रामकथा के प्रदाता स्वयं शिव को महायोगी के रूप में तुलसी ने मानस में बार-बार ससम्मान चित्रित किया है, **संकर सहज सरूपु संभारा। लागि समाधि अखंड अपारा**[७५] **हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी**[७६] आदि। ध्यान योग का अत्युच्च अंग है और भक्ति में भी उसका परम समादर है। तुलसीदास तो प्रभु के ध्यान को अपने लिए कल्पवृक्ष के समान मानते हैं, **राम बाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।**[७७] तुलसीदास भक्ति-अविरोधी योग का सम्मान करते हैं,

---

६८—क० ग्रं० (गुप्त) पद २१४६।४
६९— वि० प० ९६।२
७०—क० वा० ३, ३८।१२
७१—वि० प० २६१।१।२
७२—बीजक (शु०) शब्द दा २६।७।८
७३—क० ग्रं० (गुप्त) पद ४।१७।४
७४—कवितावली ७।८४।५
७५—मानस १।५८।८
७६—वही १।९०।३
७७—दोहा १

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किन्तु स्वयं योगमार्गी नहीं हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है, **जोग न बिराग जप जाग तप त्याग ब्रत, तीरथ न धर्म जान बेद विधि किमि है।**[७८]

ज्ञान के प्रति कबीर और तुलसी दोनों आस्थावान् हैं, दोनों मानते हैं कि माया के बन्धन को छिन्न-भिन्न कर देने में ज्ञान समर्थ है। कबीर की अनुभूति है **संतौ भाई आई ग्यान की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबे उड़ांणी माया रहे न बांधी।**[७९] मानव जीवन की सार्थकता के लिए ज्ञान विचार को अनिवार्य मानने वाले कबीर ने क्षोभपूर्वक लिखा है, **जिहि कुलि पुत्र न ग्यान बिचारी। वाकी विधवा काहे न भइ महतारी**[८०] इसी तरह तुलसीदास की भी मान्यता है कि '**भव संभव खेद**' को हरने में ज्ञान भी समर्थ है।[८१] वे स्वीकारते हैं कि जो ज्ञान मार्ग का निर्विघ्न निर्वाह कर लेता है, **सो कैवल्य परम पद लहई**[८२] लेकिन कबीर और तुलसी दोनों दृढ़तापूर्वक यह भी प्रतिपादित करते हैं कि भक्ति के विना ज्ञान में भी पूर्ण सुरक्षा नहीं है। कबीर की साखियाँ हैं—

ग्यानी तौ नीडर भया, माने नाही संक।
इन्द्री केरे बसि पड़ा, भूंजे बिखे निसंक॥
ग्यानी मूल गंवाइया, आपे भये करता।
तातें संसारी भला, मन में रहे डरता॥[८३]

इसी समानान्तर तुलसी ने लिखा है—

जे ज्ञान मान बिमत्त तव भव हरनि भगति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥[८४]

तथा—**सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करन धार बिनु जिमि जल जानू।**[८५]

कर्म, योग, ज्ञान की तुलना में भक्ति अधिक सरल और सुरक्षित है, इसको मानते हुए भी कबीर और तुलसी दोनों यह भी स्वीकारते हैं कि अपने बूते पर माया बद्ध जीव भक्ति भी नहीं कर सकता। तर्क के लिए कोई कह सकता है कि भक्ति का सार 'सुमिरन' करते रहने में भला क्या कठिनाई हो सकती है, किन्तु कबीर जानते हैं कि पापिनी माया ने हरि से 'हराम' करने के लिए लगादी है, **मुखि कड़ि**

७८—कविता० ७।७१।१।२
७९—क० ग्रं० (गुप्त) पद १।१६।१।२
८०—वही पद १।१२४।४
८१—मानस ७।११५।१३
८२—वही ७।११९।२
८३—क० वा० ३, २०।२६-२७
८४—मानस ७।१३।छ० १०।११
८५—वही २।२७६।५

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

याली कुमति की, कहन न देई राम।[८६] अतः उनका निष्कर्ष है, **कबीर कठिनाई खरी, सुमिरतां हरि नाम। सूली ऊपर नट विधा, गिरे त नाहीं ठाम।**[८७] भक्ति के लिए तो आपा मिटाना पड़ता है, निष्काम होना पड़ता है और विरह ज्वाला से जलना पड़ता है, अतः तलवार की धार पर चलने में समर्थ कोई सूरमा ही भक्ति कर सकता है। कबीर के शब्दों में **भगति दुहेली राम की नहिं कायर का काम। सीस उतारे हाथि सों (तब) लैसी हरि का नाम।**[८८] तुलसीदास भी मानते थे कि 'सब सुख खानि भगति' इतनी दुर्लभ है, **जो मुनि कोटि जतन नहीं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं।**[८९] उन्होंने भी कहा है **रघुपति भगति करत कठिनाई। कहत सुगम, करनी अपार, जाने सोइ जेहि बनि आई।**[९०] इस कठोर सत्य के साक्षात्कार से अपने बल से माया के बंधन से छूटने का विकल्प कबीर और तुलसी दोनों को अपने लिए अर्थहीन लगता है।

इस स्थिति में एक ही संभावना शेष रह जाती है कि 'पीव' ही कृपा कर जीव को माया के बन्धन से मुक्त कर दे। कबीर और तुलसी दोनों ने प्रभु से इसके लिए विकल प्रार्थना की है। **बाबा करहु कृपा जन मारगि जावो, ज्यूं मो बंधन खुटे**[९१] **कहे कबीर कारणांभय आगे, तुम्हारी कृपा बिना यह बिपतिन भागे**[९२] यदि कबीर की बिनती है, तो तुलसी की विनय भी यही है **तुलसिदास यह जीव मोह-रजु जोइ बांध्यो सोइ छोरे**[९३], **तुलसिदास प्रभु मोह शृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे**[९४], **तुलसिदास हरि कृपा मिटे भ्रम, यह भरोस मन माहीं।**[९५]

प्रभु की कृपा किस पर, कब, क्यों, कैसे होगी, यह नहीं कहा जा सकता। वैसे संतों की तो धारणा है कि कृपा सब पर समान रूप से बरस रही है। अभागा जीव अपने ही अभिमान, सम्बल या छलकपट आदि की आवरण के कारण उससे बंचित रह जाता है। संतों का अनुभव है कि जीव जबअपने उपायों की व्यर्थता का अनुभव कर, हार कर, थक कर, दीन होकर, निश्छल भाव से सर्वसमर्पण कर प्रभु की शरण में जाता है, तब उनकी कृपा उसे समस्त बन्धनों से मुक्त कर अपना लेती

८६—क० वा० ३, १६।४
८७—वही २।२९
८८—वही ४५।२४।२६
८९—मानस ७।८५।३-४
९०—वि० प० १६७।१-२
९१—क० ग्रं० (गुप्त) पद २।२७।१
९२—वही पद ३।२१।५
९३—वि० प० १०२।१०
९४—वही ११४।१०
९५—वही ११६।१०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। भक्ति साधना की यह चरम परिणति कबीर और तुलसी दोनों में समान रूप से दृष्टिगोचर होती है।

तुलसीदास की दीनता तो विख्यात है ही, किन्तु अक्खड़, उग्र, आक्रामक माने जानेवाले कबीर की दीनता उन लोगों को विस्मयकारिणी लग सकती है, जो उन्हें केवल क्रान्तिकारी के रूप में देखना पसन्द करते हैं। सिद्धान्त निरूपित करते हुए कबीर कहते हैं **दीन गरीबी दीन को, दुंदर को अभिमान। दुंदर दिल विष सूं भरी, दीन गरीबी राम।**[९६] अर्थात् विनम्र (दीन) को प्रभु ने गरीबी (दीनता) दी और द्वन्द्वरत (दुंदर) को अभिमान दिया, दुंदर के दिल में विष है, तो दीन के हृदय में है राम। जो स्वामी रहित (निगुसावां) है, उसका कोई वास्तविक आश्रय (थाघी) नहीं है, वह बह जायेगा, उसी की रक्षा हो सकती है, जो दीन गरीबी के साथ बंदगी करता है, **निगुसांवा बहि जाएगा, जाके थाधी नहिं कोइ। दीन गरीबी बंदगी करतां होइ सु होइ॥**[९७] व्यवहार में कबीर अपने को प्रभु का कुत्ता (जिसका प्यार का नाम मोतिया——मोती है) मानते हुए कहते हैं कि मेरे गले में राम की रस्सी पड़ी हुई है, वे जिधर खींचते हैं, उधर ही जाता हूँ, प्रेम से बुलाते हैं तो उनके पास जाता हूँ, दुरदुराते हैं तो हट जाता हूँ, जैसे रखते हैं, वैसे रहता हूँ, जो देते हैं सो खाता हूँ :

> **कबीर कुत्ताराम का, मोतिया मेरा नाउँ।**
> **गले राम की जेवड़ी, जित खेचे तित जाउँ॥**
> **तो तो करे त बाहूडो, दुर दुर करे तो जाउँ।**
> **ज्यों हरि राखे त्यों रहों, जो देवे सो खाउँ॥**[९८]

केवल प्रभु के निकट ही नहीं, प्रभु भक्तों के निकट भी कबीर अत्यन्त दीन हैं, उनके शिष्य हैं, दासानुदास हैं, उनके पांवों तले की घास हैं, **कबीर चेरा संत का दासनि का परदास। कबीर ऐसा ह्वै रहा ज्यों पावां तलि घास।**[९९]

तुलसी भी त्रिपथ का त्याग कर **'राम दुखारे दीन'**[१००] होकर जा बैठे हैं। उन्हें तो लगता है, **माधव, मो समान जग माहीं। सब बिधि हीन, मलीन, दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं।**[१०१] उनका दृढ़ विश्वास है, **तुलसी तिलोक तिहूँ काल तो से दीन को। राम नाम ही की गति जैसे जल मीन को।**[१०२] राम

९६—क० वा० ३, ४१।१२
९७—वही ४१।११
९८—वही ११।१४-१५
९९—वही ४१।१३
१००—दोहा ९९
१०१—वि० प० ११४ (१-२)
१०२—वही ६८।९-१०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भक्तों के समक्ष तुलसी भी कबीर के समान ही विनत हैं। भक्त तो उनके लिए भगवान के समान ही हैं। धोखे से भी जिसके मुंह से राम नाम निकल जाता है तुलसी अपने चमड़े से उसकी जूती बनाने के लिए तैयार हैं, **तुलसी जाके बदन तें धोखेउ निकसत राम, ताके पग की पगतरी, मेरे तनु को चाम।**[१०३]

इसी दीनता ने उन दोनों को यह बोध दिया था कि अपने बल-बूते पर अपना भला करने की चेष्टा में ही बात बिगड़ती चली गयी है। अपनी अक्षमता की निष्कपट स्वीकृति है कबीर के इन शब्दों में **ना कछु किया न करि सका, ना करने जोग सरीर**[१०४] जिसकी और घनीभूत वेदना भी प्रतिकृति-सी लगती है। तुलसी की यह पंक्ति, **कियो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू मरिबोई रहो है।**[१०५] यदि कबीर का अनुभव है कि राम की सहायता के बिना ऊपर उठने के लिए उन्होंने जिस-जिस डाल पर पांव रखा, (जिस-जिस साधन का अवलम्ब ग्रहण किया) वही वही डाल झुक गयी (वे सारे साधन व्यर्थ हो गये) **कबीर करनी क्या करे, जे राम न करे सहाइ। जिहि जिहि डाली पग धरे, सोई नइ नइ जाइ।**[१०६] तो तुलसी ने भी यही पाया है कि **बाप आपने करत मेरी घनी घटि गई।**[१०७] इसी स्थिति में जैसे कबीर कह उठे हैं **कहे कबीर सुनहुँ रे संतो थकित भया मैं हारचा**[१०८] वैसे ही तुलसी ने गुहार लगायी है, **हौं हारचो करि जतन बिबिध बिधि।**[१०९]

जिस तरह कबीर इस मर्म तक पहुँचे हैं कि जिस दिन और कोई सहारा, भरोसा नहीं रह जाता उसी दिन राम की सहायता मिलती है, **जा दिन तेरे कोई नाहीं ता दिन राम स सहाई**[११०] उसी तरह तुलसीदास भी यह समझ गये हैं कि राम को छोड़ कर औरों की आशा, विश्वास या भरोसा जीव की जड़ता मात्र है और इसे दूर करने की प्रार्थना भी उन्होंने राम से ही की है, **यह बिनती रघुबीर गुसाई और आस बिस्वास भरोसो हरो जीव-जड़ताई।**[१११]

जिस प्रकार निस्साधन होकर भव-भय से डरे हुए कबीर प्रभु की शरण में आये हैं, **कहा करों, कैसे तिरों, भौ जल अति भारी। तुम्ह सरनागति केसवा, राखि**

१०३–वैराग्य संदीपनी ३७
१०४–क० वा० ३,३८।१
१०५–कवितावली ७।९१।४
१०६–क० वा० ३,३८।१०
१०७–वि० प० २५२।१
१०८–क० ग्रं० (गुप्त) पद ३।१४।१०
१०९–वि० प० ८९।७
११०–क० ग्रं० (गुप्त) पद १।१२१।२
१११–वि० प० १०३।१-२

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राखि मुरारी[112], **कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनिये देव मुरारी। इत भैंभीत डरौं जम दूतनि आये सरनि तुम्हारी**[113], उसी प्रकार तुलसीदास जी ने भी उनकी शरण गही है, **अब रघुनाथ सरन आयो जन भव भय-बिकल डरयो।**[114] **मूड़ मारि हिय हारि के हित हेरि हहरि अब चरन-सरन तकि आयो।**[115] शरण ग्रहण करते समय दोनों ने इस बात पर बल दिया है कि प्रभु अब तुम्हें छोड़कर हमारा कुछ नहीं है, जो कुछ है सो तुम्हारा है और एक मात्र तुम हमारे हो। इसे ही सर्व समर्पण कहते हैं, जिसके बिना शरणागति नहीं सधती।

अपने को पूर्णत: नि:स्व कर प्रभु को समर्पित कर देने की कबीर की यह निश्छल सरल वाणी समूचे हिन्दी भक्ति साहित्य में बेजोड़ है—

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझ को सौंपता क्या लागे है मेरा।।[116]

इसी तरह मन, वचन, करम से राम के होकर[117], **तुम हीं सब मेरे प्रभु गुरु मातु पिते हौं**[118] तथा **जानकी-जीवन की बलि जैहौं** कहते हुए अपना सारा दायित्व तुलसी ने प्रभु को सौंप दिया है, **यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं।**[119]

प्रभु से नाता जोड़ कर उनकी शरण ले लेने पर स्वभावत: कबीर और तुलसी दोनों यह आश्वासन चाहते हैं कि प्रभु ने उन्हें अपना लिया। प्रभु विरह की तीव्र अनुभूति से छटपटाते उन दोनों भक्तों में प्रभु के साक्षात्कार का, उनकी लीला में अंश ग्रहण करने का चाव बढ़ता चला जाता है। आतुर होकर कबीर कह उठते हैं कि तुम्हारी शरण लेने पर भी तुमने किस प्रकार मुझे ग्रहण किया कि मुझ में विरह की ज्वाला और भभक उठी है। धूप (सांसारिक दु:ख-कष्टों) से झुलसा हुआ प्राणी वृक्ष (प्रभु) की छाया में शान्ति के लिए आता है, लेकिन यदि तरुवर से भी ज्वाला निकले तो कोई कहाँ जाये? जलते हुए जंगल (संसार) से भाग कर जल (प्रेमाभक्ति) की शीतलता के इच्छुक को यदि जल में भी (प्रभु विरह की) अग्नि से दग्ध होना पड़े, तब तो कोई दूसरा उपाय नहीं। हे तारण-तरण देव,

---

११२—क० ग्रं० (गुप्त) पद २।२६।१-२
११३—क० ग्रं० (गुप्त) पद ४।५।७-८
११४—वि० प० ९१।८
११५—वि० प० २७६।१०
११६—क० वा० ३,११।३
११७—कवि० ७।७९।५
११८—वि० प० २७०।६
११९—वि० प० १०४।१-८

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मैं और किसी दूसरे को नहीं मानता, तुम्हारी शरण आया हूँ (तुम्हीं मुझे अपना कर कृतार्थ करो) यह पूरा पद अत्यन्त मार्मिक है :

गोव्यंदे तुम्हथे दरपों भारी ।
सरणाई आयो, क्यूं गहिये, यहु कौन बात तुम्हारी ।। टेक ।।
धूप दाझते छांह तकाई, मति तरवर सचु पाऊँ ।
तरवर मांहे ज्वाला निकसे, तो क्या लेह बुझाऊँ ।।
जे बन जले त जल कौ धावे, मत जल सीतल होई ।
जल ही मांही अग्नि जो निकसे, और न दूजा कोई ।।
तारण तिरण, तिरण तू तारण और न दूजा जानूं ।
कहै कबीर सरनाई आयो, आन देव नहीं मानूं ।।[१२०]

तुलसीदास ने भी **बारक कहिये कृपालु। तुलसिदास मेरो**[१२१] जैसी विनम्र प्रार्थना तथा **सील सिंधु ढील तुलसी की बार भई है**[१२२], जैसे शिष्ट उलाहनों से काम बनता न देख कर प्रभु के द्वार पर धरना देकर मचला बन कर प्रभु से प्रकट नहीं तो मन में ही अपनाये जाने का बाल हठ किया है :

प्रन करि हौं हठि आजु तें राम द्वार परयो हों ।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौं न जनम भरि प्रभु की सौं करि निबरयो हों ।
दै दै धक्का जम भट थके, टारे न टरयो हों ।
उदर दुसह सांसति सही, बहु बार जनमि जग, नरक निदरि निकरयो हों ।
हों मचला लै छांड़िहों जेहि लागि अरयो हों ।
तुम दयालु बनिहै दिए बलि, बिलंब न कीजिए जात गलानि गरयो हों ।
प्रगट कहत जो सकुचिए, अपराध भरयो हों ।
तो मन में अपनाइए तुलसिहिं कृपा करि, कलि बिलोकि हहरयो हों ।[१२३]

कबीर और तुलसी दोनों को प्रभु-विरह की मर्मन्तुद वेदना के कारण मृत्यु आसन्न लगती है, इसीलिए दोनों का आर्त आग्रह है कि प्रभु अब शीघ्र दर्शन दो। कबीर की विकल विरहिणी की कातर उक्ति है : **बिरहिन ऊठे भी पड़े, दरसन कारनि राम। मूवां पीछे देहुगे, सो दरसन किहि काम।**[१२४] इसी तरह तुलसी की विरह विह्वल प्रार्थना है, **कृपा सिंधु, सुजान, रघुबर, प्रनत-आरति-हरन । दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ।**[१२५]

१२०—क० ग्रं० (गुप्त) पद १।१११
१२१—वि० प० ७८।१२
१२२—वही १८०-१८
१२३—विनय प० २६७
१२४—क० वा० ३,३।७
१२५—वि० प० २१८।९-१०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह ठीक है कि कान्ता भाव के उपासक कबीर जहाँ अपने प्रियतम से 'एकमेक' होकर प्रेम कीड़ा करना चाहते हैं, वहाँ दास्य भाव के साधक तुलसी प्रभु की क्रीड़ा के उपकरण ' ' 'सेवक बन कर ही सन्तुष्ट हैं। दोनों का अधिकार अलग-अलग है। कबीर की मान भरी बिनती है, **बाल्हा आव हमारे ग्रेह रे। तुम्ह बिन दुखिया देह रे। सब को कहे तुम्हारी नारी मो को इहै अंदेह रे। एक मेक ह्वै सेज न सोवे तब लग कैसा नेह रे।**[126] प्रभु-प्रिया का मनोराज्य है कबीर के शब्दों में, **वै दिन कब आवेंगे भाइ। जा कारनि हम देह धरी है मिलिबो अगि लगाइ।। हौं जानूं जे हिलमिल खेलूं तन मन प्रान समाइ। या कामना करो परपूरन समरथ हौ राम राइ।**[127] मर्यादावादी तुलसीदास अपने जी की बात प्रभु को बताते हुए उनसे यही चाहते हैं, **सो कीजै, जेहि भांति छांड़ि छल द्वार परो गुन गावों**[128] यदि वे प्रभु की लीला के क्षुद्र सहचर-अनुचर बन सकें, तो वे कृतकृत्य हो जायेंगे। तुलसी जैसे विनम्र सेवक की लालसा यही हो सकती है, **खेलिबेको खग, मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहि हौं। यहि नाते नरकहँ सचु पैहों, या बिनु परम पदहुँ दुख दहिहौं।**[129]

धन्य भाग्य थे कबीर-तुलसी के, दोनों की कामना प्रभु ने पूर्ण की थी। कबीर के घर राजा राम पति के रूप में पधारे, अविनाशी तुरुष से विवाह[130] के बाद कृतज्ञ और उत्फुल्ल कबीर ने इसका सारा श्रेय श्री राम को देते हुए कहा, **हमहिं कहा, यहु तुमहि बड़ाई। कहे कबीर मैं कछू न कीन्हां। सखी सुहाग राम मोहि दीन्हा।**[131] प्रियतम के मन से मन मिला देने के बाद सुख सागर को प्राप्मे कर कबीर अमर हो गये, उनकी सीधी घोषणा है, **हरि मरिहैं तो हमहुँ मरिहैं। हरि न मरें हम काहे कुं मरिहैं। कहे कबीर मन मनहि मिलावा। अमर भये सुख सागर पावा।**[132] प्रेमाद्वैत की स्थिति में पहुँच कर कबीर को लगता है **अब मन रामहिं ह्वै रहा, सीस नवावों काहि।**[133]

तुलसी की प्रार्थना सुनकर उन्हें कर्म के कठिन बन्धन से **आरत-अनाथ-नाथ कौसल पाल कृपाल** ने छुड़ा कर अपना लिया था, **सो तुलसी कियो आपनो रघुबीर**

१२६—क० ग्रं० (गुप्त) पद ५।८।१-४
१२७—वही पद ५।७।१-४
१२८—वि० प० २३२।८
१२९—वही २३१।५-६
१३०— क० ग्रं० (गुप्त) पद १-१
१३१—वही पद १।२।५-६
१३२—क० ग्रं० (गुप्त) पद १।४३।५-६
१३३—क० वा० ३, २।८

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गरीब निवाज ।[१३४] उन्होंने गद्‌गद स्वर में स्वीकारा कि यद्यपि तीनों लोकों और तीनों कालों में तुलसी के सदृश कोई कुटिल और मंदमति खल-तिलक नहीं हुआ तथापि प्रभु ने करुणा के वशवर्ती हो, **नाम की कानि पहिचानि जन आपनो ग्रसत कलि व्याल राखो सरन सोऊ ।**[१३५] तुलसी की विनयपत्रिका पर प्रभु की स्वीकृति सूचक सही पड़ी तो अनाथ तुलसी की सब भांति बात बन गयी, **मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ सही है ।**[१३६] श्री राम की शक्ति से शक्तिमान् होकर तुलसीदास ने कलिकाल तक को फटकार कर कह दिया कि मुझे तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है, मैं राम का सेवक हूँ, यह समझ कर ही मुझ पर जोर-जबर्दस्ती करने की बात सोचना, परिणाम में तुम्हें ही पछताना होगा, मैं तुमसे नहीं डरूँगा, **मोको न लेनो न देनो कछु कलि, भूलि न रावरी और चितै हों । जानि के जोर करो परिनाम तुम्हे पछितैहौ पै मैं न भितै हों ।**[१३७] जो प्रभु एक बार प्रणाम करने पर अपने भक्त को सब प्राणियों से अभय कर देते हैं, उन्हीं का सेवक कह सकता है, **तुलसिदास रघुबीर-बाहुबल सदा अभय काहू न डरै ।**[१३८]

केवल साधना के क्षेत्र में नहीं, जगत्-व्यवहार के क्षेत्र में भी कबीर-तुलसी की दृष्टि बहुत मिलती-जुलती है । दोनों जगत् की बाहरी चमक-दमक से प्रभावित नहीं होते । दोनों को लगता है कि राम को भूल कर इस जगत् के प्रति अनुरक्त होना अपने वास्तविक लक्ष्य से भटकना है । कबीर **काजर केरी कोठड़ी तैसा यह संसार**[१३९] मान कर सबको सचेत करते हैं कि इसमें प्रवेश कर वही निष्कलंक रह सकता है, जो राम का आश्रित हो, **काजल केरी कोठरी, काजल ही का कोट । बलिहारी ता दास की जो रहे राम की ओट ।**[१४०] तुलसीदास भी इस संसार को कपट-आगार मानते हैं और हरि के बल पर ही इस निस्सार संसार से आबद्ध न होने का भरोसा रखते हैं, **मैं तोहिं अब जान्यो संसार । बाधि न सकहि मोहिं हरि के बल प्रगट कपट आगार । देखत ही कमनीय, कछु नाहिन पुनि किए बिचार । ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ निकसत सार ।**[१४१]

ऐसी मान्यता का परिणाम यही हो सकता था कि कबीर-तुलसी भौतिक दृष्टि से सफलता पर नहीं, पारमार्थिक दृष्टि से मानव जीवन की चरितार्थता पर बल

१३४—वि० प० ७६।७-९ तथा १९१।१८
१३५—वि० प० १०६।१२
१३६—वही २७९।६
१३७—कवितावली ७।१०२।२-३
१३८—वि० प० १३७।१२
१३९—क० वा० ३, २६।१८
१४०—वही २८।१२
१४१—वि० प० १८८।१-४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देते। मध्यकाल में भौतिक सफलता का चरमोत्कर्ष समृद्ध और शक्तिशाली राजा होना ही माना जाता था। कबीर-तुलसी दोनों ने भक्तिहीन राजा की तुलना में निःस्व भक्त के जीवन को श्रेष्ठ ठहराया है। कबीर की स्पष्टोक्ति है, **अर्ब खर्ब लों द्रव्य है, उदय अस्त लों राज। भक्ति महातम ना तुले ई सभ कौने काज।**[१४२] **है गे वाहन सघन धन, छत्र धुजा फहराइ। ता सुख तें भिख्या भली हरि सुमिरत दिन जाइ।**[१४३] तुलसीदास भी इसी मत के हैं, उनका प्रसिद्ध सवैया है—

राज सुरेस पचासक को बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए।
पूत सुपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरता रति को मद नाए।।
संपति सिद्धि सबै तुलसी, मन की मनसा चितवैं चित लाए।
जानकी जीवन जाने बिना जग ऐसेऊ जीव न जीव कहाए।।[१४४]

यह भी लक्षितव्य है कि विषयासक्तों के सांसारिक जीवन को धिक्कारने का अर्थ यह नहीं है कि कबीर-तुलसी जग-जीवन को सर्वथा निराशापूर्ण और दुःखमय मानते थे। उन दोनों ने इस बात पर बल दिया है कि मरने के बाद के स्वर्ग-वैकुंठ आदि के लोभ से नहीं, भक्तों का आनन्दमय जगजीवन भला लगने के कारण ये अपने जीवन को उसी प्रकार ढालना चाहते हैं। कबीर को इस जीवन का वही दिन श्रेष्ठ लगता है, जिस दिन उन्हें कोई सच्चा संत मिलता है, जिसका आलिंगन करने मात्र से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, **कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं। अंक भरे भरि भेंटिए, पाप सरीरो जाहि।**[१४५] राम का भक्त कबीर के मन को भाता है, क्योंकि वह आतुर नहीं होता, उसके मन में सत्य, सन्तोष और धैर्य होता है, उसे काम, क्रोध और तृष्णा नहीं जलाती, वह आनन्द से प्रफुल्लित हो गोविन्द का गुण गाता है; उसे परनिन्दा नहीं भाती, वह असत्य नहीं बोलता, वह काल की कल्पना को मिटाकर प्रभु के चरणों में चित्त लगता है, दुविधा छोड़कर वह सदा समदृष्टि और शीतल रहता है। कबीर का संत सम्बन्धी आदर्श इस पद में मूर्त हो उठा है—

राम भजे सो जाणिये, जाके आतुर नाहीं।
सम, संतोष लीये रहे, धीरज मन माहीं।।टेक।।
जन को काम क्रोध व्यापे नहीं, त्रिश्ना न जरावै।
प्रफुलित आनंद में गोव्यंद गुण गावै।।
जन को पर निंद्या भावे नहीं, अरु असति न भावे।
काल कलपना मेटि करि, चरनूं चित राखे।।

१४२—बीजक (शुक) दा २२८
१४३—क० वा० ३, ३०।४
१४४—कवि० ७।४५
१४५—क० वा० ३, २८।६

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जन सम द्रिष्टि शीतल सदा दुबिधा नहीं आने।
कहै कबीर ता दास सूं मेरा मन माने।।[१४६]

इन्हीं संतों की रहनी का अनुकरण करने के फलस्वरूप इसी दुःख दग्ध संसार में, इसी जगजीवन में कबीरदास को परमानन्दस्वरूप प्रभु मिले थे और उनका मन आनन्द से भर उठा था, कहे **कबीर मनि भया अनंद। जग जीवन मिलियौ परमानंद।**[१४७]

संत मिलन सम सुख जग नाहीं[१४८] मानने वाले तुलसीदास ने भी डंके की चोट पर कहा था, कौन जाने कौन नरक जायेगा, कौन स्वर्ग, कौन बैकुंठ, मरने के बाद क्या होगा, इसे कौन सोचता है, मुझे तो राम के सेवकों का इसी जग का जीवन बहुत अच्छा लगता है, **को जाने को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधाम को तुलसिंहि बहुत भलो लागत जगजीवन राम गुलाम को।**[१४९] राम की भक्ति और संतों की संगति ने उनके भवत्रास को नष्ट कर उन्हें यह बताया था कि यह अविचारित रमणीय संसार वास्तव में बहुत भयंकर है, किन्तु समता, सन्तोष, दया और विवेक से यह व्यवहार में सुखकारी हो जाता है :

अनबिचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम, संतोष, दया बिबेक तें व्यवहारी सुखकारी।।
तुलसिदास सब बिधि प्रपंच जग जदपि झूठ श्रुति गावे।
रघुपति भगति संत संगति बिनु को भवत्रास नसावे।।[१५०]

अतः तुलसीदास का स्वाभाविक मनोराज्य है। श्री राम की कृपा से संत स्वभाव को अपनाने का, जिसके पुण्य प्रभाव से वे यथालाभ सन्तुष्ट रहेंगे, किसी से कुछ नहीं मांगेंगे, निरन्तर परहित करेंगे, मन, कर्म, वाणी की एकता निभायेंगे, दुःसह कठोर वचन की आग से नहीं जलेंगे, अहंकार त्याग कर मन को सम और शीतल रखेंगे, दूसरों के गुण कहेंगे, दोष नहीं, देह की चिन्ता छोड़ कर समबुद्धि से सुख-दुख सहेंगे और इस पथ पर रह कर अविचल हरि भक्ति प्राप्त करेंगे :

कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत सुभाव गहौंगो।।
यथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।

१४६—क० ग्रं० (गुप्त) पद ९।२
१४७—वही ११।५।५
१४८—मानस ७।१२१।१३
१४९—वि० प० १५५।९-१०
१५०—वही १२१।७-१०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगतमान, सम सीतल मन, पर-गुन, नहिं दोष कहौंगो ।।
परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि भक्ति लहौंगो ।[१५१]

कबीर और तुलसी दोनों अनासक्त भाव से समाज में ही रहे थे, वनवासी नहीं हो गये थे । कबीर यदि उन लोगों में से थे, जिन्होंने घर और वन को समान कर लिया था **घर बन तत सम जिनि कीया**[१५२] तो तुलसी भी घर और बन के आकर्षण से हटकर **राम प्रेम पुर** के निवासी थे **तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेमपुर छाइ ।**[१५३] गुण अपने में और दोष दूसरों में बतानेवाली सांसारिक मानसिकता से भिन्न दोनों की धारणा थी कि गुण तो सब राम के हैं और दोष मेरे हैं, **करता केरे बहुत गुन, अवगुन कोई नांहि । जे दिल खोजों, आपनो सब औगुन मुझ मांहि**[१५४], यदि कबीर की साखी है, तो तुलसी का दोहा है, **निज दूषन, गुन राम के, समुझे तुलसीदास । होय भलो कलिकाल हू उभय लोक अनयास ।**[१५५] गुणकृत अहंकार से बचना और दुर्गुणकृत दोषों से जूझ कर उनसे मुक्त होना, इसी दृष्टि के द्वारा संभव है । कबीर और तुलसी दोनों उन धर्मशास्त्रियों से अलग हैं, जो छोटे-छोटे पापों के लिए भी बड़े-बड़े प्रायश्चित बताते रहते हैं । पाप न हों, इसके लिए भले भय प्रदर्शन कुछ लाभदायक हो, किन्तु पाप हो जाने के बाद उसका हौवा खड़ा करना साधक में कुंठाएँ भर कर उसे निराश करना ही है । कबीर-तुलसी राम की कृपालुता का भरोसा देकर बीती को बिसार कर आगे की सुधि लेने को कहते हैं, **कबीर भूलि बिगाड़ियां, (तू) ना करि भला चित्त । साहिब गरवा चाहिए नफर बिगाड़े नित्त ।**[१५६] अज्ञानवश दास से तो बात बिगड़ती ही है, पर गौरवशाली स्वामी उसे सुधार लेता है, अतः हताश मत हो । यही मत तुलसी का भी है, **बिगरी जनम अनेक की, सुधरे अबही आजु होहि रामको, नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाज ।**[१५७] यह विस्तारपूर्वक दिखाया जा सकता है कि कबीर और तुलसी दोनों ने यह आश्वासन दिया है कि श्रद्धा-विश्वासपूर्वक निष्कपट एवं अनन्य भाव से राम का भरोसा करने वालों का जीवन काम-क्रोध आदि विकारों तथा संशय, निराशा आदि निषेधक वृत्तियों के उत्पीड़न से मुक्त हो आनन्दमय हो जायेगा ।

१५१–वि० प० १७२
१५२–क० ग्रं० (गुप्त) पद ५।१।३
१५३–दोहा २५६
१५४–क० वा० ३, ५६।३
१५५–दोहा ७७
१५६–क० वा० ३, ५६।२
१५७–दोहा २२

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कबीर और तुलसी दोनों ने अपने समय के समाज में व्याप्त विषमता, अनाचार, अत्याचार और पाखंड का विरोध किया था। यह जरूर है कि कबीर का कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक एवं स्वर अधिक उग्र है। हिन्दू-मुसलमान दोनों समाजों की विकृतियों पर उन्होंने प्रहार किया था। जहाँ हिन्दुओं में व्याप्त छुआछूत, जातिभेद, वाममार्गी अतिचार आदि का उन्होंने खंडन किया था, वहीं मुसलमानों की हिंसा और हठवादिता की भर्त्सना की थी। तुलसीदास ने हिन्दू-मुसलमान का नाम नहीं लिया है। कबीर की ही तरह भक्ति का उनका सन्देश भी सार्वभौम है। इस क्षेत्र में उन्होंने भी जाति-पांति या छूआछूत को अस्वीकारा है, किन्तु समाज-संगठन की दृष्टि से वे वर्णाश्रम के उस उदाररूप का समर्थन करते हैं, जिसमें राम के प्रताप से विषमता नहीं रह गयी थी। गरीबों के प्रति कबीर तुलसी दोनों की अकृत्रिम सहानुभूति थी। दोनों खुद गरीबी के शिकार थे। यदि कबीर ने पीड़ा के साथ कहा है कि **निर्धन आदर कोई न देई**[१५८] तो तुलसी का अनुभव है कि **नहिं दरिद्र सम दुख जग माही**।[१५९] नारी के प्रति दोनों की उक्तियों को वास्तव में कामिनी या काम के प्रति मानना चाहिए। पुरुष साधक के रूप में काम का उद्रेक नारी के द्वारा होने के कारण काम के प्रति दोनों का रोष नारी पर ही उतरा है। इस क्षेत्र में कबीर तुलसी से कहीं अधिक कटु हैं। कबीर की एक बड़ी सीमा यह है कि वे समाज का समन्वित आदर्श रूप नहीं उभार पाये हैं, मुक्तकों के रूप में कथित उनकी विधायक उक्तियाँ प्रायः व्यक्ति परक हैं। तुलसी ने रामकथा के माध्यम से परिवार, समाज, राज्य की उज्ज्वल छवियाँ भी दी हैं। नारी के विविध रूपों को बड़ी सहृदयता और सहानुभूति के साथ अंकित किया है। रामराज्य की उनकी कल्पना भारतीय समाज का आदर्श है। मेरा विश्वास है कि कबीरदास भी यदि आदर्श समाज का विस्तृत रूप अंकित करते, तो वह तुलसी के रामराज्य से मिलता-जुलता होता। कबीर भी ऐसा ही समाज चाहते थे, जिसमें कोई दरिद्र, दुखी, दीन, अबुध और लक्षणहीन न हो, सब सुन्दर, नीरोग, गुणज्ञ, ज्ञानी और कृतज्ञ हों, सर्वोपरि **राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।**[१६०]

कबीर और तुलसी भक्तिरूपी एक ही मूल की दो शाखाएँ हैं। दोनों में निश्चय ही अपनी-अपनी विशिष्टताएँ हैं, जिन्हें कोई चाहे तो भिन्नताएँ कह ले, पर उनके आधार पर उनके मूलभूत साम्य को नकारना गहरी भ्रान्ति को प्रचारित करना है। कबीर की वाणी ऐसे लोगों को सचेत कर रही है **मूल गेह ते काम है, तें मत मर्म भुलाए।**[१६१]

१५८—क० ग्रं० (श्या) परिशिष्ट पद १३०।१
१५९—मानस ७।१२१।१३
१६०—वही ७।२१।४
१६१—क० बीजक (शुक) साखी दा ९०।१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संदर्भ-संकेत-सूची

कबीर वांङमय—खंड १ तथा खंड ३—सं० डा० जयदेव सिंह, डा० वासुदेव सिंह
क० वा० १, क० वा० ३

कबीर ग्रन्थावली—सं० डा० माताप्रसाद गुप्त—क० ग्रं० (गुप्त)
(पहली संख्या पदों के राग के क्रम की सूचिका है, दूसरी पद की, तीसरी पंक्ति की)।

कबीर बीजक—सं० डा० शुकदेव सिंह—बीजक (शु)

कबीर-ग्रन्थावली—सं० डा० श्यामसुन्दर दास—क० ग्रं० (श्या)

रामचरितमानस—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

तुलसी के अन्य ग्रन्थ—तुलसी ग्रन्थावली (खंड २), काशीनागरी प्रचारिणी सभा। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी-साहित्य में दुःख-बोध के विविध स्तर

जगन्नाथ सेठ

दुःख की दो भिन्न भूमिकाएँ हैं—पारमार्थिक और व्यावहारिक। व्यावहारिक पक्ष पर बाद में विचार किया जायेगा। पहले पारमार्थिक दृष्टि से देखें, तो जीव चैतन्यस्वरूप है। **सो तैं ताहिं तोहि नहिं भेदा** और दूसरी दृष्टि से वह **ईश्वर अंस है।** ब्रह्म से उसका **सहज सँघाती** का संबंध है, वह 'सुखरासी' है। फिर दुःख क्यों? मायाजन्य भ्रम के कारण। शरीर के सम्पर्क में आने पर चैतन्य को मोहवश अपने जीवत्व का भ्रम हो जाता है। भ्रम के कारण जिस प्रकार रज्जु में सर्प की, सीपी में चाँदी की, सूर्य की किरणों में पानी की और आँख में उँगली लगा कर देखने पर दो चन्द्रमाओं की प्रतीति होती है, उसी प्रकार देही बनकर जीव स्वयं को व्यक्तित्व-विशिष्ट और **सियाराममय सब जग** को अपने से भिन्न एक पदार्थ मानने लगता है। द्वैत-बुद्धि के कारण मनुष्य में 'मैं-मेरा' के साथ 'तू-तेरा' की भावना उत्पन्न होती है और वह दुःखों के भँवर में पड़ जाता है। द्वैत-बुद्धि ही अविद्या है, अज्ञान है, मोह है और **मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला**—मोह से ही सब मानस-रोग उत्पन्न होते हैं। मोह की सन्तानें काम, लोभ, क्रोध ही क्रमशः वात, कफ और पित्त हैं। विषय-मनोरथ, ममता-ईर्ष्या, हर्ष-विषाद, कुटिलता-दुष्टता, दंभ-अहंकार, कपट, मद, मान, मत्सर, तृष्णा, अविवेक, एषणाएँ आदि नाना प्रकार के असाध्य रोग ही हैं, जो जीव को निरन्तर कष्ट देते रहते हैं।

'विनय-पत्रिका' में तुलसीदास ने जीव के गर्भवास से लेकर जरावस्था तक दुःखों का विस्तार से वर्णन किया है। मोह के कारण जीव अपने आनन्दस्वरूप को भूलकर मरीचिकावत् जागतिक सुखों को सच मान कर्मों के बन्धन में बँधकर परवश हो जाता है और पुनः गर्भवास का दुःख भोगता है—**तैं निज कर्म-डोरि दृढ़ कीन्ही। अपने करनि गाँठि गहि दीन्ही।। तातें परबस परयो अभागे। ता फल गर्भवास दुख आगे।।** गर्भ में उसका सिर नीचे रहता है

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और पैर ऊपर। असह्य वेदना के कारण वह सिर धुनधुनकर रोता है, तो प्रभु कृपाकर उसे ज्ञान देते हैं जिससे पूर्व जन्मों का उसे स्मरण हो आता है और अपने कर्मों की ग्लानि से भर कर वह दारुण त्रिगुणात्मिका माया से बचने के लिए प्रभु की शरण में जाता है, संकल्प करता है कि **अब जग जाइ भजौं चक्रपानी,** लेकिन गर्भमुक्ति के समय की कष्टरूपी अग्नि में उसके पूर्वकाल के सब ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और अनुभव दग्ध हो जाते हैं; अपना संकल्प भी वह भूल जाता है। वह लौकिक कष्टों से व्याकुल हो उठता है, पर कुछ बोल नहीं पाता, कोई उसकी व्यथा को समझ नहीं पाता।

बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा कुमारावस्था के दुःसह कष्टों के बाद यौवन में कामिनी के प्रेम में पड़कर व्यक्ति विवेक शून्य हो अज्ञान और मद में धर्म की मर्यादा का भी उल्लंघन करता है। अतीत के दुःखों को तो भूल ही जाता है, भविष्य के कर्मफलरूप कष्टों को जानते हुए भी आँखें मूंद उन्हीं कर्मों को करता है, जिनके कारण उसे फिर गर्भ के भँवर में पड़कर संसार-चक्र में घूमना पड़ता है। कीड़े, राख और विष्ठा ही ठोस शरीर के परिणाम हैं, उसी शरीर के लिए व्यक्ति सारे संसार से वैर ठानता है। पर-स्त्री, पर-धन, पर-वैभव देखकर लोभवश वह उन्हें स्वायत्त करना चाहता है, और न मिलने पर उनसे द्रोह करता है। स्वप्न में भी वह नहीं सोचता कि यौवन क्षणिक है। लेकिन काल की गति वह रोक नहीं पाता। वृद्धावस्था में शरीर जीर्ण और इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, रोग सताते हैं, कुत्ते का-सा तिरस्कार होता है, फिर भी वैराग्य नहीं उपजता, तृष्णा नहीं मरती। श्रेष्ठ मनुष्य-योनि में एक ही जन्म की यातना जब इतनी विषम है, तब चारों योनियों में अनेक जन्मों के दुःसह कष्टों की तो कल्पना ही त्रासकारी है।

जीव के दुःख अज्ञानजन्य हैं, नित्य नहीं, अतः अज्ञान के नाश द्वारा दुःखमुक्ति संभव है। उसका सहज उपाय है भक्ति—**रघुपति भक्ति सुलभ सुखकारी। सो त्रयताप-सोक भयहारी।।** ज्ञान से भी अज्ञान की ग्रन्थि खुल सकती है, कैवल्य-प्राप्ति हो सकती है, पर वह मार्ग बड़ा कठिन है, और उसमें पद-पद पर गिरने का भय भी है। पर भक्ति के लिए केवल एक ही शर्त है—सत्संगति। राम के अनुग्रह से सत्संगति का सौभाग्य मिल गया, तो द्वैत-बुद्धि और समस्त पापों का नाश हो जाता है, राम के चरणों में प्रेम दृढ़ होता है, आत्मज्ञान एवं समभाव, शान्ति, सन्तोष कभी नष्ट नहीं होते। जितेन्द्रिय होकर व्यक्ति देह रहते हुए भी विदेह हो जाता है, एक रस होकर तीनों लोकों को पवित्र करता है।

यही गीता की 'ब्राह्मी स्थिति' है, 'स्थितप्रज्ञ' की भूमिका है। प्रश्न हो सकता है, दुःख का प्रयोजन क्या? आनन्दस्वरूप जीव को माया की प्रेरणा से मोहग्रस्त कर प्रभु ने दुःखचक्र में क्यों डाल दिया? और डाल ही दिया तो फिर कुछ जीवों को कृपाकोर से आत्मस्वरूप का ज्ञान कराने की क्या आवश्यकता?

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसके दो उत्तर हैं। एक तो यह कि सब कुछ केवल लीला है; भगवान अपने अंशों के साथ लीला किया करते हैं। कभी अपने भक्तों को लीला (माया) से बाँधकर नचाते हैं और उनके साथ खुद भी नाचते हैं, कभी लीला (भक्ति) से उनके बन्धन खोल देते हैं—

देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी।।
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही।।

दूसरा यह कि दुःख ही सच्चे सुख का प्रकाशक है। जो आतप से अत्यन्त व्याकुल हो जाता है, वही तरुछाया की शीतलता के सुख को समझ सकता है—**जो अति आतप ब्याकुल होई। तरुछाया सुख जानइ सोई।।** जिसका हृदय मोह दुःख से कभी क्षुब्ध अशान्त हुआ ही नहीं, वह आनन्दरूपा शान्ति का मर्म क्या जानेगा? द्रौपदी ने भी सत्यभामा को यही उपदेश दिया था—'को सुख सुखेनेह न जातु लभ्यं दुःखेन साध्वी लभते सुखानि।'

पारमार्थिक दृष्टि से जगत् और जागतिक व्यवहार मिथ्या हैं, स्वयं दुःख और दुःखानुभूति भी मिथ्या हैं, किन्तु यह विराट् मिथ्यात्व साधारण लोकबुद्धि की समझ में नहीं आता। किसी दुःखद मृत्यु से कभी-कभी जीवन की निःसारता का आभास होता अवश्य है, पर क्षणभर के लिए; मनुष्य फिर काल-प्रवाह में बहने लगता है। अतः लोक-संग्रह की दृष्टि से तुलसीदास व्यावहारिक जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त स्वयं जिसने दुःख की विभीषिका झेली हो, परमार्थ से परिचित होने के बाद भी दैहिक वेदना से जो व्याकुल हो उठा हो, वह दुःख के व्यावहारिक पक्ष के प्रति उदासीन कैसे रह सकता था? तुलसीदास ने व्यक्ति और समाज, दोनों के स्तर पर दुःख की व्यावहारिक भूमिका पर भी विचार किया है; उन्होंने भी व्याकुल होकर प्रश्न किया है, **जौं जग मृषा तापत्रय अनुभव होहिं कहहु केहि लेखे**—संसार के दुःख यदि मिथ्या ही हैं तो तीनों तापों का अनुभव क्यों होता है? यह प्रश्न भले ही ज्ञानी की भूमिका से नहीं, दुःखग्रस्त व्यक्ति या परदुःखकातर सन्त की भूमिका से किया गया हो, इतना तो स्पष्ट करता ही है कि तुलसीदास व्यावहारिक दुःखों को भी नकारते नहीं, उनके प्रति भी उदासीन नहीं हैं।

तुलसीदास की दृष्टि में मनुष्य के दुःख का प्रधान हेतु है **काल कर्म सुभाव गुन** का बन्धन चक्र। काल सबको व्यापता है—**काल सदा दुरतिक्रम भारी।** शीत-उष्णादि दुःख का वह कारण है। वही युगधर्म है। शुभाशुभ एवं सात्त्विक राजस, तामस कर्मों के अनुसार स्वभाव बनता है और स्वभाव के अनुसार कर्म होते हैं। व्याधिजन्य दुःख कर्मों के ही परिणाम हैं। सत्त्व, रज और तम, इन गुणों का कर्मों पर प्रभाव पड़ता है; मानापमानादि का दुःख इन्हीं के कारण होता है। जन्म-जरा-मरण के दुःख का हेतु भी यह बन्धन-चक्र ही है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाप-कर्म से दुःखों की एक शृंखला बन जाती है—**करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग।** भगवान व्यास के अनुसार पाप का लक्षण है पापाय परपीड़नं —किसी भी रूप में दूसरों का उत्पीड़न पाप है। तुलसी इसे अधमता कहते हैं—**परपीड़ा सम नहिं अधमाई।** हिंसाजन्य पाप की तो कोई सीमा ही नहीं। लेकिन कलि का युग-धर्म ही ऐसा है कि मनुष्य पापसागर में मीन की तरह निमग्न रहता है—**कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना।।**

दुःख का सर्वाधिक स्थूल रूप है दरिद्रता। व्यावहारिक दृष्टि से यह लोक में सबसे बड़ा दुःख है—**नहिं दरिद्र सम दुख जग माही।** यह भौतिक अस्तित्व को ही संकट में डालकर गुणराशि को नष्ट कर देता है। इसकी तुलना में सूक्ष्मतर और भावात्मक दुःख जैसे जाति-अपमान, दुष्ट-संगति दूसरे के दुःख से उत्पन्न दुःख आदि भी तुलसी ने संकेतित किये हैं।

तुलसीदास की दुःखानुभूति बहुत गहरी थी। जन्म से जरा तक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के दुःखों की परम्परा झेली थी। उनका जन्म ही अभिशप्त था। पैदा होने के कुछ ही क्षणों के बाद माता-पिता ने उन्हें त्याग दिया। आश्रयहीन, न जाने कैसे पले होंगे वे। कोई सिर पर हाथ रखनेवाला नहीं, अतः पेट की आग बुझाने के लिए भीख माँगने के सिवा उनके पास और कोई चारा न था। **असन-बसनहीन विषम बिषादलीन** होकर वे द्वार-द्वार भटकते रहे, पेट बजाते रहे, जूठन को तरसते रहे। कहीं चार दाने चने मिल जाते, तो ऐसे कृतकृत्य होते जैसे कुबेर का धन मिल गया हो, जैसे चारों पुरुषार्थ मिल गये हों—**जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।** भीख बड़ी मुश्किल से मिलती थी। हा-हा खाकर वे लोगों के आगे गिड़गिड़ाते, मुँह बाते, अपने को दया का उपयुक्त पात्र बनाने के लिए दीनता से गल जाते, फिर भी किसी को उनपर तरस नहीं आता था—**हा हा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार, परी न छार मुंह बायो।** स्वयं दुःख भी कातर हो उठता था उन्हें देखकर—**फिरयो ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहि हेरे।** हीनता, दुःख और दैन्य की भटकती हुई कैसी करुण मूर्त्ति बन गये होंगे वे! तिरस्कार, अपमान और लाछन की कैसी व्यथामयी मलिन छाया मँडराती रहती होगी उन पर! ये ही संस्कार तो उनके कोमल सुकुमार बचपन को मिले थे जीवन और समाज से! इसीलिए राम की शरण में जाने के बाद भी वे पेट की ज्वाला को सबसे बड़ा अभिशाप समझते रहे—**आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की।**

तुलसीदास ने अपने बचपन को किसी तरह झेल तो लिया, पर आश्रमहीनता की टीस को वे कभी भूल नहीं पाये। 'कवितावली' की सीधी-सादी उक्ति **मातु पिता जग जाय तज्यो** में 'विनयपत्रिका' के अन्त तक आते-आते जैसे दंश का आभास

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मिलता है, **तनु-जनेउ कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हू**--दुष्ट सर्प जैसे अपने ही शरीर से उत्पन्न केंचुल को त्याग देता है, उसी तरह माता-पिता ने भी मुझे त्याग दिया। लेकिन इसके लिए वे किसी को दोष नहीं देते, किसी पर क्रोध नहीं करते। लोग यदि उनकी छाया से भी दूर रहना चाहते हैं, तो इसे वे अपना ही दुर्भाग्य मानकर सन्तोष कर लेते हैं--**काहे को रोस, दोस काहि धौं, मेरे हीं अभाग मोसो सकुचत छुइ छाहू।**

तुलसी का बाल-हृदय स्नेह के लिए भी तरसता ही रह गया। यौवन में हृदय के प्रेम को आलम्बन मिला, तो वह उभड़ पड़ा। प्रेम की अतिशयता में कुछ समय के लिए तुलसीदास सब कुछ भूल गये। उन्हें लगा, जैसे दुनिया में सब कुछ उतना पराया नहीं, कहीं कुछ अपना भी है, किन्तु हृदय का यह आधार अधिक समय तक न रहा। उसमें फिर विषादमयी रिक्तता छा गयी।

तुलसीदास को अपने समाज से बहुत कटुता मिली थी। अपने निराश्रित बचपन के कारण और सामाजिक संकीर्णताओं को त्यागने के फलस्वरूप उन्हें समाज के तिरस्कार और अपमान का क्षोभ झेलना पड़ा था। उन पर लांछन कितना प्रबल रहा होगा, इसका अनुमान तो उनके उत्तर की ध्वनि से ही लगाया जा सकता है। दृप्त स्वर में वे घोषित करते हैं--

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगारौं न सोऊ ।।
'तुलसी' सरनाम गुलाम है रामको, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ ।।

चाहे कोई मुझे धूर्त्त कहे, चाहे भिखमंगा, क्षत्रिय कहे या जुलाहा, मुझे परवा नहीं। किसी की बेटी से अपना बेटा तो मुझे ब्याहना नहीं। मेरे सम्पर्क से लोगों की जाति बिगड़ती है, तो मुझे किसी से सम्पर्क भी नहीं रखना। मैं तो राम का दास हूँ। मांग कर खाना और देवालय में सो जाना, बस यही मेरा काम है। किसी से मुझे क्या प्रयोजन? भला हूँ चाहे बुरा, किसी के द्वार पर तो पड़ा नहीं हूँ। मूर्ख यह कहावत भी नहीं समझते कि सेवक भी स्वामी के गोत्र का ही होता है--

अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग,
'साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को।'
साधु कै असाधु कै भली कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परो? जो हौं सो हौं राम को ।।

राम का सेवक होने के इस अभिमान में रूढ़ संकीर्णताओं से मिली प्रखर पीड़ा ही मुखर हुई है। किन्तु यह पीड़ा ही तुलसीदास के लिए वरदान बन गयी। इससे टूटने-बिखरने के बदले वे राम के और निकट हो गये, इससे ऊपर उठ गये।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ईश्वर की कल्पना पितृ-मनोग्रन्थि का परिणाम है। दुर्बल हृदय सदा संरक्षण चाहता है, और व्यावहारिक जगत् में यह कामना पूरी न होने पर वह ईश्वर के संरक्षण के लिए आकुल होता है। इस धारणा में संकेतित ईश्वर की सत्ता की अस्वीकृति से सहमत होना किसी भी आस्तिक के लिए संभव नहीं, फिर भी तुलसीदास के संबंध में इतना तो सच है कि जन्म के साथ ही माता-पिता के संरक्षण से वंचित होकर बचपन भर संरक्षण के अभाव की कसक झेलने के कारण संरक्षण के लिए ही वे राम की शरण में गये थे। उनकी स्वीकारोक्ति है—

दुखित देखि संतन कह्यो सोचै जनि मन माहू।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न,
सरन गये रघुबर ओर-निबाहू।।
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति प्रतीति बिनाहू।

राम की शरण में जाने के बाद तुलसीदास के दुःख का स्वरूप ही बदल जाता है। अबतक जो दुःख बाह्योपायसाध्य था, वही अब अन्तरोपायसाध्य आर्त्ति बन जाता है। आर्त्ति अब भी है, दारिद्र्य-दुःख अब भी है, किन्तु सन्दर्भ बदल गये हैं। दरिद्रता अब असन-वसन के अभाव के कारण नहीं, सांसारिक इच्छाओं से मुक्त न हो पाने की विवशता के कारण है—**मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तो न हर्‌यो।** अब भी तुलसीदास दाता के द्वार पर टकटकी लगाये एक कौर के लिए, एक ग्रास भोजन के लिए गिड़गिड़ाते हैं—

द्वार हौं भोर ही को आज।
रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज।।

किन्तु अब यह द्वार किसी धनवान का नहीं, स्वयं भगवान राम का है; उनकी कामना अब अन्न का ग्रास पाने की नहीं, भगवान की कृपा-दृष्टि पाने की है, उनकी भक्ति पाने की है। राम की महिमा से परिचित हो जाने के बाद अब देवी-देवता भी उनके लिए महत्त्वहीन हो गये हैं। वे समझ गये हैं कि **देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबर्‌यो।** अतः यदि दीन ही बनना है, तो उसीके आगे दीन क्यों न बनें, जिससे स्वार्थ और परमार्थ दोनों सुधर सकते हैं—

स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर।।

अब शारीरिक कष्ट होने पर भी तुलसीदास उसे आराध्य के आगे ही निवेदित करते हैं। असह्य बाहुपीड़ा से व्याकुल होने पर बार-बार हनुमान, राम और शंकर से प्रार्थना करते हैं; लेकिन पीड़ा दूर नहीं होती, तो इसे पूर्वकर्मों का दण्ड समझ मौन हो जाते हैं और अपनी मूक वेदना भी आराध्य को ही निवेदित कर देते हैं—**हौं हूँ रहों मौन ही बयो सो जानि लुनिये।**

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास की दृष्टि में आदर्श 'रहनि' उस समत्वबुद्धिसम्पन्न सन्त की ही है, जिसके हृदय में निश्चल भक्ति और सन्तोष है, और दैहिक चिन्ताओं से मुक्त होकर जो मन, कर्म, वचन से सदा परहित में निरत रहता है। स्वयं को वे इस कसौटी पर कसते हैं, तो अपने भीतर उन्हें दोष ही दोष दिखायी देते हैं। वे सोचते हैं, राम का नाम भुनाकर स्वार्थसिद्धि करने के अतिरिक्त आज तक उन्होंने और किया ही क्या है? उनका मन तो विषयों का दास है, कभी स्थिर रह ही नहीं पाता। कितने संकल्प-विकल्प उठते हैं उसमें। राम प्रेम की दीप्ति कभी झलकती भी है, तो क्षणभर के लिए। पुनः आसुरी वृत्तियाँ घिर आती हैं; काम, क्रोध, लोभ, मोह मनको मथने लगते हैं; काल, कर्म, स्वभाव, गुण अपने चक्र में घुमाने लगते हैं। कितने विवश, असहाय हैं वे इन शक्तियों के आगे। लगता है, जैसे ग्राह के मुंह में पड़ गये हों। इस अन्तर्दर्शन से वे त्रस्त होकर राम के आगे रक्षा की पुकार करते हैं **छोरिबे को महाराज, बाँधिबे को कोटि भट, पाहि! प्रभु पाहि! तिहुँ ताप पाप दह्यो हौं।**

बन्धनों में बाँधने के लिए तो सारा संसार है, संसार की सब शक्तियाँ सन्नद्ध हैं, किन्तु उनसे मुक्त करनेवाले तो एकमात्र प्रभु ही हैं। लेकिन कितना मूढ़ है मन; सब कुछ जानते हुए भी विषयों की प्रबल आसक्ति से अज्ञान बन जाता है, कीचड़ से कीचड़ धोना चाहता है, कर्म-जाल में फँस कर कर्मों से मुक्त होना चाहता है—

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम भगति सुरसरिता आस करत ओसकन की।
. . . .
करमकीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो।।

तुलसी का मन ग्लानि से भर जाता है। उन्हें लगता है कि उनकी स्थिति उस अज्ञानी भूखे कुत्ते की-सी है, जो पुरानी सूखी हड्डी चबाते हुए अपने ही मुँह से निकले खून को पीकर सन्तुष्ट होता है। उन्हें भी तो उस विषय-भोग में ही सन्तोष मिलता है, जो उनकी शक्ति और सच्चे सुख के क्षय का कारण है—

देखत बिपति विषय न तजत हौं ताते अधिक अजान्यो।।
अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकर्‌यो।
निज तालूगत रुधिरपान करि मन संतोष धर्‌यो।।

श्रेष्ठ मनुष्य-योनि पाकर भी अधम कुत्ते का-सा आचरण! कितना जीवन बीत गया इसी तरह, लेकिन मनको सन्तोष नहीं हुआ, विराग नहीं हुआ, उसमें भक्ति नहीं आयी। राम के नाम का जप भी तो उन्होंने हृदय से नहीं, केवल मुख से ही किया। तीनों तापों से तपे हुए तुलसी, जिन्हें जीवन में कभी सुख का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लेश नहीं मिला, अपनी इस दुर्दशा के लिए किसी दूसरे को दोषी नहीं ठहराते ; अपने व्यर्थ जीवन को ढोने की मर्मन्तुद वेदना से आर्त्त होकर मृत्यु की ही प्रतीक्षा करते हुए कह उठते हैं––**कियो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू, मरिबोइ रहो है।**

फिर भी प्रभु-कृपा की लालसा कम नहीं होती। तुलसीदास आकुल होकर बार-बार तरह-तरह से प्रार्थना करते ही रहते हैं। कभी राम का 'स्नेह', उनकी 'चखकोर' पाने के लिए व्यग्र हो उठते हैं, कभी 'भक्ति-सुरसरि-नीर-मीनता' के लिए। प्रभु के दर्शन के लिए तो वे तरस-तरस जाते हैं––**दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन।** उनके मन में 'लालसा' है राम के सान्निध्य की, चाहे वह किसी भी रूप में मिले। राम उन्हें अपना दास बना लें, नहीं तो अपने खेलने का पक्षी, पशु या वृक्ष ही बना दें। आराध्य के निकट रहने पर उनकी पिपासा तृप्त होती रहेगी। तब तो उन्हें नरक में भी सुख मिलेगा, नहीं तो मोक्ष भी दुःखदग्ध करता रहेगा––

खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं।
यहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं, या बिनु परमपदहुँ दुख दहिहौं।।

लेकिन दुर्भाग्य, राम से प्रेम का या और कोई संबंध ही नहीं जुड़ पाता। उनके जितना निकट जाना चाहते हैं, उतना ही दूर होते जाते हैं––**ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यों त्यों दूरि पर्‍यो हौं।** यह दूरी, आराध्य का वियोग, उनकी शरणागति से वंचित रहने की विवशता ही भक्त का सबसे बड़ा दुःख है, और यह दुःख भक्तों के लिए काम्य है। यह नारद-भक्तिसूत्र में वर्णित भक्ति की एकादश आसक्तियों में सर्वश्रेष्ठ परम विरहासक्ति का दुःख है। भक्ति के दो पक्ष हैं––मिलन की तीव्र पिपासा और तृप्ति। भगवत्साक्षात्कार की तृप्ति विरह की तीव्रता से ही संभव है, इसलिए भक्त विरह को निरन्तर बढ़ाना चाहता है, इसी में भक्ति की मर्यादा है––**प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटें घटैगी आनि।** भक्तों का जीवन इस पिपासा-दुःख से धन्य हो जाता है। आध्यात्मिक स्तर पर दुखी केवल भक्त ही नहीं होता, भगवान भी दुखी होते हैं भक्त के विरह-दुःख से––**जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत विरह दुख दुखी सुजाना।।**

भगवद्विरह के दुःख के कारण तुलसी का जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से कितना समृद्ध हुआ था, इसकी झलक 'विनयपत्रिका' में मिलती है। 'मानस' में भी भक्त पात्रों में यह आर्त्ति बार-बार प्रतिफलित हुआ है। सुतीक्ष्ण के हृदय से राम अपना 'भूप रूप' हटा लेते हैं, तो क्षणभर के वियोग से ही सुतीक्ष्ण मणिहीन सर्प की तरह व्याकुल हो उठते हैं––**बिकल हीन मनि फनिबर जैसे।** भरत राम के वियोग से 'आरत' हो जाते हैं। सीता दुःसह विरह को और अधिक न झेल सकने के कारण देह का ही त्याग करना चाहती हैं––**तजौं देह करु बेगि उपाई।**

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई। क्षणभर के लिए उनकी बिरहाकुल स्थिति को हनुमान ने देखा था। उन्हें वह एक क्षण ही एक कल्प-सा दुःखद प्रतीत हुआ—**सो छन कपिहि कलप सम बीता।** भगवद्विरहजन्य दुःख की यह अनुभूति भक्ति की अत्यन्त उदात्त भूमिका है।

तुलसीदास की दुःखानुभूति केवल **वैयक्तिक दुःख** तक ही सीमित नहीं, सामाजिक दुःख भी उनके संवेदनशील हृदय को व्यथित करता है। उन्होंने केवल वैयक्तिक दुःखभोग का ही चित्रण नहीं किया, अपने समय की सामाजिक दुर्दशा की विभीषिका को भी कलि-वर्णन के रूप में अंकित किया है। सब मर्यादाएँ लुप्त हो गयी हैं, नैतिकता का अर्थ खो गया है, आस्था-विश्वास डिग गये हैं। आत्मिक विकास में बाधक काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि मनुष्य की सद्-वृत्तियों पर हावी हैं; उन्हीं की प्रेरणा से सब आचरण होते हैं। मनुष्यता मर गयी है। चारों ओर प्रवंचना और घोर पाखण्ड। अन्याय और अत्याचार। समाज विरोधी तत्त्वों का आतंक। विधि-व्यवस्था का नाम नहीं। केवल निरंकुश उच्छृंखलता। समाज जर्जर है। कसाई जैसे युगधर्म (कलि) के हाथों में पड़कर कामधनु-सी पृथ्वी व्याकुल और वन्ध्या हो गयी है।

उस समय की गरीबी और चारों ओर फैली बेकारी तुलसीदास के मर्म को छू लेती है। संत्रासकारी युगस्थिति का उन्होंने बड़ा करुण और सजीव चित्र खींचा है—

खेती न किसान को भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान, सोचबस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई, का करी?"

खेत उजड़ा हुआ, व्यापार चौपट, कहीं कोई नौकरी नहीं। भिखारी को भीख कौन दे? किसान, व्यापारी, नौकरीपेशा लोग करें तो क्या करें? दुःख-निराशामय वर्त्तमान और अंधकार से घिरा अनिश्चित भविष्य! इस विषम स्थिति से समाज का उद्धार करने के लिए समाज की ओर से तुलसीदास राम से विनती करते हैं। जिसे अपने वैयक्तिक दुःख निवेदित किये, उसी के आगे समाज के दुःख भी रख देते हैं। काशी की महामारी के समय भी व्यग्र होकर संकट-मोचन के लिए कभी शिव से, कभी पार्वती से, कभी हनुमान और कभी राम से प्रार्थना करते हैं। एक के बाद दूसरे आराध्य की करुणा को अविलम्ब जगाने की ऐसी आकुलता परदुःखकातर संत-हृदय में ही होती है। यह हृदय सामाजिक दुःख के कारणस्वरूप अन्याय-उत्पीड़न से भी क्षुब्ध हो जाता है और तुलसीदास भविष्यवाणी करते हैं कि 'दसकंध' और 'कुरुराज' की तरह उत्पीड़नकारी राजाओं का सर्वनाश हो जायेगा।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास समाज की विषम स्थिति को अपरिवर्तनीय नहीं मानते, यथा-स्थिति को स्वीकार नहीं करते। दुःख-मुक्ति के लिए वे एक ओर समाज में, दूसरी ओर व्यक्ति के मन में राम-राज्य की स्थापना की प्रेरणा देते हैं। समाज में उनकी रामराज्य की कल्पना तो प्रसिद्ध है ही ; व्यक्ति के मन में भी रामराज्य हो, इसके संकेत उन्होंने कई स्थल पर दिये हैं। स्वयं अपने हृदय में वे राम के नाम पर एक ऐसा ग्राम बसाना चाहते हैं, जिसमें भक्ति, विवेक, वैराग्य आदि का ही निवास होगा—

मैं तुम्हरो लै नाम ग्राम इक उर आपने बसावौं।
भजन बिबेक बिराग लोग भले करम करम करि ल्यावौं ।।

किन्तु वर्त्तमान की जटिल विषमता से आदर्श की उदात्त भूमि तक की यात्रा मनुष्य के सामाजिक और वैयक्तिक अभ्युत्थान की प्रक्रिया, बहुत लम्बी है। इस बीच परिवेश और परिस्थितियों के दबाव-तनाव से व्यक्ति को टूटने से बचाने के लिए, जीवन को जीने योग्य बनाने के लिए तुलसीदास व्यावहारिक उपाय भी बतलाते हैं—

अनविचार रमनीय सदा संसार भयंकर भारी।
सम संतोष दया बिबेक तें व्यवहारी सुखकारी ।।

दुःख-सुख, मानापमान को यदि व्यक्ति समान रूप से स्वीकार कर ले, सन्तोष और विवेक से काम ले, तो मन का उद्वेग शान्त हो जायेगा। भूतदया, परहित से लोक के दुःख में वह अपने दुःख को भूल जायेगा—**कबहुँ कि दुख सबकर हित ताकें।** इससे दुःख के हेतुओं का नाश भले न हो, पर दुःख का अभिमान अवश्य मिट सकता है, व्यक्ति के लिए जगत् व्यावहारिक रूप से सुखकारी हो सकता है यद्यपि दुःख का वास्तविक उन्मूलन तो अपने स्वरूप को पहचान कर और भक्ति में तन्मय होकर ही किया जा सकता है।

तुलसीदास की मान्यता है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से जीव आनन्दस्वरूप है। देही बनकर मोह के कारण वह आत्मस्वरूप को भूलकर स्वयं को व्यक्तित्व-विशिष्ट और जगत् को अपने से भिन्न एक पदार्थ मानकर जागतिक दुःख-सुख को सच समझने लगता है, यद्यपि पारमार्थिक दृष्टि से हैं ये मिथ्या ही। दुःख अज्ञानजन्य होने के कारण दुःखमुक्ति के लिए अज्ञान का नाश आवश्यक है। इसका सहज उपाय है भक्ति ; भक्ति सत्संगति से और सत्संगति प्रभु-कृपा से ही मिलती है। प्रभु-कृपा होने पर व्यक्ति अपने में समभाव, शान्ति, सन्तोष, जितेन्द्रियता आदि गुणों का विकास कर विदेह होकर आत्म-स्वरूप को पहचान लेता है।

तुलसीदास ने व्यावहारिक दृष्टि से भी दुःख के हेतुओं तथा उसके रूपों पर विचार किया है। त्रिविध वैयक्तिक एवं सामाजिक दुःखों की गहरी अनुभूति के आधार पर उनका निर्णय है कि परहित और भक्ति ही दुःख-मुक्ति के प्रधान साधन हैं। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास का ज्ञान-भक्ति-निरूपण

डॉ० रामप्रीत उपाध्याय

महाकवि तुलसीदास ने अपने 'मानस' में और अन्य ग्रन्थों में ज्ञान और भक्ति का सम्यक् निरूपण किया है और दोनों की पारस्परिक भिन्नता और अभिन्नता को स्पष्ट किया है। वे भक्त होने के साथ ही साथ शास्त्रज्ञ भी थे। उनका रामचरितमानस एक प्रकार से सभी शास्त्रों का सार तत्व ही है। वेद, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रन्थ आदि शास्त्रों के सार तत्त्वों को उन्होंने अपने ग्रन्थों में अपने ढंग से निरूपित किया है और उन्हें मांगलिक बनाने का सफल प्रयास किया है। **नानापुराण निगमागम** की उक्ति इसी वैशिष्ट्य को रेखांकित करती है। फलतः उन्होंने अपने ग्रन्थों में संदर्भानुसार ज्ञान और भक्ति का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है।

भगवत्प्राप्ति के अनेकानेक साधनों में ज्ञान और भक्ति दोनों का विशिष्ट स्थान है। सजग साधक ज्ञान के माध्यम से और सहज साधक भक्ति के माध्यम से भगवान को प्राप्त करना चाहता है। ज्ञानी व्यक्ति ईश्वर सान्निध्य के साथ ही साथ मुक्ति की कामना करता है और भक्त मुक्ति की उपेक्षा करते हुए आजन्म राम-चरण-अनुराग की लालसा रखता है। महाकवि तुलसीदास ने दोनों की महत्ता प्रतिपादित की है, पर अन्ततोगत्वा उन्होंने ज्ञानपंथ से भक्तिपंथ को सहज और श्रेयस्कर बतलाया है तथा अपने मत के समर्थन में अनेक समीचीन तर्कों को प्रस्तुत किया है। 'मानस' का सप्तम सोपान इसका प्रमाण है। गोस्वामी जी ने स्पष्टरूपेण यह संकेत दे दिया है कि यद्यपि ज्ञान का पथ श्रेष्ठ और उत्तम है, पर वह सबके लिए सुलभ न होने के कारण दुष्कर है। सचमुच में ज्ञान का पंथ बड़ा ही दुष्कर होता है। ज्ञानी साधक इस दुष्कर मार्ग को तय करके ही **सोऽहमस्मि** की स्थिति में पहुंचता है। परन्तु इसके लिए भी सेव्य-सेवक भाव की अपेक्षा है। वह इस परम भाव का परित्याग करके इस दिव्य स्थिति को प्राप्त

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हीं नहीं कर सकता। तुलसीदासजी ने स्पष्ट ही लिख दिया है कि--**सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।**

आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इन दोनों पंथों पर विचार करते हुए 'तुलसी की साधना' में लिखा है कि "भक्ति की साधना सरल और ज्ञान की साधना कठिन है। ज्ञान की साधना में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ हैं, परन्तु एक कठिनाई यह भी है कि उसकी सर्वोच्चिता पर पहुंचकर भी ज्ञानी का पतन जगत् के प्रति राग के कारण हो सकता है।"

दूसरी बात यह है कि ज्ञानी जिस मुक्ति के लिए आकाश-पाताल एक करता है, उस मुक्ति को भक्त सहज ही, अनायास ही, प्राप्त कर लेता है। मोक्ष जबरन उसके पास चला आता है। भक्त को इसके लिए कोई अलग से साधना नहीं करनी पड़ती। राम के प्रति उसकी जो अनन्यता है, वही इसका कारण बनती है। वह तो केवल राम का प्रेम चाहता है।

आ० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि साध्य की एकता से भक्ति और ज्ञान दोनों एक ही हैं; क्योंकि दोनों भागवत् प्राप्ति के साधन हैं और दोनों सांसारिक भवबाधाओं को दूर करते हैं। ठीक यही बात गरुड़ को समझाते हुए काकभुशुण्डि कहते हैं--**भगतिहि ज्ञानहि नहि कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।** पर दोनों में कुछ मौलिक अंतर है। भक्त ज्ञानी साधक की तरह मोक्ष नहीं चाहता, वह तो भगवान का शाश्वत सान्निध्य चाहता है। गोस्वामी तुलसी दास ने मानस में सप्तम सोपान में ज्ञान और भक्ति के निरूपण एवं पूर्ण विवृति के लिए एक अच्छा रूपक बांधा है। उन्होंने ज्ञान के प्रतीक गरुड़ और भक्ति के प्रतीक काकभुशुण्डि के बीच इस सम्बन्ध में अच्छी चर्चा करवायी है। और काकभुशुण्डि के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया है कि भक्ति ज्ञान से बढ़कर है और इसके माध्यम से भक्त भगवान को सहज ही प्राप्त कर लेता है। कागभुशुण्डि भक्ति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति जान-बूझकर भक्ति का पथ छोड़कर के केवल वाह्य ज्ञान के लिए श्रम करते हैं, वे मूर्ख हैं। भला यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है कि घर में आयी कामधेनु को छोड़कर व्यक्ति दूध के लिए मदार खोजता फिरे। वे पुनः खगेश को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि जो लोग भगवान की भक्ति छोड़कर किसी दूसरे उपाय से सुख पाने के फेर में पड़े रहते हैं, वे ऐसे मूर्ख और जड़ हैं कि बिना जहाज के ही तैरकर महासागर पार कर लेना चाहते हैं। काकभुशुण्डि की बातें सुनकर गरुड़देव एक प्रश्न और पूछते हैं। वे कहते हैं कि संत, मुनि, वेद और पुराण सब यही कहते हैं कि ज्ञान के समान दुर्लभ और कुछ भी नहीं है। अतः आप ज्ञान और भक्ति का अंतर स्पष्ट करें और मुझे बतावें कि भक्ति ज्ञान से किस प्रकार बढ़कर है! काकभुशुण्डि गरुड़ की बातें सुनकर कहते हैं कि भक्ति और ज्ञान में कुछ विशेष भेद नहीं है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दोनों ही साधक के सांसारिक कष्टों को दूर करते हैं। फिर भी मुनियों की दृष्टि में कुछ भेद है। प्रथम तो ज्ञान पुरुष वर्ग में आता है और भक्ति नारी वर्ग में आती है। माया भी नारी है। अतः वह ज्ञानी पुरुष को अपने आकर्षणों में शीघ्र ही फँसा लेती है और उसे भगवद् पथ से विमुख करा देती है। उसकी सारी साधना रागों के मायाजाल में पड़कर व्यर्थ हो जाती है। लेकिन माया भक्ति का (भक्त का) कुछ भी बिगाड़ नहीं पाती। कारण, दोनों नारी वर्ग के हैं। एक नारी दूसरी नारी को मोहित नहीं कर पाती। अतः भक्ति के आराधक जो भक्त हैं, वे माया से घबड़ाते नहीं हैं। वे माया को जीतकर भगवान को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं। केवल विरले ही ज्ञानी पुरुष माया की उपेक्षा कर पाते हैं और अन्ततोगत्वा मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। इस तरह भगवत् प्राप्ति में भक्ति का पंथ ज्ञान पंथ की तुलना में अधिक सहायक और उपयोगी होता है।

एक दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि ज्ञान का विषय समझना भी कठिन है। उसको परखना और उसकी साधना करना तो और भी दुष्कर है। और वह अगर संयोगवश प्राप्त भी हो जाय तो उसे संभाल कर रख पाना कठिन हो जाता है। अतः ज्ञानी को मोक्ष प्राप्त करना बड़ा महंगा पड़ता है। लेकिन जो राम के अनन्य भक्त हैं, उन्हें यह मोक्ष अनायास ही प्राप्त हो जाता है। इसीलिए भक्ति का पथ ज्ञान-पथ से श्रेयस्कर माना गया है।

तीसरी बात यह है कि ज्ञान के पंथ को कृपाण की धार कहा गया है, जिसपर चलना मुश्किल होता है। साधक को गिरने का भय हमेशा बना रहता है। जबकि भक्ति का पथ राजपथ की तरह चौड़ा और सहज होता है और उस पर कोई भी चल सकता है। इसके लिए केवल हृदय की मुक्तावस्था की अपेक्षा होती है।

चौथी बात यह है कि सेवक सेव्य-भाव के बिना इस भवसागर को पार नहीं किया जा सकता। यह सिद्धान्त दोनों प्रकार के भक्तों के लिए अपेक्षित है। इसी सिद्धान्त के अनुसार भक्त भगवान को अपना सेव्य समझता है और दिनरात उसकी सेवा में लगा रहता है। वह सब समय उसकी आराधना में लगा रहता है। उसमें किसी प्रकार का अहंभाव नहीं आता। वह अपने प्रभु को ही अपना सब कुछ समझता है। लेकिन ज्ञानी भक्त में यह भाव शीघ्रता से नहीं आता। वह **सोऽहमस्मि** की स्थिति में पहुंचने के कारण अपने को ही ब्रह्म का पर्याय मान बैठता है। परिणाम यह होता है कि वह अहं का शिकार बन जाता है और कैवल्य पद को भी खो बैठता है। इसीलिए कहा गया है कि अगर भगवान को पाना हो तो उसकी भक्ति करो। व्यर्थ की ज्ञान की बातों में मत पड़ो।

पांचवीं बात यह है कि राम की भक्ति एक ऐसी सुन्दर चिन्तामणि है कि वह

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिसके हृदय में रहती है, वहाँ दिनरात प्रकाश रहता है। यह एक प्रकार का अमर प्रकाश है, जो किसी भी झंझावात में बुझता नहीं है। जो भक्त इसे एक बार प्राप्त कर लेता है, उसे किसी अन्य प्रकार के प्रकाश की अपेक्षा नहीं होती। वह इस प्रकाश के माध्यम से अपनी सारी तामसी वृत्तियों पर विजय प्राप्त कर लेता है और अपने इष्टदेव की साधना और अर्चना में निमग्न हो जाता है। इस पथ पर चलकर वह केवल भगवान को ही प्राप्त नहीं करता, अपितु वह भगवान-मय हो जाता है। लेकिन ज्ञानी पुरुष में इस प्रकार के प्रकाश की कमी रहती है। उसका ज्ञान तो दीपक की तरह होता है, जो हवा के झोंके लगते ही शीघ्र बुझ जाता है। नतीजा यह होता है कि वह सांसारिक तमोवृत्ति में उलझ जाता है और भगवान का सान्निध्य भी नहीं प्राप्त कर पाता। इसीलिए भक्ति ज्ञान से बढ़कर बतायी गयी है।

कागभुशुण्डि की इन बातों को सुनकर गरुड़देव मंत्रमुग्ध हो उठते हैं। ज्ञान के प्रति जो उनके सारे मोह थे, वे दूर हो जाते हैं और वे संकल्प करते हैं कि अब से भक्तिपथ का ही अनुसरण करेंगे। कारण भक्ति का पथ सुन्दर और सहज है।

सारांश यह कि ज्ञान और भक्ति दोनों ईश्वर-प्राप्ति के साधन हैं। ज्ञानी ज्ञान के माध्यम से और भक्त अपनी भक्ति के माध्यम से भगवान को प्राप्त करता है। लेकिन भक्ति का पथ ज्ञानपथ से श्रेयस्कर इसीलिए माना जाता है कि वह सीधा, सरल और सरस होता है। इस पथ का पथिक अहंकार और माया के आकर्षणों से दूर रहता है। वह भगवान में पूर्ण आस्था और श्रद्धा रखता है। वह भगवान का अनन्य भक्त होता है।

तुलसीदास भगवान श्रीराम के अनन्य भक्त थे। उन्होंने भक्ति की दृष्टि से ही मानवीय समस्यायों को सुलझाने का प्रयास किया है। अतः उनकी रचनाओं में भक्ति के विविध रूपों और सिद्धान्तों को ढूँढ़ना श्रेयस्कर है। किन्तु जो लोग गूढ़ ज्ञान के सिद्धान्तों को उनकी रचनाओं में पाने की चेष्टा करते हैं, वे वास्तव में व्यर्थ का ही प्रयास करते हैं। तुलसीदास साम्प्रदायिक दृष्टि से रामानुजाचार्य के अनुयायी थे। उन्होंने उन्हीं के सिद्धान्तों का पालन किया है और अपने स्वयंसिद्ध अनुभवों के आधार पर उसे पल्लवित किया है। वे कुछ विषयों के अद्वैत तत्त्व को स्वीकारते हुए भी माया की महिमा को स्वीकारते हैं और यहीं वे विशिष्टाद्वैतवाद का आभास देते हैं—

ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन, अमल, सहज, सुखरासी।
सो मायाबस भयउ गोसाईं। बंधेउ कीर मरकट की नाईं॥

इस विषय पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—"शुद्ध ब्रह्म स्वगत, सजातीय और विजातीय तीनों भेदों से रहित है। किसी वस्तु का अंश उसका 'स्वगत' भेद है। अतः जीव को ब्रह्म का अंश कहना (ब्रह्म ही न

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहना) अद्वैतमत के अनुकूल न होकर रामानुज के विशिष्टाद्वैत के अनुकूल है, जिसके अनुसार चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर एक ही है। चित् (जीव) और अचित् (जगत) दोनों ईश्वर के अंग या शरीर हैं। ईश्वर शरीर के इस सूक्ष्म चित् और सूक्ष्म अचित् से ही स्थूल चित् और स्थूल अचित् अर्थात् अनेक जीवों और जगत की उत्पत्ति हुई है। इससे यह लक्षित होता है कि परमार्थ दृष्टि से, शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से तो अद्वैतमत गोस्वामी जी को मान्य है, पर भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार भेद करके चलना वे अच्छा समझते हैं। कागभुशुण्डि और गरुड़-संवाद के संदर्भ में गोस्वामी जी ने इस पर अच्छा प्रकाश डाला है—

माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी।।
परबस जीव, स्वबस भगवंता। जीव अनेक, एक श्रीकंता।।

तुलसीदास इस भेद दृष्टि को मायाकृत मानते हैं और अंत में कहते हैं कि यह भेदभाव प्रभु कृपा से ही छूटता है—**मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।।** इसीलिए आचार्य शुक्ल बल देकर कहते हैं कि **व्याप्य व्यापक** की यह एकत्व भावना भी विशिष्टाद्वैत के अधिक अनुकूल जान पड़ती है—

जो कुछ बात बनाइ कहौं, तुलसी तुममें, तुमहूँ उर माहीं।
जानकी जीवन जानत हौं हमहैं तुम्हरे, तुममें सब नाहीं।।

तात्पर्य यह कि तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में विशिष्टाद्वैत का ही अत्यधिक प्रतिपादन किया है और इसके ब्याज से भक्ति की महिमा का गुणगान किया है।

यद्यपि महाकवि तुलसीदास ने भक्ति की तुलना में ज्ञान को कठिन और दुष्कर बताया है, किन्तु भक्ति भी उतनी सहज नहीं है। इसके लिए भी भक्त को अभ्यास, एकाग्रता और वैराग्य की आवश्यकता पड़ती है। चंचल मन को **विरमित** करने के लिए ये ही सर्वोत्तम साधन हैं। इसके उपरान्त भक्त को अपने आराध्य में रमना पड़ता है। उसे अपने समस्त राग को अनुराग में परिणत करके अपने प्रभु के चरणों में अर्पित करना पड़ता है। शांडिल्य सूत्र में यह कहा भी गया है कि **सातु परानुरक्तिरीश्वरे** अर्थात भक्ति ईश्वर में परम अनुराग को कहते हैं। जिस भक्त को इन मोड़ों से गुजरना पड़े, उसकी साधना-यात्रा को सहज कैसे कहा जा सकता है। संभवतः यही कारण है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने विनयपत्रिका में भक्ति की कठिनता की ओर संकेत किया है—

रघुपति भक्ति करत कठिनाई।
कहत सुगम, करनी अपार, जाने सोइ जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बलतें न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिला बिनु प्रयास ही पावै।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत-बियोगी।।
सोक, मोह, भय, हरख, दिवस, निसि, देस, काल तहँनाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निर्मूल न जाहीं।।

इस पद में तुलसीदास ने सफरी और पिपीलिका के माध्यम से रुचि, अभ्यास, एकाग्रता और वैराग्य के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला है तथा यह बतलाया है कि इनके कारण ही साधक को सफलता प्राप्त होती है। भक्त इन्ही वृत्तियों के माध्यम से अपनी साधना को पूर्ण करता है। अन्यथा भक्ति का पथ भी उतना आसान नहीं है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भक्ति के संदर्भ में अभ्यास और वैराग्य पर विचार करते हुए लिखा है कि "यहाँ तुलसीदास ने इन्हीं दो बातों को भक्ति साधना के संसर्ग में अपने ढंग से बताया है। वैराग्य विराग से बनता है। विराग के दो अर्थ होते हैं, एक तो राग से विगत, राग से रहित और दूसरे विशेष राग सहित। जगत के प्रति राग रहित होना और उपास्य के प्रति विशेष राग सहित होना, ये दोनों बातें भक्ति की साधना में रहती हैं। ज्ञान साधना-वाला जगत के प्रति राग रहित होकर यदि भगवान के प्रति विशेष राग सहित न हो तो उसके पतन की संभावना रहती है। भक्त जगत के प्रति विराग के साथ ही भगवान के प्रति विशेष राग से युक्त होने का प्रयास करता है।" इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैराग्य भक्त के लिए आवश्यक है। कारण, वह वैराग्य का अभ्यास कर अपने मन को पहले एकाग्र करता है और बाद में भग-वान के चरणों में अपने अनुराग को स्थिर कर लेता है। ऐसा करके वह भगवान का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है।

भारतीय साधना में भक्ति के पांच भाव स्वीकृत हैं---शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कान्त। साधक इनमें से किसी एक का आलम्बन ग्रहण कर अपने आराध्य को प्रसन्न करने की चेष्टा करता है। भक्त के लिए शांत भाव तो आवश्यक है ही, वह इसके माध्यम से दूसरे भावों को भी ग्रहण कर लेता है। तुलसीदास ने इनमें से अपनी भक्ति साधना के लिए दास्यभाव को श्रेष्ठ बतलाया है। उन्होंने मानस के द्वितीय सोपान में भरत चरित के माध्यम से इसी तथ्य की ओर संकेत किया है—

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव रस बिरति।।

यहाँ सीय राम पद प्रेमु दास्य भाव के प्रेम से ही सम्बन्ध रखता है। इस बात की पुनरावृत्ति वे मानस के सप्तम सोपान में भी करते हैं। दास्य भाव अथवा सेव्य-सेवक भाव एक ही हैं। इनमें कोई अंतर नहीं है—

B–12

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि।।

यहाँ भी राम पद पंकज इसी का संकेतक शब्द है। तुलसीदास ने रामचरितमानस के अन्तंगत इस दास्य भाव की भक्ति का बारम्बार वर्णन किया है और यह वर्णन सिद्ध करता है कि उन्हें दास्य भाव विशेष प्रिय है। उन्होंने विनय-पत्रिका में भी इसका वर्णन किया है। वे कहते हैं कि हे प्रभो, तुममें मुझमें अनेक प्रकार के सम्बन्ध हैं। किन्तु मुझे तो तुम्हारा दास होना ही सबसे अच्छा लगता है—

तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियें जो भावें।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन-सरन पावें।।"

राम के चरण में शरण पाने की आकुलता दास्य भाव की ही पुष्टि करती है!

महाकवि तुलसीदास ने एक सच्चे भक्त के लिए यह भी कहा है कि उसे राम प्रिय लगें और वह राम को प्रिय लगे। दोनों की प्रियता एक दूसरे में हो। इस रूप में ही भक्ति की साधना पूरी होती है। इस कसौटी पर जब हम राम-भक्तों को कसते हैं, तो वे खरे उतरते हैं। हनुमान राम के अनन्य सेवक हैं। उन्हें राम बड़े अच्छे लगते हैं और वे भी राम को बड़े अच्छे लगते हैं। जब जगत-जननी सीता को यह मालूम पड़ जाता है कि हनुमान राम प्रिय हैं, तो वे गदगद होकर उन्हें आशीर्वाद देती हैं—

आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बलसील निधाना।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।

तात्पर्य यह कि भक्त और भगवान दोनों एक दूसरे को प्रिय लगें, तभी भक्ति का सच्चा आनन्द है। स्वयं राम ने मानस में अनेक स्थानों पर अपनी हनुमान-प्रियता का परिचय दिया है। गोस्वामीजी ने अपने इस भाव को दोहावली में भी प्रस्तुत किया है—

कै तोहिं लागहिं राम प्रिय कै तू प्रभु प्रिय होहि।
दुइ महँ रुचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि।

तुलसीदास ने चातक की भक्ति को सर्वोपरि बतलाया है और इसके माध्यम से यह कहना चाहा है कि भक्त में चातक की तरह अनन्यता होनी चाहिये। जिस प्रकार चातक स्वाति नक्षत्र की बूंदों के अतिरिक्त और किसी का जल ग्रहण नहीं करता; ठीक उसी प्रकार राम-भक्तों को भी चाहिए कि वे राम के चरणों में ही अनुरक्त रहें। वे किसी भी प्रकार से बहुदेववाद के चक्कर में न पड़ें। वे राम को प्रिय हों और राम उन्हें प्रिय लगें, बस यही भक्ति की पराकाष्ठा है। तुलसीदास ने चातक के माध्यम से इस पर अच्छा प्रकाश डाला है—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास।।
चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ी भली, घटे घटैगी आनि।।
नहिं जाचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मांगनेहि को बारिद बिन देइ।।

तुलसीदास ने उपरोक्त दोहों में चातक की आशा, आस्था और अनन्यता पर प्रकाश डाला है। साथ ही उसकी प्रेम-पिपासा और अपरिग्रहता भी व्यंजित हुई है। वह अनन्य भाव का उपासक है। यही कारण है कि वह 'मानी' भी है। तुलसीदास का लक्ष्यार्थ यह है कि भक्त को भी चातकी वृत्ति अपनानी चाहिए; तभी वह राम का अनन्य उपासक हो सकता है और उसकी भक्ति-साधना सफल हो सकती है।

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में भक्ति के दो विशिष्ट रूपों पर भी प्रकाश डाला है। भक्ति के दो रूप हैं—भेद भक्ति और अभेद भक्ति। ज्ञान साधना वाले अभेद भक्ति करते हैं। जो ज्ञानी अद्वैतवादी भक्ति करेगा तो उसकी भक्ति अभेद भक्ति होगी। वह अपनी साधना के क्रम में **अहं ब्रह्मास्मि** की स्थिति में पहुंचता है। इस तरह वह अपने में और ब्रह्म में अभेदता कायम करने की चेष्टा करता है। वह केवल मोक्ष की कामना करता है। किन्तु जो भक्त हैं, वह भेद भक्ति करता है। वह ब्रह्ममय होने की अथवा ब्रह्म में लीन होने की चेष्टा नहीं करता। तुलसीदास ने लिखा भी है कि **ताते मुनि हरिलीन न भयऊ। प्रथमहि भेदभगति वर लयऊ।।** भगवान का जो सच्चा उपासक होता है, वह मोक्ष की कामना न करके प्रभु के सान्निध्य की चेष्टा करता है। राजा दशरथ और बालि ने भी भेद भक्ति की भावना की थी और उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ था। दशरथ के सम्बन्ध में निम्नलिखित चौपाई द्रष्टव्य है--

तातें उमा मोक्ष नहिं पायो। दसरथ भेदभगति मनु लायो।।
सगुनोपासन मोक्ष न लेहीं। तिन्ह कहुं राम भगति निज देही।।

बालि भी प्रभु से मोक्ष नहीं मांगता। बल्कि वह चाहता है कि संसार में बारबार जन्म हो और उसे हमेशा राम की भक्ति करने का अवसर मिलता रहे—

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मांगऊँ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्मबस तहँ रामपद अनुरागऊँ।।

तात्पर्य यह कि सगुणोपासक भक्त मोक्ष नहीं चाहता, बल्कि **जनम जनम रति रामपद** चाहता है। इस सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का विचार द्रष्टव्य है—"सगुणोपासक मोक्ष नहीं चाहते और उन्होंने जो मुक्ति की कल्पना कर रखी है; वह ऐसी कर रखी है, जिसमें उसे भगवत्ता नहीं प्राप्त होती।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भक्त की मुक्ति सालोक्य सानिध्य, सायुज्य, साधक और साष्टर्य होती है, अर्थात् भक्त भगवान के लोक में पहुंच सकता है, भगवान के निकट पहुंच सकता है भगवान से जुड़ सकता है। उनके अंग के आभूषणादि बन सकता है भगवान के ऐसा रूप प्राप्त कर सकता है और यहाँ तक कि भगवान के समान सृष्टि तक कर सकता है, पर भगवान नहीं हो सकता। इसीलिए भक्त यह प्रार्थना करता है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहऊँ निरबान।
जनम जनम रति रामपद येह वरदानु न आन।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भेद भक्ति अभेद भक्ति से बढ़कर है।

गोस्वामी तुलसीदास जी की धारणा है कि जिस प्रकार गंगा में यमुना और सरस्वती मिली हुई है; उसी प्रकार भक्ति में ज्ञान-साधना और कर्म साधना अन्तर्भुक्त है—

राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।।
बिधि निषेध मय कलिमल हरनी। करम कथा रवि नन्दिनी बरनी।

इसका आशय यह है कि गोस्वामी जी ने ज्ञान और कर्म की उपेक्षा नहीं की है अपितु इन्हें भक्ति का सहायक माना है। अगर ये दोनों भक्ति में मिलते हैं, तो ठीक है किन्तु अगर नहीं मिल पाते तो भी कोई हर्ज नहीं है। उन्होंने तो अपने भक्ति मार्ग में नाम जप को ही सर्वश्रेष्ठ माना है। विनय पत्रिका का निम्नलिखित पद इसी सत्य की दुहाई देता है—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम का नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो।।
करम, उपासन, ज्ञान, वेदमय सो सब भांति खरो।
मोंहि तो सावन के अन्धहिं ज्यों सूझत रंग हरो।।
चाटत रह्यो स्वान पातरिज्यों कबहुं न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि फरो।।
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो।।
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहं ताको काज सरो।
मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौं सिसु-अरनि अरो।।
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि-जीह गरो।
अपनो भलो राम नामहिं ते तुलसिहि समुझि परो।।

तात्पर्य यह कि गोस्वामी जी ने सभी साधनाओं में राम नाम जप साधना को ही सर्वोत्तम बताया है और लोगों को इस साधना की ओर प्रेरित किया है। 'विनयपत्रिका' में गोस्वामी जी ने ऐसे अनेक पदों की रचना की है और 'नाम-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साधना' पर बल दिया है। कारण, कलियुग में नाम-साधना का अपना एक विशिष्ट महत्व है।

तुलसी की भक्ति साधना रहस्यपूलक नहीं है। इसके लिए घर संसार को छोड़ना भी कोई आवश्यक नहीं है। व्यक्ति गार्हस्थ्य धर्म का निर्वाह करते हुए भी राम की साधना कर सकता है। जब आराध्य ही गृहस्थ हो तो फिर आराधक ही इस गृहस्थधर्म को क्यों छोड़े। आवश्यकता बस इसी की है कि वह सच्चे मन से सीधे मन से और पवित्र मन से अपने प्रभु का स्मरण करे। मन की इस शुद्धता को ही तुलसी मनः साधना की संज्ञा से संज्ञायित करते हैं। वे दोहावली में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं—

सूधे मन सूधे वचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुबर प्रेम प्रसूति।।

वे मन की शुद्धता पर ही बल देते हैं। उनकी यह मानस शुद्धता उनकी रचनाओं में सर्वत्र परिलक्षित होती है। अगर मन शुद्ध और पवित्र है, सहज और श्रद्धालु है, तो फिर राम के प्रति रति होने में कोई बाधा नहीं। अतः भक्त के लिए इस प्रकार की मनः साधना ही आवश्यक है। वे दोहावली में इसी सत्य का उद्घाटन करते हैं—

वेष विसद बोलनि मधुर मन कटु करम मलीन।
तुलसी राम न पाइये भए विषय जल मीन।।
बचन बेषतें जो बनै सो बिगरै परिनाम।
तुलसी मनतें जो बनै बनी बनाई राम।।

तुलसीदास एक लोक प्रतिनिधि कवि के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। उन्होंने भारतीय धर्म साधना को तथा उसके भक्त्यात्मक स्वरूपों को लोक मांगलिक बनाने का भरपूर प्रयास किया है। उन्होंने कवितावली में समकालीन स्थिति का जो चित्रण किया है; कलियुग का जो वीभत्स रूप प्रस्तुत किया है, वह केवल एक कवि अथवा भक्त की देन नहीं है; अपितु वह एक सच्चे लोक प्रतिनिधि साधक की तेजस्विता है। एक तरफ तो उन्होंने कलि के अत्याचार का वर्णन किया है और दूसरी ओर इसके निराकरण के लिए अपने प्रभु से प्रार्थना की है। कलियुग केवल तुलसी को ही नहीं अपितु समस्त भारतीय जनजीवन को सता रहा था। एक सच्चा भक्त कवि इसे मौन रहकर कैसे देख सकता था। अतः उसने भगवान के दरबार में त्राण के लिए गुहार लगायी और प्रभु ने उसकी बातें सुन लीं। उन्होंने कहा कि मुझे इसकी खोज खबर है। मैं सब ठीक कर दूंगा। इस विवरण से यह सिद्ध हो जाता है कि तुलसीदास एक सच्चे लोक प्रतिनिधि कवि के रूप में भी हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं और उनकी काव्य साधना अन्ततोगत्व धर्म-साधना के रूप में दिखलायी पड़ने लगती है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास का कथन है कि भक्ति साधना के अंतर्गत रामनाम सुमिरन से बढ़कर और कोई साधना हो ही नहीं सकती। वे तो यहाँ तक छूट देते हैं कि अगर कोई व्यक्ति वैर-भाव से भी राम को स्मरण करता है तो उसे अच्छी गति मिल जाती है। उसके जन्म जन्मान्तर के पाप धुल जाते हैं और वह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। रावण राम को वैरभाव से ही स्मरण करता था, किन्तु उसे भी अंत में सद्गति प्राप्त हो गयी। सारांश यह कि व्यक्ति को राम का भजन करना चाहिये; चाहे वह भक्ति मार्ग के पांच भावों के माध्यम से भजे अथवा वैरभाव से ही वह क्यों न राम का भजन करे। बस, व्यक्ति के मन में केवल भाव होना चाहिए। तुलसीदास की यह चौपाई **भाव कुभाव अनख आलस हूँ। रामनाम मंगल दिसि दसहूँ।।** इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है।

तुलसीदास की भक्ति-साधना सार्वजनीन और सार्वकालिक है। वह सर्वदेशीय भी है। कोई भी व्यक्ति, किसी भी देश का व्यक्ति, किसी भी समय रामनाम का जाप कर सकता है और अपने जीवन को साफल्य मंडित कर सकता है।

तुलसीदास की भक्ति साधना का एक मात्र लक्ष्य अविचलहरि-भक्ति को प्राप्त करना है। वे इसके लिए तमाम मानवीय वृत्तियों को अंगीकार करने के लिए आतुर हैं। वे मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों से राम भक्ति में निमग्न होने के लिए लालायित दिखलायी पड़ते हैं। विनयपत्रिका का प्रस्तुत पद उनके इसी भाव को रेखांकित करता है—

कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु कृपा ते संत-सुभाव गहौंगो।।
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम वचन नेम निबहौंगो।।
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, समसीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो।।
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि भगति लहौंगो।

प्रस्तुत पद में तुलसीदास की एकनिष्ठता और अनन्यता द्रष्टव्य है। वे राम की अविचल हरि-भक्ति पाने के लिए मान अपमान, दुख सुख तथा भवरोग को सहने के लिए कटिबद्ध हैं और यही भक्ति की चरमावस्था है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास ने विनय पत्रिका में एक सच्चे भक्त के विविध भावों का अंकन किया है। उन्होंने विनय की सात भूमिकाओं-दीनता, मानमर्षता भयदर्शना, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा का जो चित्रण किया है,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वे सब की सब एक राम भक्त की भावभूमियाँ हैं, जिसके मध्य से भक्त को राम-पथ की ओर गुजरना पड़ता है और भगवान का सानिध्य हासिल करना होता है।

गोस्वामी जी ने बारंबार कहा है कि जो भक्त राम को भजता है, उसके भय, शोक और त्रि-ताप दूर हो जाते हैं। राम की भक्ति सहज भक्तों के लिए अतिशय सुलभ है। उन्हें कहीं भी इधर उधर भटकने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने स्पष्टरूपेण लिखा है कि **रघुपति-भक्ति-सुलभ सुखकारी। सो त्रयताप-सोक भयहारी।** और रघुपति-भक्ति संत-संगति से प्राप्त होती है। जब भक्त संत संगति से, रामनाम के जाप से एक बार अपने इष्टदेव की भक्ति प्राप्त कर लेता है तो उसके सारे भवरोग और त्रास दूर हो जाते हैं। तुलसीदास का यह कथन **रघुपति-भक्ति संत संगति बिनु को भव-त्रास नसावै** इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। तात्पर्य यह कि तुलसीदास भगवान के परम अनन्य भक्त थे और उन्होंने अपने रामचरितमानस, कवितावली, दोहावली, और विनय-पत्रिका आदि ग्रन्थों में आनन्द की इसी चरम स्थिति का वर्णन किया है। परम वैष्णव होने के नाते उनके ग्रन्थों में भक्ति के ही विविध रूप परिलक्षित होते हैं। उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र ज्ञान, कर्म और उपासना के जो वर्णन मिलते हैं, वे भी भक्ति के सहायक तत्वों के रूप में ही निरुपित हुए हैं। अतः इन तत्त्वों को उनकी रचनाओं में खोजना समय नष्ट करना हैं। यही कारण है कि प्रस्तुत निबंध में ज्ञान और भक्ति का जो निरुपण किया गया है, वह केवल इतना ही जताने के लिए की तुलसीदास ज्ञान-पंथ को बुरा नहीं मानते। वे इसे केवल कठिन और दुष्कर बतलाते हैं तथा यह कहते हैं कि यह पंथ सर्वजन सुलभ नहीं हैं। सर्वजन सुलभ तो केवल भक्ति का पथ है जिस पर कोई भी व्यक्ति अथवा साधक प्रेम, आस्था और नाम-जाप को सम्बल लेकर चल सकता है और अपने जीवन को सार्थक कर सकता है। अतः यही कारण हैं कि इस निबंध में भक्ति तत्व का सम्यक प्रतिपादन किया गया है और इसके विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि महाकवि तुलसीदास अपने इष्टदेव राम के अनन्य भक्त, लोकमंगल के सजग प्रणेता और भक्ति साधना के सफल साधक हैं। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रामचरितमानस का बिम्ब विधान : शास्त्रीय विश्लेषण

डॉ० त्रिभुवननाथ शुक्ल

"रामचरितमानस" हिन्दी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं विश्वचर्चित महाकाव्य है। इस महाकाव्य के विभिन्न पक्षों पर १७५ शोधप्रबंध लिखे जा चुके हैं तथा सम्प्रति ५०० शोधछात्र कार्यरत हैं। यहाँ तक कि बिम्बविधान पर भी पृथक्रूप से शोधकार्य हुआ है, फिर भी रामचरितमानस के बिम्बों का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाया है। मैं इसका कारण शास्त्रीय वैज्ञानिक पद्धति का अभाव समझता हूँ। विवेच्य शोधलेख में बिम्बों को एक विशिष्ट सांचे के अन्तर्गत विश्लेषित किया जा रहा है।[१] विवेचन के पूर्व बिम्ब के स्वरूप और उसकी अध्ययन प्रक्रिया पर प्रकाश डालना आवश्यक होगा।

बिम्ब का स्वरूप और उसकी विश्लेषण-प्रक्रिया :

कवि जागतिक वस्तुओं का अनुव्याहरण करके जब रूपक, उपमादि के सहारे उनको एक नया रूप देता है, तब वही नया रूप ही 'बिम्ब' कहलाता है। इस प्रकार बिम्ब अमूर्तभावों को मूर्तित करने वाला काव्य का विधायक तत्व है। प्रत्येक कवि को अपने गूढ़ और सघन भावों को सम्प्रेषणीय बनाने के लिए बिम्ब का आश्रय लेना पड़ता है। इस प्रकार इसे काव्य का अनिवार्य एवं मूलतत्व भी कहा जा सकता है। इस अनिवार्यता से मानसकार का मानस संस्पर्शित होने से बच नहीं सका है। अतः रामचरितमानस में बिम्ब अपनी स्वरूपगत एवं गुणगत पूर्णता के साथ बिम्बित दृष्टिगत होता है। कवि ने बिम्बगत वस्तुओं को पूरे परिवेश में रखकर देखा है, आत्मसात् किया है। बिम्बविधान में गोस्वामीजी

१—द्रष्टव्य—लेखक का शीघ्र प्रकाश्यमान शोध प्रबंध 'रामचरितमानस के शब्दों का अर्थतात्त्विक अध्ययन'।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की सफलता का यही प्रमुख आधार है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में बिम्बों को व्यापक क्षेत्र में मूर्तित किया है। मानस के बिम्बों की संख्या अधिक होने के कारण उनका वर्गीकृत रूप में विस्तृत विवेचना किया गया है। इनको बिम्ब का उपवर्गीय स्वरूप, बिम्बसमूह एवं उदाहरण और विश्लेषण—इन तीन वर्गों में रख कर विवेचन किया गया है। उपवर्गीय समूह के अन्तर्गत बिम्ब के उपवर्गों को लिया गया है। प्रत्येक उपवर्ग में आनेवाले बिम्बों को बिम्बसमूह के अन्तर्गत रखा गया है। इन बिम्बसमूहों का विश्लेषण एव उदाहरण अंतिम वर्ग-उदाहरण और विश्लेषण के अन्तर्गत किया गया है।

बिम्ब का उपवर्गीय स्वरूप	बिम्ब समूह	उदाहरण और विश्लेषण
जलीय बिम्ब	ओला, ओस, झरना, गंगा, यमुना, मूसलाधार वर्षा, तालाब, सरोवर, समुद्र	जलीय बिम्बों में समुद्र और सरोवर ने कवि को अधिक आकृष्ट किया है। जहाँ पर अथाह ज्ञान, अनन्य प्रेम, अनन्त विपत्ति-वियोग और अनन्त रामचरित को विवेचित करना अभीष्ट रहा है, वहाँ पर समुद्र का ही प्रयोग किया है, यथा—— **गुर बिबेक सागर जगु जाना।** **जिन्हहिं बिस्व कर वदर समाना।।** २।१८२।१ **मो कहुँ तिलक साज सज सोऊ।** **भए बिधि बिभु बिमुख सब कोऊ।।** २।१८२।२ प्रेम की अनन्यता का उदाहरण—— **उर उमगेउ अबुधि अनुरागू।** **भएउ भूप मनु मनहुँ पयागू।।** **सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा।** **ता पर राम प्रेम सिसु सोहा।।** २।२८६।५।५
२. आकाशीय बिम्ब	सूर्य, चन्द, नक्षत्र, बिजली, बादल, पवन	रामचरितमानस में आकाशीय बिम्बों की संख्या सर्वाधिक है। आकाशीय बिम्बों में सूर्य का बिम्ब कवि को अधिक प्रिय है। महाकाव्य के गायक राम को गुणवैशिष्ट्य से-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बिम्ब का उप-वर्गीय स्वरूप	बिम्ब समूह	उदाहरण और विश्लेषण
		मण्डित करने के सन्दर्भ में सूर्य की विभुता, भास्वरता एवं अवस्थाओं के रूपों को कवि ने चित्रांकित किया है। राम नाम प्रताप का उदाहरण— **जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा ।** १।११६।४ सूर्यास्त के बिम्ब द्वारा कवि ने एक साथ नैराश्य और पतंग का अवबोध कराया है— **कौसल्या नृपु दीख मलाना।** **रविकुल रवि अथेयउ जिअ जाना ।।** २।१५४।३ चन्द्रमा भी कवि के बिम्बों का प्रिय विषय है। राम के लिए चन्द्रमा के तीन रूपों का उदा०— **कुंद इंदु पर गौर सरीरा।** १।१०६।६ **हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा** **सूचत किरन मनोहर हासा।** १।१९८।७ कवि ने मेघ का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में किया है, श्रीराम को नील मेघ के सदृश कहा है— **सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।** **मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम ।।** ३।८ बिजली के बिम्बों का प्रयोग कवि ने उसकी चंचलता, गतिमयता और शरीर की चमक के सन्दर्भ में किया है। राम की पीली धोती को बिजली के वर्ण-सी कहा है— **पीत पुनीत मनोहर धोती।** **हरति बाल रवि दामिनि जोती ।।** १।३२७।३-४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बिम्ब का उप-वर्गीय स्वरूप	बिम्ब समूह	उदाहरण और विश्लेषण
		बिजली के अन्य उदाहरण— **मंजुल मनिमय बंदनवारे।** **मनहुँ पाकरिपु चाप संवारे।** **प्रकटहिं दुरहिं अटन्हि पर भामिनि।** **चारु चपल जनु दमकहि दामिनि।** १।३४७।३-४ तुलसी के आकाशीय बिम्ब वैविध्यपूर्ण हैं। यही विविधता तुलसी के व्यापक अध्ययन का द्योतक है।
३. वनस्थलीय बिम्ब	फूल, पत्तियाँ, वृक्ष, लताएँ	कवि ने पुषपों में कमल को सर्वाधिक महत्व दिया है। राम के प्रत्येक अंग के लिए कमल का प्रयोग किया है। इतना ही नहीं राम स्वयं कमल के समकक्ष हो जाते हैं— **नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन वारिज नयन।** **करऊ सो मम उरधाम, सदा क्षीरसागर सयन।।** १।३ सोरठा और भी-- **नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर स्याम।** १।१४६ राम को नील कमल और लक्ष्मण को सुनहले कमल के रूप में— **सोभा सींव सुभग दोउ बीरा।** **नील पीत जलजात सरीरा।।** १।२३३।१ दुख की अवस्था में कमल का उदाहरण— **सोच बिकल बिवरन महि परेउ।** **मनहु कमल मूल परि हरेउ।।** २।३८।७ कल्पवेलि के उदाहरण— **कलप बेलि जिमि बहुबिधि लाली।** **सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।।** २।५९।३

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बिम्ब का उप-वर्गीय स्वरूप	बिम्ब समह	उदाहरण और विश्लेषण
४. पर्वतीय बिम्ब	पर्वत	पर्वतीय बिम्बों में मानसकार ने कुछ पर्वतों का ही वर्णन किया है। गोस्वामी जी ने जिन पर्वतों को लिया है, उनके आकार और ऊँचाई से प्रभावित दृष्टिगत होते हैं। युद्ध-रत कुम्भकरण को पर्वत के समान कहा गया है— **नाथ भूधराकार सरीरा।** **कुंभकरन आवत रनधीरा ।।** लंका० ६।६५।२ लक्ष्मण के स्वरूपगत वैशिष्ट्य को हिमगिरि इव बताते हुए कवि ने कहा है— **छतज नयन उर बाहु बिसाला।** **हिमगिरि निभतनु कछु एक लाला ।।** लंका० ६।५३।१ रामचरितमानस में पर्वतीय क्षेत्रों की न्यूनता के कारण पर्वतीय बिम्बों की संख्या अत्यल्प है। राम के वियोग में संतप्त कौशल्या को पाले से मारी गयी कल्पलता कहा गया है— **मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीरु दुखभारु।** **कनक कलप बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुसारु ।।** २।१५३ वनस्थलीय बिम्बों में फूलों की प्रफुल्लता और कोमलता ने कवि को बहुत आकर्षित किया है। ये सब कवि की सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण के द्योतक हैं।
५. समय और मौसमपरक बिम्ब	वर्षा, बसंत, हरियाली, पल्लवित वृक्ष	कवि ने इस वर्ग के बिम्बों में वर्षा और बसंत को विशेष रूप से चित्रित किया है। इन बिम्बों में कवि का अनुभूतिगत सत्य झलकता है। आकाश में बादलों की गर्जन, बिजली का चमकना, वर्षागमन—ये सब विरही की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बिम्ब का उप-वर्गीय स्वरूप	बिम्ब समूह	उदाहरण और विश्लेषण
		विरहाग्नि को दीपित करने के साधन हैं। वर्षाऋतु के आगमन पर सीता के विरह में श्रीराम की यही दशा होती है— **घन घमंड नभ गर्जत घोरा।** **प्रिया हीन डरपत मन मोरा।।** ४।१४।१ वर्षा के बाद शरदागमन की पारम्परिक स्वरूप विवृति को कवि ने सशक्त बिम्ब के माध्यम से चित्रित किया है— **बरषा बिगत सरद रितु आई।** **लछिमन देखहु परम सुहाई।।** **फूले कास सकल महि छाई।** **जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई।।** कि० ४।१६।१।२ हरितावनी, वर्षा, वीरबहूटी और पल्लवित वृक्षों से कवि का स्वाभाविक मनोराग दृष्टिगत होता है। समय और मौसम के बिम्ब पर्याप्त सुन्दर हैं।
६. पशु-पक्षी एवं जन्तुपरक बिम्ब	हाथी, शेर, मृग, गाय, कुत्ता, हंस, तोता, मयूर, खंजन, कोयल, बगुला, चकवा चकवी, चातक, चकोर, सर्प, मछली, भ्रमर, पतंग	कवि ने पशुओं के स्वाभाव, गुण, क्रियाकलापों को मानस में बिम्बित किया है। राम और लक्ष्मण को सिंह के रूप में— **सकुचि सीय तन नयन उघारे।** **सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे।।** बा० १।२३४।३ शेर और हाथी के पैर का बिम्ब— **जाइ दीख रघुबंसमनि नरपतिनिपट कुसाजु।** **सहमि परेउ लखि सिंघनिहि मनहुं बृद्धगजराजु।** अयो० २।३९

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बिम्ब का उप-वर्गीय स्वरूप	बिम्ब समूह	उदाहरण और विश्लेषण
		हाथी और राम की तुलना का बिम्ब— नव गयंदु, रघुवीर मनु राजु अलान समान। छूट जानि बन गमनु सुनि उर अनंदु अधिकान।। वा० १।५१ शान्तिविहिन हाथी वृद्ध राजा के लिए— जाइ देखि रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु। सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुं बृद्ध गजराजु।। २।३९
		गाय निरीह सीता को गाय के रूप में— अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेच्छबस कपिला गाई।। ३।२९।८ माता कौशल्या को गाय और राम को बछड़ा के रूप में— राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बन्धु जिमि धेनु लवाई।। २।१४६।३
		कुत्ता भारतीय काव्य परम्परानुसार तुलसी ने भी कुत्ता को नीच पशु के रूप में चित्रित किया है— खल परिहरिय स्वान की नाई।। ७।१०६।१५

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसी के मानस के पुनर्मूल्यांकन के कुछ किन्तु

डॉ० विद्यानिवास मिश्र

तुलसीदास और उनके कृतित्व का मूल्यांकन अब तक मुख्य रूप से पाँच दृष्टियों से किया जाता रहा। पहली दृष्टि तुलसी को जातीय जीवन से जोड़ती है और वह हिन्दू जाति में नया विश्वास जगाने के लिए संसारी राजाओं, महाराजाओं से बड़े राजा राम के प्रतिष्ठापक के रूप में देखे जाते हैं। इस दृष्टि को जातीय दृष्टि भी कहा जा सकता है और संकीर्ण रूप से धार्मिक दृष्टि भी कहा जा सकता है। परन्तु यह एकांगी एवं संकीर्ण दृष्टि है, क्योंकि तुलसीदास के उद्दिष्ट पाठक की परिधि न किसी जाति या धार्मिक समुदाय से बँधी हुई है, न कहीं उन्होंने हिन्दू धर्म की बात कही है, न कहीं उन्होंने इस्लाम के विरोध या हिन्दू-मुस्लिम एकता की कही है। वह बराबर एक भक्तिभाव की बात कहते हैं, जो सब धर्मों के ऊपर है और इसीलिए इस पहली दृष्टि से मूल्यांकन करने पर तुलसी के कृतित्व के साथ अपघात होने की निरंतर आशंका बनी रहती है।

दूसरी दृष्टि को लोक-संग्रह दृष्टि कह सकते हैं। यह दृष्टि तुलसीदास को लोकमंगल के लिए आदर्श प्रतिमान खड़ा करने वाले कवि के रूप में स्वीकार करती है और इसीलिए लोक-भाषा को ऊँची मर्यादा दिलाने वाले कल्पनाशील लोक-आन्दोलनकर्ता के रूप में भी स्वीकार करती है, पर यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या अवधी भाषा में रामचरितमानस लिखने का संकल्प साधारण जनता को राम के चरित्र से परिचय कराने के लिए है या इसका कोई महत्तर उद्देश्य भी है? अवधी काव्य-भाषा के रूप में तुलसीदास के पहले ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी और लोक-भाषाओं के माध्यम से राम का चरित्र लोक कंठ में उतर चुका था। तुलसीदास ने उस लोक-प्रचलित काव्य-रूपों को नया निखार देने की जरूर कोशिश की, पर वह इसके आविष्कारक नहीं। लोक-संग्रह या लोक-हित तुलसीदास का साध्य मूल्य नहीं। वह उनके साध्य मूल्य का सहज परिणाम है। अपने आप

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में परहित कितना भी ऊँचा मूल्य क्यों न हो, पर वह राम के भक्त जीवन में उतरने पर और पर के राममय होने पर ही वास्तविक मूल्यवत्ता प्राप्त करता है। इस प्रकार यह दृष्टि भी तुलसी के मूल्यांकन के लिए अपर्याप्त सिद्ध होती है।

तीसरी दृष्टि है मर्यादा-दृष्टि। दूसरे शब्दों में इसे समन्वय दृष्टि भी कह सकते हैं। यह दृष्टि तुलसीदास जी को अतिरेकों से बचने वाले मर्यादावादी समाज-उन्नयन के रूप में देखती है और इस पर विशेष बल देती है कि तुलसीदास का मुख्य उद्देश्य साम्प्रदायिक मतभेदों को दूर करना था। शैवों और वैष्णवों की परस्पर पूरक मर्यादा स्थापित करना उनका पूरा लक्ष्य था। पारिवारिक जीवन में सौमनस्य और संतुलन स्थापित करने के लिए आदर्श पितृ-प्रेम, मातृ-प्रेम, भातृ-प्रेम, पति-प्रेम, सन्तान-प्रेम जैसी पारिवारिक आत्मीयता की कोटियों को आकार देने के लिए उन्होंने रामचरितमानस के पात्रों का नवनिर्माण किया। वह राम को दलित-उद्धारक के रूप में प्रस्तुत करके सामाजिक संतुलन के लिए एक दिशा देते हैं। उनका राम-राज्य एक संतुलित और आदर्श राज्य-व्यवस्था का चित्र उपस्थित करता है। इस दृष्टि में सबसे बड़ी खामी यह है कि भक्ति की भाव-धारा की तीव्रता का महत्त्व ही इसमें समाप्त हो जाता है।

सो सुख धरम करम जरिजाऊ, जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

या

जाको प्रिय न राम बैदेही,
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही।

जैसी काव्य-पंक्तियाँ अर्थहीन हो जाती हैं। मर्यादाएँ सभी राम की उपस्थिति में ही मर्यादा बनती हैं, नहीं तो विभीषण और सुग्रीव का भातृ-द्रोह कैसे राम की शरणागति के कारण महान् त्याग के रूप में परिवर्तित हो सकता था? या सीता जी द्वारा ससुर और सास की उपेक्षा कैसे पारिवारिक आदर्श का भाव जगा सकती थी? किन्तु राम की ओर अभिमुख होने के कारण भ्रातृ-द्रोह व गुरु-अवज्ञा छोटी पारिवारिक मर्यादा के मानदण्डों से न मापी जाकर ऊँची रामभक्ति मर्यादा से ही तुलसी के काव्य में परिमापित होती है। इस प्रकार यह दृष्टि, एक सतही दृष्टि, उनके कृतित्व के मूल्यांकन की मानी जानी चाहिए।

चौथी दृष्टि राजनीतिक आग्रह से प्रेरित है और यह सही है कि इस दृष्टि के उपयोजन से महात्मा गांधी ने भारतीय जनता को एक ऐसा नेतृत्व दिया, जो चमत्कारपूर्ण था और इसलिए इस दृष्टि के कारण गन्धीवाद के विरोध के साथ-साथ मानस का भी विरोध प्रचण्ड रूप से हो रहा है। कोई कहता है कि महात्मा गान्धी ने भरत के द्वारा आयोध्या के शासन में धरोहरी शासन के आदर्श की कल्पना साकार देखी और उस कल्पना को उन्होंने हिन्दू स्वराज्य को आधार बनाया। जिन लोगों को महात्मा गान्धी के इस धरोहरी राज्य के सिद्धान्त से विरोध है, वे राम-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चरितमानस को पूँजीवाद का एक हथकण्डा मानते हैं और अगर बहुत कृपालु हुए-तो सामन्तवाद का एक अच्छा संस्करण मानने को तैयार होते हैं, इससे आगे कुछ नहीं। यदि वे कुछ उग्र हुए तो तुलसीदासजी को वर्णाश्रम धर्म की क्रूर वैषम्यपूर्ण व्यवस्था का निहायत चालाकी से प्रवर्तन करने वाला मानते हैं या उपनिवेशवाद की मक्कारी का और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का प्रतिमान मानते हैं और मानस की पोथी फाड़कर या राम के चित्र पर जूते लगाकर अपना आक्रोस व्यक्त करते हैं। पर सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि—

पराधीन सुख सपनेहु नाहीं।

जैसी उत्तेजक पंक्ति तुलसीदास ने मन्थरा के मुख से कहलवायी—एक ऐसे पात्र के मुख से जो दया और उपहास का पात्र बनती है, केवल—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
ते नृप अवसि नरक अधिकारी।

उत्तम पात्र के मुख से कहलवायी गयी पंक्ति है। राजधर्म तुलसीदास जी के लिए आवश्यक धर्म तो है, किन्तु वह धर्म ही तब है जबकि रामभक्ति हो। तुलसीदास की स्वाधीनता की परिकल्पना में व्यक्ति न अपने अधीन रहता है न अपने को राम के अधीन बनाने की स्थिति में पहुँचकर एक ऐसे स्व के अधीन हो जाता है जो राम के लिए स्वत्व छोड़कर राम के स्वत्व से एकाकार हो जाय। यह स्वाधीनता राजनीतिकि संदर्भवाली स्वाधीनता से बहुत ऊँची परिकल्पना है। गान्धी जी ने राजनीति को ऊँचे स्तर पर ले जाने के लिए मानस का उपयोग किया और रथी रावण के आगे विरथी रघुवीर को देखकर शंका करने वाले कातर चित्त में यह विश्वास भरने का साधन पाया कि—

सखा धर्म मय अस रथ जाके,
रिपु रन जीत सकहिं नहीं ताके।

तुलसीदास जी की रचना में राजनीतिक सोद्देश्यता की तलाश किसी राजनीतिक प्रयोजन के लिए भले ही उपयोगी लगे, पर गहराई में जाकर अध्ययन करने पर यह साफ जाहिर होगा कि तुलसीदास जी ने राम को राजा जिस रूप में माना वह राजा तो लौकिक सन्दर्भ का राजा नहीं है। वह एक जीवन्त आध्यात्मिक सन्दर्भ का राजत्व है और रामराज्य भी एक उदात्त कल्पना होकर एक जीते-जागते अनुभव की बार-बार पुनरावर्तित होनेवाली घटना है, जो हर निर्वासित, प्रताड़ित और रामाश्रित चित्त के अपराजित भाव के उदय के साथ घटित होती रहती है।

पाँचवीं दृष्टि शुद्ध साहित्यिक दृष्टि है, जो रस, भाव, अलंकार, छन्द, प्रबन्ध योजना, कथोपकथन योजना और पात्र योजना के विवेचन के मानदंडों से रामचरितमानस के मूल्यांकन का प्रयत्न करती है। यह दृष्टि रामचरितमानस का वैशिष्ट्य दूसरी काव्य रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में प्रतिपादित करती है और तुलसीदास

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की पूर्ववर्ती रचनाओं के प्रभाव को उद्‌घाटित करती है। किन्तु यह न तो तुलसी को उद्‌घाटित करती है न मानस को। मानस के लिए कोरी काव्य-दृष्टि नहीं होनी चाहिए। उसके लिए मानस-दृष्टि होनी चाहिए—

अस मानस मानस चख चाही

मानस चक्षु से तात्पर्य तुलसीदास का रामचरितमानस में अवगाहे मानस की दृष्टि से है अर्थात् मानस के रस अर्थ ग्रहण करने के लिए रामलीला के प्रवाह के साथ एकाकार करना पहली शर्त है। काव्यशास्त्रीय मानदण्ड इस शर्त से बहुत छोटे हैं। स्वयं तुलसीदास जी ने ऐसे मानदण्डों को मानस के निर्मल प्रवाह में जलचर या पुरइन या कमल के रूप में देखा है, जिनके लिए जल उपजीव्य है, परन्तु जो जल के गुण-दोष के स्वयं परिमापक नहीं हो सकते। क्योंकि जल का अस्तित्व उनसे नहीं है, जल से उनका अस्तित्व है। रामचरितमानस न संस्कृत काव्य की दृष्टि के अनुसार महाकाव्य है, न मध्ययुगीय प्रबन्ध काव्यों की तरह का प्रबन्ध काव्य है, न वह श्रीमद्‌भागवत की तरह पुराण है, न वह रामायण की तरह इतिहास है, न वह किसी एक राम की कहानी है। वह लीला काव्य है। अनन्त रामों की कहानी है। वर्तमान रामों की कहानी है। उसके मूल्यांकन के लिए प्रचलित मानदंडों की निरपेक्षता तोड़ देनी होगी और उन्हें एक महत्तर मानदण्ड के साधन के रूप में स्वीकार करना होगा। क्योंकि तुलसीदास जी का ग्रन्थ न कोरा साहित्य है, न कोरा दर्शन, न कोरा धर्मशास्त्र। वह मानवीय जीवन के महत्तर मूल्य-बोध का एक न चुकने वाला अन्वेषण है।

मैं इसीलिए पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता महसूस करता हूँ। यह पुनर्मूल्यांकन अधिक शाश्वत और अधिक व्यापक मानवीय धरातल पर किया जाने वाला मूल्यांकन होगा। इस पुनर्मूल्यांकन का उद्देश्य तुलसीदास के मानस को उनके युग के समाज और देश के सन्दर्भों को पहचानते हुए और मानस की रचना में उन सन्दर्भों के दबाव के प्रभाव ठीक-ठीक नापते हुए भी उनके देशातीत और इतिहासातीत व्यापक मानवीय संदेश को ग्रहण करना होगा। साथ ही उस पुनर्मूल्यांकन में न तो काव्य-मूल्यों की सतही खोज होगी न पूर्व-निश्चित मूल्य-निर्धारक कोटियों के अनुसार सोद्देश्यता से अलग जाकर मानस का विश्लेषण किया जायेगा। इस में यह परखने की कोशिश की जायेगी कि मानस के द्वारा कवि जो कुछ सम्प्रेषित करना चाहता है, वह मानस की संरचना के द्वारा ठीक-ठीक सम्प्रेषित हो पाया है या नहीं और यदि इस संरचना में पूर्व-निश्चित तौर-तरीके निर्ममतापूर्वक तिरस्कृत किये गये हैं या जान-बूझकर एक बड़े उद्देश्य के अंगभूत बनाकर छोटे किये गये हैं, तो इससे काव्य-भाषा की कितनी समृद्धि हुई है और एक नये प्रकार के संदेश का किस प्रकार अद्वितीय ढंग से उन्मीलन हुआ है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस प्रस्तावित पुनर्मूल्यांकन के मुख्यतः तीन पक्ष होंगे, पहला पक्ष होगा भक्ति-आन्दोलन की भूमिका के उपयुक्त रामकथा के रूपान्तर की प्रक्रिया की पहचान, दूसरा पक्ष होगा लीला के दृश्य और श्रव्य रूप के संयोजन के कौशल के द्वारा ग्रन्थ को भावात्मक आन्दोलन के रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त रचना-तन्त्र की पहचान और तीसरा पक्ष होगा स्वयं काव्य रचना के द्वारा लोकोत्तर आनन्द की अपेक्षा एक नये प्रकार के जीवन मूल्य के आस्वाद की पहचान, जो मनुष्य को राममय बनाकर मुक्त नहीं करता बल्कि दूसरों के दुःख के स्वयं वरण के अनवच्छिन्न जाल में बाँधने के लिए उत्कण्ठित करता है और जो व्यष्टि के समाष्टिमय होने की सार्थकता समष्टि के व्यष्टि रूपायित होने में मानता है। यह भी सम्भव है कि इस प्रकार की पहचान तुलसीदास के समय की अपेक्षा आज अधिक सार्थक हो, पर तुलसीदास के समय में उसकी सार्थकता न रही हो, ऐसी बात नहीं है। कोई भी बड़ा साहित्य अपने आस्वादक की भावभूमि के विस्तार के साथ ही फैलता है, परन्तु फैलने की सम्भावना उस साहित्य में कहीं निहित होती है। तुलसी के मानस का पुनर्मूल्यांकन मानस के सच्चे भाव की भावभूमि का भी परिमापन कर सकेगा। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधुनिकता और तुलसी का काव्य | रघुनन्दन मिश्र

आधुनिकता की पृष्ठभूमि पर तुलसीदास के काव्य पर विचार करने के पूर्व हमें यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक होगा कि तुलसी के काव्य के निकष क्या थे, उनके काव्य-सृजन के मूल उद्देश्य क्या थे और उसके मूल में वर्तमान प्रेरणा क्या थी। इन जिज्ञासाओं की तृप्ति के लिये हमें जाना होगा भारत की प्राचीन, अति प्राचीन काव्य-दृष्टि की ओर। भारतीय साहित्य की वह काव्य दृष्टि प्राचीन होते हुए भी किसी अर्थ में चिरनवीन भी है। महर्षियों ने दर्शन के विश्वा का जो रूप लिया है, वह नित्य है। परिवर्तनशील नहीं है। परिवर्तनशील के अभ्यन्तर में वर्तमान अपरिवर्तनीय तत्व है। वाणी और मन की पहुंच के बाहर है। किन्तु स्वयं प्रकाशमान है :—

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥

इसलिए इसे **कविर्मनीषी परिभूःस्वयंम्** कहा गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि कवि को ही हम स्वयं में ब्रह्म कहें, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, विशेषकर भक्तिकाल के उन कवियों को, जिन्होंने साधना के किसी न किसी आधार पर ब्रह्म की अनुभूति भी की और काव्य का सृजन भी किया। हिन्दी-साहित्य में राम और कृष्ण का साहित्य वेदान्त का रूप है। रामचरितमानस की भूमिका में तुलसीदास ने राम के यथार्थ रूप की ओर संकेत करते हुए लिखा है और स्थान-स्थान पर पाठकों का ध्यान भी आकर्षित किया है—

रघुपति महिमा अगुण अबाधा। बरनव सोइ वर वारि अगाधा॥

राम की निर्गुण और निर्वाध महिमा ही मानस का जल है। इस जल में डुबकी लगाकर मोती निकाल ले जाना तो साधारण पाठक की पहुंच के बाहर की बात है, क्योंकि इसके लिये सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है। भक्तिकाल के कवियों के लिये—चाहे वे सगुण धारा के कवि हों अथवा निगुण धारा के—कला उनके लिये साधन थी, साध्य नहीं थी। विषय था ब्रह्म तथा उसकी अनुभूति, और आत्मानुभूतियों की अभिव्यक्ति का साधन थी कविता। अभ्यन्तर की साधना

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से पहले सबने अनुभूति को, तत्पश्चात् मानव-कल्याण से प्रेरित होकर काव्य का सृजन किया, घोषणा की अपने काव्य के सम्बन्ध में स्वान्तः सुखाय" की और बना दिया उसको "सर्वान्तः सुखाय"। इस सम्बन्ध में तुलसी के ग्रन्थों में रामचरितमानस का ही उल्लेख होगा, क्योंकि मानव जीवन की विविधता तथा उसकी विभिन्न समस्याओं का समाधान इसी मैं सर्वाधिक स्पष्ट होकर आया है। आधुनिकता का सम्बन्ध भी विशेष रूप से जीवन तथा उसकी समस्याओं से ही है। जीवन के सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये शरीर ही एकमात्र साधन है। उसी के माध्यम से मनुष्य अपनी हर अभिलाषा तथा महत्वाकांक्षा को प्राप्त करता है। मस्तिष्क का निर्देशन और शरीर का उसके अनुसार कर्म में रत होना ही मनुष्य के लिये सफलता की कुंजी है। जहाँ इस शरीर से भौतिक समृद्धि की प्राप्ति होती है, वहीं पद्धति विशेष से उसके ऊपर शासन करने से अध्यात्म की चरम उपलब्धि भी होती है। रामचरितमानस के सात काण्डों से उसी उपलब्धि की ओर संकेत किया गया है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध आज्ञा और सहस्रार इस शरीर के सात काण्ड हैं। मूलाधार में शक्ति का स्थान है और यह चक्र पृथ्वी तत्व का बोधक है। सहस्रार में ब्रह्म का स्थान माना गया है। शक्तिरूपी सीता पृथ्वी से निकलती है और अन्त में उसी में प्रवेश कर जाती है। राम सहस्रार के ब्रह्म स्वरूप हैं। लीला समाप्त हो जाने के बाद से भी वहीं चले जाते हैं। लीला के अन्त में भी लीला से पहले की तरह, सहस्रार तत्व राम, और मूलाधार तत्व भी सीता प्रत्येक मनुष्य के शरीर में निवास कर रहे हैं। मानस के इस रूपक को विज्ञ जन कैसे भुला सकते हैं। यदि हम इस रूपक को स्वीकार करते हैं तो इसमें आधुनिकता का समावेश ही कहां होगा। यह तो चिरंतन सत्य है।

इसी प्रकार कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के वेदान्त स्वरूप को काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करने की कोशिश की है। राम का रंग श्याम है **श्याम सरोज दाम सन सुन्दर** कृष्ण का रंग भी श्याम है। आकाश का रंग श्याम है। अनन्त और अथाह सागर का रंग श्याम है। ये सब असीम सत्ता के रूपक हैं। इसलिये श्याम हैं। बंशी कृष्ण का विशुद्ध हृदय हैं, जिससे स्पष्ट और परिष्कृत स्वर निकलते रहते हैं। आवश्यकता है उसके स्वर को पहचान कर अपने अभ्यन्तर के स्वर के साथ सामंजस्य स्थापित कर देने की। इसी स्थिति में असीम आनन्द की अनुभूति होती है। भक्तिकाव्य में इनकी कल्पना से कवियों ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि किसी एक केन्द्र के चेतन स्वरूप से तमाम संसार, सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड के प्राणी गुथे हुए हैं। सूर ने इस केन्द्र की स्थापना की कृष्ण के स्वरूप में, तुलसी ने श्रीराम के स्वरूप में और कबीर ने निर्गुण आत्मा, बिना केन्द्र के केन्द्र में। भारतीय सिद्धान्त के अनुसार यथार्थ में ये ही तीन विश्व कवि हैं—

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सूर, तुलसी और कबीर। इन्होंने जो कुछ कहा है, वह किसी के लिये कोरी कल्पना और दूर की सूझ हो सकती है, किन्तु अपनी ओर से तो उन्होंने वही कहा है, जो आंखों देखा है। तुलसी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा—**यह सब मैं निज नयनन देखा** और कबीर ने तो दो को छोड़कर शेष को फीका करके छोड़ दिया—

कहन सुनन की है नहीं, देखा देखी बात।
दुल्हा दुल्ही मिल गये, फीकी पड़ी बरात॥

जब इन लोगों ने 'नयनन देखी बात' कही, तो हमें भी इनके काव्य का अध्ययन करते समय इनकी देखी बात को समझना होगा। इसी संदर्भ में हमें कला की भारतीय परिभाषा पर विचार करना चाहिये। इनकी अभिव्यक्ति और कला की परिभाषा से भी अविच्छिन्न सम्बन्ध है। वर्णों को अक्षर की संज्ञा देने वाले महर्षियों ने अक्षर 'क' को प्रतीक माना, शिव और शक्ति के अनायास संयोग से प्रादुर्भूत प्रथम तत्व शिवांश, आकाश का, और 'ल' को माना आकाश अंश के साथ शक्त्यांश के संयोग का। 'आ' की मात्रा का योग विस्तार का द्योतक है। इस सिद्धान्त के अनुसार शिवांश 'क' में शक्त्यांश 'ल' का 'आ' से युक्त होना ही कला का वास्तविक रूप होगा। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि आकाश में त्रिगुणात्मिका शक्ति के उदार प्रयोग से जो अनेक दृश्यमान शब्दों की सृष्टि होती है, वही कला है। कला का वही रूप अमर है और ऐसे कलाकार भी कभी ही कभी अवतरित होते हैं। और शायद इसी अर्थ में ब्रह्म सबसे बड़ा कलाकार माना गया है और सृष्टि ही उसकी कविता मानी जाती है—**काव्य रचना कर रहा है, कवि वही कविता वही है।** (श्यामनारायण पाण्डेय)। प्रायः ऐसे ही सिद्धान्तों पर विचार कर हरिऔध जी ने भी तुलसी के काव्य के सम्बन्ध में लिखा है कि—**तुलसी न लसे कविता करके कविता लसी या तुलसी की कला।** तुलसी की काव्य-रचना से काव्य-कला का गौरव बढ़ गया।

इस प्रकार के काव्य-सृजन के लिये साधना अथवा भावना से उस अवस्था को प्राप्त करना पड़ता है, जहाँ कवि के हृदय से अनायास ही काव्य की निर्झरिणी प्रस्फुटित होती है और उसे सुनकर सबका हृदय आर्द्र हो उठता है। अन्नमय और प्राणमय कोषों से ऊपर उठती हुई कलाकार की वासना जब विज्ञानमय कोष में पहुंचती है तो काव्य-निर्झर कल-कल, छल-छल करता हुआ झरने लगता है इस निर्झर के शीतल जल के स्पर्श से प्रस्तर खण्ड भी पसीज उठते हैं। धारा के अनवरत स्पर्श से सुडौल हो जाते है। कवि आनन्द में विभोर हो उठता है और सम्पूर्ण प्रकृति के जड़-चेतन पदार्थ उसके साथ एक का अनुभव करने लगते हैं। सूखी डालियों में फूल निकल आते हैं। मरुस्थल में मरुद्यान का दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसी अवस्था में केवल देने की भावना रह जाती है। लेने की भावना का तो लोप हो जाता है। प्रसाद जी के शब्दों में **देना हो जितना दे दे,**

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

औ लेना कोई यह न करे आनन्द की इस अवस्था का नाम योग की शब्दावली में मधुमति भूमिका दिया गया है। इसको साधक साधना के बल पर प्राप्त करता है और कवि प्राप्त करता है भावना के उद्रेक के बल पर। सूर तुलसी और कबीर साधक पहले थे, और कवि थे उसके बाद। इसलिये इनके जीवन में साधना और भावना का अद्भुत संयोग दिखाई देता है। बड़े भाग्यशाली लोग इस अवस्था को प्राप्त करते हैं। इस अवस्था में पहुंचने पर अहं का समर्पण और अहं का विसर्जन दोनों ही हो जाता है। अहं का विसर्जन भी काव्य की एक परिभाषा मानी जाती है। संत और भक्त कवियों के काव्य का सृजन मानस की इसी भूमिका में पहुंचने पर हुआ है।

इस प्रकार संक्षेप में काव्य के निकष पर विचार करने के पश्चात् हम विचार करेंगे आधुनिकता पर, जिसके परिप्रेक्ष्य में तुलसी के काव्य पर विचार करना है। आधुनिकता अधिक तो आन्तरिक एवं मूलगत भाव है, जिसका एक पक्ष दीर्घ-कालीन परम्परा और उसके विकास से सम्बन्धित है और दूसरा पक्ष परिवेश तथा रूप और आकार के परिवर्तन से सम्बन्धित है। हमें दोनों पर ध्यान देना होगा। किसी कलाकृति का मूल्यांकन मात्र एक सामयिकता के परिदर्श में करना एकांगी और अवैज्ञानिक होगा। हमें प्राचीन और आधुनिक के अन्तर में वर्तमान के प्रवाहित उस सूक्ष्म को भी पकड़ना होगा, जो किसी देश अथवा किसी जाति के समस्त विचारों एवं आदर्शों को अपने में बांधे हुए उस देश की अक्षय निधि के समान सर्वदा वर्तमान रहता है। और जिसके समाप्त हो जाने पर वह देश समाप्त हो जाता है। परिवर्तन आते हैं, किन्तु रूप में, आकार में। अभ्यं-तर का परिवर्तन बहुत कम होता है। ऋतुराज का आगमन होता है। जीर्ण-शीर्ण पत्ते गिर जाते हैं। नये-नये किसलय और पुष्प निकल आते हैं। तरु-राज का नवीन शृंगार हो जाता है। पत्ते-पत्ते नये परिवेश में झूमने लगते हैं। इस प्रकार रूप में परिवर्तन हो जाता है। रूप का सर्वदा एक समान रहना प्रकृति के धर्म के अनुकूल नहीं है—

प्रकृति के यौवन का शृंगार,
करेंगे कभी न बासी फूल।
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र,
आह उत्सुक है उनकी धूल।।
पुरातनता का यह निर्मोक,
सहन करती न प्रकृति पल एक।
नित्य नूतनता में आनन्द,
किये है परिवर्तन में टेक।।

——कामायनी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधुनिकता का दूसरा भी पक्ष है, जिसका सम्बन्ध भाव से है। कुछ दिनों पहले का मनुष्य भावना, और कोरी भावना के आधार पर विश्व के साथ एक बन्धुत्व अथवा **वसुधैव कुटुम्बकम्** की बात करता था। किन्तु आज तो परि-स्थितियाँ बिलकुल बदल गई हैं। विश्व के क्षितिज पर जो भी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, वे अनायास ही पृथ्वी के कोने-कोने को छूने लगती हैं। विश्व-बन्धुत्व अपने आप जग जाता है। इस प्रकार जब हम बीते हुए युग पर विचार करने लगते हैं, तो लगता है जैसे पिछले इतिहास से आज के मनुष्य का सम्बन्ध ही नहीं है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आते-आते वैज्ञानिक आविष्कारों ने विश्व की आँखों में चकाचौंध-सी उत्पन्न कर दी। गगन का चांद जो सुन्दरियों के मुख मंडल का उपमान बना करता था, आज मनुष्य की हथेली पर चला आया है। विद्यापति की कविता अब रसिकों को ही आनन्द दे पाती है—

तोहर बदन सम चांद होअथि नहिं,
कयो जतन विहि केला।
कै बेरि काटि बनावल नवकय
तैयो तुलित नहिं भेला॥

विज्ञान के बल पर मनुष्य ने उस सर्वशक्तिमान से बाजी लगाने की ठान ली, जिसकी भृकुटी विलास से ही जगत का प्रादुर्भाव और व लय हो सकता है। उसने सृष्टि के विनाश और निर्माण दोनों की ही शक्तियों को अपने वश में करने का स्वप्न देखा। पर इसकी आत्मा खोखली होने लगी। देने के स्थान पर असं-तोष की भावना तीव्र गति से काम करने लगी। देने के स्थान पर लेने की भावना आनन्द का कारण बनने लगी। वाह्य वैभव एक प्रकार से आभ्यन्तरिक समृद्धि को चरने लगा। सांस्कृतिक दारिद्र्य बढ़ने लगा। ऐसा मालूम होने लगा जैसे समस्त सभ्यता मनुष्य के बाहर उग आई है। अभ्यन्तर से उसका जैसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। जीवन का लक्ष्य दिखाई नहीं देता। 'शरीर जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने का एक साधन है, जीवन का साध्य नहीं है' जैसे उच्च विचार आँखों से ओझल होने लगे। अनेक समाधानहीन प्रश्नों से आज मानव सभ्यता आक्रान्त हो गई है। मूलाधार और सहस्रार पर आधारित अतीत का अध्यात्म की परिकल्पना होने लगी है। स्वयं को अधिक गहराई से समझने का प्रयास मनुष्य ने आरम्भ कर दिया है। त्याग और बलिदान जैसी वस्तुयें मानसिक क्षितिज से दूर हटने लगी हैं। आधुनिकता के नवीन परिवेश में दिखाई दे रहा है संत्रास, संघर्ष, घुटन तथा विद्रोह की भावना, जो प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कहा नहीं जा सकता कि विद्रोह की यह भावना मनुष्य को कहां ले जायेगी। जीवन की विचारधाराएं तेजी से बदलती जा रही हैं। प्राचीन मान्यताओं से विश्वास उठता जा रहा है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हो रहा है। धर्म

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की व्याख्या करते हुए वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद ने लिखा **यतोऽभ्युदर्यान श्रेयसि सिद्धिस धर्मः** जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि होती है, उसे धर्म कहते हैं। अभ्युदय का अर्थ लौकिक जीवन का विकास और निःश्रेयस का अभिप्राय पारलौकिक उन्नति और कल्याण से है। दूसरे शब्दों में लौकिक जीवन में हर तरह की समृद्धि प्राप्त कर अन्त में आवागमन के चक्र से मुक्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाना ही मानव जीवन का लक्ष्य था। किन्तु जीवन के प्रति आज ऐसे विश्वास यदि उठ नहीं गये हैं तो उठते अवश्य जा रहे हैं। इस जीवन में जिसे रोटी प्राप्त नहीं हो रही है, वह मुक्ति और परलोक में विश्वास कैसे करेगा !

आधुनिक युग की ऐसी ही कुछ बदलती हुई मान्याताएं और परिस्थितियाँ हैं जिनके आधार पर रामचरितमानस का अध्ययन करना है। जहाँ तक काव्य और काव्य की आत्मा का प्रश्न है, तुलसी का काव्य कभी भी प्राचीन नहीं होगा। उसके अभ्यन्तर में भारत का स्वर विद्यमान है, जिसके समाप्त होने पर भारत का अपना स्वर समाप्त हो जायगा। जीवन की पद्धति और जीवन की मान्यताओं पर विचार करते समय मानना होगा कि रामचरितमानस में बहुत ही ऐसी मान्यताओं का समावेश है, जिनको स्वीकार करना आधुनिक युग के मानव के लिये सम्भव नहीं होगा। केवल राम-वन-गमन के अवसर को ही ले लीजिये। उसके उपस्थित होते ही प्रायः सभी प्रमुख पात्रों के सम्मुख धर्म-संकट उपस्थित हो जाता है। सभी पात्रों ने अपने-अपने विचार और आदर्श के अनुसार किसी-न-किसी मार्ग का अनुसरण करना निश्चय किया। सभी के निश्चय किये हुए मार्ग को आधुनिक युग का समाज स्वीकार नहीं करेगा।

कैकेयी ने राम का वनवास माँगा। माँगने के लिये आधार थीं दोनों प्रतिज्ञाएं, जो दशरथ ने कैकेयी (अपनी ही पत्नी) से की थीं। जिस समय प्रतिज्ञाएं की गई थीं उस समय राजा दशरथ के मन में यह कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि कैकेयी राम जैसे पुत्र का वनवास मांग लेगी। ऐसी भी यदि सम्भावना होती तो स्वभावतः इस प्रकार के वरदान भी नहीं दिये गये होते। स्वयं कैकेयी भी राम को इतना प्यार करती थी कि उनको वन भेजने की बात उसके मस्तिष्क में आ भी नहीं सकती थी। घबराहट में मन्थरा जब अपनी बात उससे कहना चाहती है, तो उसको भयभीत देखकर कैकेयी स्वयं पूछती है—

सभय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल।
भरत लखन रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उर साल।।

राम को कैकेयी अपने पुत्र और पति से भी अधिक प्यार करती थी। सबसे पहले उसकी चिन्ता है राम के कुशल की। ऐसी विषम परिस्थिति को देखते हुए तुलसी ने ये सभी कार्य करवाने के लिये एक अदृश्य शक्ति का सहारा लिया और वह शक्ति थी सरस्वती—**गई गिरा मति फेरि** साथ ही राम को भी सर्व-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शक्तिमान ब्रह्म का अवतार स्वीकार कर उनकी लीला को प्रमुखता दे दी और कैकेयी को दोष से मुक्त कर दिया। इस प्रकार की विचित्र घटनाओं के आधार को तथा कैकेयी के दोष-मुक्ति के मार्ग को आधुनिक युग स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि यह युग अधिक वैज्ञानिक हो गया है।

इस युग के श्रेष्ठ कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में मनोवैज्ञानिक आधार से काम लिया है, जो अधिक समीचीन मालूम होता है। मन्थरा का एक ही वाक्य **भरत से सुत पर भी सन्देह, बुलाया तक न उन्हें निज गेह** (साकेत), कैकेयी के मस्तिष्क में चक्कर काटने लगता है और उसके हृदय में सौत का द्वेष उत्पन्न हो जाता है। अपने पुत्र के प्रति किये गये अन्याय का बदला लेने का वह दृढ़ निश्चय कर लेती है। इस आवेश के शान्त होने पर उसे ग्लानि भी कम नहीं होती। जहाँ तक बदला लेने की भावना का प्रश्न है, उसे मानव मन के अनुकूल कहें या सभी युग के अनुकूल कहें, तो अत्युक्ति नहीं होगी। किन्तु राजा दशरथ का वरदान देने के लिये बाध्य होना और तुलसी के दिये गये समाधान को हम तब तक स्वीकार नहीं कर पाते, जब तक यह मान नहीं लेते कि 'मानस' के सभी प्रमुख पात्र न किसी अलौकिक शक्ति के अवतार हैं और राम को मानव लीला करने में किसी-न-किसी प्रकार उनकी आवश्यकता है।

अन्य पात्रों में सबसे पहले लक्ष्मण का नाम आता है। राम के साथ वन जाने का निश्चय तो वे पहले ही अपने मन में कर लेते हैं, किन्तु बाहर से भय बना हुआ है कि कहीं राम साथ नहीं ले जायेंगे तो क्या होगा! राम के साथ कर्तव्य-निर्वाह के समक्ष पिता के प्रति पालन करने का उनका कोई कर्त्तव्य ही नहीं है। वह भी उस समय, जब पिता मरणासन्न अवस्था में पड़े हुए हैं। पिता को उसी अवस्था में छोड़कर छाया के समान वे राम के साथ वन चले जाते हैं। राम-वन-गमन सुनकर सीता भी निश्चय कर चुकी हैं कि **कि तनु प्राण कि केवल प्राण,** किसी का समझाना उन पर कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाता। स्वयं राम परिवार की शोचनीय अवस्था, विशेष कर माताओं की दशा की ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हैं। किन्तु वे हैं जो एक ही बात **जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसहिं नाथ पुरुष बिनु नारी** से सभी तर्कों की निरर्थकता सिद्ध कर राम के साथ बन जाने में ही जीवन की सार्थकता प्रमाणित करती हैं। यद्यपि कैकेयी ने राम के अतिरिक्त किसी अन्य के लिये वन-गमन का वरदान नहीं मांगा था, फिर भी राम के साथ सीता के वन चले जाने में सार्थकता हो सकती है, किन्तु लक्ष्मण के वन-गमन में वह भी विशेषकर उस अवसर पर, जब पिता मरणासन्न अवस्था में पड़े हुए हैं और भाइयों में भी कोई उस समय अयोध्या में नहीं है, कोई सार्थकता दिखलाई नहीं देती। यदि जाना ही था तो भरत के घर आ जाने पर भी जा सकते थे। कौशल्या विचार से काम लेती हैं। पुत्र के सम्बन्ध में पिता से माता का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिकार अधिक सिद्ध करती हैं और सौत के प्रति प्रेम और उच्चतम आदर्श की स्थापना करती हुई अपने और कैकेयी में कोई भेद न रखकर अन्त में वन-गमन की आज्ञा देती हैं—

जो पितु मातु कहै बन जाना, तौ कानन सत अवध समाना।

माता सुमित्रा तो बिना संकोच लक्ष्मण को आज्ञा दे देती हैं—

जो पै राम सीय बन जाहीं।
अवध तुम्हार काम कछु नाहीं।

आधुनिक युग कौशल्या के निर्णय का आदर तो कर भी सकता है, किन्तु सूमित्रा के निर्णय में सार्थकता के लिये फिर हमें अवतारवाद और राम की लीला को स्वीकार करना पड़ेगा, तभी इसमें सार्थकता दिखाई देगी।

धर्म-संकट का उचित निर्वाह केवल भरत ही करते हैं। ननिहाल से आने के पश्चात् सारी परिस्थिति पर स्थिरभाव से विचार करते हैं और सबसे पहले पिता का दाह-संस्कार करते हैं। तत्पश्चात् सबसे परामर्श करते हैं, और सभी लोग एक स्वर से यही राय देते हैं कि राज्य कीजिए और अयोध्या के राज-काज का संचालन कीजिए। माता के साथ-साथ गुरु की भी यही आज्ञा है। किन्तु भरत का अन्तर्मन गवाही नहीं देता। वे निश्चय रूप से समझते हैं कि राम के साथ अन्याय हुआ है। आत्मा का स्वर उनका दबता नहीं है। वे चित्रकूट जाते हैं और राम से घर लौट चलने का प्रस्ताव करते हैं। विकल्प भी प्रस्तुत करते हैं—

नतरु फेरियेहि बन्धु दोऊ, नाथ चलौं मैं साथ।

राम उनके प्रस्ताव तथा विकल्प में किसी को भी स्वीकार नहीं करते हैं, किन्तु भरत अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में ईमानदार हैं और ईमानदारी में प्राचीनता तथा आधुनिकता का कोई द्वन्द्व नहीं होता। भरत जब अपने निर्णयों से कदम पीछे नहीं हटाते हैं, तो राम उनको अयोध्या के राज-काज संभालने की आज्ञा देते हैं। राम की आज्ञा का उल्लंघन करना उनके लिये सम्भव नहीं था। पिता से भी अधिक राम के प्रति श्रद्धा रखने वाले भरत अन्त में प्रार्थना करते हैं—

सो अवलम्ब देऊ मोंहि देई। अवध पार पावऊँ जेहि सेई॥

राम उन्हें अपनी खड़ाऊँ दे देते हैं और भरत आदर के साथ सिर पर उसे धारण किये हुए अयोध्या लौट आते हैं। सिंहासन पर तो खड़ाऊँ को स्थापित करते हैं और स्वयं संन्यासी का जीवन व्यतीत करते हुए राज-काज का संचालन करते हैं—

नित पूजन प्रभु पांवरी, प्रीति न हृदय समाति।
मांगि मांगि आयसु करत, राज काज बहु भांति॥

आज का युग इस निर्णय तथा आदर्श को उचित श्रेय तो देगा, किन्तु कर्तव्य निर्वाह की पद्धति का समर्थन नहीं करेगा। आज भी राजनीति तथा समाज-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नीति के आधार पर यदि हम इनके कार्य पर विचार करेंगे, तो कोई औचित्य दिखाई नहीं देगा। जागीरदार, जमींदार और राजागण समाप्त हो गये और युगों के पहले मर गई वह भावना जो राजा को भगवान का प्रनिनिधि स्वीकार कर उसके सामने समर्पण करती थी। आज के जनतन्त्र में राजा यदि कहीं जीवित भी है, तो जनता के प्रतिनिधि के हाथों कठपुतली से अधिक उसका कोई अस्तित्व नहीं है। आज के समाज का निर्माण करनेवाला और उसके संचालकों का चुनाव करनेवाला तो स्वयं समाज ही है। उसमें न कोई बड़ा है और न कोई छोटा, न कोई राजा है और न कोई प्रजा। अब तो केवल 'नर' है और उन्हीं का बनाया हुआ समाज जीवित रहेगा—

विगत हों नरपति, रहें नर मात्र। —साकेत

इतना कुछ होने पर भी रामचरितमानस में कुछ ऐसी अद्‌भुत शक्ति है, जो उसके आदर्शों के प्रति भायतीय जनमानस में आकर्षण उत्पन्न करती है, सर्वदा करती रहेगी। इस युग में भी जब कभी किसी हिन्दू परिवार में कोई सासु और श्वसुर अपने पुत्र-वधू के आचरण और विचार पर प्रसन्न होते हैं, तो अनायास उनके मुँह से निकल आता है 'हमारी बहू तो सीता है, सीता।' वैसे ही पुत्र के लिये राम और भाई के लिये भरत का नाम निकल पड़ना स्वाभाविक-सा हो गया है। तुलसी के रामचरितमानस में रामराज्य की कल्पना भी है। उसकी प्रशंसा कर हम आनन्द का अनुभव तो कर लेते हैं, किन्तु उसी रूप में, न वह आज तक सामने उपस्थित हो सका और न ऐसी कोई आशा ही दिखलाई देती है कि इस युग की तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों में भविष्य में भी कभी उसका साकार रूप देखने को मिलेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक युग में जीवन के मानदण्ड जिस तीव्र गति से बदलते जा रहे हैं, उनके साथ रामचरितमानस के आदर्श मेल नहीं खा सकेंगे, फिर भी उनका मूल्य अपने स्थान पर अक्षुण्ण बना रहेगा, क्योंकि सम्पूर्ण काव्य जीवन के शाश्वत मूल्यों के आधार शिला पर खड़ा है। भारतीय जनमानस सुख-दुःख में इससे सांत्वना प्राप्त करता रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। ●

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास एवं उनकी कवितावली

अवधेश कुमार राय

हिन्दी-साहित्य के मध्ययुगीन संत एवं भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उनका व्यक्तित्व इतना महान है कि उन्हें महान भक्त, लोकनायक, युगद्रष्टा तथा युगप्रवर्त्तक की संज्ञा से विभूषित किया गया है ; पर इसके साथ ही साथ निर्विवाद रूप से वे हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में भी स्वीकृत किये गये हैं। यह सत्य है कि काव्यसृष्टि उनके लिये साध्य न होकर साधन थी, पर प्रखर पांडित्य, अद्भुत प्रतिभा, काव्यशास्त्र के गहनज्ञान और समसामयिक युगीन प्रवृत्तियों को आत्मसात करके उन्होंने जो काव्य-रसायन प्रस्तुत किया, उससे म्रियमाण समाज में नवस्पंदन और नवचेतना का संचार संभव हो सका। तुलसीदास द्वारा विरचित साहित्य विपुल है, जिसकी रचना अनुमानतः संवत् १६२६ से लेकर संवत् १६८० तक हुई है। उनकी कुछ कृतियाँ उनके जीवन के प्रारम्भ की हैं, कुछ मध्यकाल की हैं एवं कुछ जीवन के शेष दिनों की हैं। वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञाप्रश्न, रामलला नहछू तथा जानकी मंगल उनकी प्रारभिक कृतियाँ हैं। अतएव कवित्व की दृष्टि से वे प्रौढ़ नहीं हैं। रामचरितमानस उनकी सर्वोत्तम काव्यकृति है, जिसमें कवि ने ग्रन्थ के रचना-काल का स्पष्ट उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त अन्य कृतियों के रचनाकाल का उल्लेख कवि ने नहीं किया है। कृष्णगीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली एवं कवितावली उनकी मध्यकालीन एवं उत्तरकालीन रचनाएँ हैं। गोस्वामी जी संस्कृत के उद्‌भट विद्वान थे एवं देवभाषा में भी काव्य रचना करने की क्षमता उनमें प्रचुर मात्रा में थी, इसका प्रमाण मानस के प्रत्येक कांड के प्रारंभ में रचित संस्कृत के श्लोक हैं, पर कवि की भाषा-विषयक मान्यता तो यह थी कि **का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये सांच, काम जो आवे कामरी का ले करै कुमाच।** सर्वजन सुलभ अवधी और व्रजी को उन्होंने अपनाया है। उनकी अवधी जायसी के समान ठेठ

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न होकर तत्सम शब्दों से अलंकृत है। वे वर्ण, अर्थ, छन्द एवं रस तक ही सीमित रहनेवाले कवि नहीं थे। लोकमंगल की शाश्वत चेतनता उनकी कृतियों की विशिष्टता है। कवितावली या कवित्तावली उनकी एक स्फुट काव्यकृति है, जिसमें पद्यों का संग्रह मिलता है। डा० उदयभानु सिंह के अनुसार कवितावली की सबसे प्राचीन प्रति संवत् १७९७ की है, जो प्रतापगढ़ के महाराजा पुस्तकालय में है। संवत् १८७० की एक प्रति काशी के पंडित विजयानंद त्रिपाठी के संग्रह में है। इसके प्रमुख चार संस्करण हैं—

१. मूलमात्र, तुलसीग्रंथावली में संग्रहीत
२. अनुवाद सहित--गीता प्रेस, गोरखपुर
३. टीका सहित--टीकाकार लाला भगवानदीन, 'दीन' एवं आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
४. सिद्धांत तिलक सहित--पंडित श्रीकान्त शरण

कवितावली के अन्तर्गत हनुमानबाहुक भी संलग्न है, जिसे कुछ विद्वान अलग कृति मानते हैं, पर वास्तव में यह कवितावली का ही एक अंग है। कवितावली के पद यों सप्तकांडों के अन्तर्गत संग्रहीत हैं, पर उनमें प्रबंधात्मकता का निर्वाह न होकर रामकथा के प्रमुख प्रसंगों की गीतात्मक अभिव्यक्ति उपलब्ध होती है। बालकांड में बाईस छन्द हैं, जो सवैया, घनाक्षरी, कवित्त और छप्पय छन्द के हैं। सर्वप्रथम कवि ने अपने आराध्य देव श्री राम के शैशव की मनोरम झांकी प्रस्तुत की है। अयोध्यापति के क्रोड़ में स्थित अनिंद्य सौन्दर्यशाली शिशु राम के नखशिख सौन्दर्य का वर्णन कवि ने बड़ी तन्मयता के साथ किया है। ध्वन्यात्मकता और रससिक्त रमणीयता सवैया छन्द के माध्यम से अनुगुंजित है—

तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सु खंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरूह से बिकसे।।

शिशु मनोवृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी संक्षेप में किया गया है। इसके पश्चात् जनकपुर में राम द्वारा शिवधनुभंजन, जनकात्मजा से उनके विवाह एवं परशुराम के आगमन और श्री राम के समक्ष उनके आत्मसमर्पण का उल्लेख किया गया है। सीता और राम के मर्यादित शृंगार का वर्णन समस्त तुलसी साहित्य की एक अप्रतिम विशिष्टता है। विश्व के किसी भी कवि ने अपने नायक और नायिका के शृंगार-वर्णन में तुलसी की भाँति संयम से काम नहीं किया है, इसका कारण यह है कि वे मात्र कवि न होकर भक्त हैं, अतः अपने आराध्य देव के विषय में उनकी यह सजगता स्वभाव-सिद्ध है। विवाहोपरान्त मंडप में आसीन वरवधू के रूप का भव्य चित्रण कवि ने किया है—

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर माही।
गावति गीति सबै मिलि सुन्दर, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाही।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रामको रूप निहारति जानकी, कंगन के नगकी परछाहीं ।
यातें सबै सुधि भूलि गई, करटेकि रही पल टारत नाहीं ।।

अयोध्याकांड के अन्तर्गत संग्रहीत छन्दों की कुल संख्या अट्ठाईस है। इसमें भगवान राम के अयोध्यात्याग, केवट प्रसंग, तथा वनमार्ग में ग्रामीण नरनारियों द्वारा राम, लक्ष्मण एवं सीता को देखकर उनके अभिभूत होने तथा ग्राम बधुओं का जनकात्मजा से राम लक्ष्मण विषयक जिज्ञासा का उल्लेख मिलता है। कवितावली के वर्णित प्रसंगों में एवं रामचरितमानस के अन्तर्गत अये प्रसंगों में एक अद्भुत भाव साम्य परिलक्षित होता है।

कवितावली—

सुनि सुंदर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसकाइ चली ।।

रामचरितमानस—

बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी, पिय तन चितइ भौंह करि बांकी ।
मंजुल खंज तिरीछे नयननि, निज पति तिन्हिं कहेउ सिय सयननि ।।

अयोध्याकांड के संग्रहीत पदों में **पुरतै निकसी रघुबीर बधू धरि धरि दये मग मे डग द्वै** का उल्लेख केवट के प्रसंग के पश्चात् किया गया है, जो खटकता है, पर यह कवि का दोष न होकर संपादन का दोष प्रतीत होता है। ग्रामीण नर-नारियों के हृदयोद्गारों में एक ऐसी आत्मीयताजन्य तल्लीनता है, जिसका उत्स कवि का हृदय ही है, वे तो माध्यममात्र हैं। कैकेयी की अज्ञानता, उसकी पाषाण हृदयता को कोसने के पश्चात् दशरथ के वज्र हृदय की कठोरता पर भी वे सामान्य स्त्रियाँ दुख प्रगट करती हैं। उनके हृदय से ये उद्गार निकल पड़ते हैं—

ऐसी मनोहर मूरति ये बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ।
आँखिन में सखी राखिबे जोग इन्है किमि कै बनवास दियो है ।।

कवितावली के अरण्यकांड में मात्र एक सवैया कवि ने लिखा है, जिसमें अनुज और अर्द्धांगिनी के साथ पंचवटी में स्थित श्री राम का अनुपम सौन्दर्य वर्णित है तथा कंचन कुरंग के पीछे धावित राम के स्वरूप का वर्णन है। किष्किंधाकांड में भी केवल एक कवित्त है, जिसमें वायुनंदन हनुमान के अप्रतिम शौर्य का चित्रण मिलता है—

साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ ।
चितवन चहूँ ओर औरन को कलुगो ।।
तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो ।
कोल कलमल्यो अहि कमठ को बलुगो ।।

कवितावली में कवि ने स्फुट पदों के माध्यम से मार्मिक प्रसंगों की रसात्मक अभिव्यक्ति की है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुंदरकांड में संग्रहीत कवितावली के पदों में तुलसीदास ने पवनसुत द्वारा लंका के विध्वंस का विस्तृत और प्रभावशाली चित्रण किया है। लंकादाह का चित्रात्मक विधान बत्तीस घनाक्षरियों के माध्यम से किया गया है। रामचरितमानस में वर्णित लंकादाह की अपेक्षा कवितावली में वर्णित लंका दाह अत्यंत व्यापक और सजीव है। अशोक वाटिका रावण को मेघनाद की अपेक्षा अधिक प्रिय है, उसका सौन्दर्य और उन्मथित कर देनेवाली मादकता परम विरागी वातजात के मन में भी राग उत्पन्न करनेवाली है। ऐसे वन को तहस-नहस करने के दंडस्वरूप अपने अति विस्तृत लांगूल में प्रज्वलित पावक द्वारा त्रिकूट स्थित कनकपुरी के दाह का चित्रण कवि ने रसात्मकता और अलंकरण के माध्यम से किया है। प्रज्वलित अग्नि की दाहकता विलोक कर पुर नर-नारियों की व्याकुलता, उनकी अस्तव्यस्ता एवं असमर्थता का मानो आँखों देखा हाल कवि ने प्रस्तुत किया है। रूपक कवि का अत्यंत प्रिय अलंकार है। प्रज्वलित दसाननगरी को कवि ने एक यज्ञकुंड का रूप दिया है—

तुलसी समिध सौज लंक जग्य कुंड लखि।
जातुधान जवतिल पुंगीफल धान हैं।।
स्रुवा सो लंगूल बलमूल प्रतिकूल हवि।
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हने हनुमान हैं।।

अपने नगर की दुर्दशा देखकर सविषाद दशानन मेघनाद को मारुत की प्रचंडता को जीतने का आदेश प्रदान करता है, पर परम शक्तिशाली पिता-पुत्र की असहायता देखकर नगरवासी वास्तविक मर्म समझ जाते हैं, **जाको ऐसो पूत सो तो साहब अबै आवनो।** रावणप्रिया मन्दोदरी पति की हठधर्मिता से क्षुब्ध होती है और उसका अभिषेक ठेठ देहाती गाली दाढ़ी जार कह कर करती है। प्रलय पयोद भी उस भीषण अग्नि को शमित करने में अक्षम है। उनका मुँह मोड़ कर भगना तथा कवि का यह उद्गार देखते ही बनता है—

औरे आगि लागी ना बुझावे सिंधु सावनो।

लपटों की करालता, चतुर्दिक प्रसरित धूम्रराशि की सघनता में दिशाहारा निशाचर-निशाचरियों का आर्त्तनाद सुनाई पड़ता है। कुछ ही क्षणों में अगार, पगार, भवन, भंडार, हथसार, घोड़सार सब भस्मीभूत हो जाते हैं और राक्षसगण जीवित कपि की तो बात ही क्या, कवि के शब्दों में **चित्र हू के कपि सो निसाचर न लागि है** का प्रण करने को विवश होते हैं।

कवितावली के लंकाकांड के अन्तर्गत अट्ठावन छन्द हैं, जिनमें घनाक्षरी, सवैया, झूलना और छप्पय का प्रयोग किया गया है। छप्पय मात्र एक है। अशोक-वाटिका स्थित सीता को आश्वासन देती हुई त्रिजटा कहती है कि राघव का एक ही सर सप्त सिंधुओं का शोषण करने में समर्थ है, राक्षसराज रावण का सकुल संहार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होकर ही रहेगा, विभीषण का राज्याभिषेक होगा। यह भाव कवितावली की एक घनाक्षरी में चित्रित है। ठीक इसी के समानान्तर रामचरितमानस में त्रिजटा ने अपने स्वप्न के द्वारा इस दृश्य का वर्णन किया है—

सपने बानर लंकाजारी, जातुधान सेना सब मारी।
खर आरूढ़ नगन दससीसा, खंडित सिर मुंडित भुज बीसा।।
नगर फिरी रघुबीर दुहाई, लंका राज बिभीषन पाई।
यह सपना मैं कहौ बिचारी, होइहै सत्य गये दिन चारी।।

युवराज अंगद के लंका आगमन पर सम्पूर्ण नगर में कोलाहल होने लगता है, **आयो आयो सोई बानर बहोरि भयो, सोर चहुँ ओर लंका आये जुवराज के, भयेउ कोलाहल नगर मझारी, आवा कपि जेहि लंका जारी।** यह उक्ति मानस की है, ऊपर वाली उक्ति कवितावली की है। एक ही भाव को नाना छन्दों में अपनी अनेक कृतियों में कवि ने प्रगट किया है, पर उसमें पुनरुक्ति का बासीपन न होकर एक अद्‌भुत ताजगी मिलती है। सेतुबंधन, मारीच, खरदूषण एवं त्रिसिरा तथा बालि जैसे परमशक्तिशालियों का एक ही सर में निहत होना सुनकर शंकित लंका निवासियों की मनःस्थिति का सजीव चित्रण कवि ने कवितावली के लंकाकांड में किया है—**बसत गढ़ लंक, लंकेस नायक अछत लंक नहि खात कोऊ भात रांध्यो।** रावण प्रिया मंदोदरी उसे श्री रघुनाथ के यश और प्रताप को सुनाकर सीता को लौटाने की राय देता है। महाबली बालि, अप्रतिम भट परशुराम तथा अनेकानेक शक्तिशाली जिस राम के समक्ष श्रीहत हो गये, उनके समक्ष तुम्हारी बिसात ही क्या है? वह रावण से कहती है—**रे कंत तृन दंत गहि सरन श्री राम कहि अजहुँ यहि भाँति लै सौंपु सीता**—पवन पुत्र हनुमान के शौर्य का वर्णन कवितावली में अनेक स्थलों पर हुआ है। सफल और समर्थ कवि के समक्ष भाषा हाथ जोड़े अनुचरी के समान उपस्थित रहती है। भावानुकूल भाषा एवं युद्ध की विभीषिका निम्नलिखित छप्पय में प्रभावोद्‌पादक ढंग से वर्णित है—

कतहुँ बिटप भूधर उपारि पर षेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सो बाजि मर्दि गजराज करक्खत।।
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत।
लंगूर लपेटत पटकि भट जयति राम जय उच्चरत।
तुलसीस पवन नंदन अटल क्रुद्ध युद्ध कौतुक करत।।

राम-रावण युद्ध का विस्तृत वर्णन कवितावली में संभव नहीं हो सका है। रावण, कुम्भकरण, वननान्द जैसे वीरों का बध होता है और लंका विजय के फल स्वरूप स्वर्ग स्थित देवगण तथा कपि एवं भालु आह्लादित होकर कह उठते हैं—

B-14

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देव निसान बजावत गावत सोचत जो मन भावन भोरे ।
नाचत बानर भालु सबै तुलसी कहि हा रे हहा भइया हो रे ॥

कवितावली के उत्तरकांड में संग्रहीत छन्दों की संख्या एक सौ तिरासी है। मुक्तक काव्य होने के फलस्वरूप लंका-विजय के पश्चात् राम के अयोध्या लौटने, इनके राज्याभिषेक तथा अन्य प्रसंगों का कोई उल्लेख इसमें नहीं है। पूर्ववर्ती कांडों के पदों में संक्षेप में ही सही, प्रमुख प्रसंगों का उल्लेख मिलता है। इस कांड में कवि ने अपने आराध्य देव की भक्ति, उनके माहात्म्य का वर्णन करने के साथ-साथ, कृष्णचरित पर आधारित कुछ छंद लिखे हैं, शिव की भक्ति विषयक पद भी हैं, आत्मचरित के अन्तःसाक्ष्य का भी उल्लेख चार-पांच छन्दों में मिलता है, तथा समसामयिक परिवेश एवं कलिकाल की करालता तथा रुद्रबीसी की भयावहता का वर्णन मिलता है। सर्वोपरि तुलसी भक्त हैं। राम की भक्ति ही इनकी जीवन यात्रा का पाथेय है। कवितावली के राम अन्तरजामी के स्थान पर बाहिरजामी हैं। कवि ने लिखा है—

अन्तरजामिहु ते बड़ बाहिरजामी है नाम लिये ते।
पैज परे प्रहलादहुके प्रगटे प्रभु पाहन ते न हिये ते ॥

बाहर भौतिक समृद्धि का प्रचुर रख-रखाव, भीतर चन्द्रमुखी के आननश्री को लखकर संतुष्ट होनेवाले भूप की संपत्ति निरर्थक है, यदि उसके हृदय में राजीव-नयन राम की भक्ति का अभाव है। जीवन का सर्वश्रेष्ठ फल कवि के मतानुसार इस प्रकार है—

सियराम सरूप अगाध अनूप बिलोचन मीननु को जलु है,
श्रुतिरामकथा मुखराम को नाम, हियेपुनि रामहिकोथलु है।
मति रामहिं सों गति रामहिसों, रति रामहि रामहिको बलु है,
सबकी न कहै तुलसी के मते इनको जगु जीवन को फलु है।

राम-नाम के माहात्म्य का भी उल्लेख स्थान-स्थान पर हुआ है। कवितावली के उत्तरकांड में कवि ने अपने व्यक्तित्व के संबंध में कुछ छंद लिखे हैं।

मध्ययुगीन भक्त कवियों ने अपने जीवन के संबंध में कुछ संकेत देने में संकोच ही व्यक्त किया है। आत्मश्लाघा और आत्मविज्ञापन से दूर रहना ही उन्हें रुचिकर लगा था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपने संबंध में विशेष कुछ नहीं कहा है। कवितावली ही उनकी ऐसी कृति है, जिसमें उन्होंने अपने चरित और जीवन के संबंध में कुछ संकेत दिया है। **मातु पिता जग जाइ तज्यो, विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई, जायो कुल मंगन बधावनो बजावनो सुनि भयो परिताप ताप जननी जनक को,** इन दो छन्दों में कवि ने अपने जन्म और शैशव के दिनों की आर्थिक दयनीयता तथा तद्जन्य विवशता का यथार्थ चित्रण किया है। **विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई,** वाले पद पर अपना विचार व्यक्त करते हुए तुलसी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साहित्य के गंभीर अध्येता फादर कामिल बुल्के ने एक संभाषण में कहा था कि तुलसीदास को क्या पता था कि भविष्य में वे भारत के सबसे बड़े भाग्यशाली के रूप में समादृत होंगे। यह सही है, पर जीवन यापन के निमित्त उन्हें जाति और कुजाति का भी अन्न ग्रहण करना पड़ा था और अनेक कष्ट उठाने पड़े थे। जीवन में अपमान भी सहने पड़े थे, पर सबसे निर्द्वन्द्व होकर कवि का स्वाभिमानी रूप अपनी फक्कड़ाना मस्ती में उभरा था और उसने लिखा, **धूत कहौ अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।** उसे किसी के कुछ भी कहने की चिन्ता न थी क्योंकि वह तो राम का सरनाम गुलाम था। समाज सदैव व्यक्ति के साथ संघर्ष और छेड़-छाड़ करने से कदापि नहीं चूकता। क्रूर समाज ने तुलसी को भी नहीं बख्शा था, पर उनके महान व्यक्तित्व से अभिभूत होनेवालों की संख्या भी कम न थी। इस संबंध में कवि ने एक घनाक्षरी कवितावली के उत्तरकांड में लिखा है—

कोऊ कहै करत कुचाल दगाबाज बड़ो।
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानै महासाधु खल जानै महाखल।
बानी झूठो साँचो कोटि उठत हबूब है।।
चाहत न काहू सो, न कहत काहू की कछु।
सबको सहत उर अंतर न ऊब है।
तुलसी को पोच हाथ रघुनाथ ही के।
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है।।

अपने जीवन के अन्तःसाक्ष्य का उल्लेख करके तुलसी ने बाद के अध्येताओं के लिये एक सुविधा प्रदान की है। महान भक्त एवं सफल कवि होने के साथ ही वे अपने समसामयिक परिवेश के प्रति पूर्ण सजग और सचेतन थे, इसका प्रमाण कवितावली के वे छंद हैं, जिनमें उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों का विवेचन किया है। जिस युग में वे थे, वह समय बड़ा ही उथल पुथल वाला था। चतुर्दिक व्याप्त अराजकता, एवं शासकों की छली वृत्ति का उल्लेख उत्तरकांड में कवि ने यों किया है—

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ, कुमारग कोटि कुचालि चली है।
काल कराल नृपाल कृपाल न, राज समाज बड़ोई छली है।।

समाज का प्रत्येक वर्ग अस्तव्यस्त एवं अभावग्रस्त था। दरिद्रता के दशानन से सब ग्रस्त थे। कृषकों की कृषि, भिक्षुओं की भिक्षा, वणिकों का वाणिज्य—सभी पर प्रश्न चिह्न लगा हुआ था और **कहाँ जायें क्या करें** का भाव सबके मुंह पर अंकित था। अयोग्य लोगों का बोलबाला था, योग्य लोग उपेक्षित थे, हरिश्चन्द्र और दधीचि जैसे सत्यवादी और त्यागी को तत्कालीन समाज गाली बकता था

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और स्वतः इतना मक्खीचूस कि उसके विषय में कुछ न कहना ही ठीक है। ये भाव कवितावली के उत्तरकांड की एक घनाक्षरी के हैं। कलिकाल की करालता चारों ओर परिव्याप्त थी। मात्र येन-केन-प्रकारेण उदरपालन ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ बन गया था। पर कलिकाल की करालता से तुलसी रंचमात्र भी भयभीत नहीं हैं। क्योंकि वे राम के गुलाम हैं—

काम कोह लाइकै देखाइत आँख मोहिं,
एते मान अकस कीबे को आपु आहि को।
साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम रामनाम को॥

जैसा कि पहले ही कहा चुका है कवितावली के उत्तरकांड में कृष्णचरित संबन्धित कुछ छंदों का संकलन किया गया है। यों तो तुलसीदास के आराध्य राम थे, पर उन्होंने राम के अतिरिक्त शिव और कृष्ण को भी अपनी भक्ति अर्पित की है। कृष्णगीतावली में तो उन्होंने विस्तार से कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है।

तुलसीदास समन्वयवादी कवि थे। राम के साथ ही उन्होंने शिव की भी वन्दना की है, क्योंकि शिव उनके आराध्य देव के सेवक, स्वामी और सखा हैं। भगवान शिव के स्वभाव, उनके स्वरूप तथा उनकी भक्ति विषयक अनेक छन्द कवितावली में मिलते हैं। कवितावली में व्यक्त भावों एवं कवि की अन्य कृतियों में व्यक्त भावों में एक समानता मिलती है। इसका कारण यह है कि कुशल कवि एक ही भाव को नाना रूपों में चित्रित करता है। निर्माण के तत्व एक ही होते हैं, पर संयोजन की कला में दक्ष होने वाला कवि उन्हीं तत्वों को नाना रूपों में उपस्थित करने में सक्षम होता है। तुलसीदास ऐसे ही कवि थे। जगन्माता पार्वती के समक्ष भगवान शिव के स्वभाव के संबन्ध में ब्रह्मा कह रहे हैं—

मांगो फिरै कहै मांगतो देखि, न खाँगो कछू जनि मांगिए थोरो।
राँकनि नाकप रीझि करै, तुलसी जग जो जुरै जाँचत जोरो॥
नाक संवारत आयो हौं नीकहिं नाहि पिनाकिहिं नेकु निहोरो।
ब्रह्म कहै गिरिजा! सिखवो पति रावरो दानि है बावरो मोरो॥

ठीक यही भाव विनयपत्रिका में **बावरो रावरो नाह भवानी** वाले पद में प्राप्त होता है।

तुलसीदास के ही समय में काशी में रुद्रबीसी का दारुण प्रकोप हुआ था। रुद्रबीसी की इस महामारी में शंकर शहर वाराणसी में चतुर्दिक हाहाकार मचा हुआ था। कवितावली के उत्तरकांड में इसका भी उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही मीन की सनीचरी की ओर भी कवितावली में संकेत किया गया है। **एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें कोढ़ में की खाजु-सी सनीचरी है मीन की।**

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मीन में शनि की स्थिति को सनीचरी कहते हैं। महामारी के प्रकोप से ग्रस्त वाराणसी की दुर्दशा का वर्णन कवि ने कवितावली में किया है। विश्वनाथ शिव और जगतजननी पार्वती की उपस्थिति के बावजूद स्थिति बड़ी ही भयावह थी। उस समय न तो देव ही दयालु रह गये थे और न महिपाल ही कृपालु थे।

कवितावली के अंत में हनुमान बाहुक है, जिसके संबंध में विद्वानों में मतान्तर है। कुछ का कहना यह है कि यह कवितावली का ही एक अंग है, परन्तु अन्य लोगों की यह मान्यता है कि यह एक पृथक् स्वतंत्र रचना है। कवितावली की रचना-प्रक्रिया को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि हनुमान बाहुक अलग रचना न होकर कवितावली का ही अंग विशेष है। ऐसा सुना जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी बाहुपीड़ा से ग्रस्त होकर अत्यंत पीड़ित थे। अपनी पीड़ा के शमन के लिये ही उन्होंने हनुमान की वन्दना के लिये हनुमान बाहुक की रचना की थी। इसमें कुल चौवालीस छंद हैं, जिनमें पवनपुत्र के प्रताप का वर्णन है। छप्पय, झूलना, घनाक्षरी और सवैया छन्दों का प्रयोग इसमें भी कवि ने किया है। प्रथम कवि ने एक छप्पय के द्वारा बातजात की वंदना की है—

सिंधु-तरन सिय-सोच, हरन रबि-बाल-बरन तनु।
भुज बिसाल, मूरति कराल, कालहु को काल जनु॥
गहन-दहन निर-दहन लंक, निःसंक बंक भुव।
जातुधान बलवान-मन-मद-दवन पवनसुव॥
कह तुलसीदास सेवत सुलभ, सेवक हित संतत निकट।
गुन गनत नमत, सुमिरत, जपत समन सकल संकट बिकट॥

कवितावली गोस्वामी जी की एक ऐसी कृति है, जो अनेक प्रौढ़ कवित्व की परिचायिका है। ये कवत्ति समय-समय पर एक लम्बी अवधि के अन्तर्गत लिखे गये होंगे एवं बाद में इनका संकलन किया गया होगा! कुछ आलोचक इसकी आलोचना करते हुए इसने दोष दर्शन करते हैं,पर कोई भी काव्य पूर्णतया दोषरहित हो, ऐसा संभव नहीं। काव्य के तत्वों के अतिरिक्त यह ध्यान रखना होगा कि यह एक भक्त कवि की रचना है। भक्ति के उच्छल प्रवाह में जो काव्यत्रुटियाँ इतस्ततः रह भी जाती हैं, वे ढँक जाती हैं। कवितावली एक संग्रह ग्रंथ है, जिसमें कवि ने अपने भाव-सुमनों का हार पिरोया है। निर्विवाद रूप से यह तुलसीदास की श्रेष्ठ कृति है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रामचरितमानस का एक गुजराती पद्यानुवाद

डॉ० जगदीश गुप्त

मानस जैसी रचना का पद्यबद्ध अनुवाद एक दुष्कर कार्य है तथापि अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओं में, एवं अंग्रेजी में भी, ऐसे प्रयत्न हुए हैं।

सन् १९३८ में प्रकाशित इस गुजराती अनुवाद का नाम उसके अनुवादक स्व० कवि श्री शिवलाल धनेश्वर याज्ञिक ने दिया था—

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी कृत

रामायण। सचित्र गुर्जर काव्यानुवाद

इसके प्रकाशक थे लक्ष्मण कान जी गज्जर—'फेलो ओफ धी थीयोसोफीकल सोसाइटी'। ५२० पृष्ठों के इस बड़े आकार के ग्रंथ का उस काल का मूल्य था केवल साढ़े पांच रुपया। इसके मुख पृष्ठ पर रहीम का यह दोहा मानस की असाधारण प्रशस्ति के रूप में मुद्रित है—

रामचरितमानस विमल संतन जीवन प्रान।
हिन्दुआन को वेद सम, यवनहि प्रकट कुरान।।

रहीम तुलसी के समकालीन थे और मुसलमान होते हुए भी उन्होंने मानस को कुरान के समान उद्घोषित करने का साहस किया, यह आश्चर्यजनक है। वेद के समान कहना उतना असाधारण नहीं है, जितना 'प्रगट कुरान' कहना, क्योंकि मुसलमानों में कुरान को लेकर जितनी कट्टरता है, उतनी हिन्दुओं में वेद को लेकर कभी नहीं रही। उसी काल में नाभादास ने अपने भक्तमाल में तुलसी को वाल्मीकि का अवतार घोषित किया, यह बात ठीक है, पर रहीम की उक्ति इससे भी अधिक चकित करनेवाली है। उसकी प्रामाणिकता का एक आधार यह भी माना जा सकता है कि रहीम के अतिरिक्त और कोई ऐसी बात लिख ही नहीं सकता। सम्पादक ने इसे चुनकर सर्वोपरि प्रतिष्ठित किया, यह सराहनीय कार्य है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस ग्रंथ में अनुवाद के अतिरिक्त 'तुलसीदास जी का आख्यान' भी प्रारम्भ में ही समाहित है, जिसके रचनाकार हैं—श्री माधवलाल त्रिभुवन रावल। इन्होंने इस आख्यान के अतिरिक्त 'गोस्वामी तुलसीदास' नाम से एक चरितात्मक नवल-कथा (उपन्यास) की रचना भी की है, जिसकी सूचना सम्पादक ने पाद टिप्पणी में दे दी है। हरिगीतिका छंद में लिखित 'तुलसीदासाष्टक' में तुलसी को 'बाल', 'आसक्त', 'त्यागी', 'साधु', 'भक्त', 'यात्री', 'कवि' एवं 'गुरु' रूप में स्मरण किया गया है। इसको प्रस्तुत करते हुए अन्त में 'तुलसी-स्तोत्रम्' भी रावल अवटंक-धारी कवि ने ही लिखकर तुलसी के प्रति अपनी असीम भक्तिभावना का परिचय देवभाषा में दिया है। दो-एक श्लोक उल्लेखनीय प्रतीत होते हैं—

> **संसारे साररहिते सारं हि शरणं विभोः**
> **इति प्रबोधितः पत्न्या वैराग्यं धृतवान् परम् ।।४।।**
> **पाषाणमूर्ति वृषभे चेतनत्वं प्रदायकः**
> **महात्मा तुलसीदासः वन्दनीयः सदा मम ।।८।।**

एक स्थान पर कवि ने तुलसी को **षोडषग्रंथ कृतिप्रसिद्धः** लिखा, जिससे लगता है कि आज की तरह उस समय तुलसी के द्वादश ग्रंथों तक उनके कृतित्व को सीमित नहीं माना जाता था। आज भी कुछ ग्रंथों की प्रामाणिकता को लेकर वाद-विवाद चलता ही रहता है। श्लोक ८ में किसी किम्बन्ती का सन्दर्भ है, जिसके अनुसार तुलसी ने वृषभ की पाषाणमूर्ति को सजीव कर दिया था। गुज-रात का जनमानस ऐसे अलौकिक चमत्कारपूर्ण कर्मों को महात्माओं एवं भक्तों से सदा सम्बद्ध करता रहा है। नरसी मेहता की जीवनी इसका प्रमाण है, अतः यदि तुलसीदास की प्रशस्ति में यह तत्व समाविष्ट है तो कोई असाधारण बात नहीं है। लोक-विश्वास भारतवर्ष भर में प्रायः एक ही जैसे मिलते हैं।

'संपादकनी नोंघ' शीर्षक से सम्पादकीय टिप्पणी लिखते हुए रावल जी ने रामायण के तीन सन्देश निर्दिष्ट किये हैं—

१. **स्त्री-रक्षा**
२. **पतितोद्धार**
३. **सेवक-सेव्य भाव**

उनकी धारणा है कि यदि सीता की पात्रता हटा दी तो रामायण रहेगी ही नहीं। जनसेवा ही रामायण का महामंत्र है। रामायण अर्थात् बलिदानों की महाकथा।

प्रकाशक ने अनुवादक का 'टुंक परिचय' देते हुए कुछ रोचक बातें कही हैं। 'लेखा' (देवता), 'सुनासीर' (इन्द्र) जैसे संस्कृत के अल्पप्रचलित शब्द तुलसी ने प्रयुक्त किये हैं, वैसे ही 'नियराया' अंग्रेजी शब्द से बना लिया है। (नीयर+

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आया)। उन्हें अवधी में जायसी-साहित्य तथा लोकभाषा में प्रयुक्त 'नियर' शब्द का ज्ञान होता, तो ऐसी अवास्तविक कल्पना वे नहीं करते। **दूरि सो नियर नियर सो दूरी** जैसी किसी भी पंक्ति से उनका परिचय होता, तो ऐसी बात न कहते। उनके अनुसार काठियावाड़, गुजरात में तुलसीकृत रामायण का प्रचार पुराना नहीं कहा जा सकता। किन्तु उसका नित्यपाठ वहाँ बड़े व्यापक रूप से होता है, इसमें सन्देह नहीं। रामायण का ज्ञान संस्कारिता का लक्षण समझा जाता है। उन्होंने मानस के दो पद्यात्मक भाषान्तरों का उल्लेख किया है। याज्ञिक के इस अनुवाद के अतिरिक्त दूसरा है रा० रा० छगनलाल वल्लभ जी वसावड़ा धोलकीया कृत पद्यानुवाद। दोनों में याज्ञिक के इस अनुवाद को श्रेष्ठ बताया है। उन्होंने याज्ञिक जी को तुलसीदास की रामायण-गंगा गुजरात तक ले जानेवाला भगीरथ कहा है। उन्हें इस अभूतपूर्व कार्य की प्रेरणा किसी संत कवि प्रेमदास से प्राप्त हुई थी। ऐसा ज्ञात हुआ है। संस्कृत रामायणों एवं रामकथापरक ललित साहित्य का उल्लेख करते हुए लेखक ने मराठी कवि मोरोपंत द्वारा शब्द-चातुर्यपरक **निरोष्ट रामायण** एवं परन्तु रामायण आदि का उल्लेख किया है। इसी क्रम में गुजराती की 'गिरधर रामायण' का भी नाम आया है। डा० नगेन्द्र ने डा० रमानाथ त्रिपाठी के सहयोग से 'रामचरितमानस : तुलनात्मक अध्ययन' नाम से १९७४ में मानस चतुश्शती की राष्ट्रीय समिति की ओर से जो विशिष्ट संग्रह प्रकाशित किया है, उसमें मैंने 'गिरधर रामायण' और 'रामचरितमानस' की विस्तार से तुलना की है। गिरधर कवि ने यद्यपि तुलसी का नाम नहीं लिया है, पर मानस से उसका इतना घनिष्ठ परिचय है कि बहुधा उसने शब्दानुवाद तक कर दिया है। सामान्य प्रभाव तो आद्यन्त व्याप्त है। गुजरात में कृष्णकाव्य की तरह रामकाव्य की भी एक स्वतन्त्र परम्परा मिलती है। जिसमें प्रमानंद भालण और विष्णुदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत प्रसंग में याज्ञिक के संदर्भ में लिखते हुए गिरधर रामायण के साथ विष्णुदास की रामायण का भी उल्लेख किया गया है।

तुलसीकृत रामायण का परिचय देते हुए लेखक ने कहा है कि वह अध्यात्म रामायण के प्रभाव से रची गयी हो, ऐसा प्रतीत होता है।

कवि तुलसीदास से सात रामायण रची छे

अेमानी चौपाईबन्ध रामायण अध्यात्म रामायण उपरथी रचेली। होय अेवुं जणाय छे।[1]

१–भावार्थ—तुलसीदास जी की रची सात रामायणों में से यह चौपाईबद्ध रामायण अध्यात्मरामायण का आधार लेकर रची गयी हो, ऐसा जान पड़ता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आगे उसने अपनी अनुवाद-प्रेरणा का रहस्य उसके काव्यगत सौन्दर्य को निर्दिष्ट किया है। यथा—

तेमानी कविता बांची जोतां मारा मन मां सहज
अेवी उत्कठां थइ, आवी के आवो ग्रंथ आपणी
भाषा मां होय तो केवुं सारू।[२]

यह तुलसी का काव्यत्व ही था, जिसने राम-भक्ति से समन्वित होकर देश के अधिकांश भाग में सहज प्रेरणा का विशद सूत्रपात किया। लोगों ने प्रेम-वश और समादर के साथ उनकी कीर्ति का रचनात्मक स्तर पर उत्तरोत्तर प्रसार किया। यद्यपि गुजराती साहित्य में कृष्ण-भक्ति की प्रधानता रही है, तथापि रामचरितमानस को उसमें भी पर्याप्त गौरव मिला है।

अनुवादक श्री याज्ञिक ने छंदविधान में पर्याप्त स्वतन्त्रता ग्रहण की है। गीत, मुक्तक और प्रबन्ध तीनों शैलियों का प्रयोग करते हुए उन्होंने गुजराती आख्यानों में प्रयुक्त ढालों "रागों" तथा "तालों' आदि का निर्देश करते हुए वहाँ की लोकोन्मुखी गेयता का पूरा आधार ग्रहण किया है। 'राग ओखाहरणनी', 'चौपाई त्रितालनी','राग ओखाहरणनी ढाल नो' अथवा 'राग रामग्री', 'राग परज', 'राग गरबी,' 'राग देशाख' जैसे संकेत गेयता प्रधान गुजराती काव्यों का पूरा वातावरण प्रस्तुत कर देते हैं। इसी प्रकार छंदों के नाम-निर्देशन में भी एतद्देशीय संस्कार स्पष्ट झलकता है। 'चन्द्रक्रीड़ा', 'नरकुट', ललित आदि गुजराती छंदों के साथ शिखरिणी, वसंततिलका, शार्दूलविक्रीडित जैसे प्रसिद्ध संस्कृत वृत्तों का गुजराती शैली में प्रायः सतुकान्त प्रयोग किया है। राग-निर्देशन के लिए कहीं गुजराती और कहीं हिन्दी गीत की पंक्ति ही उद्धृत कर दी गयी है। यथा—

मेते बजाड्यो शंख, समर्था वनमाली अे राग
नाथ के से गज को फंद छुड़ायो 'अे राग'।

यद्यपि सोरठा शब्द सौराष्ट्र का ही रूपान्तर है। किन्तु कवि ने सर्वत्र 'दोहरा' शब्द का प्रयोग किया है, कदाचित इसलिए कि 'सोरठियो दूहो' जैसी संज्ञा सोरठे को भी दोहे का ही विशिष्ट रूप मानकर प्रयुक्त की जाती है। सोरठों का अनुवाद प्रायः दोहों में ही किया गया है।

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।

पंक्ति हो गयी है

नील कमल सम स्याम छे, लोचन रवि सम लाल।

ऐसे स्थलों पर लालित्य की कमी खटकती है।

२—भावार्थ—उनकी कविता पढ़कर मेरे मन में ऐसी सहज उत्कंठा उत्पन्न हुई कि यह ग्रंथ अपनी भाषा में हो जाय, तो कितना अच्छा हो।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामान्यतया अर्थबोध में त्रुटि नहीं दीखती, पर एक स्थल पर मुझे लगा कि अनुवाद वह अर्थ प्रकट नहीं करता, जो मानसकार का अभीष्ट है।

घुरघुरात हय आरो पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ।।

इसको इस रूप में प्रस्तुत किया गया है—

सांभलि घुरघुर शब्द, हृदय आशंका लावी।
चकित बनी चोपास जुए हय कान उठावी।।

इसमें प्रतापभानु का घोड़ा वराह का घुरघुर शब्द सुनकर चकित हो कान उठाता है, पर वस्तुतः यह शूकर का ही वर्णन है, जो घोड़े की आहट सुनकर घुरघुराने लगता है और चकित हो कान उठाकर देखने की चेष्टा करता है। याज्ञिक जी ने तुलसी द्वारा लिखित संस्कृत श्लोकों तथा स्तुतियों को भी गुजराती भाषा में ही अनूदित किया है। कुछ स्थलों पर प्रादेशिक लोकाचार एवं भाषा-संस्कार विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करते हैं—

कंकोतरिर जइ मोकलो लखी अयोध्या ग्राम।

में कंकोतर शब्द कुंकुमपत्रिका का अपभ्रंश रूप है, जो गुजरात में लोकप्रचलित है। वैवाहिक संदर्भ में भेजी गयी पत्रिका ही 'कंकोतरी' कहलाती है। मानस में यह शब्द प्रयुक्त नहीं है, पर अनुवादक ने अपनी भाषा और प्रदेश के अनुरूप उसे समाविष्ट कर लिया है।

सीता जयमाल डालने के अनन्तर राम के चरण छूने में संकोच करती हैं। तो उसका कारण तुलसी ने मात्र गौतमपत्नी की दशा का स्मरण निर्दिष्ट किया है, पर याज्ञिक ने उसे अधिक यथार्थ भूमिका पर उतारते हुए सीता के हाथों की दसों उंगलियों में रत्नजड़ित मुद्रिकाओं का उल्लेख करते हुए प्रत्येक मणि के स्त्री बन जाने की आशंका की भूमिका रच दी है। यहाँ अनुवाद अनुवाद मात्र न होकर रचनात्मक संवर्धन दिखायी देता है। यथा—

दश मुद्रिका दश आगले छे मणि जडित्र महामुली।
वलि पोखराज पिरोज रत्नो अधिक गणता जउ मुली।
करूँ जो हूँ चरण परस कदापी थाय सो स्त्री रूपना।
पदकमल कामण टुमणनां छे कुंवर कोहल भूपनां।।

सीता सोचती है मेरी मुद्रिकाएं ही कहीं मेरे शोक का कारण न बन जायँ। ऐसे और भी स्थल खोज कर दिखाये जा सकते हैं, जहाँ भाव-संवर्धन की प्रक्रिया ने अनुवाद को रचनात्मक गौरव प्रदान किया है। यद्यपि विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से इसे संगत या उचित नहीं कहा जा सकता। यह दूसरी बात है कि साहित्य के क्षेत्र में हम वैज्ञानिकता को ही मूल्यवान् न मानें।

सामान्यतया छंदान्तर के साथ भाषान्तर मात्र किया गया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भरत सरिस को राम सनेही । जग जपु राम राम जपु जेही ।

याज्ञिक ने इसको इस रूप में प्रस्तुत किया है—

राम स्नेहि जगत बधे निरखो । नहि होय भरतना सरखो ।
जग आखुं जपे मुखे राम । राम ते ज जपे तेनुं नाम ।।

सुनु सुरेस उपदेस हमारा आदि को वसंततिलका छंद में इस प्रकार संग्रथित किया गया है—

सूणो सुरेश उपदेश रुडा अमारा
श्री राम ने सतत सेवक प्राणप्यारा ।।

प्रत्येक काण्ड के अन्त में टिप्पणीकार ने मनन के लिए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है, जो निश्चय ही उपादेय है। अनुवाद की समाप्ति की घोषणा प्रत्येक कांड के अन्त में इस रूप में की गयी है—

गोस्वामी तुलसीदास जी रचित रामचरितमानस ना कवि श्री शिवलाल धनेश्वर याज्ञिक रचित गुर्जर भाषानुवादना रचित टिप्पणी समाप्त ।

उत्तरकांड के अन्त में कवि ने अत्यन्त विनयपूर्वक रामकथा को अलौकिक कुंज का रूपक देकर कविवाणी को अलिगुंज कहा है। सप्तकांड सिंधुरूप है, जिनसे रमारमण ने ही उन्हें पार उतारा। फिर रामकथा को गहनगिरि कहकर सप्त प्रदेशों के ज्ञान से जगहित करने का संकल्प ईश्वरेच्छा द्वारा ही सिद्ध माना गया है। शिवपार्वती की कृपा से पूर्ण हुआ शिवलाल याज्ञिक का यह अनुवाद निश्चय ही रोचक एवं ज्ञानवर्धक है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विनयपत्रिका में गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना

इन्द्रजीत पाण्डेय

भक्ति परानुरक्ति है। **सा परानुरक्तिरीश्वरे**--शाण्डिल्य का प्रधान भक्तिसूत्र है। सांसारिक नश्वरता की प्रतीति से ईश्वरोन्मुख अनुरक्ति का अंकुरण होता है। भक्ति प्रभु के प्रति जीव की अनुभवात्मक, रागात्मक प्रतीति है। इस प्रेमोत्थान में भक्त सहज ही जिज्ञासु, निश्छल, प्रत्यभिज्ञ, श्रद्धालु और शरणागताकांक्षी हो जाता है। देवर्षि नारद अपने भक्तिसूत्र में परम प्रेम के उद्रेक को ही भक्ति की संज्ञा देते हैं।[1] भक्ति मूलतः प्रेमाद्वैत के सम्यक् बोध की रागात्मक अनुभूति है। इस दशा में भक्त हृदय का रागात्मक प्रसार जड़ और चेतन दोनों को आप्यायित करता है। इस प्रेम-सरणि के अनुसरण से भक्त में सांसारिक काम्य वस्तुओं की उपलब्धि नहीं होती, क्योंकि विषय-वस्तु की वर्त्तमानता में इस दिव्य प्रेम की चिन्मय किरणें उदित नहीं होतीं।[2] भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से भी अधिक महार्घ्य प्रतिपादित करते हुए कहा गया है, **सातु कर्मज्ञायोगेभ्योऽप्यधिकतरा।**[3] शंकराचार्य ने विवेक चूड़ामणि में **मोक्ष-कारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी** के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करने के सम्पूर्ण साधनों में भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ निर्धारित किया है। 'श्रुति' में **भक्तिरेवैनं नयति, भक्तिरेवैनं दर्शयति, भक्तिरेवैनं गमयति, भक्तिवशः पुरुषः, भक्तिरेव भूयसी** कहकर भक्ति को ही भूयसी और महीयसी ठहराया गया है। 'भक्ति' शब्द व्याकरण की दृष्टि से तीन प्रकार से निष्पन्न होता है--**भजनं भक्तिः, भागो भक्तिः, भञ्जनं भक्तिः।** प्रथम की व्यंजना भगवान की लीला, गुण, महिमा

१--ॐ सात्वस्मिन् परम प्रेम रूपा।--नारद भक्तिसूत्र, १।२
२--ॐ सा न कामायमाना निरोधरूपत्वात्। --नारद भक्तिसूत्र, २।७
३--नारद भक्तिसूत्र--४।२५

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और रूपादि का बार-बार रसास्वादन करना है, तो द्वितीय की सांसारिक स्वत्व को नकारते हुए केवल प्रभु के स्वत्व को निरन्तर स्वीकारना है और तृतीय की राग-द्वेष, माया-मोह, अविद्या का भञ्जन करना है। मन की एकाग्र सात्विक वृत्ति अनायास ही सहज रूप से जब भगवान् में तल्लीन होती है, तो वह भक्ति की सहजावस्था होती है। **अन्याभिलाषिताशून्यं, ज्ञानकर्माद्यनावृतम्** रहकर प्रभु के अनुकूल कर्मानुशीलन रति ही उत्तम भक्ति है।[4]

प्राचीन भागवत सम्प्रदाय में भगवान् के जिस लोक-मंगलकारी स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई, उसी को आलम्बन बनाकर भक्तों ने मानव-हृदयों के भाव-संघात को लोक-भावना में प्रतिष्ठित किया। गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रभु के इसी लोक-रंजनकारी स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण अपने समस्त कृतियों में प्रस्तुत किया है, जिससे प्रभु के मनोहारी रूप की अनुभूतिपूर्ण-पुलक मानव-जीवन में अपरिसीम सौन्दर्य-विधान का सृजन करती है। इसी अनन्त सौन्दर्य के भीतर ही अनन्तशील और शक्ति का सामञ्जस्य प्रतिष्ठित करना गोस्वामी जी की भक्ति भावना का मूलाधार है। सौन्दर्यानुभूति तुलसी की भक्ति को जहाँ विस्तार और भाव-प्रवणता प्रदान करती है, शक्तिमत्ता-तेजस्विता को वहीं शील-निरूपण एक अजस्र प्रवहमानता को असीम शक्ति-सौन्दर्य-समन्वित अशेष शील की प्रतिष्ठा से ही पूर्ण मानवता की स्थापना प्रस्तुत करना ही गोस्वामी जी की मूल चेतना है। उनकी यही चेतना मानस में व्यापक रूप से परिलक्षित होती है, जबकि विनयपत्रिका में अन्तः सलिला धारा की भाँति प्रवाहित है। रामचरितमानस रससिद्ध कवीश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है, जिसमें राम-भक्ति की अभिनव मंदाकिनी की पीयूष धारा प्रवाहित होती है। रामचरितमानस कविमानस का अथ है, इति नहीं। भक्त-प्रवर तुलसी की आत्मा ने भाव-विभोर होकर, प्रबन्धात्मक आवरण से विमुक्त होकर जिन पदों का अनुगायन किया है, वे ही विनयपत्रिका के मुक्ताफल हैं। विनयपत्रिका के पद सिद्धान्त की दृष्टि से जितने महत्त्वपूर्ण ठहरते हैं, पाण्डित्य की दृष्टि से उतने ही गूढ़। योगाध्यात्मिक विश्लेषण की कसौटी पर जितने सूक्ष्म प्रतीत होते हैं, भक्ति के निकष पर सहज लालित्य से मण्डित।

विनयपत्रिका भक्ति-भाव का समरस ग्रन्थ है। इसके पदों में अशेष पाण्डित्य, अचिन्त्य अर्थ-गाम्भीर्य, मनोहारी उक्ति वैचित्र्य के दर्शन भले ही होते हैं, किन्तु भक्त की निर्मल आत्मा ही सर्वत्र झाँकती है। भक्ति की पावनता से प्रेरित होकर ही विनय की अलौकिक पाती को गोस्वामी जी ने प्रभु राम के श्रीचरणों में निवेदित किया है। भव-विह्वल भक्त-हृदय अपने दैन्य-भाव को ही प्रभु के महत्त्व में तल्लीन करने के निमित्त लालायित है। आत्मसमर्पण, आत्मग्लानि,

---

४–भक्तिरसामृतसिन्धु—१।११

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुताप और आत्मनिवेदन की तरंगें भक्त के मानस का प्रक्षालन करती हैं। प्रभु-महत्त्व की अनुभूति और स्व लघुत्व का बोध ही भक्त का अपने स्वामी को मर्यादा पुरुषोत्तम, राजराजेश्वर मानकर राज दरबार में विनयपत्रिका प्रेषित करने के लिए विवश करता है। प्रारम्भ में विविध देवी-देवताओं की स्तुति प्रस्तुत कर गोस्वामी जी ने बहुदेववाद के प्रति अपनी श्रद्धा ज्ञापित ही नहीं की है, अपितु अपनी समन्वयात्मक दृष्टि की भी पुष्टि की है। इन देवी-देवताओं की अभ्यर्थना के माध्यम से अपने इष्टदेव के श्रीचरणों में अपनी प्रतीति को ही और पावनता प्रदान करने का अनुरोध है। ६३ पदों के वन्दना-समुच्चय को भक्त की भूमिका स्वीकार करनी चाहिए। गणेश, सूर्य, शिव, भैरव, देवी, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, सीता, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि के स्तुति पदों का लक्ष्य एक ही है, **अविरक्त भगति राम पद, बसहिं रामसियमानस मोरे, तूलसी रामभक्ति वर मांगै, विमल भगति रघुपति की पावै, जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम।** वातसंजात की स्तुति और मातुजानकी की स्तुति में भक्त-हृदय का सामीप्य स्पष्टतः परिलक्षित होता है। हनुमान जी को गोस्वामी जी **रामपदपद्म-मकरंद-मधुकर, खानि सकल कल्यान की, भक्त-कालतरु नाम राम परिपूरन चन्द चकोर** की आदि अभिप्रेत विशेषणों से स्मरण करते हैं। कलिकाल की व्यथा से सन्तप्त तुलसी मातु जानकी की शरण में आर्तभाव से उपस्थित होते हैं और करुणभाव के सूत्रपात से प्रभु के सम्मुख अपनी पाती प्रस्तुत करने का निवेदन करते हैं :—

कबहुंक अम्ब, अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ।।
दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी दास कहाइ।।
बूझिहैं 'सो है कौन', कहिबो नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ।।[५]

मातु जानकी को चैतन्यघन विग्रहाशक्ति, आह्लादिनी साररूपे, जगजननि आदि सोपाधियों से सम्बोधित कर भक्त अपने हृदय का कल्मष प्रक्षालित करता है।

स्तुति, आत्मोपदेश, जागतिक असारता, आत्मग्लानि, आत्म-अभिव्यंजक और राम-नाम माहात्म्य विषयक पदोंको विनयपत्रिका की माला में पिरोया गया है, जिसमें राम-नाम माहात्म्य इस माला का सुमेरु है। स्थल-स्थल पर विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अवसाद और अनुद्धर्ष भक्ति के साधन-विनियोगों के प्रयोग मिलते हैं। जिज्ञासा, गुरु-कृपा, हरिभजन, प्रभुकृपा, ज्ञान, विश्वास और वैराग्य को भक्ति-योग के सप्त साधन-सोपानों के अन्तर्गत परिगणित कर अविकल

५– विनयपत्रिका, पद सं० ४१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हरि-भक्ति की सुरसरि को ही प्रवाहित किया गया है। भक्ति के इन सप्त-सोपानों के साधन-विनियोग से भक्त में 'तदर्थ प्राणता' की उपलब्धि सहज ही हो जाती है। भवित के साधन-विनियोग के क्रमिक सोपान को तुलसीदास ने मानस के उत्तरकाण्ड में प्रस्तुत करते हुए कहा है—

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनुहरि भजन न जाहिं कलेसा॥
राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई॥
जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल की चिकनाई॥[6]

भवितशास्त्रों में भक्ति की जिन सप्त भूमिकाओं का उल्लेख मिलता है, उनमें हैं—दीनता, मानमर्षता, भयदर्शना, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा।

दैन्यं च मानमर्षित्व भयस्य दर्शनं तथा।
भर्त्सना आश्वासनं चैव मनोराज्यं विचारणा।
मुनिभिरुक्ता भक्तानां सप्तैता भूमिकाः स्मृताः॥

विनयपत्रिका के विविध पदों में इन सप्त भूमिकाओं के दर्शन होते हैं। **कैसे देउँ नार्थाहि खोरि,**[7] **है प्रभु मेरोई सब दोसु**[8] आदि पदों में दीनता की प्रतिष्ठा है। **काहे ते हरि मोहि विसारो,**[9] **माधव! मो समान जगमाहीं।**[10] पदों में मान-मर्षता की स्थापना है। **राम कहत चलु, राम कहत चलु,**[11] **मन पछितैहै अवसर बीते**[12] पदों में भयदर्शना भूमिका का नियोजन है। **ऐसी मूढ़ता या मन की,**[13] **काहे को फिरत मूढ़ मन**[14] आदि विविध पदों में भर्त्सना की भूमिका पर मन को माँजने का प्रयास है। **ऐसे राम दीन-हितकारी**[15], **ऐसो को उदार जगमाहीं**[16] पदों में भक्त ने पूर्णरूपेण प्रभु पर निर्भर रहने के निमित्त मन को आश्वासन दिया है। **कबहुँक हौं इहि रहनि रहौंगो**[17] पद में भक्त की अभीप्सित कामनाओं की पूर्ति

६—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
७—विनयपत्रिका १५८
८— ,, ,, १५९
९— ,, ,, ९४
१०— ,, ,, ११४
११— ,, ,, १८९
१२— ,, ,, १९८
१३— ,, ,, ९०
१४— ,, ,, १९९
१५— ,, ,, १६६
१६— ,, ,, १६२
१७— ,, ,, १७२

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की अभिव्यंजना है, जो 'मनोराज्य' की भूमिका है। **केशव कहि न जाइ का कहिए।**[१८] विचारणा की उदात्त भूमिका है, जहाँ भक्त-मन सांसारिक असारता और बहुविवाद का परित्याग कर भक्ति में तल्लीन हो जाता है।

यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में नवधाभक्ति की विशद व्याख्या प्रस्तुत की है, तो भी उसके स्वरूप को उनके अन्य ग्रन्थों में भी देखा जा सकता है। **प्रथम भगति संतन कर संगा,** विनयपत्रिका के कई पदों में अन्तर्निहित है। सन्त-स्वभाव की, उसकी प्राप्ति की अपेक्षा निम्नांकित पद में व्यक्त होती है—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपाल-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो।।
जथालाभ सतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, समसीतल मन, परगुन, नहिं दोष कहौंगो।।
पर हरि देह जनित चिन्ता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भगति लहौंगो।।[१९]

'गुरुपद पंकज सेवा' 'रतिमम कथा प्रसंगा' आदि लक्षणों को कई पदों में अति प्रभावोत्पादक ढंग से निरूपित किया गया है। **तुलसिदास हरि गुरु करुना बिनु बिमल बिबेक न होई।** उनकी दृढ़ मान्यता है। राम-नाम को तुलसीदास जी **एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साथ रे, रामनाम बोहित भवसागर** मानते हैं। नाम-जप की महिमा का गुण-गान विनयपत्रिका का प्राणाधार है। दास्य और आत्मनिवेदन के पदों का तो विनयपत्रिका में प्राचुर्य है। अपने आराध्य देव के सौन्दर्य, शील और शक्ति का उद्घाटन जहाँ भक्त का प्रमुख लक्ष्य है, वहीं अपना दैन्यभाव-प्रदर्शन चित्त की निष्कामता की स्वीकृति। स्वामी की महत्त्वानुभूति में अपना लघुत्व प्रदर्शित करना उनकी अनन्यता का परिचायक है—

है प्रभु मेरोई सब दोसु
सील सिंधु, कृपालु, नाथ, अनाथ आरत पोसु।[२०]

अनुकूल का संकल्प और प्रतिकूल का वर्णन तुलसीदास की शरणागत-भावना का केन्द्र-विन्दु है। शरणागति-भाव विनयपत्रिका में अनुस्यूत है।

१८—विनयपत्रिका १११
१९— ,, ,, १७२
२०— ,, ,, १५९

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास जाचक रुचि जानि दानि दीजै।
रामचन्द्र चन्द्र तू चकोर मोहिं कीजै ।।[२१]

सतत नाम-जाप और ध्यान से भक्त प्रभु का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है। इस सान्निध्य की अनुभूति भक्त को बहुत कुछ मुखर बना देती है। वह प्रभु को मधुर किंतु तीखा उपालम्भ भी देता है। विनयपत्रिका का प्रस्तुत पद उपालम्भ का उत्कृष्टतम उदाहरण है—

काहे ते हरि! मोहि बिसारो।
जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो।।
पतित-पुनीत दीनहित असरन-सरन कहत स्तुति चारो।
हौं नहिं अधम सभीत दीन? किधौं, बेदन मृषा पुकारो?।।
खग-गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ, तहँ हौंहूँ बैठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान, परसत पनवारो फारो।।
जो कलिकाल प्रबल अति होतो, तुव निदेस तें न्यारो।
तौ हरि रोष भरोस दोष गुन, तेहि भजते तजि गारो।।[२२]

परसत पनवारो फारो में भक्त के उपालभ्य की जो प्रभावोत्पादक व्यंग्य-व्यंजना है, वह उसके हृदय के अतल-तल से निकली है। उपालम्भ की मीठी झिड़कियों की रिम-झिम फुहार से भक्त अपनी हृदय-भूमि तो सींचता ही है, प्रभु के हृदय को भी द्रवित करता है तथा उसके अनुग्रह-भाव का भी स्मरण कराता है।

हरि, तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन-धाम बिबुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों।।[२३]

ज्ञान और भक्ति का जो सामरस्य तुलसी का प्रतिपाद्य है, उसकी ही स्थापना विनयपत्रिका में कई पदों में की गई है। ज्ञानयोग की चरमावस्था को ही भक्ति-योग की चरमावस्था निर्धारित की गई है—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बलतें न कोउ बिलगावै।
अति रसग्य सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।

२१-विनयपत्रिका ८०।५
२२- ,, ,, ९४
२३- ,, ,, १०२।१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रातजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत-बियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस-निसि, देस-काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संशय निरमूल न जाहीं।।[२४]

रामचरितमानस की भाँति विनयपत्रिका में भगवदैश्वर्य और भगवन्नमाधुर्य की पराकाष्ठा है। अनन्यता ही विनयपत्रिका का प्रतिपाद्य है। यदि रामचरितमानस की कथा सुरसरि है, तो निश्चय ही विनयपत्रिका उसके पावन तट पर अवस्थित पतित-पावन काशी नगरी।

२४–विनयपत्रिका १६७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हमारे निबन्धकार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१. श्री अवधेश कुमार राय, एम० ए०
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
विद्यासागर कॉलेज फार वीमेन, कलकत्ता–६
७, मारकस स्क्वायर, कलकत्ता–७००००७.

२. श्री इन्द्रजीत पाण्डेय, एम० ए०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
सेठ आनन्दराम जयपुरिया कॉलेज, कलकत्ता.
४५, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता–७००००७.

३. डॉ० (श्रीमती) इन्द्रावती सिंह, एम० ए० (हिन्दी, इतिहास), एल० टी०, साहित्यरत्न, पी-एच० डी०
प्रिंसिपल, सेठ सूरजमल जालान गर्ल्स कॉलेज, कलकत्ता–७०००७३.
२२१, विधान सरणी, कलकत्ता–७००००६.

४. डॉ० उदयभानु सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.
डी-५,२९।३१,छात्रमार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली–११०००७.

५. डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच० डी०
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
कोचीन विश्वविद्यालय, कोचीन–६८२०२२
(केरल)

६. प्रो० कल्याणमल लोढ़ा, एम० ए०
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता.
पूर्व-कुलपति, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर.
२ए, देशप्रिय पार्क, ईस्ट, कलकत्ता–७०००२९.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

७. डॉ० फादर कामिल बुल्के, बी० एस-सी० (इंजीनियरिंग), एम०ए० (दर्शनशास्त्र, हिन्दी), डी० फिल्०
मानरेसा हाउस, राँची–८३४००१

८. डॉ० जगदीश गुप्त, एम० ए०, डी० फिल्०
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद.
१८२–ए।१, नागवासुकि, इलाहाबाद.

९. श्री जगन्नाथ सेठ, एम० ए०
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
चारुचन्द्र कालेज, कलकत्ता.
२०४, चित्तरजन एवेन्यू, कलकत्ता–७००००७

१०. डॉ० जनार्दनराव चेलेर, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति, आंध्र।
अजलापुर, गुलवर्गा, कर्नाटक।

११. डॉ० त्रिभुवननाथ शुक्ल, एम० ए०, साहित्याचार्य, पी-एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर (म०प्र०)
मधुपुर, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

१२. डॉ० देवकीनंदन श्रीवास्तव, 'नंदन', एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-भवन, विश्व भारती
शान्ति निकेतन-७३१ २३५ (प० बं०)

१३. डॉ० नगेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट्०
आचार्य, हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.
१६, कैवलरी लाइन्स, दिल्ली–११० ००७.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१४. डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ०प्र०)

बी० ७०, आवास विकास कॉलोनी,
सूरजकुण्ड, गोरखपुर–२७३००१

१५. डॉ० प्रभाकर माचवे, एम० ए० (दर्शन, अंग्रेजी), पी-एच० डी०
निदेशक, भारतीय भाषा परिषद,
३६, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता.

१६. डॉ० प्रेमशंकर, एम० ए०, डी० लिट्०
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
अधिष्ठाता, कला संकाय,
सागर विश्वविद्यालय, सागर–४७०००३,
(म० प्र०)

१७. डॉ० भगवती प्रसाद सिंह, डी० लिट्०
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

साकेत, बेतियाहाट, गोरखपुर

१८. डॉ० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०
निवृत्त आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
सागर विश्वविद्यालय, सागर

एच-९, पद्माकर नगर, मकरोनिया कैम्प,
सागर–४७० ००४

१९. डॉ० मदन गोपाल गुप्त,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा–२

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२०. डॉ० युगेश्वर, एम० ए०, पी-एच० डी०
उपाचार्य, हिन्दी-विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी–२

२१. स्वर्गीय रघुनन्दन मिश्र, एम० ए०
निवृत अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
विद्यासागर कॉलेज, कलकत्ता
एवं निवृत्त प्राध्यापक हिन्दी-विभाग, कलकत्ता-विश्वविद्यालय, कलकत्ता

२२. डॉ० राजकिशोर पाण्डेय, एम० ए०, पी-एच० डी०
निवृत आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद
२-१-५६४।१, नल्लाकुंटा, हैदराबाद-५०००४४

२३. डॉ० राम निरंजन पाण्डेय, एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), एल० एल० बी०, साहित्य शास्त्री, वेदान्त शास्त्री, पी-एच० डी०
निवृत प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
उस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद–७
१-८-७०२।१९, नल्लाकुंटा, हैदराबाद–५०००४४, (आंध्र प्रदेश)

२४. डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०, साहित्य शास्त्राचार्य
आचार्य-नवीन शोध पीठ, अध्यक्ष–हिन्दी प्राध्ययन केन्द्र
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन-४५६०१० (म० प्र०)
ई–१, विश्वविद्यालय आवास,
कोठी रोड, उज्जैन (म० प्र०)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२५. डॉ० रामप्रीत उपाध्याय, एम० ए० (हिन्दी, अंग्रेजी), डी० लिट्०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता
४, हरिघोष स्ट्रीट, कलकत्ता–६

२६. डॉ० रामबाबू शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्
रीडर, हिन्दी-विभाग
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति-५१७५०२ (आ०प्र०)

२७. डॉ० रामरतन भटनागर, एम० ए०, डी० फिल०, डी० लिट्०
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
सागर विश्वविद्यालय, सागर
एच० आय. जी. १, म० प्र० गृह निर्माण मंडल
(पद्माकर नगर), सागर, मध्य प्रदेश.

२८. डॉ० रामविलास शर्मा,
३०, नयी राजा की मंडी
आगरा (उ० प्र०)

२९. डॉ० वचनदेव कुमार, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच०डी०, डी०लिट्
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची.

३०. श्री वासुदेव पोद्दार,
७, हंसपोखरिया लेन, कलकत्ता–७०००७०

३१. प्रो० विजयेन्द्र स्नातक, सिद्धान्त शिरोमणि, एम० ए०, साहित्य शास्त्री, पी-एच० डी०
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.
स्नातक सदन,
ए ५।३, राणा प्रताप बाग, दिल्ली–११०००७.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३२. डॉ० विद्यानिवास मिश्र,
अध्यक्ष–कला संकाय,
निदेशक–क० मुं० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा-२८२००४.

३३. डॉ० विनयमोहन शर्मा,
ई-६।एम. आई. जी. अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-१४.

३४. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, एम०ए०, डी०लिट्० की मानद उपाधि विक्रम विश्वविद्यालय एवं आगरा विश्वविद्यालय से (क्रमशः १९६७ एवं १९७८ में) विभूषित।
वाणी वितान,
६३, ब्रह्मनाल, वाराणसी–१.

३५. श्री विष्णुकान्त शास्त्री, एम० ए०
रीडर, हिन्दी-विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता.
२८०, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता–७००००६.

३६. डॉ० शिवकुमार मिश्र,
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर (गुजरात)
बी–३, यूनिवर्सिटी कॉलोनी,
वल्लभ विद्यानगर–३८८-१२० (गु

३७. श्री श्यामनारायण पाण्डेय, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न
डुमग्राम, मऊनाथभंजन,
आजमगढ़, (उ० प्र०)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३८. डॉ॰ सत्येन्द्र (गौरीशंकर), पी-एच॰ डी॰, डी॰ लिट्॰
४ ल ३६, जवाहर नगर,
जयपुर–३०२००४.

३९. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, एम॰ ए॰ (हिन्दी, संस्कृत, पालि, प्रत्न भारतीय इतिहास तथा संस्कृत), बी॰ टी॰, एल॰ एल॰ बी॰, साहित्याचार्य।
वेदपाठी भवन,
पंचमुखी महादेव मार्ग, मुजफ्फरनगर–२.
(उ॰ प्र॰)

४०. श्री हर्षनाथ, एम॰ ए॰
सावित्री गर्ल्स कालेज, कलकत्ता–७
३३, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता–७०००७०.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh